गीता दर्शन–भाग–6
दुःख से मुक्ति का मार्ग: तादात्म’य का विसर्जन—(प्रवचन—पहला)
अध्याय—13

सार—सूत्र:

श्रीमद्भगवद्गीता अथ त्रयौदशोऽध्याय:

श्री भगवानुवाच:

इ़दं शरीर कौन्तेय क्षेत्रीमित्यीभधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं पाहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।। 1 ।।
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानिं यतज्ज्ञानं मतं मम।। 2 ।।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे श्रृणु।। 3 ।।
उसके उपरांत श्रीकृष्ण भगवान बोले है अर्जुन, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसे कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्र ऐसा उनके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं। और हे अर्जुन तू अब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान।

और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात विकार रहित प्रकृति का और पुरूष का जो तत्व से जानना है, वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है। इसलिए वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से मन।

सुबह से सांझ तक न मालूम कितने प्रकार के दुखी लोगों से मेरा मिलना होता है। एक बात की मैं तलाश करता रहा हूं कि कोई ऐसा दुखी आदमी मिल जाए, जिसके दुख का कारण कोई और हो। अब तक वैसा आदमी खोज नहीं पाया। दुख चाहे कोई भी हो, दुख के कारण में आदमी खुद स्वयं ही होता है। दुख के रूप अलग हैं, लेकिन दुख की जिम्मेवारी सदा ही स्वयं की है।

दुख कहीं से भी आता हुआ मालूम होता हो, दुख स्वयं के ही भीतर से आता है। चाहे कोई किसी परिस्थिति पर थोपना चाहे, चाहे किन्हीं व्यक्तियों पर, संबंधों पर, संसार पर, लेकिन दुख के सभी कारण झूठे हैं। जब तक कि असली कारण का पता न चल जाए। ओर वह असली कारण व्यक्ति स्वयं ही है। पर जब तक यह दिखाई न पड़े कि मेरे दुख का कारण मैं हूं तब तक दुख से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि ठीक कारण का ही पता न हो, ठीक लदान दी न हो सके, तो इलाज के होने का कोई उपाय नहीं है। और जब तक मैं भ्रांत कारण खोजता रहूं, तब तक कारण तो मुझे मिल सकते हैं, लेकिन समाधान, दुख से मुक्ति, दुख से छुटकारा नहीं हो सकता।

और आश्चर्य की बात है कि सभी लोग सुख की खोज करते हैं। और शायद ही कोई कभी सुख को उपलब्ध हो पाता है। इतने लोग खोज करते हैं, इतने लोग श्रम करते हैं, जीवन दाव पर लगाते हैं और परिणाम में दुख के अतिरिक्त हाथ में कुछ भी नहीं आता। जीवन के बीत जाने पर सिर्फ आशाओं की राख ही हाथ में मिलती है। सपने, टूटे हुए; इंद्रधनुष, कुचले हुए; असफलता, विफलता, विषाद! मौत के पहले ही आदमी दुखों से मर जाता है। मौत को मारने की जरूरत नहीं पड़ती; आप बहुत पहले ही मर चुके होते हैं; जिंदगी ही काफी मार देती है। जीवन आनंद का उत्सव तो नहीं बन पाता, दुख का एक तांडव नृत्य जरूर बन जाता है।

और तब स्वाभाविक है कि यह संदेह मन में उठने लगे कि इस दुख से भरे जीवन को क्या परमात्मा ने बनाया होगा? और अगर परमात्मा इस दुख से भरे जीवन को बनाता है, तो परमात्मा कम और शैतान ज्यादा मालूम होता है। और

अगर इतना दुख जीवन का फल है, तो परमात्मा सैडिस्ट, दुखवादी मालूम होता है। लोगों को सताने में जैसे उसे कुछ रस आता हो! तो फिर स्वाभाविक ही है कि अधिक लोग दुख के कारण परमात्मा को अस्वीकार कर दें।

जितना ही मैं इस संबंध में लोगों के मनों की छानबीन करता हूं, तो मुझे लगता कि नास्तिक कोई भी तर्क के कारण नहीं होता। नास्तिक लोग दुख के कारण हो जाते हैं। तर्क तो पीछे आदमी इकट्ठे कर लेता है।

लेकिन जीवन में इतनी पीड़ा है कि आस्तिक होना मुश्किल है। इतनी पीड़ा को देखते हुए आस्तिक हो जाना असंभव है। या फिर ऐसी आस्तिकता झूठी होगी, ऊपर-ऊपर होगी, रंग-रोगन की गई होगी। ऐसी आस्तिकता का हृदय नहीं हो सकता। आस्तिकता तो सच्ची सिर्फ आनंद की घटना में ही हो सकती है। जब जीवन एक आनंद का उत्सव दिखाई पड़े, अनुभव में आए तो ही कोई आस्तिक हो सकता है।

आस्तिक शब्द का अर्थ है, समग्र जीवन को हौ कहने की भावना। लेकिन दुख को कोई कैसे ही कह सके? आनंद को ही कोई ही कह सकता है। दुख के साथ तो संदेह बना ही रहता है। शायद आपने कभी सोचा हो या न सोचा हो, कोई भी नहीं पूछता कि आनंद क्यों है? लेकिन दुख होता है, तो आदमी पूछता है, दुःख क्यों है? दुख के साथ प्रश्न उठते हैं। आनंद तो निष्प्रश्न स्वीकार हो जाता है। अगर आपके जीवन में आनंद ही आनंद हो, तो आप यह न पूछेंगे कि आनंद क्यों है? आप आस्तिक होंगे। क्यों का सवाल ही न उठेगा।

लेकिन जहां जीवन में दुख ही दुख है, वहा आस्तिक होना थोथा मालूम होता है। वहा तो नास्तिक ही ठीक मालूम पड़ता है। क्योंकि वह पूछता है कि दुख क्यों है? और दुख क्यों है, यही सवाल गहरे में उतरकर सवाल बन जाता है कि इतने दुख की मौजूदगी में परमात्मा का होना असंभव है। इस दुख को बनाने वाला परमात्मा हो सके, यह मानना कठिन है। और ऐसा परमात्मा अगर हो भी, तो उसे मानना उचित भी नहीं है।

जीवन में जितना दुख बढ़ता जाता है, उतनी नास्तिकता बढ़ती जाती है। नास्तिकता को मैं मानसिक, मनोवैज्ञानिक घटना मानता हूं तार्किक, बौद्धिक नहीं। कोई तर्क के कारण नास्तिक नहीं होता। यद्यपि जब कोई नास्तिक हो जाता है, तो तर्क खोजता है।

सिमॉन वेल ने, एक फ्रेंच विचारक महिला ने लिखा है अपने आत्म-कथ्य में, कि तीस वर्ष की उम्र तक सतत मेरे सिर में दर्द बना रहा, मेरा शरीर अस्वस्थ था। और तब मेरे मन में ईश्वर के प्रति बड़े संदेह उठे। और यह खयाल मुझे कभी भी न आया कि मेरे शरीर का अस्वास्थ्य ही ईश्वर के संबंध में उठने वाले प्रश्नों का कारण है। और फिर मैं स्वस्थ हो गई और शरीर ठीक हुआ और सिर का दर्द खो गया, तो मुझे पता न चला कि मेरे प्रश्न जो ईश्वर के संबंध में उठते थे संदेह के, वे कब गिर गए। और बहुत बाद में ही मुझे होश आया कि मैं किसी क्षण में आस्तिक हो गई हूं।

वह जो जीवन में स्वास्थ्य की धार बहने लगी, वह जो जीवन में थोड़े से रस की झलक आने लगी, वह जो जीवन में थोड़ा अर्थ और अभिप्राय दिखाई पड़ने लगा, फूरल, आकाश के तारे और हवाओं के झोंकों में आनंद की थोड़ी-सी खबर आने लगी, तो सिमॉन वेल का मन नास्तिकता से आस्तिकता की तरफ झुक गया। और तब उसे खयाल आया कि जब वह नास्तिक थी, तो नास्तिकता के पक्ष में तर्क जुटा लिए थे उसने। और अब जब वह आस्तिक हो गई, तो उसने आस्तिकता के पक्ष में तर्क जुटा लिए।

तर्क आप पीछे जुटाते हैं, पहले आप आस्तिक हो जाते हैं या नास्तिक हो जाते हैं। तर्क तो सिर्फ बौद्धिक उपाय है, अपने को समझाने का। क्योंकि मैं जो भी हो जाता हूं, उसके लिए रेशनलाइजेशन, उसके लिए तर्कयुक्त करना जरूरी हो जाता है।

अन्यथा मैं अपने ही सामने अतर्क्य मालूम होऊंगा। मुझे खुद को ही समझाना पड़ेगा कि मैं नास्तिक क्यों हूं। तो एक ही उपाय है कि ईश्वर नहीं है, इसलिए मैं नास्तिक हूं।

लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर आप नास्तिक हैं, तो इसलिए नहीं कि ईश्वर नहीं है, बल्कि इसलिए कि आप दुखी हैं। आपकी नास्तिकता आपके दुख से निकलती है। और अगर आप कहते हैं कि मैं दुखी हूं और फिर भी

आस्तिक हूं, तो मैं आपसे कहता हूं आपकी आस्तिकता झूठी और ऊपरी होगी। दुख से सच्ची आस्तिकता का जन्म नहीं हो सकता, क्योंकि दुख के लिए कैसे स्वीकार किया जा सकता है! दुख के प्रति तो गहन अस्वीकार बना ही रहता है। और तब फिर एक उपद्रव की घटना घटती है। टाल्सटाय ने लिखा है कि हे ईश्वर, मैं तुझे तो स्वीकार करता हूं लेकिन तेरे संसार को बिलकुल नहीं। लेकिन बाद में उसे भी खयाल आया कि अगर मैं ईश्वर को सच में ही स्वीकार करता हूं तो उसके संसार को अस्वीकार कैसे कर सकता हूं? और अगर मैं उसके संसार को अस्वीकार करता हूं तो मेरे ईश्वर को स्वीकार करने की बात में कहीं न कहीं धोखा है।

जब कोई ईश्वर को स्वीकार करता है, तो उसकी समग्रता में ही स्वीकार कर सकता है। यह नहीं कह सकता कि तेरे संसार को मैं अस्वीकार करता हूं। यह आधा काटा नहीं जा सकता है ईश्वर को। क्योंकि ईश्वर का संसार ईश्वर ही है। और जो उसने बनाया है, उसमें वह मौजूद है। और वह जो हमें दिखाई पड़ता है, उसमें वह छिपा है। जो आदमी दुखी है, उसकी आस्तिकता झूठी होगी, वह छिपे में नास्तिक ही होगा। और जो आदमी आनंदित है, अगर वह यह भी कहता हो कि मैं नास्तिक हूं तो उसकी नास्तिकता झूठी होगी; वह छिपे में आस्तिक ही होगा।

बुद्ध ने इनकार किया है ईश्वर से। महावीर ने कहा है कि कोई ईश्वर नहीं है। लेकिन फिर भी महावीर और बुद्ध से बड़े आस्तिक खोजना मुश्किल है। और आप कहते हैं कि ईश्वर है, लेकिन आप जैसे नास्तिक खोजना मुश्किल है। बुद्ध ईश्वर को इनकार करके भी आस्तिक ही होंगे, क्योंकि वह जो आनंद, वह जो नृत्य, वह जो भीतर का संगीत गंज रहा है, वही आस्तिकता है।

सुना है मैंने, यहूदी एक कथा है कि परमात्मा ने अपने एक दूत को भेजा इजराइल। यहूदियों के बड़े मंदिर के निकट, और मंदिर का जो बड़ा पुजारी था, उसके पास वह दूत आया और उसने कहा कि मैं परमात्मा का दूत हूं और यहां की खबर लेने आया हूं।

तो उस पुजारी ने पूछा कि यहां की मैं तुम्हें सिर्फ एक ही खबर दे सकता हूं कि यहां जो आस्तिक हैं, उनकी आस्तिकता में मुझे शक है। और इस गांव में दो नास्तिक हैं, उनकी नास्तिकता में भी मुझे शक है। गांव में दो नास्तिक हैं, उन्हें हमने कभी दुखी नहीं देखा। और गांव में इतने आस्तिक हैं, जो मंदिर में रोज प्रार्थना और पूजा करने आते हैं, वे सिवाय दुख की कथा के मंदिर में कुछ भी नहीं लाते, सिवाय शिकायतों के उनकी प्रार्थना में और कुछ भी नहीं है। परमात्मा से अगर वे कुछ मांगते भी हैं, तो दुखों से छुटकारा मांगते हैं।

लेकिन दुख से भरा हुआ हृदय परमात्मा के पास आए कैसे! वह दुख में ही इतना डूबा है, उसकी दृष्टि ही इतने अंधेरे से भरी है! इस जगत में एक तो अंधेरा है, जिसे हम प्रकाश जलाकर मिटा सकते हैं। और एक भीतर का अंधेरा है, उस अंधेरे का नाम दुख है। और जब तक हम भीतर आनंद का चिराग न जला लें, तब तक हम भीतर के अंधेरे को नहीं मिटा सकते।

तो उस पुजारी ने पूछा कि हे ईश्वर के राजदूत, मैं तुमसे यह पूछता हूं कि इस गांव में कौन लोग परमात्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे? तो उस राजदूत ने कहा कि तुम्हें धक्का तो लगेगा, लेकिन वे जो दो नास्तिक हैं इस गांव में, वे ही परमात्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे। उन्होंने कभी प्रार्थना नहीं की है, पूजा नहीं की है, वे मंदिर में कभी नहीं आए हैं, लेकिन उनका हृदय एक आनंद-उल्लास से भरा है, एक उत्सव से भरा है, जीवन के प्रति उनकी कोई शिकायत नहीं है। और इस जीवन के प्रति जिसकी शिकायत नहीं है, यही आस्तिकता है।

मनुष्य दुखी है, और दुख उसे परमात्मा से तोड़े हुए है। और जब मनुष्य दुखी है, तो उसके सारे मन की एक ही चेष्टा होती है कि दुख के लिए किसी को जिम्मेवार ठहराए। और जब तक आप दुख के लिए किसी को जिम्मेवार ठहराते हैं, तब तक यह मानना मुश्किल है कि आप अंतिम रूप से दुख के लिए परमात्मा को जिम्मेवार नहीं ठहराएंगे। अंततः वही जिम्मेवार होगा।

जब तक मैं कहता हूं कि मैं अपनी पत्नी के कारण दुखी हूं कि अपने बेटे के कारण दुखी हूं, कि गांव के कारण दुखी हूं पड़ोसी के कारण दुखी हूं-जब तक मैं कहता हूं मैं किसी के कारण दुखी हूं-तब तक मुझे खोज करूं तो पता चल जाएगा कि अंततः मैं यह भी कहूंगा कि मैं परमात्मा के कारण दुखी हूं।

दूसरे पर जिम्मा ठहराने वाला बच नहीं सकता परमात्मा को जिम्मेवार ठहराने से। आप हिम्मत न करते हों खोज की, और पहले ही रुक जाते हों, यह बात अलग है। लेकिन अगर आप अपने भीतर खोज करेंगे, तो आप आखिर में पाएंगे कि आपकी शिकायत की अंगुली ईश्वर की तरफ उठी हुई है।

सुना है मैंने, एक अरबी कहावत है कि जब परमात्मा ने दुनिया बनाई, तो सबसे पहले वह भी जमीन पर अपना मकान बनाना चाहता था। लेकिन फिर उसके सलाहकारों ने सलाह दी कि यह भूल मत करना। तुम्हारे मकान की एक खिड़की साबित न बचेगी, और तुम भी जिंदा लौट आओ, यह संदिग्ध है। लोग पत्थर मारकर तुम्हारे घर को तोड़ डालेंगे। और तुम एक क्षण को सो भी न पाओगे, क्योंकि लोग इतनी शिकायतें ले आएंगे! रहने की भूल जमीन पर मत करना। तुम वहा से सही-साबित लौट न सकोगे।। कभी अपने मन में आपने सोचा है कि अगर परमात्मा आपको मिल जाए, तो आप क्या निवेदन करेंगे? आप क्या कहेंगे? अपने हृदय में आप खोजेंगे, तो आप पाएंगे कि आप उसको जिम्मेवार ठहराएंगे आपके सारे दुखों के लिए।

धार्मिक व्यक्ति का जन्म ही इस विचार से होता है, इस आत्म- अनुसंधान से कि दुख के लिए कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं, दुख के लिए मैं जिम्मेवार हूं। और जैसे ही यह दृष्टि साफ होने लगती है कि दुख के लिए मैं जिम्मेवार हूं? वैसे ही दुख से मुक्त हुआ जा सकता है। और मुक्त होने का कोई मार्ग भी नहीं है।

अगर मैं ही जिम्मेवार हूं, तो ही जीवन में क्रांति हो सकती है। अगर कोई और मुझे दुख दे रहा है, तो मैं दुख से कैसे छूट सकता हूं? क्योंकि जिम्मेवारी दूसरे के हाथ में है। ताकत किसी और के। हाथ में है। मालिक कोई और है। मैं तो केवल झेल रहा हूं। और जब तक यह सारी दुनिया न बदल जाए जो मुझे दुख दे रही है, तब तक मैं सुखी नहीं हो सकता।

इसीलिए कम्युनिज्य और नास्तिकता में एक तालमेल है। और मार्क्स की इस अंतर्दृष्टि में अर्थ है कि मार्क्स मानता है कि जब तक धर्म जमीन पर प्रभावी है, तब तक साम्यवाद प्रभावी न हो सकेगा। इसलिए धर्म की जड़ें काट देनी जरूरी हैं, तो ही साम्यवाद प्रभावी हो सकता है। उसकी बात में मूल्य है, उसकी बात में गहरी दृष्टि है।

क्योंकि धर्म और साम्यवाद का बुनियादी भेद यही है कि साम्यवाद कहता है कि दुख के लिए कोई और जिम्मेवार है। और धर्म कहता है कि दुख के लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेवार है। यह बुनियादी विवाद है। यह जड़ है विरोध की।

साम्यवाद कहता है, समाज बदल जाए, तो लोग सुखी हो जाएंगे; परिस्थिति बदल जाए, सुखी जाएंगे; व्यवस्था बदल जाए, तो लोग सुखी हो जाएंगे। व्यक्ति के बदलने की कोई बात साम्यवाद नहीं उठाता। कुछ और बदल जाए, मुझे छोड्कर सब बदल जाए, तो मैं सुखी हो जाऊंगा।

लेकिन धर्म का सारा अनुसंधान यह है कि दूसरा मेरे दुख का कारण है, यही समझ दुख है। दूसरा मुझे दुख दे सकता है, इसलिए मैं दुख पाता हूं इस खयाल से, इस विचार से। और तब मैं अनंत काल तक दुख पा सकता हूं दूसरा बदल जाए तो भी। क्योंकि मेरी जो दृष्टि है दुख पाने की, वह कायम रहेगी।

समाज बदल जाए.. .समाज बहुत बार बदल गया। आर्थिक व्यवस्था बहुत बार बदल गई। कितनी क्रांतिया नहीं हो चुकी हैं! और फिर भी कोई क्रांति नहीं हुई। आदमी वैसा का वैसा दुखी है। सब कुछ बदल गया। अगर आज से दस हजार साल पीछे लौटे, तो क्या बचा है? सब बदल गया है। एक ही चीज बची है, दुख वैसा का वैसा बचा है, शायद और भी ज्यादा बढ़ गया है।

गीता के इस अध्याय में दुख के इस कारण की खोज है। और दुख के इस कारण को मिटाने का उपाय है। और यह अध्याय गहन साधना की तरफ आपको ले जा सकता है। लेकिन इस बुनियादी बात को पहले ही खयाल में ले लें, तो इस अध्याय में प्रवेश बहुत आसान हो जाएगा।

बहुत कठिन मालूम होता है अपने आप को जिम्मेवार ठहराना। क्योंकि तब बचाव नहीं रह जाता कोई। जब मैं यह सोचता हूं कि मैं ही कारण हूं अपने दुखों का, तो फिर शिकायत भी नहीं बचती। किससे शिकायत करूं! किस पर

दोष डालूं! और जब मैं ही जिम्मेवार हूं तो फिर यह भी कहना उचित नहीं मालूम होता कि मैं दुखी क्यों हूं? क्योंकि मैं अपने को दुखी बना रहा हूं इसलिए। और मैं न बनाऊं, तो दुनिया की कोई ताकत मुझे दुखी नहीं बना सकती। बहुत कठिन मालूम पड़ता है। क्योंकि तब मैं अकेला खड़ा हो जाता हूं और पलायन का, छिपने का, अपने को धोखा देने का, प्रवंचना का कोई रास्ता नहीं बचता। जैसे ही यह खयाल में आ जाता है कि मैं जिम्मेवार हूं वैसे ही क्रांति शुरू हो जाती है।

ज्ञान क्रांति है। और ज्ञान का पहला सूत्र है कि जो कुछ भी मेरे जीवन में घटित हो रहा है, उसे कोई परमात्मा घटित नहीं कर रहा है, उसे कोई समाज घटित नहीं कर रहा है, उसे मैं घटित कर रहा हूं चाहे मैं जानूं और चाहे मैं न जानूं।

मैं जिस कारागृह में कैद हो जाता हूं वह मेरा ही बनाया हुआ है। और जिन जंजीरों में मैं अपने को पाता हूं वे मैंने ही ढाली हैं। और जिन काटो पर मैं पाता हूं कि मैं पड़ा हूं वे मेरे ही निर्मित किए हुए हैं। जो गड्ढे मुझे उलझा लेते हैं, वे मेरे ही खोदे हुए हैं। जो भी मैं काट रहा हूं वह मेरा बोया हुआ है, मुझे दिखाई पड़ता हो या न दिखाई पड़ता हो।

अगर यह मुझे दिखाई पड़ने लगे, तो दुख-विसर्जन शुरू हो जाता है। और यह मुझे दिखाई पड़ने लगे, तो आनंद की किरण भी फूटनी शुरू हो जाती है। और आनंद की किरण के साथ ही तत्व का बोध, तत्व का ज्ञान; वह जो सत्य है, उसकी प्रतीति के निकट मैं पहुंचता हूं।

अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

उसके उपरात कृष्ण बोले, अर्जुन, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसा कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उसके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं। और हे अर्जुन, तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान। और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्व से जानना है, वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है। इसलिए वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से सुन।

आपका मन उदास है, दुखी है, पीड़ित है। सुबह आप उठे हैं; मन प्रफुल्लित है, शात है; जीवन भला मालूम होता है। या कि बीमार पड़े हैं और जीवन व्यर्थ मालूम होता है; लगता है, कोई सार नहीं है। जवान हैं और जीवन में गति मालूम पड़ती है, बहुत कुछ करने जैसा लगता है; कोई अभिप्राय दिखाई पड़ता है। फिर के हो गए हैं, थक गए हैं, शक्ति टूट गई है; और सब ऐसा लगता है कि जैसे कोई एक दुखस्वप्न था। न कोई उपलब्धि हुई है, न कहीं पहुंचे हैं, और मौत करीब मालूम होती है।

कोई भी अवस्था हो मन की, एक बात-बच्चे में, जवान में, बूढ़े में, सुख का आभास हो, दुख का आभास हो-उसमें एक बात समान है कि मन पर जो भी अवस्था आती है, आप अपने को उसके साथ तादात्म्य कर लेते हैं।

अगर भूख लगती है, तो आप ऐसा नहीं कहते कि मुझे पता चल रहा है कि शरीर को भूख लग रही है। आप कहते हैं, मुझे भूख लग रही है। यह केवल भाषा का ही भेद नहीं है। यह हमारी भीतर की प्रतीति है। सिर में दर्द है, तो आप ऐसा नहीं कहते, न ऐसा सोचते, न ऐसी प्रतीति करते कि सिर में दर्द हो रहा है, ऐसा मुझे पता चल रहा है। आप कहते हैं, मेरे सिर में दर्द है।

जो भी प्रतीति होती है, आप उसके साथ एक हो जाते हैं। वह जो जानने वाला है, उसको आप अलग नहीं बचा पाते। वह जो जानने वाला है, वह खो जाता है। ज्ञेय में खो जाता है शात।। दृश्य में खो जाता है द्रष्टा। भोग में खो जाता है भोक्ता। कर्म में खो जाता है कर्ता। वह जो भीतर जानने वाला है, वह दूर नहीं रह पाता और एक हो जाता है उससे जिसे जानता है। पैर में दर्द है. और आप दर्द के साथ एक हो जाते हैं।

यही एकमात्र दुर्घटना है। अगर कोई भी मौलिक पतन है, जैसा ईसाइयत कहती है, कोई ओरिजिनल, कोई मूल पाप, अगर कोई एक पतन खोजा जाए, तो एक ही है पतन और वह है तादात्म्य। जानने वाला एक हो जाए उसके साथ, जिसे जा जान रहा है।

दर्द आप नहीं हैं। आप दर्द को जानते हैं। दर्द आप हो भी नहीं सकते। क्योंकि अगर आप दर्द ही हो जाएं, तो फिर दर्द को जानने वाला कोई भी न बचेगा।

सुबह होती है, सूरज निकलता है, तो आप देखते हैं कि सूरज निकला, प्रकाश हो गया। फिर सांझ आती है, सूरज ढल जाता है, अंधेरा आ जाता है। तो आप देखते हैं, रात आ गई। लेकिन वह जो देखने वाला है, न तो सुबह है और न सांझ। वह जो देखने वाला है, न तो सूरज की किरण है, रात का अंधेरा भी नहीं है। वह जो देखने वाला है, वह तो अलग खड़ा है। वह सुबह को भी देखता है उगते, फिर सांझ को भी देखता है। फिर रात का अंधेरा भी देखता है, दिन का प्रकाश भी देखता है। वह जो देखने वाला है, वह अलग है। लेकिन जीवन में हम उसे अलग नहीं रख पाते हैं। वह तल्ला एक हो जाता है। कोई आपको गाली दे देता है, खट से चोट पहुंच जाती है। आप ऐसा नहीं कर पाते कि देख पाएं कि कोई गाली दे रहा है, और देख पाएं कि मन में चोट पहुंच रही है।

दोनों बातें आप देख सकते हैं। आप देख सकते हैं कि गाली दी गई, और आप यह भी देख सकते हैं कि मन में थोड़ी चोट और पीड़ा पहुंची। और आप दोनों से दूर खड़े रह सकते हैं।

यह जो दूर खड़े रहने की कला है, सारा धर्म उस कला का ही नाम है। वह जो जानने वाला है, वह जानी जाने वाली चीज से दूर खड़ा रह जाए; वह जो अनुभोक्ता है, अनुभव के पार खड़ा रह जाए। सब अनुभव का नाम क्षेत्र है। और वह जो जानने वाला है, उसका नाम क्षेत्रज्ञ है।

तो कृष्ण इस सूत्र में इन दोनों के भेद के संबंध में प्राथमिक प्रस्तावना कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसा कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उसके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते है।

आप शरीर के साथ अपने को जब तक एक कर रहे हैं, तब तक दुख से कोई छुटकारा नहीं है।

अब यह बहुत मजे की और बहुत चमत्कारिक घटना है। शरीर को कोई दुख नहीं हो सकता। शरीर में दुख होते हैं, लेकिन शरीर को कोई दुख नहीं हो सकता। क्योंकि शरीर को कोई बोध नहीं है। इसलिए आप मुर्दा आदमी को दुख नहीं दे सकते। इसीलिए तो डाक्टर इसके पहले कि आपका आपरेशन करे, आपको बेहोश कर देता है। बेहोश होते से ही शरीर को कोई दुख नहीं होता। लेकिन सब दुख शरीर में होते हैं। और वह जो जानने वाला है, उसमें कोई दुख नहीं होता।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

दुख शरीर में घटते हैं; और जाने जाते हैं उसमें, जो शरीर नहीं है। जानने वाला अलग है, और जहां दुख घटते हैं, वह जगह अलग है। और जहां दुख घटते हैं, वहां जानने की कोई संभावना नहीं है। और जो जानने वाला है, वहा दुख के घटने की कोई संभावना नहीं है।

जब कोई मेरे पैर को काटता है, तो पैर के काटने की घटना तो शरीर में घटती है, और अगर जानने वाला मौजूद न हो, तो कोई दुख घटित नहीं होगा। लेकिन जानने की घटना मुझमें घटती है। कटता है शरीर, जानता हूं मैं। यह जानना और शरीर में घटना का घटना इतना निकट है कि दोनों इकट्ठे हो जाते हैं; हम फासला नहीं कर पाते, दोनों के बीच में जगह नहीं बना पाते। हम एक ही हो जाते हैं।

जब शरीर पर कटना शुरू होता है, तो मुझे लगता है, मैं कट रहा हूं। और यह प्रतीति कि मैं कट रहा हूं दुख बन जाती है। हमारे सारे दुख शरीर से उधार लिए गए हैं। शरीर में कितने ही दुख घटे, अगर आपको पता न चले, तो दुख घटते नहीं। और शरीर में बिलकुल दुख न घटे, अगर आपको पता चल जाए, तो भी दुख घट जाते हैं। दूसरी बात भी खयाल में ले लें। शरीर में कोई दुख न घटे, लेकिन आपको प्रतीति करवा दी जाए कि दुख घट रहा है, तो दुख घट जाएगा।

सम्मोहन में सम्मोहित व्यक्ति को कह दिया जाए कि तेरे पैर में आग लगी है, तो पीड़ा शुरू हो जाती है। वह आदमी चीखने-चिल्लाने लगता है। वह रोने लगता है। प्रतीति शुरू हो गई आदमी का भरोसा बचा लेता है!

सम्मोहित आदमी को कुछ भी कह दिया जाए वह स्वीकार कर लेता है। उसे वैसा दुख होना शुरू हो जाएगा। कोई दुख शरीर में घट नहीं रहा है, लेकिन अगर जानने वाला मान ले कि घट रहा है, तो घटना शुरू हो जाता है।

आपको शायद खयाल न हो, जमीन पर जितने सांप होते हैं, उनमें केवल तीन प्रतिशत सांपों में जहर होता है। बाकी सत्तानबे प्रतिशत तो बिना जहर के होते हैं। लेकिन बिना जहर के सांप के काटे हुए लोग भी मरते हैं।

अब यह बड़ी अजीब घटना है। क्योंकि जिस सांप में जहर ही नहीं है, उससे काटा हुआ आदमी मर कैसे जाता है! और इसीलिए तो सांप को झाडने वाला भी सफल हो जाता है। क्योंक़ि सत्तानबे प्रतिशत मौके पर तो कोई जहर होता नहीं, सिर्फ जहर के खयाल से आदमी मर रहा होता है। इसलिए झाडने वाला अगर खयाल दिला दे कि झाड़ू दिया, तो बात खतम हो गई।

इसलिए मंत्र सरलता से काम कर जाता है। झाडने वाला सफल हो जाता है। सिर्फ भरोसा दिलाने की बात है, क्योंकि उस सांप ने भी भरोसा दिलाया है कि इसमें जहर है। उसमें जहर तो था नहीं। भरोसे से आदमी मर रहा है, तो भरोसे से आदमी बच भी सकता है।

लेकिन दूसरी घटना भी संभव है। असली जहर वाले सांप का काटा हुआ आदमी भी मंत्रोंपचार से बच सकता है। अगर नकली जहर से मर सकता है, तो असली जहर से भी बचने की संभावना है। अगर यह भ्रांति कि सांप ने मुझे काट लिया है इसलिए मरना जरूरी है मौत बन सकती है, तो यह खयाल कि सांप ने भला मुझे काटा है, लेकिन मंत्र ने मुझे मुक्त कर दिया, असली जहर से भी छुटकारा दिला सकता है।

अभी पश्चिम में मनसविद बहुत प्रयोग करते हैं और बहुत हैरान हुए हैं। दुनिया में हजारों तरह की दवाइयां चलती हैं। सभी तरह की दवाइयां काम करती हैं। होमियोपैथी भी बचाती है, एलोपैथी भी बचाती है, आयुर्वेद भी बचाता है। और भी, यूनानी हकीम भी बचाता है, नेचरोपैथ भी बचा लेता है। मंत्र से बच जाता है आदमी। किसी की कृपा से भी बच जाता है। डिवाइन हीलिंग, प्रभु-चिकित्सा से भी बच जाता है।

तो सवाल यह है कि आदमी इतने ढंगों से बचता है, तो विचारणीय है कि इसमें कोई वैज्ञानिक कारण है बचने का कि सिर्फ आदमी का भरोसा बचा लेता है।

आपको शायद पता न हो, जब भी कोई नवाँ निकलता है, तो मरीजों पर ज्यादा काम करती है। लेकिन साल दो साल में फीकी पड़ जाती है, फिर काम नहीं करती। जब नई दवा निकलती है, तो मरीजों पर क्यों काम करती है? नई दवा से ऐसा लगता है कि बस, अब सब ठीक हो गया। लेकिन साल, छः महीने में कुछ मरीज फायदा उठा लेते हैं। बाकी इसके बाद फिर फायदा नहीं उठा पाते। एक बहुत विचारशील डाक्टर ने कहा है कि जब भी नई दवा निकले, तब फायदा पूरा उठा लेना चाहिए, क्योंकि थोड़े ही दिन में दवा काम नहीं करेगी।

नई दवा काम क्यों करती है? थोडे दिन पुरानी पड़ जाने के बाद दवा का रहस्य और चमत्कार क्यों चला जाता है? तो उस पर बहुत अध्ययन किया गया और पाया गया कि जब नई दवा निकलती है, तो उसके विरोध में कुछ भी नहीं होता। उसकी असफलता की कोई खबर न मरीज को होती है, न डाक्टर को होती है। डाक्टर भी भरोसे से भरा होता है कि दवा नई है, चमत्कार है।

विज्ञापन, अखबार सब खबरें देते हैं कि चमत्कार की दवा खोज ली गई है। डाक्टर भरोसे से भरा होता है। मरीज को दवा देता है और वह कहता है, बिलकुल घबड़ाओ मत। अब तक तो इस बीमारी का मरीज बच नहीं सकता था। लेकिन अब वह दवा हाथ में आ गई है कि अब इस मरीज को मरने की कोई जरूरत नहीं है। अब तुम बच जाओगे।

वह जो डाक्टर का भरोसा है, वह मंत्र का काम कर रहा है। उसे पता नहीं कि वह पुरोहित का काम कर रहा है इस क्षण में। उसकी आंखों में जो रौनक है, वह जो भरोसे की बात है, वह जो मरीज से कहना है कि बेफिक्र रह, मरीज को भी यह उत्साह पकड़ जाता है। मरीज बच जाता है।

लेकिन साल, छः महीने में ही अनुसंधान करने वाले दवा में खोज करते हैं कि सच में इसमें ऐसा कुछ है या नहीं है। मेडिकल जरनल्स में खबरें आनी शुरू हो जाती हैं कि इस दवा में ऐसा कोई तत्व नहीं है कि जिस पर इतना भरोसा किया जा सके। खोजबीन शुरू हो जाती है। डाक्टर का भरोसा कम होने लगता है। अब भी वह दवा डाक्टर देता है, लेकिन वह कहता है, शायद काम कर सके, शायद न भी करे। वह जो शायद है, वह मंत्र की हत्या कर देता है। डाक्टर का भरोसा गया, मरीज का भी भरोसा गया।

मैं एक घटना पढ़ रहा था कि एक मरीज पर एक दवा का प्रयोग किया गया। डाक्टर भरोसे से भरा था कि दवा काम करेगी। दवा काम कर गई। वह मरीज सालभर तक ठीक रहा। बीमारी तिरोहित हो गई। लेकिन सालभर बाद अनुसंधानकर्ताओं ने पता लगाया कि उस दवा से इस बीमारी के ठीक होने का कोई संबंध ही नहीं है। उसके डाक्टर ने मरीज को खबर की कि चमत्कार की बात है कि तुम तो ठीक हो गए, लेकिन अभी खबर आई है, रिसर्च काम कर रही है कि इस दवा में उस बीमारी के ठीक होने का कोई कारण ही नहीं है। वह मरीज उसी दिन पुनः बीमार हो गया। वह सालभर बिलकुल ठीक रह चुका था।

और कहानी यहीं खतम नहीं होती। छः महीने बाद फिर इस पर खोजबीन चली, किसी दूसरे रिसर्च करने वाले ने कुछ और पता लगाया। उसने कहा कि नहीं, यह दवा काम कर सकती है। और वह मरीज फिर ठीक हो गया।

तो अभी डाक्टरों को शक पैदा हो गया है कि दवाएं काम करती हैं या भरोसे काम करते हैं!

सभी चिकित्सा में जादू काम करता है, मंत्र काम करते हैं। अगर एलोपैथी ज्यादा काम करती है, तो उसका कारण यह नहीं है कि एलोपैथी में ज्यादा जान है। उसका कारण यह है कि एलोपैथी के पास ज्यादा प्रचार का साधन है, ज्यादा मेडिकल कालेज हैं, युनिवर्सिटी हैं, ज्यादा सरकारें हैं, अथारिटी, प्रमाण उसके पास हैं, वह काम करती है।

अनेक चिकित्सकों ने प्रयोग किए हैं, उसे वे प्लेस्बो कहते हैं। दस मरीजों को, उसी बीमारी के दस मरीजों को दवा दी जाती है, उसी बीमारी के दस मरीजों को सिर्फ पानी दिया जाता है। बड़ी हैरानी की बात यह है कि अगर सात दवा से ठीक होते हैं, तो सात पानी से भी ठीक हो जाते हैं। वे सात पानी से भी ठीक होते हैं, लेकिन बात इतनी जरूरी है कि कहा जाए कि उनको भी दवा दी जा रही है।

आदमी का मन, बीमारी न हो, तो बीमारी पैदा कर सकता है। और आदमी का मन, बीमारी हो, तो बीमारी से अपने को तोड़ भी सकता है। मन की यह स्वतंत्रता ठीक से समझ लेनी जरूरी है। आप अपने शरीर से अलग होकर भी शरीर को देख सकते हैं, और आप अपने शरीर के साथ एक होकर भी अपने को देख सकते हैं। हम सब अपने को एक होकर ही देख रहे हैं। हमारे दुखों की सारी मूल जड़ वह। है।

शरीर में दुख घटित होते हैं और हम अपने को मानते हैं कि शरीर के साथ एक हैं। बच्चा मानता है कि मैं शरीर हूं। जवान मानता है

कि मैं शरीर हूं। का मानता है कि मैं शरीर हूं। तो का दुखी होता है, क्योंकि उसको लगता है, उसकी आत्मा भी की हो गई है। शरीर का हो गया है। आत्मा तो कुछ की होती नहीं। लेकिन के शरीर के साथ तादात्म्य बंधा हुआ है। तो जिसने माना था कि जवान शरीर मैं हूं मानना मजबूरी है अब उसकी, उसे मानना पड़ेगा कि अब मैं का हो गया हूं। और जिसने माना था शरीर की जिंदगी को अपनी जिंदगी, जब मौत आएगी तो उसे मानना पड़ेगा, अब मैं मर रहा हूं। लेकिन बचपन से ही हम शरीर के साथ अपने को एक मानकर बड़े होते हैं। शरीर के सुख, शरीर के दुख, हम एक मानते हैं। शरीर की भूख, शरीर की प्यास, हम अपनी मानते हैं।

यह कृष्ण का सूत्र कह रहा है, शरीर क्षेत्र है, जहां घटनाएं घटती हैं। और तुम क्षेत्रज्ञ हो, जो घटनाओं को जानता है।

अगर यह एक सूत्र जीवन में फलित हो जाए, तो धर्म की फिर और कुछ जानकारी करने की जरूरत नहीं है। फिर कोई कुरान, बाइबिल, गीता, सब फेंक दिए जा सकते हैं। एक छोटा-सा सूत्र, कि जो भी शरीर में घट रहा है, वह शरीर में घट रहा है, और मुझमें नहीं घट रहा है, मैं देख रहा हूं मैं जान रहा हूं मैं एक द्रष्टा हूं? यह सूत्र समस्त धर्म का सार है। इसे थोड़ा- थोड़ा प्रयोग करना शुरू करें, तो ही खयाल में आएगा।

एक तो रास्ता यह है कि गीता हम समझते रहते हैं। गीता लोग समझाते रहते हैं। वे कहते रहते हैं, क्षेत्र अलग है और क्षेत्रज्ञ अलग है। और हम सुन लेते हैं, और मान लेते हैं कि होगा। लेकिन जब तक यह अनुभव न बन जाए, तब तक इसका कोई अर्थ नहीं है। यह कोई सिद्धांत नहीं है, यह तो प्रयोगजन्य अनुभूति है। इसे थोड़ा प्रयोग करें।

जब भोजन कर रहे हों, तो समझें कि भोजन शरीर में डाल रहे हैं और आप भोजन करने वाले नहीं हैं, देखने वाले हैं। जब रास्ते पर चल रहे हों, तो समझें कि आप चल नहीं रहे हैं; शरीर चल रहा है। आप तो सिर्फ देखने वाले हैं। जब पैर में काटा गड़ जाए, तो बैठ जाएं, दो क्षण ध्यान करें। बाद में काटा निकालें, जल्दी नहीं है। दो क्षण ध्यान करें और समझें कि कांटा गड़ रहा है, दर्द हो रहा है। यह शरीर में घट रहा है, मैं जान रहा हूं।

जो भी मौका मिले क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को अलग करने का, उसे चूके मत, उसका उपयोग कर लें।

जब शरीर बीमार पड़ा हो, तब भी, जब शरीर स्वस्थ हो, तब भी। जब सफलता हाथ लगे, तब भी, और जब असफलता हाथ लगे, तब भी। जब कोई गले में फूलमालाएं डालने 'लगे, तब भी स्मरण रखें कि फूलमालाएं शरीर पर डाली जा रही हैं, मैं सिर्फ देख रहा हूं। और जब कोई जूता फेंक दे, अपमान करे, तब भी जानें कि शरीर पर जूता फेंका गया है, और मैं देख रहा हूं। इसके लिए कोई हिमालय पर जाने की जरूरत नहीं है। आप जहां हैं, जो हैं, जैसे हैं, वहीं ज्ञाता को और ज्ञेय को अलग कर लेने की सुविधा है।

न कोई मंदिर का सवाल है, न कोई मस्जिद का, आपकी जिंदगी ही मंदिर है और मस्जिद है। वह। छोटा-छोटा प्रयोग करते रहें। और ध्यान रखें, एक-एक ईंट रखने से महल खड़े हो जाते हैं; छोटे-छोटे प्रयोग करने से परम अनुभूतिया हाथ आ जाती हैं। एक-एक बूंद इकट्ठा होकर सागर निर्मित हो जाता है। और छोटा-छोटा अनुभव इकट्ठा होता चला जाए, तो परम साक्षात्कार तक आदमी पहुंच जाता है। एक छोटे-छोटे कदम से हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।

तो यह मत सोचें कि छोटे-छोटे अनुभव से क्या होगा। सभी अनुभव जुड़ते जाते हैं, उनका सार इकट्ठा हो जाता है। और धीरे- धीरे आपके भीतर वह इंटीग्रेशन, आपके भीतर वह केंद्र पैदा हो जाता है, जहां से आप फिर बिना प्रयास के निरंतर देख पाते हैं कि आप अलग हैं और शरीर अलग है।

बहुत लोग इसकी मंत्र की तरह रटते हैं कि मैं अलग हूं शरीर अलग है। मंत्र की तरह रटने से कोई फायदा नहीं। इसे तो प्रयोग- भूमि बनाना जरूरी है। बहुत लोग बैठकर रोज सुबह अपनी प्रार्थना-पूजा में कह लेते हैं कि मैं आत्मा हूं शरीर नहीं। इस कहने से कुछ लाभ न होगा। और रोज-रोज दोहराने से यह जड़ हो जाएगी बात। इसका कोई मन पर असर भी न होगा। आप इसको मशीन की तरह दोहरा लेंगे। इसका अर्थ भी धीरे- धीरे खो जाएगा। आमतौर से मेरा अनुभव है कि धार्मिक लोग महत्वपूर्ण शब्दों को दोहरा-दोहराकर उनका अर्थ भी नष्ट कर देते हैं। फिर मशीन की तरह दोहराते रहते हैं। पुनरुक्ति करते रहते हैं। तोतों की रटंत हो जाती है। उसका कोई अर्थ नहीं होता।

इसे मंत्र की तरह नहीं, प्रयोग की तरह! इसे चौबीस घंटे में दस, बीस, पच्चीस बार, जितनी बार संभव हो सके, किसी सिचुएशन में, किसी परिस्थिति में तत्क्षण अपने को तोड़कर अलग देखने का प्रयोग करें। स्नान कर रहे हैं और खयाल करें कि स्नान की घटना शरीर में घट रही है और मैं जान रहा हूं। कुछ भी कर रहे हैं! यहां सुन रहे हैं, तो सुनने की घटना आपके शरीर में घट रही है; और सुनने की घटना घट रही है, इसे आप जान रहे हैं।

वह जानने वाले को धीरे- धीरे निखारकर अलग करते जाएं। जैसे कोई मूर्तिकार छेनी से काटता है पत्थर को, ऐसे ही जानने वाले को अलग काटते जाएं; और जो जाना जाता है, उसे अलग काटते जाएं। अनुभव को अलग करते जाएं, अनुभोक्ता को अलग करते जाएं। जरूर एक दिन वह फासला पैदा हो जाएगा, वह दूरी खड़ी हो जाएगी, जहां से चीजें देखी जा सकती हैं।

हे अर्जुन, यह शरीर क्षेत्र है, ऐसा कहा जाता है। और इसको जो जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ, ऐसा उसके तत्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं।

यह खयाल में ले लेना जरूरी है कि पूरब के मुल्कों में और विशेषकर भारत में हमारा जोर विचार पर नहीं है, हमारा जोर ज्ञान पर है। हमारा जोर उस बात पर नहीं है कि हम किन्हीं सिद्धांतों को प्रतिपादित करें। हमारा जोर इस बात पर है कि हम जीवन के अनुभव से कुछ सार निचोड़े। ये दोनों अलग बातें हैं।

इसको आप सिद्धांत की तरह भी प्रतिपादित कर सकते हैं कि आत्मा अलग है, शरीर अलग है; जानने वाला अलग है, जो जाना जाता है, वह अलग है। इसको आप एक फिलासफी, एक तत्व-विचार की तरह खड़ा कर सकते हैं। और बड़े तर्क उसके पक्ष और विपक्ष में भी जुटा सकते हैं; बड़े शास्त्र भी निर्मित कर सकते हैं।

लेकिन भारत की मनीषा का आग्रह सिद्धांतों पर जरा भी नहीं है। जोर इस बात पर है कि जो आप ऐसा मानते हों, तो ऐसा मानते हैं या जानते हैं? ऐसी आपकी अपनी अनुभूति है या ऐसा आपका विचार है?

विचार धोखा दे सकता है। अनुभूति भर धोखा नहीं देती। विचार में डर है। विचार में अक्सर हम उस बात को मान लेते हैं, जो हम मानना चाहते हैं। इसे थोड़ा समझ लें। विचार में एक तरह का विश फुलफिलमेंट, एक तरह की कामनाओं की तृप्ति होती है।

समझें, एक आदमी मौत से डरता है। सभी डरते हैं। तो जो मृत्यु से डरता है, उसे मानने का मन होता है कि आत्मा अमर हो। यह उसकी भीतरी आकांक्षा होती है कि आत्मा न मरे। जब वह गीता में पढ़ता है कि शरीर अलग और आत्मा अलग, और आत्मा नहीं मरती, वह तक मान लेता है। मानने का कारण यह नहीं है कि गीता सही है। मानने का कारण यह भी नहीं है कि उसको अनुभव हुआ है। मानने का कारण कुल इतना है कि वह मौत से डरा हुआ

है, मृत्यु से भयभीत है। इसलिए कोई भी आसरा देता हो कि आत्मा अमर है, तो वह कहेगा कि बिलकुल ठीक। जब वह बिलकुल ठीक कह रहा है, तो सिर्फ मृत्यु के भय के कारण। वह चाहता है कि आत्मा अमर हो।

लेकिन आपकी चाह से सत्य पैदा नहीं होते। आप क्या चाहते हैं, इससे सत्य का कोई संबंध नहीं है। और आप जब तक चाहते रहेंगे, तब तक आप सत्य को जान भी न पाएंगे। सत्य को जानना पड़ेगा आपको चाह को छोड़कर।

तो विचार अक्सर ही स्वयं की छिपी हुई वासनाओं की पूर्ति होते हैं। और हम अपने को समझा लेते हैं। इसलिए अक्सर मेरा अनुभव यह है कि जो भी मौत से डरे हुए लोग हैं, वे आत्मवादी हो जाते हैं। इसलिए इस मुल्क में दिखाई पड़ेगा।

यह मुल्क इतने दिन तक गुलाम रहा। कोई भी आया और इस मुल्क को गुलाम बनाने में बड़ी आसानी रही। जितनी कम से कम तकलीफ हमने दी गुलाम बनाने वालों को, दुनिया में कोई नहीं देता। और बड़े आश्चर्य की बात है कि हम आत्मवादी लोग हैं! हम मानते हैं, आत्मा अमर है। लेकिन मरने से हम इतने डरते हैं कि हमें कभी भी गुलाम बनाया जा सका। मौत का डर पैदा हुआ कि हम गुलाम हो गए। अगर हमें कोई डरा दे कि मौत करीब है, तो हम कुछ भी करने को राजी हो गए!

यह बड़ा असंगत मालूम पड़ता है। यह होना नहीं चाहिए। आत्मवादी मुल्क को तो गुलाम कोई बना ही नहीं सकता। क्योंकि जिसको यही पता है कि आत्मा नहीं मरती, उसे आप डरा नहीं सकते। और जिसको डरा नहीं सकते, उसे गुलाम कैसे बनाइएगा?

गुलामी का सूत्र तो भय है। जिसको भयभीत किया जा सके, उसको गुलाम बनाया जा सकता है। और जिसको भयभीत न किया जा सके, उसे कैसे गुलाम बनाइएगा? और आत्मवादी को कैसे भयभीत किया जा सकता है?

जो जानता है कि आत्मा मरती ही नहीं, अब उसे भयभीत करने का कोई भी उपाय नहीं है। आप उसका शरीर काट डालें, तो वह हंसता रहेगा। और वह कहेगा कि व्यर्थ मेहनत कर रहे हो, क्योंकि जिसे तुम काट रहे हो, वह मैं नहीं हूं। और मैं तुम्हारे काटने से कटूंगा नहीं। इसलिए काटने पर भरोसा मत करो। तुम काटने से मुझे डरा न सकोगे। तुम काटकर मेरे शरीर को मिटा दोगे, लेकिन तुम मुझे गुलाम न बना सकोगे।

लेकिन आत्मवादी मुल्क इतनी आसानी से गुलाम बनता रहा है उसके पीछे कुछ कारण होना चाहिए। और कारण मेरी समझ में यह है कि हमारा आत्मवाद अनुभव नहीं है। हमारा आत्मवाद मृत्यु के भय से पैदा होता है। अधिक लोग मरने से डरते हैं, इसलिए मानते हैं कि आत्मा अमर है।

अब यह बड़ी उलटी बात है। मरने से जो डरता है, उसे तो आत्मा की अमरता कभी पता नहीं चलेगी। क्योंकि मृत्यु की घटना घटती है शरीर में, और जो डर रहा है मृत्यु से, वह शरीर को अपने साथ एक मान रहा है। इसलिए वह कितना ही मानता रहे आत्मवाद, कि आत्मा सत्य है, आत्मा शाश्वत सत्य है; और वह कितना ही दोहराता रहे मन में कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं लेकिन इन सब के पीछे अनुभव नहीं, इन सब के पीछे एक सिद्धांत, एक विचार है; और विचार के पीछे छिपी एक वासना है। विचार वासना से मुक्त नहीं हो पाता। विचार वासना का ही बुद्धिगत रूप है।

भारत का जोर है अनुभव पर, विचार पर नहीं। भारत कहता है, इसकी फिक्र छोड़ो कि वस्तुत: शरीर और आत्मा अलग हैं या नहीं। तुम तो यह प्रयोग करके देखो कि जब तुम्हारे शरीर में कोई घटना घटती है, तो वह घटना शरीर में घटती है या तुममें घटती है? तुम उसे जानते हो? फासले से खड़े होकर देखते हो? या उस घटना के साथ एक हो जाते हो?

कोई भी व्यक्ति थोड़ी-सी सजगता का प्रयोग करे, तो उसे प्रतीति होनी शुरू हो जाएगी कि मैं अलग हूं। और तब दोहराना न पड़ेगा कि मैं शरीर से अलग हूं। यह हमारा अनुभव होगा।

कृष्ण कहते हैं, जो ऐसा जानता है-स्वयं को क्षेत्रज्ञ, शरीर को क्षेत्र-उस तत्व को जानने वाले को तानी कहते हैं। और हे अर्जुन, तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान। और क्षेत्र- क्षेत्रज्ञ का अर्थात विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्व से जानना है, वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है।

दूसरी प्रस्तावना। पहली तो बात, विचार से यह प्रतीति कभी न हो पाएगी, अनुभव से प्रतीति होगी। और जिस दिन यह प्रतीति होगी कि मैं शरीर नहीं हूं आत्मा हूं उस दिन यह भी प्रतीति होगी कि वह आत्मा सभी के भीतर एक है।

ऐसा समझें कि बहुत-से घड़े रखे हों पानी भरे, नदी में ही रख दिए हों। हर घड़े में नदी का पानी भर गया हो। घड़े के बाहर भी नदी हो, भीतर भी नदी हो। लेकिन जो घड़ा अपने को समझता हो कि यह मिट्टी की देह ही मैं हूं उसे पड़ोस में रखा हुआ घड़ा दूसरा

मालूम पड़ेगा। लेकिन जो घड़ा इस अनुभव को उपलब्ध हो जाए कि भीतर भरा हुआ जल मैं हूं तत्क्षण पड़ोसी भी मिट जाएगा। उसकी मिट्टी की देह भी व्यर्थ हो जाएगी। उसके भीतर का जल ही सार्थक हो जाएगा। जल तो दोनों के भीतर एक है।

चैतन्य तो सबके भीतर एक है। दीए अलग-अलग हैं मिट्टी के, उनके भीतर ज्योति तो एक है, उनके भीतर सूरज का प्रकाश तो एक है।

सब दीयों के भीतर एक ही सूरज जलता है, बड़े से बड़े दीए के भीतर और छोटे से छोटे दीए के भीतर। जो सूरज में है, वही रात जुगनू में भी चमकता है। जुगनू कितनी ही छोटी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सूरज कितना ही बड़ा हो, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़े-छोटे से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो प्रकाश की घटना है, वह जो प्रकाश का तत्व है, वह एक है।

जैसे ही कोई व्यक्ति शरीर से थोड़ा पीछे हटता है, अपने भीतर ही खड़े होकर देखता है कि मैं शरीर नहीं हूं, वैसे ही दूसरी बात भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है, दूसरा द्वार भी खुल जाता है। तब सभी के भीतर वह जो जानने वाला है, वह एक है।

तो कृष्ण कहते हैं, वह जो सभी के भीतर क्षेत्रज्ञ है, वह तू मुझे ही जान। सबके भीतर से मैं ही जान रहा हूं।

यह एक बहुत नया आयाम है। परमात्मा जगत को बनाने वाला नहीं है, परमात्मा सब तरफ से जगत को जानने वाला है, सबके भीतर से।

एक कबूतर बैठकर देख रहा है, एक छोटा बच्चा देख रहा है; अब तो वे कहते हैं कि फूल भी खिलता है, उसके पास भी बड़ी सूक्ष्म आंखें हैं, वह भी देख रहा है। अब तो वे कहते हैं, वृक्षों के पास भी आंखें हैं, वह भी देख रहा है। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि सभी चीजें देख रही हैं। सभी चीजें अनुभव कर रही हैं। सभी के भीतर अनुभोक्ता बैठा है।

वह जो सबके भीतर से जान रहा है, कृष्ण कहते हैं, वह मैं हूं। परमात्मा कहीं दूर नहीं है। कहीं फासले पर नहीं है। निकट से भी निकट है।

एक ईसाई फकीर संत लयोला ने एक छोटे-से ध्यान के प्रयोग की बात कही है। वह ध्यान का प्रयोग कीमती है और चाहें तो आप कर सकते हैं और अनूठा है। जिस किसी व्यक्ति को आप बहुत प्रेम करते हों, उसके सामने बैठ जाएं। स्नान कर लें, जैसे मंदिर में प्रवेश करने जा रहे हों। द्वार-दरवाजे बंद कर लें, ताकि कोई आपको बाधा न दे। और एकटक दोनों व्यक्ति एक-दूसरे की आख में झांकना शुरू कर दें। सिर्फ एक-दूसरे की आख में झांकें, और सब भूल जाएं। सब तरफ से ध्यान हटा लें और एक-दूसरे की आख में अपने को उंडेलना शुरू कर दें। चाहे आपका छोटा बच्चा ही हो, जिससे भी आपका लगाव हो।

लगाव हो तो अच्छा, क्योंकि जरा आसानी से आप भीतर प्रवेश कर सकेंगे। क्योंकि जिससे आपका लगाव न हो, उससे हटने का मन होता है। जिससे आपका लगाव हो, उसमें प्रवेश करने का मन होता है। हमारा प्रेम एक-दूसरे में प्रवेश करने की आकांक्षा ही है। तो जिससे थोड़ा प्रेम हो, उसकी आंखों में झांकें, एकटक, और उससे भी कहें कि वह भी आंखों में झाके। और पूरी यह कोशिश करें कि सारी दुनिया मिट जाए। बस, वे दो आंखें रह जाएं और आप उसमें यात्रा पर निकल जाएं।

एक दो-चार दिन के ही प्रयोग से, एक आधा घंटा रोज करने से आप चकित हो जाएंगे। आपके सारे विचार खो जाएंगे। जो विचार आप लाख कोशिश करके बंद नहीं कर सके थे, वे बंद हो जाएंगे। और एक अनूठा अनुभव होगा। जैसे कि आप दूसरे व्यक्ति में सरक रहे हैं, आंखों के द्वारा उतर रहे हैं। आंखें जैसे रास्ता बन गईं। अगर इस प्रयोग को आप जारी रखें, तो एक महीने, पंद्रह दिन के भीतर एक अनूठी प्रतीति किसी दिन होगी। और वह प्रतीति यह होगी कि आपको यह समझ में न आएगा कि वह जो दूसरे के भीतर बैठा है, वह आप हैं; या जो आपके भीतर बैठा है, वह आप हैं। शरीर भूल जाएंगे और दो चेतनाएं, घड़े हट जाएंगे और दो जल की धाराएं मिल जाएंगी।

और एक बार आपको यह खयाल में आ जाए कि दूसरे के भी भीतर जो बैठा है, वह ठीक मेरे ही जैसा चैतन्य है, मैं ही बैठा हूं तब फिर आप हर दरवाजे पर झांक सकते हैं और हर दरवाजे के भीतर आप उसको ही छिपा हुआ पाएंगे।

आपने वह चित्र देखा होगा, जिसमें कृष्ण सब में छिपे हैं, गाय में भी, वृक्ष में भी, पत्ते में भी, सखियों में भी। वह किसी कवि की कल्पना नहीं है, और वह किसी चित्रकार की सूझ नहीं है। वह किन्हीं अनुभवियो का अनुभव है। एक बार आपको अपनी प्रतीति हो जाए शरीर से अलग, तो आपको पता लगेगा कि यही चैतन्य सभी तरफ बैठा हुआ है। इस चैतन्य की मौजूदगी ही परमात्मा की मौजूदगी का अनुभव है।

जिस क्षण आप शरीर से हटते हैं, यह पहला कदम। दूसरे ही क्षण आप अपने से भी हट जाते हैं, वह दूसरा कदम। शरीर के साथ मैं एक हूं इससे अहंकार निर्मित होता है। शरीर के साथ मैं एक नहीं हूं अहंकार टूट जाता है।

ऐसा समझें कि शरीर और आपके बीच जो सेतु है, वह अहंकार है। शरीर और आपके बीच जो तादात्म्य का भाव है, वही मैं हूं। जैसे ही शरीर से मैं अलग हुआ, मैं भी गिर जाता है। फिर जो बच रह जाता है, वही कृष्ण-तत्व है। उसे कोई राम-तत्व कहे, कोई क्राइस्ट-तत्व कहे, जो भी नाम देना चाहे, नाम दे। नाम न देना चाहे, तो भी कोई हर्जा नहीं।

लेकिन शरीर के साथ हटते ही आप भी मिट जाते हैं, आपका मैं होना मिट जाता है। और यह जो न-मैं होने का अनुभव है, कृष्ण कहते हैं, तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी मेरे को ही जान।

सब की आंखों से मैं ही झांकता हूं। सभी के हाथों से मैं ही स्पर्श करता हूं। सभी के पैरों से मैं ही चलता हूं। सभी की श्वास भी मैं हूं और सभी के भीतर मैं ही जीता और मैं ही विदा होता हूं। जन्म में भी मैं प्रवेश करता हूं और मृत्यु में भी मैं विदा होता हूं।

व्यक्ति का बोध ही शरीर और चेतना के जोड़ से पैदा होता है। सिर्फ तादात्म्य का खयाल अस्मिता और अहंकार को जन्म देता है। शरीर से अलग होने का खयाल, और अस्मिता खो जाती है, अहंकार खो जाता है।

इसलिए बुद्ध ने तो यहां तक कहा कि जैसे ही यह पता चल जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं वैसे ही यह भी पता चल जाता है कि कोई आत्मा नहीं है।

यह बड़ा कठिन वक्तव्य है। और बहुत जटिल है, और समझने में बड़ी कठिनाई है। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि जैसे ही यह खयाल मिट गया कि शरीर मैं हूं वैसे ही आत्मा भी नहीं होती है। लेकिन बुद्ध नकारात्मक ढंग से उसी बात को कह रहे हैं, जिसे कृष्ण विधायक ढंग से कह रहे हैं।

कृष्ण कहते हैं, तुम नहीं होते, मैं होता हूं। कृष्ण कह रहे हैं, तुम्हारा मिटना हो जाता है और कृष्ण का रहना हो जाता है। बुद्ध कहते हैं, मैं मिट जाता हूं। और उसकी कोई बात नहीं करते, जो बचता है। क्योंकि वे कहते हैं, बचने की बात करनी व्यर्थ है। उसे तो अनुभव ही करना चाहिए। वहां तक कहना ठीक है, जहां तक इलाज है। स्वास्थ्य की हम कोई चर्चा न करेंगे। उसका तुम खुद ही अनुभव कर लेना। निदान हम कर देते हैं, चिकित्सा हम कर देते हैं। चिकित्सा के बाद स्वास्थ्य का कैसा स्वाद होगा, उसके लिए हम कोई शब्द न देंगे। क्योंकि सभी शब्द सीमित हैं और बांध लेते हैं। और वह असीम है, जो घटेगा।

इसलिए बुद्ध ने कहा कि शरीर के साथ तादात्म्य के छूटते ही आत्मा भी मिट जाती है। जो बच रहता है, उसे कृष्ण परमात्मा कहते हैं, बुद्ध अनात्मा कहते हैं। वे कहते हैं, इतना पक्का है स्कइ तुम नहीं बचते। बाकी जो बचता है, उसके लिए कुछ भी कहना उचित नहीं है। उस संबंध में चुप रह जाना उचित है।

क्षेत्र- क्षेत्रज्ञ का, विकार सहित प्रकृति और पुरुष का जो तत्व से भेद जानता है..।

एक तो आपके भीतर संयोग घटित हो रहा है प्रतिपल, आप एक संगम हैं। आप एक मिलन हैं दो तत्वों का। एक तो प्रकृति है, जो दृश्य है। विज्ञान जिसकी खोज करता है, पदार्थ, जो पकड़ में आ जाता है इंद्रियों के, यंत्रों के और जिसकी खोजबीन की जा सकती है। और एक आपके भीतर तत्व है, जो इंद्रियों से पकड़ में नहीं आता और फिर भी है। और अगर आपको काटें-पीटें, तो तिरोहित हो जाता है। जो हाथ में आता है, वह पदार्थ रह जाता है। लेकिन आपके भीतर एक तत्व है, जो पदार्थ को जानता है।

वह जो जानने की प्रक्रिया है-मेरे हाथ में दर्द हो रहा है, तो मैं जानता हूं-यह जानना क्या है मेरे भीतर? कितना ही मेरे शरीर को काटा जाए, उस जानने वाले तत्व को नहीं पकड़ा जा सकता। शायद काटने-पीटने की प्रक्रिया में वह खो जाता है। शायद उसकी मौजूदगी को अनुभव करने का कोई और उपाय है। विज्ञान का उपाय उसका उपाय नहीं है।

धर्म उसकी ही खोज है। विज्ञान है ज्ञेय की खोज, क्षेत्र की। और धर्म है ज्ञाता की खोज, क्षेत्रज्ञ की।

याद आता है मुझे, आइंस्टीन ने मरने के कुछ दिन पहले कहा कि सब मैंने जानने की कोशिश की। दूर से दूर जो तारा है, उसे जानने की कोशिश की। पदार्थ के भीतर दूर से दूर छिपी हुई जो अणु शक्ति है, उसे जानने की मैंने कोशिश की। लेकिन इधर बाद के दिनों में मैं इस रहस्य से अभिभूत होता चला जा रहा हूं कि यह जो जानने की कोशिश करने वाला मेरे भीतर था, यह कौन था? यह कौन था, जो अणु को तोड़ रहा था और खोज रहा था? यह कौन था, जो दूर के तारे की तलाश में था? यह खोज कौन कर रहा था? आइंस्टीन की पत्नी से निरंतर लोग पूछते थे कि आपके पति ने जो बहुत कठिन और जटिल सिद्धांत प्रस्तावित किया है थिअरी आफ रिलेटिविटी का, सापेक्षता का, उसके संबंध में आप भी कुछ समझती हैं या नहीं?

स्वभावत:, आइंस्टीन की पत्नी को लोग पूछ लेते थे कि आप भी यह सापेक्षता के जटिल सिद्धांत को समझती हैं या नहीं? तो आइंस्टीन की पत्नी निरंतर कहा करती थी कि मुझे इस सिद्धांत का तो कोई पता नहीं। डाक्टर आइंस्टीन ने जो सिद्धांत को जन्म दिया है, उसे तो मैं बिलकुल नहीं समझती, लेकिन डाक्टर आइंस्टीन को मैं भलीभांति समझती हूं।

आइंस्टीन ने यह बात एक दफा किसी से कहते हुए पत्नी को सुन लिया। तो उस पर वह बहुत सोचता रहा। एक तो आइंस्टीन ने जो खोज की है, वह; और एक पत्नी की भी खोज है। वह कहती है कि मैं डाक्टर आइंस्टीन को समझती हूं। उन्होंने क्या खोजा है, उसका मुझे कुछ पता नहीं। उनके सिद्धांत मेरी समझ के बाहर हैं, लेकिन मैं डाक्टर आइंस्टीन को, खोज करने वाला वह जो छिपा है भीतर, उसको मैं थोड़ा समझती हूं।

तो आइंस्टीन तो विज्ञान के रास्ते से खोज कर रहा है, पत्नी प्रेम के रास्ते से खोज कर रही है। आइंस्टीन तो पदार्थ को तोड़कर खोज कर रहा है। पत्नी किन्हीं अदृश्य रास्तों से बिना तोड़े प्रवेश कर रही है और खोज कर रही है। आइंस्टीन तो इंद्रियों के माध्यम से कुछ विश्लेषण में लगा है। पत्नी किसी अतींद्रिय मार्ग से प्रवेश कर रही है।

प्रेम हो, कि प्रार्थना हो, कि ध्यान हो, सभी उस अदृश्य की खोज हैं, जो सभी दृश्य के भीतर छिपा हुआ है। और जब तक व्यक्ति उसे खोजने नहीं चल पड़ा है, तब तक वह क्षेत्र के जगत में कितना ही इकट्ठा कर ले, दरिद्र ही रहेगा। और कितने ही बड़े महल बना ले, और कितनी ही बड़ी सख्त दीवालें सुरक्षा की तैयार कर ले, असुरक्षित ही रहेगा। और कुछ भी पा ले, आखिर में मरेगा, तब वह पाएगा कि गरीब, दीन, दुखी, भिखारी मर रहा है। क्योंकि असली संपदा का स्रोत क्षेत्र में नहीं है। असली संपदा का स्रोत उसमें है, जो इस क्षेत्र के भीतर छिपा है और जानता है।

ज्ञान मनुष्य की गरिमा है। और ज्ञान का जो तत्व है, वह इस बात में, इस विश्लेषण में, इस भेद-विज्ञान में है कि मैं अपने को पृथक करके देख लूं उससे, जिसमें मैं हूं।

जैसे फूल की सुगंध उड़ जाती है दूर, ऐसे ही व्यक्ति को सीखना पड़ता है अपने शरीर से दूर उड़ने की कला। जैसे सुगंध अदृश्य में खो जाती है और दृश्य फूल खड़ा रह जाता है, ऐसे ही स्वयं के ज्ञान के फूल में निचोड़ करना है और धीरे- धीरे उस ज्ञान को ही बचा लेना है, जो शुद्ध है।

महावीर ने उसे केवल-ज्ञान कहा है। जहां ज्ञाता का भी खयाल नहीं रह जाता, सिर्फ जानने की शुद्धतम घटना रह जाती है। जहां मैं सिर्फ जानता हूं और कुछ भी नहीं करता।

एक घडीभर के लिए रोज चौबीस घड़ी में से, इस भीतर की खोज के लिए निकाल लें। तेईस घंटे दे दें शरीर के लिए और एक घंटा बचा लें अपने लिए।

वह आदमी व्यर्थ जी रहा है, जिसके पास एक घंटा भी अपने लिए नहीं है। वह आदमी जी ही नहीं रहा, जो एक घंटा भी अपनी इस भीतर की खोज के लिए नहीं लगा रहा है। क्योंकि आखिर में जब सारा हिसाब होता है, तो जो भी हमने शरीर के तल पर कमाया है, वह तो मौत छीन लेती है; और जो हमने भीतर के तल पर कमाया है, वही केवल मौत नहीं छीन पाती। वही हमारे साथ होता है।

इसे खयाल रखें कि मौत आपसे कुछ छीनेगी, उस समय आपके पास बचाने योग्य है, कुछ भी? अगर नहीं है, तो जल्दी करें। और एक घंटा कम से कम रोज क्षेत्रज्ञ की तलाश में लगा दें।

इतना ही करें, बैठ जाएं घंटेभर। कुछ भी न करें, एक बहुत छोटा-सा प्रयोग करें। इतना ही करें कि तादात्म्य न करूंगा घंटेभर, आइडेंटिफिकेशन न करूंगा घंटेभर। घंटेभर बैठ जाएं। पैर में चींटी काटेगी, तो मैं ऐसा अनुभव करूंगा कि चींटी काटती है, ऐसा मुझे पता चल रहा है। मुझे चींटी काट रही है, ऐसा नहीं।

इसका यह मतलब नहीं कि चींटी काटती रहे और आप अकड़कर बैठे रहें। आप चींटी को हटा दें, लेकिन यह ध्यान रखें कि मैं जान रहा हूं कि शरीर चींटी को हटा रहा है। चींटी काट रही है, यह भी मैं जान रहा हूं। शरीर चींटी को हटा रहा है, यह भी मैं जान रहा हूं। सिर्फ मैं जान रहा हूं।

पैर में दर्द शुरू हो गया बैठे-बैठे, तो मैं जान रहा हूं कि पैर में दर्द आ गया। फिर पैर को फैला लें। कोई जरूरत नहीं है कि उसको अकड़ाकर बैठे रहें और परेशान हों। पैर को फैला लें। लेकिन जानते रहें कि पैर फैल रहा है कष्ट के कारण, मैं जान रहा हूं।

भीतर एक घंटा एक ही काम करें कि किसी भी कृत्य से अपने को न जोड़े, और किसी भी घटना से अपने को न जोड़े। आप एक तीन महीने के भीतर ही गीता के इस सूत्र को अनुभव करने लगेंगे, जो कि आप तीस जन्मों तक भी गीता पढ़ते रहें, तो अनुभव नहीं होगा। एक घंटा, मैं सिर्फ ज्ञाता हूं इसमें डूबे रहें। कुछ भी हो, पत्नी जोर से बर्तन पटक दे...। क्योंकि पति जब ध्यान करे, तो पत्नी बर्तन पटकेगी। या पत्नी ध्यान करे, तो पति रेडिओ जोर से चला देगा, अखबार पढ़ने लगेगा, बच्चे उपद्रव मचाने लगेंगे।

जब बर्तन जोर से गिरे, तो आप यही जानना कि बर्तन गिर रहा है, आवाज हो रही है, मैं जान रहा हूं। अगर आपके भीतर धक्का भी लग जाए, शॉक भी लग जाए, तो भी आप यह जानना कि मेरे भीतर धक्का लगा, शॉक लगा। मेरा मन विक्षुब्ध हुआ, यह मैं जान रहा हूं। आप अपना संबंध जानने वाले से ही जोड़े रखना और किसी चीज से मत जुड्ने देना।

इससे बड़े ध्यान की कोई प्रक्रिया नहीं है। कोई जरूरत नहीं है प्रार्थना की, ध्यान की; फिर कोई जरूरत नहीं है। बस, एक घंटा इतना खयाल कर लें। थोड़े ही दिन में यह कला आपको सध जाएगी। और बताना कठिन है कि कला कैसे सधती है। आप करें, सध जाए, तो ही आपको समझ में आएगा।

करीब-करीब ऐसा, जैसे किसी बच्चे को साइकिल चलाना आप सिखाएं। तो बच्चा यह पूछे कि साइकिल चलाना कैसे आता है, तो आप भला चलाते हों जिंदगीभर से, तो भी नहीं बता सकते कि कैसे आता है। और बच्चा आपसे पूछे कि कोई तरकीब सरल में बता दें, जिससे कि मैं पैर रखूं पैडिल पर, साइकिल पर बैठूं और चल पड़ूं। तो भी आप कहेंगे कि नहीं, वह तरकीब सरल में नहीं बताई जा सकती। दस-पांच दफा तू गिरेगा ही। उस गिरने में ही वह तरकीब निखरती है। क्योंकि वह एक बैलेंस है, जो बताया नहीं जा सकता। आखिर साइकिल दो चाक पर चल रही है, एक संतुलन है। पूरे वक्त शरीर संतुलित हो रहा है। जरा इधर साइकिल झुकती है, तो शरीर दूसरी तरफ झुक जाता है। और संतुलन गति के साथ ही बन सकता है। अगर गति बहुत धीमी हो जाए, तो संतुलन बिगड़ जाएगा। अगर गति बहुत ज्यादा हो जाए, तो भी संतुलन बिगड़ जाएगा।

तो दो तरह के संतुलन हैं। एक तो गति की एक सीमा, और शरीर के साथ संतुलन, कि बाएं-दाएं कहीं ज्यादा न झुक जाए। आप भी नहीं बता सकते; साइकिल आप चलाते हैं, आप भी नहीं बता सकते कि आप कैसे करते हैं यह संतुलन। आपको पता भी नहीं चलता; यह कला आपको आ जाती है। दों-चार बार आप गिरते हैं, दो-चार बार गिरकर आपको बीच-बीच में ऐसा लगता है कि नहीं गिरे। थोड़ी दूर साइकिल चल भी गई। आपको भीतर संतुलन का अनुभव होना शुरू हो जाता है।

फिर एक दफा आदमी साइकिल चलाना सीख ले, तो फिर जिंदगी में भूलता नहीं। सब चीजें भूल जाती हैं, लेकिन दो चीजें, तैरना और साइकिल चलाना नहीं भूलती हैं। सब चीजें भूल जाती हैं। जो भी आपने सीखी हैं, भूल जाएंगी। फिर

से सीखना पड़ेगी। हालांकि दुबारा आप जल्दी सीख लेंगे, लेकिन सीखना पड़ेंगी। लेकिन साइकिल चलाना और तैरना, दो चीजें हैं, जो आपने पचास साल तक भी न की हों, आप एकदम से बैठ जाएं साइकिल पर-चलेगी!

उसका कारण? तैरना और साइकिल चलाना एक ही तरह की घटना है, संतुलन। और वह संतुलन बौद्धिक नहीं है। वह संतुलन बौद्धिक नहीं है, इसलिए आप बता भी नहीं सकते कि आप कैसे करते हैं। आप करके बता सकते हैं, कि मैं साइकिल चलाकर बताए देता हूं लेकिन क्या करता हूं यह मुझे भी पता नहीं है। कुछ करते आप जरूर हैं, लेकिन वह करना इतना सुसंगठित है, इतना इंटिग्रेटेड है, आपका पूरा शरीर, मन सब इतना समाविष्ट है उसमें। और वह आपने सिद्धांत की तरह नहीं सीखा है; वह आपने साइकिल पर गिरकर, चलाकर, उठकर सीखा है। वह आप सीख गए हैं। वह आपकी कला बन गई है।

कला और विज्ञान में यही फर्क है। विज्ञान शास्त्र से भी सीखा जा सकता है। कला सिर्फ अनुभव से सीखी जा सकती है। विज्ञान किताब में लिखकर दिया जा सकता है। कला लिखकर नहीं दी जा सकती है।

इसलिए धर्म में गुरु का इतना स्थान है। उसका स्थान इसीलिए है कि वह कुछ जानता है, जिसको वह भी आपको कह नहीं सकता, वह भी आपको करवा सकता है। आप भी गिरेंगे, उठेंगे, और एक दिन सीख जाएंगे। उसकी छाया में आप भयभीत न होंगे, गिरेंगे तो भी डरेंगे नहीं। उसके भरोसे में, उसकी आस्था में आप आशा बनाए रखेंगे, कि आज गिर रहा हूं तो कल चलने गत।। उसकी छत्र-छाया में आपको आसानी होगी कला सीख लेने की।

ध्यान एक कला है, गहनतम कला है और करने से ही आती है। आप इस छोटे-से प्रयोग को करें, एक घड़ी; चाहे कुछ भी हो जाए। बहुत मुश्किल पड़ेगी, क्योंकि बार-बार मन तादात्म्य कर लेगा। पैर में चींटी काटेगी और आप तत्क्षण समझेंगे कि मुझे चींटी ने काट लिया। और आपको पता भी नहीं चलेगा, आपका हाथ चींटी को फेंक देगा और आप समझेंगे कि मैंने चींटी को हटा दिया। मगर थोड़े दिन कोशिश करने पर-साइकिल जैसा चलाने पर आदमी गिरेगा, उठेगा-बहुत बार तादात्म्य हो जाएगा, उसका मतलब आप गिर गए। कभी-कभी तादात्म्य छूटेगा, उसका मतलब, दो कदम साइकिल चल गई। लेकिन जब पहली दफा दो कदम भी साइकिल चलती है, तो जो आनंद का अनुभव होता है! आप मुक्त हो गए; एक कला आ गई; एक नया अनुभव! आप हवा में तैरने लगे।

जब पहली दफा कोई दो हाथ मारता है, और तैर लेता है, और पानी की ताकत से मुक्त हो जाता है, और पानी अब डुबा नहीं सकता, आप मालिक हो गए तो वह जो आनंद अनुभव होता है तैरने वाले को, वह जिन्होंने तैरा नहीं है, उन्हें कभी अनुभव नहीं हो सकता। पानी पर विजय मिल गई!

जब आप ध्यान में तैरना सीख जाते हैं, तो शरीर पर विजय मिल जाती है। और वह गहनतम कला है। मगर आप करें, तो ही यह हो सकता है।

और यह सूत्र बड़ा कीमती है। यह साधारण मेथड और विधियों जैसा नहीं है, कि कोई किसी को मंत्र दे देता है, कि मंत्र बैठकर घोटते रहो। कोई कुछ और कर देता है। यह बहुत सीधा, सरल, साफ है, लेकिन ज्यादा समय लेगा।

मंत्र इत्यादि का जप करने से जल्दी कुछ घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं। लेकिन उन घटनाओं का बहुत मूल्य नहीं है। मंत्र की यात्रा से जाने वाले व्यक्ति को भी आखिर में इस सूत्र का उपयोग करना पड़ता है और उसे भीतर यह अनुभव करना पड़ता है कि जो मंत्र बोल रहा है, वह मैं नहीं हूं। और वह जो मंत्र का जपन चल रहा है, वह मैं नहीं हूं। उसे अंत में यह भी अनुभव करना पड़ता है कि वह जो ओम का भीतर पाठ हो रहा है, वह भी मैं देख रहा हूं सुन रहा हूं मैं नहीं हूं।

इस सूत्र का उपयोग तो करना ही पड़ता है। किसी भी विधि का कोई उपयोग करे, अगर इस सूत्र का बिना उपयोग किए कोई किसी विधि का प्रयोग करता हो, तो वह आज नहीं कल, आत्म-मूर्च्छा में पड़ जाएगा। यह सूत्र बुनियादी है। और सभी विधियों के प्रारंभ में, मध्य में, या अंत में कहीं न कहीं यह सूत्र मौजूद रहेगा।

इससे उचित है कि विधियों की फिक्र ही छोड़ दें। सीधे इस सूत्र पर ही काम करें। एक घंटा निकाल लें, और चाहे कितनी ही अड़चन मालूम पड़े...।

बड़ी अड़चन मालूम होगी। भीतर सब पसीना-पसीना हो जाएगा-शरीर नहीं, भीतर-बहुत पसीना-पसीना हो जाएंगे। बड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी। हर मिनट पर चूक हो जाएगी। हर बार एक चीज से बचेंगे और दूसरी चीज में तादात्म्य हो जाएगा। लेकिन जारी रखें। किसी चीज से जुड़े मत। और एक ही खयाल रखें कि मैं जानने वाला, मैं जानने वाला, मैं जानने वाला।

मैं ऐसा कह रहा हूं, इसका मतलब यह नहीं कि आप भीतर दोहराते रहें कि मैं जानने वाला, मैं जानने वाला। अगर आप यह दोहरा रहे हैं, तो आप भूल में पड़ गए, क्योंकि यह दोहराने वाला शरीर ही है। यह अगर आप दोहरा रहे हैं, तो इसको भी जानने वाला मैं हूं। जो जान रहा है कि यह बात दोहराई जा रही है, कि मैं जानने वाला, मैं जानने वाला। इसको भीतर बारीक काटते जाना है और एक ही जगह खड़े होने की कला सीखनी है कि मैं सिर्फ ज्ञान हूं। शब्द मैं नहीं हूं। ऐसा दोहराना नहीं है भीतर। ऐसा भीतर जानना है कि मैं ज्ञान हूं। और तोड़ना है सब तादात्म्य से। तो आपको पता चलेगा कि शरीर क्षेत्र है, शरीर के भीतर छिपे आप क्षेत्रज्ञ हैं।

और यह जो क्षेत्रज्ञ है, यह कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं। इस भेद को जो जान लेता है, वही ज्ञानी है।

इसलिए वह क्षेत्र जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाव वाला है, वह सब संक्षेप में मेरे से सुन।

कृष्ण कहते हैं, अब मैं तुझसे कहूंगा संक्षेप में वह सब, कि यह शरीर कैसे हुआ है, यह क्षेत्र क्या है, इसका गुणधर्म क्या है। और इसके भीतर जो जानने वाला है, वह क्या है, उसका गुणधर्म क्या है। लेकिन कृष्ण से इसे सुना जा सकता है, लेकिन क्या से सुनकर इसे जाना नहीं जा सकता।

एक बात सदा के लिए खयाल में रख लें, और उसे कभी न भूलें, कि ज्ञान कोई भी आपको दे नहीं सकता। यह जितनी गहराई से भीतर बैठ जाए उतना अच्छा है। ज्ञान कोई भी आपको दे नहीं सकता। मार्ग बताया जा सकता है, लेकिन चलना आपको ही पड़ेगा। और मंजिल मार्ग बताने से नहीं मिलती, मार्ग जान लिया इससे भी नहीं मिलती; मार्ग चलने से ही मिलती है।

और आपके लिए कोई दूसरा चल भी नहीं सकता। नहीं तो बुद्ध और कृष्ण की करुणा बहुत है। क्राइस्ट और मोहम्मद की करुणा बहुत है। अगर वे चल सकते होते आपके लिए, तो वे चल लिए होते। और अगर ज्ञान दिया जा सकता होता, तो एक कृष्ण काफी थे; सारा जगत ज्ञान से भर जाता, क्योंकि ज्ञान दिया जा सकता। लेकिन कितने ज्ञानी हो जाते हैं और अज्ञान जरा भी कटता नहीं दिखाई पड़ता!

मेरे पास लोग आते हैं। वे पूछते हैं, कृष्ण हुए महावीर हुए बुद्ध हुए क्या फायदा? आदमी तो वैसा का वैसा है। तो क्या सार हुआ? उनका कहना थोड़ी दूर तक ठीक है। क्योंकि वे सोचते हैं कि अगर एक आइंस्टीन हो जाता है, तो वह जो भी ज्ञान है, फिर सदा के लिए आदमी को मिल जाता है। एक आदमी ने खोज ली कि बिजली क्या है, तो फिर हर आदमी को खोजने की जरूरत नहीं है। आप घर में जब बटन दबाते हैं, तो आपको कोई बिजली का ज्ञाता होने की जरूरत नहीं है, कि आपको पक्का पता हो कि बिजली क्या है और कैसे काम करती है। आप बटन दबाते हैं, खतम हुई बात। अब दुनिया में किसी को जानने की जरूरत नहीं है। बाकी लोग उपयोग कर लेंगे।

विज्ञान का जो ज्ञान है, वह हस्तांतरणीय है। वह एक दूसरे को दे सकता है। वह उधार हो सकता है। क्योंकि बाहर की चीज है, दी जा सकती है।

आपके पिता जब मरेंगे, तो उनकी जो बाह्य संपत्ति है, उसके आप अधिकारी हो जाएंगे। उनका मकान आपको मिल जाएगा। उनकी किताबें आपको मिल जाएंगी। उनकी तिजोड़ी आपको मिल जाएगी। लेकिन उन्होंने जो जाना था

अपने अंतरतम में, वह आपको नहीं मिलेगा। उसको देने का कोई उपाय नहीं है। बाप भी बेटे को नहीं दे सकता। उसे दिया ही नहीं जा सकता, जब तक कि आप ही उसे न पा लें।

ज्ञान पाया जा सकता है, दिया नहीं जा सकता। उपलब्ध है; आप पाना चाहें तो पा सकते हैं। लेकिन कोई भी आपको दे नहीं सकता। तो कृष्ण कहेंगे जरूर, लेकिन अर्जुन को खुद ही पाना पड़ेगा। खतरा यह है कि अर्जुन सुनकर कहीं मान ले, कि ठीक, मैंने भी तो जान लिया।

शब्दों के साथ यह उपद्रव है। ज्ञान तो नहीं दिया जा सकता, लेकिन शब्द दिए जा सकते हैं। शब्द तो उधार मिल जाते हैं। और आप शब्दों को इकट्ठा कर ले सकते हैं। और शब्दों के कारण आप सोच सकते हैं, मैंने भी जान लिया।

आखिर अगर आप गीता को कंठस्थ कर लें, तो आपके पास भी वे ही शब्द आ गए, जो कृष्ण के पास थे। और कृष्ण ने जो कहा था, वह आप भी कह सकते हैं। लेकिन आपका कहा हुआ यांत्रिक होगा, कृष्ण का कहा हुआ अनुभवजन्य था।

अर्जुन के लिए खतरा यही है कि कृष्ण की बातें अच्छी लगें...। और लगेंगी अच्छी, प्रीतिकर लगेंगी, क्योंकि मन की कई वासनाओं को पूरा करने वाली हैं, कई अभीप्साओं को पूरा करने वाली हैं। यह कौन नहीं चाहता कि शरीर से छुटकारा हो!

एक युवती मेरे पास आई इटली से। शरीर उसका भारी है, बहुत मोटा, बहुत वजनी। कुरूप हो गया है। मांस ही मांस हो गया है शरीर पर। चरबी ही चरबी है। उसने मुझे एक बड़े मजे की बात कही। उसने यहा कोई तीन महीने ध्यान किया मेरे पास। और एक दिन आकर उसने मुझे कहा कि आज मुझे ध्यान में बड़ा आनंद आया। मैंने पूछा, क्या हुआ तुझे? तो उसने कहा, आज मुझे ध्यान में अनुभव हुआ कि मैं शरीर नहीं हूं। और इस शरीर से मुझे बड़ी पीड़ा है; कोई मुझे प्रेम नहीं करता है। और एक युवक मेरे प्रेम में भी गिर गया था, तो उसने मुझसे कहा कि मैं तेरी सिर्फ आत्मा को प्रेम करता हूं तेरे शरीर को नहीं।

अब किसी स्त्री से आप यह कहिए कि मैं तेरी सिर्फ आत्मा को प्रेम करता हूं तेरे शरीर को नहीं! तो उस युवक ने कहा कि मैं तेरे शरीर को प्रेम नहीं कर सकता। बिलकुल असंभव है। मैं तेरी आत्मा को प्रेम करता हूं। लेकिन इससे कोई तृप्ति तो हो नहीं सकती। उसने कहा, आज मुझे ध्यान में बड़ा आनंद आया, क्योंकि मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं शरीर नहीं हूं। तो मेरी जो एक ग्लानि है मेरे शरीर के प्रति, उससे मुझे छुटकारा हुआ।

तो मैंने उससे पूछा कि यह तुझे ध्यान के कारण हुआ या तेरे मन में सदा से यह भाव है कि किसी तरह यह खयाल में आ जाए कि मैं शरीर नहीं हूं तो इस शरीर को दुबला करने की झंझट, इस शरीर को रास्ते पर लाने की झंझट मिट जाए?

तो उसने कहा कि यह भाव तो मेरे मन में पड़ा है। असल में मैं ध्यान करने आपके पास आई ही इसलिए हूं कि मुझे यह पता चल जाए कि मैं शरीर नहीं हूं मैं आत्मा हूं। तो शरीर के कारण जो मुझे पीड़ा मालूम होती है, और शरीर के कारण जो प्रत्येक व्यक्ति को मेरे प्रति विकर्षण होता है, उससे जो मुझे दंश और चोट लगती है, उस चोट से मेरा छुटकारा हो जाए।

तो मैंने उससे कहा कि पहले तो तू यह फिक्र छोड़ और यह भाव मन से हटा, नहीं तो तू कल्पना ही कर लेगी ध्यान में कि मैं शरीर नहीं हूं। कल्पना आसान है। सिद्धांत मन में बैठ जाएं, हमारी वासनाओं की पूर्ति करते हों, हम कल्पना कर लेते हैं।

शरीर से कौन दुखी नहीं है? ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो शरीर से दुखी न हो। कोई न कोई दुख शरीर में है ही। किसी के पास कुरूप शरीर है। किसी के पास बहुत मोटा शरीर है। किसी के पास बहुत दुबला शरीर है। किसी के पास कोई रुग्ण शरीर है। किसी का कोई अंग ठीक नहीं है। किसी की आंखें जा चुकी हैं। किसी के कान ठीक नहीं हैं। किसी को कुछ है, किसी को कुछ है। शरीर तो हजार तरह की बीमारियों का घर है।

तो शरीर से तृप्त तो कोई भी नहीं है। इसलिए कोई भी मन में वासना रख सकता है कि अच्छा है, पता चल जाए कि मैं शरीर नहीं हूं। मगर यह वासना खतरनाक हो सकती है। सिद्धांत की आड़ में यह वासना छिप जाए, तो आप कल्पना भी कर ले सकते हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। लेकिन उससे कोई सार न होगा, कोई हल न होगा। आप कहीं पहुंचेंगे नहीं। कोई मुक्ति हाथ नहीं लगेगी।

अनुभव-वासनारहित, कल्पनारहित और स्वयं का-उधार नहीं।

ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह सुनने योग्य है। ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह समझने योग्य है। ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह करने योग्य है। लेकिन ज्ञानीजन क्या कहते हैं, यह मानने योग्य बिलकुल नहीं है। मानना तो तभी, जब करने से अनुभव में आ जाए।

ज्ञानीजन क्या कहते हैं, उसे सुनना, हृदयपूर्वक सुनना। श्रद्धा से भीतर ले जाना। पूरा उसे आत्मसात कर लेना। उस खोज में भी लग जाना। वे क्या करने को कहते हैं, उसे साहसपूर्वक कर भी लेना। लेकिन मानना तब तक मत, जब तक अपना अनुभव न हो जाए। तब तक समझना कि मैं अज्ञानी हूं, और सिद्धांतों से अपने अज्ञान को मत ढांक लेना। और तब तक समझना कि मुझे कुछ पता नहीं है। ऐसा कृष्ण कहते हैं। कृष्ण से प्रेम है, इसलिए कृष्ण जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। लेकिन ठीक ही है, ऐसा तब तक मैं कैसे कहूं तब तक मैं न जान लूं।

इसका यह अर्थ नहीं है कि उन पर अश्रद्धा करना। अश्रद्धा की कोई भी जरूरत नहीं है। पूरी श्रद्धा करना। लेकिन मान मत लेना। मेरी बात का फर्क आपको खयाल में आ रहा है?

मानने का एक खतरा है कि आदमी चलना ही बंद कर देता है। वह कहता है, ठीक है। अक्सर मुझे ऐसा लगता है कि जो लोग जल्दी मान लेते हैं, वे वे ही लोग हैं, जो चलना नहीं चाहते; जिनकी सस्ती श्रद्धा हो जाती है। वे असल में यह कह रहे हैं कि ठीक है। कोई हमें अड़चन नहीं है। ठीक ही है। कहीं चलने की कोई जरूरत भी नहीं है। हम मानते ही हैं कि बिलकुल ठीक है।

आदमी इनकार करके भी बच सकता है, है। करके भी बच सकता है। मेरे पास लोग आते हैं, तो मैं अनुभव करता हूं। उनको मैं कहता हूं कि ध्यान करो। वे कहते हैं, आप बिलकुल ठीक कहते हैं। लेकिन जब वे कह रहे हैं कि बिलकुल ठीक कहते हैं, तो वे यह कहते हैं कि अब कोई करने की जरूरत नहीं है। हमें तो मालूम ही है। आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं।

दूसरा आदमी आता है, वह कहता है कि नहीं, हमें आपकी बात बिलकुल नहीं जंचती। वह भी यह कह रहा है कि बात जंचती ही नहीं, तो करें कैसे?

बड़े मजे की बात है। आदमी किस तरह की तरकीबें निकालता है! एक आदमी कहता है कि बिलकुल नहीं जंचती। मगर वह जितनी तेजी से कहता है, उससे लगता है कि वह डरा हुआ है कि कहीं जंच न जाए, नहीं तो करना पड़े। भयभीत है। वह एक रुकावट खड़ी कर रहा है कि हमें जंचती ही नहीं, इसलिए करने का कोई सवाल नहीं। एक दूसरा आदमी है, वह कहता है, हमें बिलकुल जंचती है। आपकी बात बिलकुल सौ टका ठीक है। लेकिन यह दूसरा आदमी भी यह कह रहा है कि सौ टका ठीक है। करने की कोई जरूरत ही नहीं, हमें मालूम ही है कि ठीक है। जो बात मालूम ही है, उसको और मालूम करके क्या करना है!

आदमी आस्तिक होकर भी धोखा दे सकता है खुद को, नास्तिक होकर भी धोखा दे सकता है। दोनों धोखे से बचने का एक ही उपाय है, प्रयोग करना, अनुभव करना।

और जो भी इस रास्ते पर चलते हैं, वे खाली हाथ नहीं लौटते हैं। और जो भी इस रास्ते पर जाते हैं, वे जरूर मंजिल तक पहुंच जाते हैं। क्योंकि यह रास्ता खुद के ही भीतर ले जाने वाला है। और यह मंजिल कहीं दूर नहीं, खुद के भीतर ही छिपी है।

गीता दर्शन–(भाग–6)
क्षेत्रज्ञ अर्थात निर्विषय, निर्विकार चैतन्य—(प्रवचन—दूसरा)
अध्याय—13

गीता सूत्र:

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दौभिर्विविधैः पृथक।
ब्रह्मसूत्रदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।।4।।
महाभूतान्हंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंज्च चेन्दियगोचराः ।।5।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुख संघलश्चेतना धृतिः ।
एतत् क्षेत्रं समासैन सधिकारमुदहतम्।।6।।
यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और नाना कार के छंदों से विभागपूर्वक कहा गया है तथा अच्छी प्रकार निश्चय किए हुए युक्ति—युक्त बह्मसूत्रों के पदों द्वारा भी वैसे ही कहा गया है।

और हे अर्जुनु वही मैं तेरे लिए कहता हूं कि पांच महाभूत? अहंकार, बुद्धि और मूल कृति प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया भी तथा दस इंद्रियां, एक मन और पांच इंद्रियां के विषय अर्थत शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और स्थूल देह का पिंड एवं चेतना और धृति, हम कार यह क्षेत्र विकारों के सहित संक्षेप से कहा गया है।

सूत्र के पहले थोड़े—से प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, शरीर या आत्मा, प्रकृति और पुरुष, ऐसे दो भेदों की चर्चा की गई; फिर भी कृष्ण ने कहा है कि सभी कुछ वे ही हैं। तो समझाएं कि सभी कुछ अगर एक ही है, तो यह भेद, विकार और बिलगाव क्यों है?
ह भेद दिखाई पड़ता है, है नहीं। यह भेद प्रतीत होता है, है नहीं। जो भी प्रतीत होता है, जरूरी नहीं है कि हो। और जो भी है, जरूरी नहीं है कि प्रतीत हो। बहुत कुछ दिखाई पड़ता है। उस दिखाई पड़ने में सत्य कम होता है, देखने वाले की दृष्टि ज्यादा होती है।

जो आप देखते हैं, उस देखने में आप समाविष्ट हो जाते हैं। और जिस भांति आप देखते हैं, जिस ढंग से आप देखते हैं, वह आपके दर्शन का हिस्सा बन जाता है। एक दुखी आदमी अपने चारों तरफ दुख देखता है। अगर आकाश में चांद भी निकला हो, तो वह भी सुंदर प्रतीत नहीं होता। एक आनंदित व्यक्ति सब ओर आनंद देखता है और उसे कीटों में भी फूल जैसा सौंदर्य दिखाई पड़ सकता है। देखने वाले पर निर्भर करता है कि क्या दिखाई पड़ेगा।

जो हम देखते हैं, वह हमारी व्याख्या है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें, क्योंकि धर्म की सारी खोज इस बुनियादी बात को ठीक से समझे बिना नहीं हो सकती। आमतौर से जो हम देखते हैं, हम सोचते हैं, वैसा तथ्य है जो हम देख रहे हैं। लेकिन समझेंगे, खोजेंगे, विचारेंगे, तो पाएंगे, तथ्य कोई भी नहीं हम देख पाते, सभी हमारी व्याख्या है। जो हम देखते हैं, वह हमारा इंटरप्रिटेशन है। दो—चार तरफ से सोचें।

कोई चेहरा आपको सुंदर मालूम पड़ता है। और आपके मित्र को, हो सकता है, वही चेहरा कुरूप मालूम पड़े। तो सौंदर्य चेहरे में है या आपके देखने के ढंग में? सौंदर्य आपकी व्याख्या है या चेहरे का तथ्य? अगर सौंदर्य चेहरे का तथ्य है, तो उसी चेहरे में सभी को सौंदर्य दिखाई पड़ना चाहिए। पर किसी को सौंदर्य दिखाई पड़ता है, किसी को नहीं दिखाई पड़ता है। और किसी को कुरूपता भी दिखाई पड़ सकती है उसी चेहरे में।

तो चेहरे को जब आप कुछ भी कहते हैं, उसमें आपकी व्याख्या सम्मिलित हो जाती है। तथ्य खो जाता है और आप आरोपित कर लेते हैं कुछ।

कोई चीज आपको स्वादिष्ट मालूम पड़ सकती है, और किसी दूसरे को बेस्वाद मालूम पड़ सकती है। तो स्वाद किसी वस्तु में होता है या आपकी व्याख्या में? स्वाद वस्तु में होता है या आप में होता है? ऐसा हमें पूछना चाहिए। अगर वस्तु में स्वाद होता हो, तो फिर सभी को स्वादिष्ट मालूम पड़नी चाहिए।

स्वाद आप में होता है, वस्तु को स्वाद आप देते हैं। वह आपका दान है। और जो आप अनुभव करते हैं, वह आपका ही खयाल है। तो ऐसा भी हो सकता है कि जो व्यक्ति आज सुंदर मालूम पड़ता है, कल असुंदर मालूम पड़ने लगे। और जो व्यक्ति आज मित्र जैसा मालूम पड़ता है, कल शत्रु जैसा मालूम पड़ने लगे। और जो बात आज बड़ी सुखद लगती थी, कल दुखद हो जाए। क्योंकि कल तक आप बदल जाएंगे, आपकी व्याख्या बदल जाएगी।

जो हम अनुभव करते हैं, वह सत्य नहीं है, वह हमारी व्याख्या है। और सत्य का अनुभव तो तभी होता है, जब हम सारी व्याख्या छोड़ देते हैं; 'उसके पहले अनुभव नहीं होता। इसलिए सत्य के करीब शून्य—चित्त हुए बिना कोई भी नहीं पहुंच सकता है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का, आत्मा और शरीर का, संसार का और मोक्ष का, पदार्थ का और परमात्मा का भेद भी हमारी ही व्याख्या है। और अंतिम क्षण में जब सभी व्याख्याएं गिर जाती हैं, तो कोई भेद नहीं रह जाता। लेकिन सारी व्याख्याएं गिर जाएं, तब अभेद का अनुभव होता है।

यह जो अभेद की प्रतीति है और भेद का हमारा अनुभव है, इसे इस भांति खोज करेंगे तो आसानी होगी, जहां—जहां आपको भेद दिखाई पड़ता है, वस्तुतः वहां भेद है?

अंधेरे में और प्रकाश में हमें भेद दिखाई पड़ता है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। अंधेरे को अगर विज्ञान की भाषा में कहें, तो उसका अर्थ होगा, थोड़ा कम प्रकाश। इससे उलटा भी कह सकते हैं। अगर अंधेरा प्रकाश का एक रूप है, तो हम यह भी कह सकते हैं कि प्रकाश भी अंधेरे का एक रूप है। और प्रकाश की व्याख्या में हम कह सकते हैं, थोड़ा कम अंधेरा।

आइंस्टीन ने रिलेटिविटी को जन्म दिया, सापेक्षता को जन्म दिया। और आइंस्टीन ने कहा कि हमारा यह कहना कि यह अंधेरा है और यह प्रकाश है, नासमझी है। क्योंकि प्रकाश और अंधेरा सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। अंधेरा थोड़ा कम प्रकाश है, प्रकाश थोड़ा कम अंधेरा है। हमसे बेहतर आंखें हों, तो अंधेरे में भी देख लेंगी और वहा भी प्रकाश पता चलेगा। और हमसे कमजोर आंखें हों, तो प्रकाश में भी नहीं देख पातीं, वहां भी अंधेरा दिखाई पड़ता है। आइंस्टीन कहता है, अगर आंख की ताकत बढ़ती जाए, तो अंधेरा प्रकाश होता चला जाएगा। और आंख की ताकत कम होती जाए तो प्रकाश अंधेरा होता चला जाएगा। फिर दोनों में कोई फासला नहीं है, दोनों में कोई भेद नहीं है।

और इसे ऐसा समझें, अगर आंख हो ही न, तो प्रकाश और अंधेरे में क्या फर्क होगा? एक अंधे आदमी को प्रकाश और अंधेरे में क्या फर्क है? शायद आप सोचते होंगे, अंधे को तो सदा अंधेरे में रहना पड़ता होगा, तो आप गलती में हैं। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधे को अंधेरा दिखाई नहीं पड़ सकता। अंधा भी अंधेरा नहीं देख सकता, क्योंकि देखने के लिए तो आंख चाहिए। कुछ भी देखना हो, अंधेरा देखना हो तो भी।

इसलिए आप सोचते हों कि अंधा जो है, अंधेरे में रहता है, तो आप बिलकुल गलती में हैं। अंधे को अंधेरे का कोई पता ही नहीं है। ध्यान रहे, जो अंधेरे को देख सकता है, वह तो फिर प्रकाश को भी देख लेगा, क्योंकि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है।

अंधे को न अंधेरे का पता है और न प्रकाश का। आप आंख बंद करते हैं, तो आपको अंधेरा दिखाई पड़ता है, इससे आप यह मत सोचना कि अंधे को अंधेरा दिखाई पड़ता है। बंद आंख भी आंख है, इसलिए अंधेरा दिखाई पड़ता है। अंधे के लिए अंधेरे और प्रकाश में क्या फर्क है? कोई भी फर्क नहीं है। अंधे के लिए न तो अंधेरा है और न प्रकाश है।

इसे हम दूसरी तरह से भी सोचें। अगर परमात्मा के पास आंख हो, तो उसका अर्थ होगा, जैसे अंधा बिलकुल नहीं देख सकता है, हम थोड़ा देख सकते हैं, परमात्मा पूरा देख सकता हो।

अगर परमात्मा के पास एब्सोल्युट आइज हों, परिपूर्ण आंखें हों, तो उसे भी अंधेरे और प्रकाश में कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि अंधेरे में भी वह उतना ही देखेगा, जितना प्रकाश में देखेगा। उसकी आंख सापेक्ष नहीं है। इसलिए अगर परमात्मा देखता होगा, तो उसको भी अंधेरे और प्रकाश का कोई पता नहीं हो सकता। उसकी हालत अंधे जैसी होगी, दूसरे छोर पर।

अगर पूरी आंख हो, तो भी फर्क पता नहीं चलेगा। फर्क पता तो तभी चल सकता है, जब थोड़ा हम देखते हों और थोड़ा हम न देखते हों।

इसे ऐसा समझें कि आप कहते हैं कि गरम है पानी, या आप कहते हैं कि बर्फ बहुत ठंडी है। तो ठंडक और गरमी, लगता है बड़ी विपरीत चीजें हैं। और हमारे अनुभव में हैं। जब गरमी तप रही हो चारों ओर, तब ठंडे पानी का एक गिलास तृप्ति देता है। कितना ही कृष्ण कहें कि सब अद्वैत है, हम यह मानने को राजी न होंगे कि गरम पानी का गिलास भी इतनी ही तृप्ति देगा। और कितना ही आइंस्टीन कहे कि गरमी भी ठंडक का एक रूप है, और ठंडक भी गरमी का एक रूप है, फिर भी हम जानते हैं, ठंडक ठंडक है, गरमी गरमी है। और आइंस्टीन भी जब गरमी पड़ेगी, तो छाया में सरकेगा। और जब ठंड लगेगी, तो कमरे में हीटर लगाएगा। हालाकि वह भी कहता है कि दोनों एक ही चीज के रूप हैं।

परम सत्य तो यही है कि दोनों एक चीज के रूप हैं। लेकिन परम सत्य को जानने के लिए परम प्रज्ञा चाहिए। हमारे पास जो बुद्धि है, वह तो सापेक्ष है। उस सापेक्ष बुद्धि में गरमी गरमी है ठंड ठंड है। और दोनों में बड़ा भेद है; विपरीतता है। लेकिन हमें विपरीतता प्रतीत होती है, वह हमारी सापेक्ष बुद्धि के कारण।

एक छोटा—सा प्रयोग करें। पानी रख लें एक बालटी में। एक हाथ को बर्फ पर रखकर ठंडा कर लें। और एक हाथ को लालटेन के पास रखकर गरम कर लें और फिर दोनों हाथों को उस पानी की बालटी में डुबा दें। आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। क्योंकि एक हाथ कहेगा पानी ठंडा है, और एक हाथ कहेगा पानी गरम है। और पानी तो बालटी में एक ही जैसा है। लेकिन एक हाथ खबर देगा गरम की, एक हाथ खबर देगा ठंडक की, क्योंकि दोनों हाथों का सापेक्ष अनुभव है। जो हाथ गरम है, उसे पानी ठंडा मालूम पड़ेगा। जो हाथ ठंडा है, उसे पानी गरम मालूम पड़ेगा।

तो इस बालटी के भीतर जो पानी है, उसको आप क्या कहिएगा ठंडा या गरम? अगर बाएं हाथ की मानिए, तो वह कहता है ठंडा; दाएं हाथ की मानिए, तो वह कहता है गरम। और दोनों हाथ आपके हैं। आप क्या करिएगा? तब आपको पता चलेगा कि गरमी और ठंडक सापेक्ष हैं। गरमी और ठंडक दो तथ्य नहीं हैं, हमारी व्याख्याएं हैं। हम अपनी तुलना में किसी चीज को गरम कहते हैं, और अपनी तुलना में किसी चीज को ठंडी कहते हैं।

इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक हमारे पास तुलना करने वाली बुद्धि है और जब तक हमारे पास तौलने का तराजू विचार है, तब तक हमें भेद दिखाई पड़ते रहेंगे।

संसार में भेद हैं, क्योंकि संसार है हमारी व्याख्याओं का नाम। और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, क्योंकि परमात्मा का अर्थ है, उस जगह प्रवेश, जहां हम अपनी व्याख्याएं छोड़कर ही पहुंचते हैं। इसे हम ऐसा समझें, एक नदी बहती है, तो उसके पास किनारे होते हैं। बाएं तरफ किनारा होता है, दाएं तरफ किनारा होता है। और फिर नदी सागर में गिर जाती है। सागर में गिरते ही किनारे खो जाते हैं। जो नदी सागर में गिर गई है, अगर वह दूसरी नदियों से मिल सके, तो उन नदियों से कहेगी कि किनारे हमारे अस्तित्व का हिस्सा नहीं हैं। किनारे संयोगवश हैं। किनारा होना जरूरी नहीं है नदी होने के लिए, क्योंकि सागर में पहुंचकर कोई किनारा नहीं रह जाता, नदी रह जाती है।

लेकिन किनारे से बंधी नदियां कहेंगी कि यह बात समझ में नहीं आती। बिना किनारे के नदी हो कैसे सकती है? किनारे तो हमारे अस्तित्व के हिस्से हैं।

कृष्ण जब हमसे बोलते हैं, तो वही तकलीफ है। कृष्ण उस जगह से बोलते हैं, जहां नदी सागर में गिर गई। हम उस जगह से सुनते हैं, जहां नदी किनारों से बंधी है।

तो कृष्ण जब अभेद की बात करते हैं, तो हमारी पकड़ के बाहर हो जाती है। भेद की जब बात करते हैं, तो हमारी समझ में आती है। क्योंकि भेद हम भी कर सकते हैं। भेद तो हम करते ही हैं। भेद करना तो हमें पता है, वह कला हमें ज्ञात है। लेकिन अभेद की कला हमें ज्ञात नहीं है। अभेद की कला कठिन भी है, क्योंकि अभेद की कला का अर्थ हुआ कि हमें मिटना पड़ेगा। वह जो भेद करने वाला हमारे भीतर है, उसके समाप्त हुए बिना अभेद का कोई पता नहीं चलेगा। चारों तरफ हम देखते हैं; सब चीजों की परिभाषा मालूम पडती है, सभी चीजों की सीमा मालूम पड़ती है। लेकिन अस्तित्व असीम है, और कहीं भी समाप्त नहीं होता। कहीं कोई सीमा आती नहीं है अस्तित्व की।

आपको लगता है, एक वृक्ष खड़ा है, तो दिखाई पड़ता है, वृक्ष की सीमा है। आप नाप सकते हैं, कितना ऊंचा है, कितना चौड़ा है। पत्ती भी नाप सकते हैं। वजन भी नाप सकते हैं। लेकिन क्या सच में वृक्ष की कोई सीमा है? क्या वृक्ष पृथ्वी के बिना हो सकता है? अगर पृथ्वी के बिना वृक्ष नहीं हो सकता, तो पृथ्वी वृक्ष का हिस्सा।

जिसके बिना हम नहीं हो सकते, उससे हमें अलग करना उचित नहीं है। पृथ्वी के बिना वृक्ष नहीं हो सकता। उसकी जड़ें पृथ्वी की छाती में फैली हुई हैं, उन्हीं से वह रस पाता है, उन्हीं से जीवन पाता है; उसके बिना नहीं हो सकता। तो पृथ्वी वृक्ष का हिस्सा है। पृथ्वी बहुत बड़ी है। वृक्ष नहीं था, तब भी थी। वृक्ष नहीं हो जाएगा, तब भी होगी। और अभी भी जब वृक्ष है, तो वृक्ष के भीतर पृथ्वी दौड़ रही है, वृक्ष के भीतर पृथ्वी बह रही है।

लेकिन क्या पृथ्वी ही वृक्ष का हिस्सा है? हवा के बिना वृक्ष न हो सकेगा। वृक्ष भी श्वास ले रहा है। वह भी आंदोलित है, उसका प्राण भी वायु से चल रहा है। वायु के बिना अगर वृक्ष न हो सके, तो फिर वायु से वृक्ष को अलग करना उचित नहीं है; नासमझी है। तो वायुमंडल वृक्ष का हिस्सा है।

लेकिन क्या सूरज के उगे बिना वृक्ष हो सकेगा? अगर कल सुबह सूरज न उगेगा, तो वृक्ष मर जाएगा। दस करोड़ मील दूर सूरज है, लेकिन उसकी किरणों से वृक्ष जीवित है। तो वृक्ष का जीवन कहां समाप्त होता है?

यह तो मैंने स्पेस में, आकाश में उसका फैलाव बताया। समय में भी वृक्ष इसी तरह फैला हुआ है। यह वृक्ष कल नहीं था। एक बीज था इस वृक्ष की जगह, किसी और वृक्ष पर लगा था। उस वृक्ष के बिना यह वृक्ष न हो सकेगा। वह बीज अगर पैदा न होता, तो यह वृक्ष कभी भी न होता। वह बीज आज भी इस वृक्ष में प्रकट हो रहा है।

और अगर हम इसके पीछे की तरफ यात्रा करें, तो न मालूम कितने वृक्ष इसके पीछे हुए इसलिए यह वृक्ष हो सका है। अनंत तक पीछे फैला हुआ है; अनंत तक आगे फैला हुआ है। अनंत तक चारों तरफ फैला हुआ है। समय और क्षेत्र दोनों में वृक्ष का फैलाव है। अगर एक वृक्ष को हम ठीक से, ईमानदारी से सीमा तय करने चलें, तो पूरे विश्व की सीमा में हमें वृक्ष मिलेगा। एक छोटे—से व्यक्ति को अगर हम खोजने चलें, तो हमें उसके भीतर पूरा विराट ब्रह्मांड मिल जाएगा।

तो कहां आप समाप्त होते हैं? कहां शुरू होते हैं? न कोई शुरुआत है और न कोई अंत है। इसीलिए हम कहते हैं कि परमात्मा अनादि और अनंत है। आप भी अनादि और अनंत हैं। वृक्ष भी अनादि और अनंत है। पत्थर का एक टुकड़ा भी अनादि और अनंत है। अस्तित्व में जो भी है, वह अनादि और अनंत है।

लेकिन हम सीमाएं बनाना जानते हैं। और सीमाएं बनाना जरूरी भी है, हमारे काम के लिए उपयोगी भी है। अगर मैं आपका पता न फन आपका घर खोजता हुआ आऊं और कहूं कि वे कहां रहते हैं, जो अनादि और अनंत हैं! जिनका न कोई अंत है, न कोई प्रारंभ है! जो न कभी जन्मे और न कभी मरेंगे; जो निर्गुण, निराकार हैं—वे कहां रहते हैं? तो मुझे लोग पागल समझेंगे। वे कहेंगे, आप नाम बोलिए। आप सीमा बताइए। आप परिभाषा करिए। आप ठीक—ठीक पता बताइए। क्या नाम है? क्या धाम है? यह अनंत और निराकार, इससे कुछ पता न चलेगा।

आपका मुझे पता लगाना हो, तो एक सीमा चाहिए। एक छोटे—से कार्ड पर आपका नाम, आपका टेलीफोन नंबर, आपका पता—ठिकाना, उससे मैं आपको खोज पाऊंगा। और वह सब झूठ है, जिससे मैं आपको खोजूंगा। और जो सत्य है, अगर उससे खोजने चलूं तो आपको मैं कभी न खोज पाऊंगा।

जिंदगी सापेक्ष है, वहां सभी चीजें कामचलाऊ हैं, उपयोगी हैं। लेकिन जो उपयोगी है, उसे सत्य मत मान लेना। जो उपयोगी है, अक्सर ही झूठ होता है।

असल में झूठ की बड़ी उपयोगिता है। सत्य बड़ा खतरनाक है। और जो सत्य में उतरने जाता है, उसे उपयोगिता छोड़नी पड़ती है। संन्यास का यही अर्थ है, वह व्यक्ति जिसने उपयोगिता के जगत की फिक्र छोड़ दी। और जो कहता है, चाहे नुकसान उठा लूं? चाहे

सब मिट जाए, लेकिन मैं वही जानना चाहूंगा जो है। और इस खोज में अपने को भी खोना पड़ता है।

निश्चित ही, कृष्ण की बात समझ में नहीं आती; कि अगर सभी एक है, तो फिर भेद कैसा?

सभी तो एक है, भेद इसलिए है कि हमारे पास जो बुद्धि है छोटी—सी, वह भेद बिना किए काम नहीं कर सकती।

इसे ऐसा समझें कि एक आदमी अपने मकान के भीतर बंद है। वह जब भी आकाश को देखता है, तो अपनी खिड़की से देखता है। तो खिड़की का जो चौखटा है, वह आकाश पर आरोपित हो जाता है। उसने कभी बाहर आकर नहीं देखा। उसने सदा अपने मकान के भीतर से देखा है। तो खिड़की का चौखटा आकाश पर कस जाता है। और जिस आदमी ने खुला आकाश नहीं देखा, वह यही समझेगा कि यह जो खिड़की का आकार है, यही आकाश का आकार है। खिड़की का आकार आकाश का आकार मालूम पड़ेगा। आकाश निराकार है। लेकिन कहा से आप देख रहे हैं? आपकी खिड़की कितनी बड़ी है? हो सकता है, आप एक दीवाल के छेद से देख रहे हों, तो आकाश उतना ही बड़ा दिखाई पड़ेगा जितना दीवाल का छेद है।

जब कोई व्यक्ति अपने मकान के बाहर आकर आकाश को देखता है, तब उसे पता चलता है कि यह तो निराकार है। जो आकार दिखाई पड़े थे, वे मेरे देखने की जगह से पैदा हुए थे।

इंद्रिया खिड़कियां हैं। और हम अस्तित्व को इंद्रियों के द्वारा देखते हैं, इसलिए अस्तित्व बंटा हुआ दिखाई पड़ता है, टूटा हुआ दिखाई पड़ता है।

आंख निराकार को नहीं देख सकती, क्योंकि आंख जिस चीज को भी देखेगी उसी पर आंख का आकार आरोपित हो जाएगा। कान निराकार को नहीं सुन सकते, निःशब्द को नहीं सुन सकते। कान तो जिसको भी सुनेंगे, उसको शब्द बना लेंगे और सीमा बांध देंगे। हाथ निराकार को नहीं छू सकते, क्योंकि हाथ आकार वाले हैं, जिसको भी छुएंगे, वहीं आकार का अनुभव होगा।

आप उपकरण से देखते हैं, इसलिए सभी चीजें विभिन्न हो जाती हैं। जब कोई व्यक्ति इंद्रियों को छोड्कर, द्वार—दरवाजे खिड़कियों से पार आकर खुले आकाश को देखता है, तब उसे पता चलता है कि जो भी मैंने अब तक देखा था, वे मेरे खयाल थे। अब जो मैं देख रहा हूं? वह सत्य है।

मकान के बाहर आकर देखने का नाम ही ध्यान है। इंद्रियों से हटकर, अलग होकर देखने का नाम ही ध्यान है। आंख से मत देखें। आंख बंद करके देखने का नाम ध्यान है। कान से मत सुनें। कान बंद करके सुनने का नाम ध्यान है। शरीर से मत स्पर्श करें। शरीर के स्पर्श से ऊपर उठकर स्पर्श करने का नाम ध्यान है।

और जब सारी इंद्रियों को छोड्कर कोई जरा—सा भी अनुभव कर लेता है, तो उसे कृष्ण की बात की सचाई का पता चल जाएगा। तब उसे कहीं भी सीमा न दिखाई पड़ेगी। तब उसे जन्म और मृत्यु एक मालूम होंगे, तब उसे सृष्टि और स्रष्टा एक मालूम होंगे। एक कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक में यह बात छिपी ही हुई है कि शायद पहले दो थे, अब एक मालूम होते हैं।

इसलिए हमने अपने मुल्क में एक शब्द का प्रयोग नहीं किया। हमने जो शब्द प्रयोग किया है, वह है अद्वैत। ज्ञानी को ऐसा पता नहीं चलेगा कि सब एक है। ज्ञानी को ऐसा पता चलेगा कि दो नहीं हैं। इन दोनों में फर्क है। शब्द तो एक ही हैं।

अद्वैत का मतलब ही होता है एक, एक का मतलब भी होता है अद्वैत। लेकिन सोचकर हमने कहा अद्वैत, एक नहीं। क्योंकि एक से विधायक रूप से मालूम पड़ता है, एक। एक की सीमा बन जाती है। और जहां एक हो सकता है, वहा दो भी हो सकते हैं। क्योंकि एक संख्या है। अकेली संख्या का कोई मूल्य नहीं होता। दो होना चाहिए, तीन होना चाहिए, चार होना चाहिए, तो एक का कोई मूल्य है। और अगर कोई दो नहीं, कोई तीन नहीं, कोई चार नहीं, तो एक निर्मूल्य हो गया। गणित का अंक व्यर्थ हो गया। उसमें फिर कोई अर्थ नहीं है।

इसलिए भारतीय रहस्यवादियों ने एक शब्द का उपयोग न करके कहा, अद्वैत—नान डुअल। इतना ही कहा कि हम इतना कह सकते हैं कि वहा दो नहीं हैं। निषेध विराट होता है, विधेय में सीमा आ जाती है। इनकार करने में कोई सीमा नहीं आती। दो नहीं हैं। कुछ कहा नहीं, सिर्फ इतना ही कहा कि भेद नहीं है वहा। दो किए जा सकें, इतना भी भेद नहीं है।

यह जो निषेध है, दो नहीं, यह कोई गीता समझने से, ब्रह्मसूत्र समझने से खयाल में नहीं आ जाएगा। यह दो नहीं तभी खयाल में आएगा, जब इंद्रियों से हटकर देखने की थोड़ी—सी क्षमता आ जाएगी। यह सारा अध्याय इंद्रियों से हटने की कला पर ही निर्भर है। सारी कोशिश यही है कि आप शरीर से हटकर देखने में सफल हो जाएं। इसलिए प्राथमिक रूप से फासला करना पड़ रहा है। यह बड़ी उलझी हुई जटिल बात है।

कृष्ण पहले सिखा रहे हैं कि तुम जानो कि तुम शरीर नहीं हो। भेद सिखा रहे हैं। पैराडाक्सिकल है, विरोधाभासी है। कृष्ण कह रहे हैं, तुम जानो कि तुम क्षेत्र नहीं हो, शरीर नहीं हो, इंद्रियां नहीं हो। यह तो भेद सिखाना हो गया। लेकिन कृष्ण यह भेद इसीलिए सिखा रहे हैं, क्योंकि इसी भेद के द्वारा तुम्हें अभेद का दर्शन हो सकेगा। शरीर से तुम हटोगे, तो तुम्हें दिखाई पड़ेगा, शरीर भी खो गया, आत्मा भी खो गई; और वही रह गया, जो दोनों के बीच है, जो दोनों में छिपा है।

इसे ऐसा समझें कि आप अपने मकान को जोर से पकड़े हुए हैं। और मैं आपसे कहता हूं कि यह खिड़की छोड़ो, तो तुम्हें खुला आकाश दिखाई पड़ सके। इस खिड़की से थोड़ा दूर हटो। तुम खिड़की नहीं हो। तुम मकान नहीं हो। तुम चाहो तो मकान के बाहर आ सकते हो। तो मैं भेद लिखा रहा हूं। मैं कह रहा हूं तुम मकान नहीं हो। बाहर हटो। लेकिन बाहर आकर तुम्हें यह भी पता चल जाएगा कि मकान के भीतर जो था, वह भी यही आकाश था, जो मकान के बाहर है।

लेकिन मकान के बाहर आकर दोनों बातें पता चलेंगी, कि जो आकाश मैं भीतर से देखता था, वह सीमित था। सीमा मेरी दी हुई थी। आकार मैंने दिया था; निराकार को मैंने आकार की तरह देखा था। वह मेरी भूल थी, मेरी भांति थी। लेकिन बाहर आकर. इसका यह अर्थ नहीं है कि मकान के भीतर जो आकाश था, वह आकाश नहीं है। बाहर आकर तो आपको यह भी दिखाई पड़ जाएगा कि मकान के भीतर जो था, वह भी आकाश था। मकान की खिड़की से जो दिखाई पड़ता था, वह भी आकाश था। खिड़की भी आकाश का हिस्सा थी। खिड़की भी आज नहीं कल खो जाएगी और आकाश में लीन हो जाएगी।

जिस दिन आकाश के तत्व की पूरी प्रतीति हो जाएगी, उस दिन मकान, खिड़की सभी आकाश हो जाएंगे। लेकिन एक बार मकान के बाहर आना जरूरी है।

भेद निर्मित किया जा रहा है, ताकि आप अभेद को जान सकें। यह बात उलटी मालूम पड़ती है और जटिल मालूम पड़ती है। हम चाहेंगे कि भेद की बात ही न की जाए। अगर अभेद ही है, तो भेद की बात ही न की जाए।

लेकिन बात की जाए या न की जाए, हमें अभेद दिखाई नहीं पड़ता। हमें भेद ही दिखाई पड़ता है। हम चाहें तो भेद के भीतर भी अपने मन को समझा— बुझाकर अभेद की मान्यता स्थापित कर सकते हैं। लेकिन वह काम न आएगी। गहरे में तो हमें भेद मालूम पड़ता ही रहेगा।

कोई कितना कहे कि मित्र और शत्रु दोनों एक हैं। हम अपने को समझा भी लें कि दोनों एक हैं। तब भी हमें मित्र मित्र दिखाई पड़ता रहेगा और शत्रु शत्रु दिखाई पड़ता रहेगा। और मित्र को हम चाहते रहेंगे और शत्रु को न चाहते रहेंगे।

हम जहां खड़े हैं, वहां से भेद अनिवार्य है। और हम जब तक न बदल जाएं, तब तक अभेद का कोई अनुभव नहीं हो सकता। हमारी बदलाहट का पहला चरण है कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद हमारे स्मरण में आ जाए।

अब हम सूत्र को लें।

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है। और नाना प्रकार के छंदों से विभागपूर्वक कहा गया है। तथा अच्छी प्रकार निश्चय किए हुए युक्ति—युक्त ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी वैसा ही कहा गया है।

सच तो यह है कि धर्म के समस्त सूत्र क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की ही बात कहते हैं। उनके कहने में, ढंग में, शब्दों में भेद है। पर वे जिस तरफ इशारा करते हैं, वह एक ही बात है।

कृष्ण कहते हैं, वेद या उपनिषद या ब्रह्मसूत्र या जो परम ज्ञानी ऋषि हुए हैं, उन सब ने भी अनेक—अनेक रूपों में, अनेक—अनेक प्रकार से यही बात कही है।

यह छोटी—सी बात है, लेकिन बहुत बड़ी है। सुनने में बहुत छोटी, और अनुभव में आ जाए तो इससे बड़ा कुछ भी नहीं है। अभी वैज्ञानिकों ने अणु का विस्फोट किया, अणु को तोड़ डाला। तो उसके जो संघटक थे अणु के. अणु क्षुद्रतम चीज है। उससे छोटी और कोई चीज नहीं। और जब अणु को भी विभाजित किया, उसके जो संघटक थे, जो सदस्य थे अणु को बनाने वाले, जब उनको तोड़कर अलग कर दिया, तो विराट ऊर्जा का जन्म हुआ।

आज से पचास साल पहले कोई बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी यह नहीं सोच सकता था कि अणु जैसी क्षुद्र चीज में इतनी विराट शक्ति छिपी होगी। और जब लार्ड रदरफोर्ड ने पहली दफा अणु के विस्फोट की कल्पना की, तो रदरफोर्ड ने स्वयं कहा है कि मुझे खुद ही विश्वास नहीं आता था कि इतनी क्षुद्रतम वस्तु में इतनी विराट ऊर्जा छिपी है।

लेकिन हमने हिरोशिमा और नागासाकी में देखा कि अणु के एक छोटे—से विस्फोट में लाखों लोग क्षणभर में जलकर राख हो गए।

और अब हम जानते हैं कि इस पृथ्वी को हम किसी भी क्षण नष्ट कर सकते हैं।

पर अणु आंख से दिखाई नहीं पड़ता। आंख की तो बात दूर है, अब तक हमारे पास कोई भी यंत्र नहीं है, जिनके द्वारा अणु दिखाई पड़ता हो। अब तक किसी ने अणु देखा नहीं है। वैज्ञानिक भी अणु का अनुमान करते हैं। सोचते हैं कि अणु है। सोचना उनका सही भी है, क्योंकि अणु को उन्होंने तोड़ भी लिया है। बिना देखे यह घटना घटी है। और इस अदृश्य अणु में, जो इतना छोटा है कि दिखाई नहीं पड़ता, इससे इतनी विराट ऊर्जा का जन्म हुआ। विज्ञान शिखर पर पहुंच गया, परमाणु के विभाजन से।

धर्म ने भी एक तरह का विभाजन किया था। यह क्षेत्र— क्षेत्रज्ञ उसी विभाजन की कीमिया है। धर्म ने मनुष्य की चेतना का विभाजन किया था। विज्ञान ने पदार्थ के अणु का विभाजन किया है; धर्म ने चेतना के परमाणु का विभाजन किया था। और उस परमाणु को दो हिस्सों में तोड़ दिया था। दो उसके संघटक हैं, शरीर और आत्मा, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। दोनों को तोड्ने से वहां भी बड़ी विराट ऊर्जा का अनुभव हुआ था।

और जो परमाणु में जितनी अनुभव हो रही है ऊर्जा, वह उस ऊर्जा के सम्मुख कुछ भी नहीं है। क्योंकि परमाणु जड़ है। चैतन्य का कण जब टूटा, जब कोई ऋषि सफल हो गया अपने भीतर के चैतन्य के अणु को तोड्ने में, शरीर से पृथक करने में, तो इन दोनों के पृथक होते ही जो विराट ऊर्जा जन्मी, वह ऊर्जा का अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है।

और फर्क है दोनों में। अणु टूटता है, तो उससे जो ऊर्जा पैदा होती है, उससे मृत्यु घटित होगी। और जब चेतना का अणु टूटता है, तो उससे जो ऊर्जा प्रकट होती है, उससे अमृत घटित होता है। क्योंकि जीवन की ऊर्जा में जब प्रवेश होता है, तो परम जीवन का अनुभव होता है।

यह सूत्र आइंस्टीन के सूत्र जैसा है। इस सूत्र का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर तुम्हारे व्यक्तित्व को संगठित करने वाले दो तत्व हैं, एक तो पदार्थ से आ रहा है और एक चेतना से आ रहा है। चेतना और पदार्थ दोनों के मिलन पर तुम निर्मित हुए हो। तुम्हारा जो अणु है, वह आधा चैतन्य से और आधा पदार्थ से संयुक्त है। तुम्हारे दो किनारे हैं। तुम्हारी नदी चेतना और पदार्थ, दो के बीच बह रही है। और यह जो पदार्थ है, इसने तुम्हें बाहर से घेरा हुआ है, चारों तरफ तुम्हारी दीवाल बनाई हुई है। कहना चाहिए, तुम्हारी चेतना के अणु की जो दीवाल है, जो घेरा है, वह पदार्थ का है। और जो सेंटर है, जो केंद्र है, वह चेतना का है।

काश, यह संभव हो जाए कि तुम इन दोनों को अलग कर लो, तो जीवन का जो श्रेष्ठतम अनुभव है, वह घटित हो जाए।

सारे धर्मों ने.....कृष्ण ने तो बात की है वेद की, ब्रह्मसूत्र की। लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि कृष्ण कोई बाइबिल या कुरान के खिलाफ हैं। कृष्ण के वक्त में अगर बाइबिल और कुरान होते, तो उन्होंने उनकी भी बात की होती। वे नहीं थे। नहीं थे, इसलिए बात नहीं की है। आप यह मत सोचना कि इसलिए बात नहीं की है कि कुरान और बाइबिल में वह बात नहीं है। बात तो वही है।

चाहे जरथुस्त्र के वचन हों, चाहे लाओत्से के, चाहे क्राइस्ट के या मोहम्मद के, धर्म का सूत्र तो एक ही है कि भीतर चेतना और पदार्थ को हम कैसे अलग कर लें। इसके उपाय भिन्न—भिन्न हैं। हजारों उपाय हैं। लेकिन उपायों का मूल्य नहीं है। निष्कर्ष एक है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है।

दुनिया में इतने धर्मों के खड़े हौंने का कारण सत्यों का विरोध नहीं है, प्रकारों का भेद है। और नासमझ है आदमी कि प्रकार के भेद को परम अनुभव का भेद समझ लेता है।

जैसे किसी एक पहाड़ पर जाने के लिए बहुत रास्ते हों और हर रास्ते वाला दावा करता हो कि मेरे रास्ते के अतिरिक्त कोई पहाड पर नहीं पहुंच सकता। न केवल दावा करता हो, बल्कि दो रास्ते वाले लड़ते भी हों। न केवल लड़ते हों, बल्कि लड़ाई इतनी मूल्यवान हो जाती हो कि पहाड़ पर चढ़ना भूल ही जाते हों और लड़ाई में ही जीवन व्यतीत करते हों। ऐसी करीब—करीब हमारी हालत है।

कोई पहाड़ पर चढ़ता नहीं। न मुसलमान को फिक्र है पहाड़ पर चढ़ने की, न हिंदू को फिक्र है। न जैन को फिक्र है, न बौद्ध को फिक्र है। सबको फिक्र यह है कि रास्ता हमारा ठीक है, तुम्हारा रास्ता गलत है। और तुम्हारा रास्ता गलत है, इसको सिद्ध करने में लोग अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। और हमारा रास्ता सही है, इसको सिद्ध करने में अपनी सारी जीवन ऊर्जा लगा देते हैं। लेकिन एक इंचभर भी उस रास्ते पर नहीं चलते, जो सही है।

काश, दूसरे के रास्ते को गलत करने की चिंता कम हो जाए। और जैसे ही दूसरे के रास्ते को गलत करने की चिंता कम हो, वैसे ही अपने रास्ते को सही सिद्ध करने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह तो उसी पहली चिंता का ही हिस्सा है।

दूसरे को गलत करना, खुद को सही सिद्ध करना, दोनों साथ ही जुड़े हैं। और जो आदमी इस उपद्रव में पड़ जाता है, वह रास्ते पर चलना ही भूल जाता है; वह रास्ते के संबंध में विवाद करता रहता है। पंडित—हिंदुओं के, मुसलमानों के,

जैनों के—इसी काम में लगे हैं। पंडितों से भटके हुए आदमी खोजना कठिन है। उनका सारा जीवन इसमें लगा हुआ है कि कौन गलत है, कौन सही है। और वे यह भूल ही गए कि जो सही है, वह चलने के लिए है। लेकिन चलने की सुविधा कहां! फुरसत कहा! समय कहां!

और अगर कोई भी चले, तो पहाड़ पर पहुंचकर यह दिखाई पड़ जाता है कि बहुत—से रास्ते इसी चोटी की तरफ आते हैं। लेकिन यह चोटी पर से ही दिखाई पड़ सकता है; नीचे से नहीं दिखाई पड़ सकता। नीचे से तो अपना ही रास्ता दिखाई पड़ता है। चोटी से सभी रास्ते दिखाई पड़ सकते हैं।

यह जो कृष्ण कह रहे हैं, चोटी पर खड़े हुए व्यक्ति की वाणी है। वे कह रहे हैं कि सभी वेद, सभी ऋषि, सभी ज्ञानी इस. एक ही तत्व की बात कर रहे हैं।

बहुत प्रकार से उन्होंने कहा है। उनके कहने के प्रकार में मत उलझ जाना। कभी—कभी तो उनके कहने के प्रकार इतने विपरीत होते हैं कि बड़ी कठिनाई हो जाती है।

अगर महावीर और बुद्ध दोनों को आप सुन लें, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। और दोनों एक साथ हुए हैं। और दोनों एक ही समय में थे और एक ही छोटे—से इलाके, बिहार में थे। लेकिन महावीर और बुद्ध के कहने के ढंग इतने विपरीत हैं कि अगर आप दोनों को सुन लें, तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। और तब आपको यह मानना ही पड़ेगा कि दोनों में से एक ही ठीक हो सकता है, दोनों ठीक नहीं हो सकते। यह तो हो भी सकता है कि दोनों गलत हों, लेकिन दोनों ठीक नहीं हो सकते, क्योंकि दोनों इतनी विपरीत बातें कहते हैं।

महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना परम ज्ञान है। और बुद्ध कहते हैं, आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं। अगर ये दोनों बातें आपके कान में पड़ जाएं, तो आप समझेंगे, या तो दोनों गलत हैं या कम से कम एक तो गलत होना ही चाहिए। दोनों कैसे सही होंगे? बुद्ध कहते हैं, आत्मा को मानना अज्ञान है। और महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना परम ज्ञान है।

मगर जो शिखर पर खड़े होकर देख सकता है, वह हंसेगा और वह कहेगा कि दोनों एक ही बात कह रहे हैं। उनके कहने का ढंग अलग है। ढंग अलग होगा ही। महावीर महावीर हैं, बुद्ध बुद्ध हैं। उनके पास व्यक्तित्व अलग है। उनके सोचने की प्रक्रिया अलग है। उनके चोट करने का उपाय अलग है। आपसे बात करने की विधि अलग है। आपको कैसे बदलें, उसका विधान अलग है।

महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना हो तो अहंकार को छोड़ना पड़ेगा, तो परम ज्ञान होगा। और बुद्ध कहते हैं, आत्मा यानी अहंकार। तुमने आत्मा को माना कि तुम किसी न किसी रूप में अपने अहंकार को बचा लोगे। इसलिए आत्मा को मानना ही मत, ताकि अहंकार को बचने की कोई जगह न रह जाए।

बुद्ध जहां भी आत्मा शब्द का उपयोग करते हैं, उनका अर्थ अहंकार होता है। मगर यह तो पहाड़ पर खड़े हों, तो आपको दिखाई पड़े। और तब आप कह सकते हैं कि बुद्ध भी वहीं लाते हैं, जहां महावीर लाते हैं।

लेकिन नीचे रास्तों पर खड़ा हुआ आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। और काफी विवाद चलता है। बौद्ध और जैन अभी तक विवाद कर रहे हैं। बुद्ध और महावीर को गए पच्चीस सौ साल हो गए, पर उनके भीतर कलह अब भी जारी है। वे एक—दूसरे के खंडन में लगे रहते हैं।

यह तो जैन मान ही नहीं सकता कि बुद्ध को ज्ञान हुआ होगा। क्योंकि अगर ज्ञान हुआ होता, तो ऐसी अज्ञान की बात कहते?।। बौद्ध भी नहीं मान सकता कि महावीर को ज्ञान हुआ होगा। अगर ज्ञान हुआ होता, तो ऐसी अज्ञान की बात कहते कि आत्मा परम ज्ञान है! नीचे बड़ी कलह है।

कृष्ण जैसे व्यक्तियों की सारी चेष्टा होती है कि आपकी शक्ति कलह में व्यय न हो। आप लड़ने में समय और अवसर को न गंवाएं। आप कुछ करें।

इसलिए उचित है, एक बार मन में यह बात साफ समझ लेनी उचित है कि ज्ञानियों के शब्द में चाहे कितना ही फासला हो, ज्ञानियों के अनुभव में फासला नहीं हो सकता। ज्ञानियों के कहने के ढंग कितने ही भिन्न हों, लेकिन उन्होंने जो जाना है, वह एक ही चीज हो सकती है। अज्ञानी बहुत—सी बातें जान सकते हैं। इतनी तो एक को ही जानते हैं।

तो चाहे हमारी समझ में आता हो या न आता हो, मगर व्यर्थ। कलह और विवाद में मत पड़ना। और जिसकी बात आपको ठीक। लगती हो, उस रास्ते पर चलना शुरू कर देना।

अगर आप महावीर के रास्ते से चले, तो भी आप उसी शिखर पर पहुंच जाएंगे, जहां कृष्ण, और बुद्ध, और मोहम्मद का रास्ता पहुंचता है। अगर आप मोहम्मद के रास्ते से चले, तो भी वहीं पहुंच जाएंगे, जहां कृष्ण और राम का रास्ता पहुंचता है। चलने से पहुंच जाएंगे, किसी भी रास्ते से चलें। सभी रास्ते उस तरफ ले जाते हैं। मेरी तो अपनी समझ यह है कि ठीक रास्ते पर खड़े होकर विवाद करने की बजाय तो गलत रास्ते पर चलना भी बेहतर है। क्योंकि गलत रास्ते पर चलने वाला भी कम से कम एक अनुभव को तो उपलब्ध हो जाता है कि यह रास्ता गलत है, चलने योग्य नहीं है। वह ठीक रास्ते पर खड़ा आदमी यह भी अनुभव नहीं कर पाता। गलत को भी गलत की तरह पहचान लेना, सत्य की तरफ बड़ी सफलता है।

सुना है मैंने कि एडीसन बूढ़ा हो गया था। और एक प्रयोग वह कर रहा था, जिसको सात सौ बार .करके असफल हो गया था। उसके सब सहयोगी घबड़ा चुके थे। तीन साल! सब ऊब गए थे। उसके नीचे शोध करने वाले विद्यार्थी पक्का मान लिए थे कि अब उनकी रिसर्च कभी पूरी होने वाली नहीं है। और यह का है कि बदलता भी नहीं कि दूसरा कुछ काम हाथ में ले। उर्स। काम को किए जाता है!

और एक दिन सुबह एडीसन हंसता हुआ आया, तो उसके साथी, सहयोगियों व विद्यार्थियों ने समझा कि मालूम होता है कि उसको कोई कुंजी हाथ लग गई। तो वे सब घेरकर खड़े हो गए और उन्होंने कहा कि आप इतने प्रसन्न हैं, मालूम होता है, आपका प्रयोग। सफल हो गया, कुंजी हाथ लग गई।

तो उसने कहा कि नहीं, एक बार और मैं असफल हो गया। लेकिन एक असफलता और कम हो गई। सफलता करीब आती जा रही है। आखिर असफलता की सीमा है। मैंने सात सौ दरवाजे टटोल लिए, तो सात सौ दरवाजे पर भटकने की अब कोई जरूरत न रही। जिस दिन मैंने पहली दफा शुरू किया था, अगर सात सौ एक दरवाजे हों, तो उस दिन सात सौ एक दरवाजे थे, अब केवल एक बचा। सात सौ कम हो गए। इसलिए मैं खुश हूं। रोज एक दरवाजा कम होता जा रहा है। असली दरवाजा ज्यादा दूर नहीं है अब।

जवान साथी उदास होकर बैठ गए। उनकी समझ में यह बात न आई। लेकिन जो इतने उत्साह से भरा हुआ आदमी है, उसके उत्साह का कारण केवल इतना है कि असफलता भी सफलता की सीढी है।

गलत रास्ते पर भी अगर कोई चल रहा है, तो सही पर पहुंच जाएगा। और मैं आपसे कहता हूं सही रास्ते पर भी खड़ा होकर कोई विवाद कर रहा है, तो गलत पर पहुंच जाएगा।

खड़े होने से रास्ता चूक जाता है। चलने से रास्ता मिलता है। असल में चलना ही रास्ता है। जो खड़ा है, वह रास्ते पर है ही नहीं, क्योंकि खड़े होने का रास्ते से कोई संबंध नहीं है। चलने से रास्ता निर्मित होता है।

गलत पर भी कोई चले, लेकिन चले। और हठपूर्वक, जिदपूर्वक, संकल्पपूर्वक लगा रहे, तो गलत रास्ता भी ज्यादा देर तक उसे पकड़े नहीं रख सकता। जो चलता ही चला जाता है, वह ठीक पर पहुंच ही जाएगा। और जो खड़ा है, वह कहीं भी खड़ा हो, वह गलत पर गिर जाएगा।

लेकिन हम खड़े होकर मजे से विवाद कर रहे हैं, क्या ठीक है, क्या गलत है।

कृष्ण, अर्जुन के मन में यह सवाल न उठे कि और ऋषियों ने क्या कहा है, इसलिए कहते हैं, सभी तत्व के जानने वालों ने बहुत प्रकार से इसी को कहा है। नाना प्रकार के छंदों में, नाना प्रकार की व्याख्याओं में, अच्छी तरह निश्चित किए हुए युक्ति—युक्त ब्रह्मसूत्र के पदों में भी वैसा ही कहा गया है।

इधर एक बात और समझ लेनी जरूरी है कि धर्मशास्त्र भी युक्ति का और तर्क का उपयोग करते हैं, लेकिन वे तार्किक नहीं हैं। तर्कशास्त्री भी तर्क का उपयोग करते हैं, धर्म के रहस्य—अनुभवी भी तर्क का उपयोग करते हैं, लेकिन दोनों के तर्क में बुनियादी फर्क है। तर्कशास्त्री तर्क के द्वारा सोचता है कि सत्य को पा ले। धर्म की यात्रा में चलने वाला व्यक्ति पहले सत्य को पा लेता है और फिर तर्क के द्वारा प्रस्तावित करता है। इन दोनों में फर्क है।

धर्म मानता है कि सत्य को तर्क से पाया नहीं जा सकता, लेकिन तर्क से कहा जा सकता है। धर्म की प्रतीति तर्क से मिलती नहीं, लेकिन तर्क के द्वारा संवादित की जा सकती है।

इसलिए पश्चिम में जब पहली दफे ब्रह्मसूत्रों का अनुवाद हुआ, तो डयूसन को और दूसरे विचारकों को एक पीड़ा मालूम होने लगी। और वह यह कि भारतीय मनीषी निरंतर कहते हैं कि तर्क से सत्य को पाया नहीं जा सकता, लेकिन भारतीय मनीषी जब भी कुछ लिखते हैं, तो बड़ा तर्कपूर्ण लिखते हैं। अगर तर्क से पाया नहीं जा सकता, तो इतना तर्कपूर्ण होने की क्या जरूरत है? जब तर्क —से सत्य का कोई संबंध नहीं है, तो ब्रह्मसूत्र जैसे ग्रंथ इतने तर्कबद्ध क्यों हैं?

यह संदेह उठना स्वाभाविक है। क्योंकि ऐसी परंपराएं भी रही हैं, जो तर्कहीन हैं। जैसे जापान में झेन है। वह कोई तर्कयुक्त वक्तव्य नहीं देता। उनका ऋषि तर्कहीन वक्तव्य देता है। आप क्या पूछते हैं, उसके उत्तर का उससे कोई संबंध भी नहीं होता है। क्योंकि वह कहता है, तर्क को तोड़ना है।

अगर आप जाकर एक झेन फकीर से पूछें कि सत्य का स्वरूप क्या है? तो हो सकता है, वह आपसे कहे कि बैठो, एक कप चाय पी लो। इसका कोई लेना—देना नहीं है सत्य से। आप पूछें कि परमात्मा है या नहीं? तो हो सकता है, वह आपसे कहे कि जाओ, और जरा हाथ—मुंह धोकर वापस आओ।

आप कहेंगे कि किसी पागल से बात कर रहे हैं। मैं पूछ रहा हूं कि परमात्मा है या नहीं; हाथ—मुंह धोने से क्या संबंध है! लेकिन झेन फकीर का कहना यह है कि परमात्मा से तर्क का कोई संबंध नहीं है, इसलिए मैं तर्क को तोड्ने की कोशिश कर रहा हूं। और अगर तुम अतर्क्य में उतरने को राजी नहीं हो, तो लौट जाओ। यह दरवाजा तुम्हारे लिए नहीं है।

पश्चिम के विचारकों को यह समझ में आता है कि अगर तर्क से मिल सकता हो, तो तर्क की बात करनी चाहिए। अगर तर्क से मिल न सकता हो, तो तर्क की बात ही नहीं करनी चाहिए। ये दोनों बातें समझ में आती हैं।

लेकिन भारतीय शास्त्र दोनों से भिन्न हैं। भारतीय शास्त्र कहते हैं, तर्क से वह मिल नहीं सकता। लेकिन शंकर या नागार्जुन जैसे तार्किक खोजने मुश्किल हैं। बहुत तर्क की बात करते हैं। क्या कारण है?

भारतीय अनुभूति ऐसी है कि तर्क सत्य को जन्म नहीं देता, लेकिन सत्य को अभिव्यक्त कर सकता है; सत्य की तरफ ले जा नहीं सकता, लेकिन असत्य से हटा सकता है। सत्य आपको दे नहीं सकता, लेकिन आपके समझने में सुगमता पैदा कर सकता है। और अगर समझ सुगम हो जाए, तो आप उस यात्रा पर निकल सकते हैं। इसलिए भारतीय शास्त्र अत्यंत तर्कयुक्त हैं; गहन रूप से तर्कयुक्त हैं। और इसलिए कई बार बड़ी कठिनाई होती है।

शंकर जैसा तार्किक जमीन पर कभी—कभी पैदा होता है। एक—एक शब्द तर्क है। और वही शंकर, मंदिर में गीत भी गा रहा है, नाच भी रहा है। तो सोचेगा जो आदमी, उसको कठिन लगेगा कि क्या बात है! एक तरफ तर्क की इतनी

प्रगाढ़ योजना, इतनी तर्क की धार, और दूसरी तरफ यह आदमी काली के सामने या मां के सामने गीत गाकर, भजन गाकर नाच रहा है!

हमारी समझ में नहीं पड़ती बात। भजन गाकर, गीत गाकर, नाचकर यह आदमी अनुभव में उतर रहा है। वह अनुभव तर्क से संबंधित नहीं है। वह अनुभव रस से संबंधित है, आनंद से संबंधित है, हृदय से संबंधित है, बुद्धि का उससे कोई लेना—देना नहीं है। लेकिन जब वह अनुभव इसे उपलब्ध हो जाएगा और यह किसी व्यक्ति को कहने जाएगा, तो कहना बुद्धि से संबंधित है। हृदय और हृदय की क्या बात होगी? बात तो बुद्धि की होती है। और जब वह आपसे बात कर रहा है, तो बुद्धि का उपयोग करेगा। और आपकी बुद्धि को अगर राजी कर ले, तो शायद आपकी बुद्धि से आपको हृदय तक उतारने के लिए भी राजी कर लेगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि ब्रह्मसूत्र ने अत्यंत युक्ति—युक्त रूप से यही बात कही है।

कृष्ण जिसे बड़े गीतबद्ध रूप में कह रहे हैं, वही ब्रह्मसूत्र ने युक्ति और तर्क के माध्यम से कही है।

और हे अर्जुन, वही मैं तेरे लिए कहता हूं कि पांच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया भी तथा दस इंद्रियां, एक मन और पांच इंद्रियों के विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और स्थूल देह का पिंड एवं चेतनता और धृति, इस प्रकार यह क्षेत्र विकारों के सहित संक्षेप में कहा गया है।

इसमें बड़ी कठिनाई मालूम पड़ेगी। इसमें कुछ बड़ी ही क्रांतिकारी बातें कही गई हैं। इस बात को मानने को हम राजी हो सकते हैं कि पदार्थ पंच महाभूत क्षेत्र है, जो जाना जाता है वह। यह थोड़ा सूक्ष्म है और थोड़ा ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना।

यह हम मान सकते हैं कि पंच महाभूत पदार्थ है, क्षेत्र है, ज्ञेय है। उसे हम जान सकते हैं। हम उससे भिन्न हैं। इंद्रिया, निश्चित ही हम उन्हें जान सकते हैं। आंख में आपके दर्द होता है, तो आप जानते हैं कि दर्द हो रहा है। कान नहीं सुनता, तो आपको समझ में आ जाता है भीतर, कि कान सुन नहीं रहा है, मैं बहरा हो गया हूं। निश्चित ही आप, जो भीतर बैठे हैं, जो जानता है कि कान बहरा हो गया है, मैं सुन नहीं पा रहा हूं या आंख अंधी हो गई, मुझे दिखाई नहीं पड़ता, भिन्न है।

इंद्रियों से हम अपने को भिन्न जानते हैं। चाहे हम वैसा व्यवहार न करते हों, चाहे हम वैसा आचरण न करते हों, लेकिन हम भी भलीभांति जानते हैं कि हम इंद्रियों से भिन्न हैं।

अगर आपका हाथ कट जाए तो आप ऐसा नहीं कहेंगे कि मैं कट गया। अगर आपका हाथ कट जाए, तो भी आप जरा भी नहीं कटेंगे। और आपके व्यक्तित्व का जो आभास था, वह पूरा का पूरा बना रहेगा। ऐसा नहीं कि आपको लगे कि आपके व्यक्तित्व का एक हिस्सा भी भीतर कट गया और आपकी आत्मा भी कुछ छोटी हो गई। आप उतने ही रहेंगे; लंगड़े होकर भी उतने ही रहेंगे; अंधे होकर भी आप उतने ही रहेंगे; बीमार होकर भी, बूढ़े होकर भी आप उतने ही रहेंगे। आपके होने के बोध में कोई अंतर नहीं पड़ता।

तो हम भी अनुभव करते हैं कि इंद्रियों से हम भिन्न हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, उनसे भी हम भिन्न हैं, क्योंकि वे अनुभव इंद्रियों के हैं। और जब हम इंद्रियों से भिन्न हैं, तो इंद्रियों के अनुभव से भी भिन्न हैं।

स्थूल देह, पिंड, इन सबसे हम भिन्न हैं। लेकिन बड़ी क्रांति की बात है और वह है, चेतनता और धृति, यह भी कृष्ण ने कहा, ये भी क्षेत्र हैं और इनसे भी हम भिन्न हैं। काशसनेस और कनसनट्रेशन—चेतनता और धृति।

यह थोड़ा—सा गहन और सूक्ष्म है। और इसे अगर समझ लें, तो कुछ और समझने को बाकी नहीं रह जाता।

पश्चिम के मनसविद मानते हैं कि आप चेतन हो ही तब तक सकते हैं, जब तक चेतन होने को कुछ हो, कांशसनेस मीन्स टु बी कांशस आफ समथिंग। जब भी आप चेतन होते हैं, तो हो ही तब तक सकते हैं, जब तक किसी चीज के प्रति चेतन हों। अगर कोई विषय न हो, तो चेतना भी नहीं हो सकती, ऐसा पश्चिम का मनोविज्ञान प्रस्तावित करता है। और उनकी बात में बड़ा बल है। उनकी बात में बड़ा बल है।

इसलिए वे कहते हैं कि अगर सभी विषय हट जाएं, तो आप बेहोश हो जाएंगे, आप होश खो देंगे। क्योंकि होश तो किसी चीज का ही होता है, होश बिना चीज के हो नहीं सकता।

आपको मैं देख रहा हूं तो मुझे होश होता है कि मैं आपको देख रहा हूं। लेकिन आप नहीं हैं, मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा, तो मुझे यह भी नहीं होश हो सकता कि मैं देख रहा हूं। ही, अगर मुझे कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा, तो फिर यह एक आब्जेक्ट, विषय बन जाएगा मेरा कि मुझे कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है। इसलिए मुझे पता चलेगा कि मैं हूं क्योंकि मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है।

लेकिन मेरे होने के लिए मुझे किसी चीज का अनुभव होना चाहिए, नहीं तो मुझे अपने होने का अनुभव नहीं होगा।

आप ऐसा समझें कि अगर आपको ऐसी जगह में रख दिया जाए, जहां कोई शब्द, ध्वनि पैदा न होती हो, तो क्या आपको अपने कान का पता चलेगा? कैसे पता चलेगा? अगर कोई ध्वनि न होती हो, कोई शब्द न होता हो। तो आपको अपने कान का पता नहीं चलेगा। आपके पास कान हो तो भी आपको कभी पता नहीं चलेगा कि कान है।

अगर कोई चीज छूने को न हो, कोई चीज स्पर्श करने को न हो, तो आपको कभी पता नहीं चलेगा कि आपके पास स्पर्श की इंद्रिय है। अगर कोई चीज स्वाद लेने को न हो, तो आपको कभी पता न चलेगा कि आपके पास स्वाद के अनुभव की क्षमता है।

मनसविद कहते हैं, इसी भांति अगर कोई भी चीज चेतन होने को न हो, तो आपको अपनी चेतना का भी पता नहीं चलेगा। चेतना भी इसलिए पता चलती है कि संसार है, चारों तरफ चेतन होने के लिए वस्तुएं हैं।

इस विचार को मानने वाली जो धारा है, वह कहती है कि ध्यान अगर सच में—जैसा कि पूरब के मनीषी कहते हैं—घट जाए, तो आप बेहोश हो जाएंगे। क्योंकि जब जानने को कुछ भी शेष न रह जाएगा, तो जानने वाला नहीं बचेगा, सो जाएगा, खो जाएगा। जानने वाला तभी तक बच सकता है, जब तक जानने को कोई चीज हो। नहीं तो आप जानने वाले कैसे बचेंगे!

तो पश्चिम के मनसविद कहते हैं कि अगर ध्यान ठीक है, जैसा कि कृष्ण ने, पतंजलि ने, बुद्ध ने प्रस्तावित किया है, तो ध्यान में आदमी मूर्च्छित हो जाएगा, होश नहीं रह जाएगा। जब कोई आब्जेक्ट न होगा, जानने को कोई चीज न होगी, तो जानने वाला सो जाएगा।

इसे हम थोड़ा—बहुत अपने अनुभव से भी समझ सकते हैं। अगर रात आपको नींद न आती हो, तो उसका कारण आपको पता है क्या होता है? आपके मन में कुछ विषय होते हैं, जिनकी वजह से नींद नहीं आती, कोई विचार होता है, जिसकी वजह से नींद नहीं आती। आप अपने मन को निर्विचार कर लें, विषय से खाली कर लें, तत्क्षण नींद में खो जाएंगे।

नींद आ जाएगी उसी वक्त, जब कोई चीज जगाने को न रहेगी। और जब तक कोई चीज जगाने को होती है, कोई एक्साइटमेंट होता है, कोई उत्तेजना होती है, तब तक नींद नहीं आती। अगर कोई भी विषय मौजूद न हो, सभी उत्तेजना समाप्त हो जाए, तो आपके भीतर—मनसविद कहते हैं—जो चेतना है, वह खो जाएगी।

कृष्ण भी उसी चेतना के लिए कह रहे हैं कि वह भी क्षेत्र है। कृष्ण भी राजी हैं इस मनोविज्ञान से। वे कहते हैं, यह जो चेतना है, ' जो पदार्थों के संबंध में आपके भीतर पैदा होती है, यह जो चेतना है, जो विषयों के संदर्भ में पैदा होती है,

यह जो चेतना है, जो विषयों से जुडी है और विषयों के साथ ही खो जाती है, यह भी क्षेत्र है। तुम इस चेतना को भी अपनी आत्मा मत मानना। यह बड़ी गहन और आखिरी अंतखोंज की बात है।

इस चेतना को भी तुम अपनी चेतना मत समझना। यह चेतना। भी बाह्य—निर्भर है। यह चेतना भी पदार्थजन्य है। और जब इस चेतना के भी तुम ऊपर उठ जाओगे, तो ही तुम्हें पता चलेगा उस वास्तविक ब्रह्मतत्व का, जो किसी पर निर्भर नहीं है, तभी तुम्हें पता चलेगा क्षेत्रज्ञ का।

तो अब इसका अर्थ यह हुआ कि हम तीन हिस्से कर लें। कल हमने दो हिस्से किए थे। अब हम और गहरे जा सकते हैं। हमने दो हिस्से किए थे, ज्ञेय—आब्जेक्ट, जाने जाने वाली चीज। ज्ञाता—जानने वाला, नोअर, सब्जेक्ट। ये दो हमने विभाजन किए थे। अब कृष्ण कहते हैं, यह जो सब्जेक्ट है, यह जो नोअर है, जानने वाला है, यह भी तो जो जानी जाने वाली चीजें हैं, उनसे जुड़ा है। इन दोनों के ऊपर भी दोनों को जानने वाला एक तीसरा तत्व है, जो पदार्थ को भी जानता है और पदार्थ को जानने वाले को भी जानता है। यह ! तीसरा तत्व, यह तीसरी ऊर्जा तुम हो। और इस तीसरी ऊर्जा को नहीं जाना जा सकता।

इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि जिस चीज को भी तुम जान लोगे, वही तुमसे अलग हो जाएगी। इसे ऐसा समझें। मेरे पास लोग आते हैं। कोई व्यक्ति आता है, वह कहता है, मैं बहुत अशांत हूं मुझे कोई रास्ता बताएं। कोई ध्यान, कोई विधि, जिससे मैं शांत हो जाऊं। फिर वह प्रयोग करता है। अगर प्रयोग करता है, सच में निष्ठा से, तो शांत भी होने लगता है। तब वह आकर मुझे कहता है कि अब मैं शांत हो गया हूं।

तो उससे मैं कहता हूं अशांति से छूट गया, अब तू शांति से भी छूटने की कोशिश कर। क्योंकि यह तेरी शांति अशांति से ही जुड़ी है; यह उसका ही एक हिस्सा है। तू अशांति से छूट गया; बड़ी बात तूने कर ली। अब तू इस शांति से भी छूट, जो कि अशांति के विपरीत तूने पैदा की है, और तभी तू परम शांत हो सकेगा। लेकिन उस परम शांति में तुझे यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं शांत हूं।

जब तक आपको पता चलता है कि मैं शांत हूं तब तक अशांत होने की क्षमता कायम है। जब तक आपको पता चलता है कि बड़े आनंद में हूं तब तक आप किसी भी क्षण दुख में गिर सकते हैं। जब तक आपको पता चलता है, मैंने ईश्वर को जान लिया, ईश्वर से आप छूट सकते हैं। जिस चीज का भी बोध है, उसका अबोध हो सकता है।

आखिरी शांति तो उस क्षण घटित होती है, जब आपको यह भी पता नहीं चलता कि मैं शांत हूं। यह तो पता चलता ही नहीं कि मैं अशांत हूं यह भी पता नहीं चलता कि मैं शांत हूं।

असली ज्ञान तो उस समय घटित होता है, जब आपको यह तो खयाल क्टि ही जाता है कि मैं अज्ञान हूं यह भी खयाल मिट जाता है कि मैं ज्ञान हूं।

सुना है मैंने, ईसाइयत में एक बहुत बड़ा फकीर हुआ, संत फ्रांसिस। बड़ी मीठी कथा है कि संत फ्रांसिस जब ज्ञान को उपलब्ध हुआ, जब उसे परम बोध हुआ, तो पक्षी इतने निर्भय हो गए कि पक्षी उसके कंधों पर आकर बैठने लगे, उसके सिर पर आकर बैठने लगे। नदी के किनारे से निकलता, तो मछलियां छलांग लगाकर उसका दर्शन करने लगती। वृक्षों के पास बैठ जाता, तो जंगली जानवर आकर उसके निकट खड़े हो जाते, उसको चूमने लगते।

यह बात बड़ी मीठी है। और निश्चित ही, जब कोई बहुत शांत हो जाए और बहुत आनंद से भर जाए, तो उसके प्रति दूसरे का जो भय है, वह कम हो जाएगा। यह घट सकता है।

लेकिन इधर मैं पढ़ रहा था, एक जापान में फकीर महिला हुई, उसका जीवन। उसके जीवन. की कथा के अंत में एक बात कही गई है, जो बड़ी हैरान करने वाली है, पर बड़ी मूल्यवान है और कृष्ण की बात को समझने में सहयोगी होगी।

उस फकीर महिला के संबंध में कहा गया है कि जब वह अज्ञानी थी, तब कोई पक्षी उसके पास नहीं आते थे। जब वह ज्ञानी हो गई, तो पक्षी उसके कंधों पर आकर बैठने लगे। सांप भी उसके पास गोदी में आ जाता। जंगली जानवर उसके आस—पास उसे घेर लेते। लेकिन जब वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गई, तो फिर पक्षियों ने आना बंद कर दिया। सांप उसके पास न आते, जानवर उसके पास न आते। जब वह अज्ञानी थी, तब भी नहीं आते थे, जब ज्ञानी हो गई, तब आने लगे; और जब परम ज्ञानी हो गई, तब फिर बंद हो गए।

तो लोगों ने उससे पूछा कि क्या हुआ? क्या तेरा पतन हो गया?

बीच में तो तेरे पास इतने पक्षी आते थे। अब नहीं आते? वह हंसने लगी। उसने तो कोई उत्तर न दिया। लेकिन उसके निकट उसको जानने वाले जो लोग थे, उन्होंने कहा कि जब तक उसे ज्ञान का बोध था, तब तक पक्षियों को भी पता चलता था कि वह ज्ञानी है। अब उसका वह भी बोध खो गया। अब उसे खुद ही पता. नहीं है कि वह है भी या नहीं। तो पक्षियों को क्या पता चलेगा! जब उसे खुद ही पता नहीं चल रहा है।

तो झेन में कहावत है कि जब आदमी अज्ञानी होता है और जब आदमी परम ज्ञानी हो जाता है, तब बहुत—सी बातें एक—सी हो जाती हैं, बहुत—सी बातें एक—सी हो जाती हैं। क्योंकि अज्ञान में ज्ञान नहीं था। और परम ज्ञान में ज्ञान है, इसका पता नहीं होता। बीच में ज्ञान की एक घड़ी आती है।

वह ज्ञान की घड़ी यही है। तीन अवस्थाएं—स्व तो हम पदार्थ के साथ अपना तादात्म्य किए हैं, शरीर के साथ जुड़े हैं कि मैं शरीर हूं मैं इंद्रियां हूं। यह एक जगत अज्ञान का। फिर एक बोध का जगत, कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं इंद्रियां नहीं हूं। मगर यह भी शरीर से ही बंधा है।

यह मैं शरीर नहीं हूं यह भी शरीर से ही जुड़ा है। यह मैं इंद्रिया नहीं हूं _ यह भी तो इंद्रियों के साथ ही जुड़ा हुआ संबंध है। कल जानते थे कि मैं इंद्रियां हूं अब जानते हैं कि मैं इंद्रियां नहीं हूं लेकिन दोनों के केंद्र में इंद्रियां हैं। कल तक समझते थे कि मैं शरीर हूं अब समझते हैं कि शरीर नहीं हूं। लेकिन दोनों के बीच में शरीर है। ये दोनों ही बोध शरीर से बंधे हैं।

फिर एक तीसरी घटना घटती है, जब यह भी पता नहीं रह जाता कि मैं शरीर हूं या शरीर नहीं हूं। जब कुछ भी पता नहीं रह जाता। शरीर की मूर्च्छा तो छूट ही जाती है, वह जो मध्य में आई हुई चेतना का ज्वार था, वह भी खो जाता है। शरीर से पैदा होने वाले दुख से तो छुटकारा हो जाता है, लेकिन फिर शरीर से छूटकर जो सुख मिलते थे, उनसे भी छुटकारा हो जाता है। और एक परम शांत, परम मौन, न जहां ज्ञान है, न जहां ज्ञाता है, न जहां ज्ञेय है, ऐसी जो शून्य अवस्था आ जाती है। इस शून्य अवस्था में ही क्षेत्रज्ञ, वह जो अंतिम छिपा है, वह प्रकट होता है।

न तो मैं चेतनता, न धृति। ध्यान भी नहीं। धृति का अर्थ है, ध्यान, धारणा।

यह थोड़ा खयाल में ले लेना जरूरी है, क्योंकि बहुत बार हम सीढ़ियों से जकड़ जाते हैं। बहुत बार ऐसा हो जाता है कि जो हमें ले जाता है मंजिल तक, उसको हम पकड़ लेते हैं। लेकिन तब वही मंजिल में बाधा बन जाता है।

तो परम ध्यानियों ने कहा है कि तुम्हारा ध्यान उस दिन पूरा होगा, जिस दिन ध्यान भी छूट जाएगा। जब तक ध्यान को पकड़े हो, तब तक समझना कि अभी पहुंचे नहीं।

प्रार्थना तो उसी दिन पूरी होगी, जिस दिन प्रार्थना करना भी व्यर्थ हो जाएगा। जब तक प्रार्थना करना जरूरी है, तब तक फासला मौजूद है। जब कोई नाव में बैठता है और नदी पार कर लेता है। तो फिर नाव को भी छोड्कर आगे बढ़ जाता है। धर्म भी जब छूट जाता है, तभी परम धर्म में प्रवेश होता है।

तो अगर कोई आखिरी समय तक भी हिंदू बना है, तो अभी समझना कि अभी पहुंचा नहीं। अगर आखिरी समय तक भी जैन बना है, तो समझना कि अभी पहुंचा नहीं। क्योंकि जैन, हिंदू मुसलमान, ईसाई, नावें हैं। नदी से पार ले जाने

वाली हैं। लेकिन परमात्मा में प्रवेश के पहले नावें छोड़ देनी पड़ती हैं। मंजिल जब आ गई, तो साधनों की क्या जरूरत रही?

लेकिन अगर हम आखिर तक भी नाव को पकड़े रहें—और हो सकता है हमारा मन हमसे कहे, और बात ठीक भी लगे, कि जिस नाव ने इतने कठिन भवसागर को पार करवाया, उसको कैसे छोड़ें—तो फिर हम नाव में ही बैठे रह जाएंगे, तो नाव की भी मेहनत व्यर्थ गई। हमें इस पार तो ले आई, लेकिन हम किनारे उतर नहीं सकते, नाव को पकड़े हुए हैं।

बुद्ध कहते थे कि एक बार कुछ नासमझ, या समझें बड़े समझदार, नदी पार किए। तो जिस नाव में उन्होंने नदी पार की, उतरकर किनारे पर उन सब ने सोचा कि इस नाव की बड़ी कृपा है और इस नाव को हम कैसे छोड़ सकते हैं! तो दो ही उपाय हैं, या तो हम नाव में ही बैठे रहें, और या फिर नाव को हम अपने कंधों पर ले लें, अपने सिर पर रख लें और यात्रा आगे चले। तो उन्होंने नाव को अपने सिर पर उठा लिया।

फिर जब वे गांव से निकलते थे, गांव के लोग बहुत हैरान हुए। उन्होंने पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? हमने कभी नाव को लोगों के सिर पर नहीं देखा! तो उन्होंने कहा कि तुम अकृतश लोग हो। तुम्हें पता नहीं, इस नाव की कितनी अनुकंपा है। इसने ही हमें नदी पार करवाई। अब कुछ भी हो जाए, हम इस नाव को नहीं छोड़ सकते। अब हम इसको सिर पर लेकर चलेंगे।

जिस नाव ने नदी पार करवाई, वह नाव अगर सिर पर सवार हो जाए, तो बड़ा खतरनाक हो गया काम। रुग्ण हो गई बात। अब ये और कहीं पहुंच ही नहीं सकते, सिर्फ नाव को ही ढोते रहेंगे। अब यह उस तरफ जाना भी बेकार हो गया। उससे तो अच्छा था कि पहले ही किनारे पर रहते। कम से कम मुक्त तो थे। यह सिर पर बंधी हुई नाव तो न थी। अब ये सदा के लिए गुलाम हो गए।

अधार्मिक आदमी उस तरफ है किनारे पर। और तथाकथित धार्मिक, जो पकड़ लेते हैं धर्मों की नावों को पागलपन से, वे भी कहीं नहीं पहुंचते। आखिरी पड़ाव पर तो सभी कुछ छोड़ देना पड़ता है।

तो कृष्ण कहते हैं, चेतनता भी क्षेत्र, और धृति, ध्यान, धारणा भी। तुम उसे भी छोड़ देना।

जब हम ध्यान करते हैं, तो उसका अर्थ ही होता है कि हम किसी चीज का ध्यान कर रहे हैं। जब हम ध्यान करते हैं, तो उसका अर्थ ही होता है कि हम कुछ कर रहे हैं। जब हम ध्यान करते हैं, तो उसका अर्थ ही होता है कि हम अभी उस भीतर के मंदिर में नहीं पहुंचे; अभी हम बाहर संघर्ष कर रहे हैं, सीढ़ियां चढ़ रहे हैं।

जिस दिन कोई भीतर के मंदिर में पहुंचता है, ध्यान करने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। क्या आवश्यकता है ध्यान की? जब बीमारी छूट गई, तो औषधि को रखकर कौन चलता है? और अगर कोई औषधि को रखकर चलता हो, तो समझना कि बीमारी भला छूट गई, अब औषधि बीमारी हो गई। अब ये औषधि को ढो रहे हैं। पहले ये बीमारी से परेशान थे, अब ये औषधि से परेशान हैं। मैं एक संत के आश्रम में मेहमान था। उनके भक्त कहते थे कि वे परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। जब भक्त कहते थे, तो मैंने कहा कि जरूर हो गए होंगे। अच्छा ही है। कोई परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, इससे अच्छा कुछ भी नहीं है।

लेकिन सुबह मैंने देखा, पूजा—पाठ में वे लगे हैं। तो दोपहर मैंने उनसे पूछा कि अगर आप पूजा—पाठ छोड़ दें, तो कुछ हर्ज है? तो उन्होंने कहा, आप भी कैसी नास्तिकता की बात कर रहे हैं! पूजा—पाठ, और मैं छोड़ दूं! अगर पूजा—पाठ छोड़ दूं तो सब नष्ट ही हो जाएगा।

तो पूजा—पाठ छोड़ने से अगर सब नष्ट हो जाएगा, तो फिर कुछ मिला नहीं है। तब तो यह पूजा—पाठ पर ही निर्भर है सब कुछ। तब कोई ऐसी संपदा नहीं मिली, जो छीनी न जा सके। पूजा—पाठ बंद होने से छिन जाएगी, अगर यह भय है, तो अभी कुछ मिला नहीं है। अगर नाव छिनने से डर लगता हो, तो आप अभी उस किनारे पर नहीं पहुंचे। अगर उस किनारे पर पहुंच गए हों, तो आप कहेंगे कि ठीक है। अब नाव की क्या जरूरत है! कोई भी ले जाए।

अगर आप दवा की बोतल जोर से पकड़ते हों और कहते हों, मैं स्वस्थ तो हो गया, लेकिन अगर दवा मुझसे छीनी गई, तो मैं फिर बीमार हो जाऊंगा, तो समझना चाहिए कि अभी आप बीमार ही हैं। और बीमारी ने सिर्फ एक नया रूप ले लिया। अब बीमारी का नाम औषधि है।

कई लोग बीमारी से छूट जाते हैं, डाक्टरों से जकड़ जाते हैं। कई लोग संसार छोड़ते हैं, संन्यास से जकड़ जाते हैं। कई लोग पत्नी को छोड़ते हैं, पति को छोड़ते हैं, फिर गुरु से पकड़ जाते हैं। लेकिन पकड़ नहीं जाती। कहीं न कहीं पकड़ जारी रहती है।

जब सभी पकड़ चली जाती है, तभी परमात्मा उपलब्ध होता है। जब तक हम कुछ भी पकड़ते हैं, तब तक हम अपने और उसके बीच फासला पैदा किए हुए हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, न तो चेतनता, न धृति। तुम्हारी धृति भी क्षेत्र है। तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी धारणा, तुम्हारा योग, सभी क्षेत्र है।

बड़ी क्रांतिकारी बात है। लेकिन हम गीता पढ़ते रहते हैं, हमें कभी खयाल नहीं आता कि कोई क्रांति छिपी होगी यहां। हम पढ़ जाते हैं मुर्दे की तरह। हमें खयाल में भी नहीं आता कि कृष्ण क्या कह रहे हैं।

अगर पश्चिम का मनोविज्ञान भारतीय पढ़ते हैं, तो उनको लगता है कि वे गलत बात कह रहे हैं। चेतना कैसे वस्तुओं से बंध सकती है? अगर चेतना वस्तुओं से बंधी है, तो फिर ध्यान कैसे होगा? लेकिन कृष्ण खुद कह रहे हैं कि चेतनता भी शरीर का ही हिस्सा है। इसके पार एक और ही तरह का चैतन्य है, जो किसी पर निर्भर नहीं है, अनकंडीशनल, बेशर्त, अकारण। लेकिन उसे पाने के लिए इस चेतनता को भी छोड़ देना पड़ता है।

परम गुरु के पास पहुंचना हो, तो गुरु को भी छोड़ देना पड़ता है। जहां सब साधन छूट जाते हैं, वहीं साध्य है।

ये सभी पंच महाभूत, यह शरीर, अहंकार, मन, इंद्रियां, इंद्रियों के विषय, रस, रूप, चेतनता, धृति, ये सभी विकार सहित।

इन सब में विकार है। ये सभी दूषित हैं। इनमें कुछ भी कुंवारा नहीं है। क्यों? विकार का एक ही अर्थ है गहन अध्यात्म में, जो अपने विपरीत के बिना नहीं हो सकता, वह विकारग्रस्त है। इस परिभाषा को ठीक से खयाल में ले लें। क्योंकि बहुत बार आगे काम पडेगी।

जो अपने विपरीत के बिना नहीं हो सकता, वह विकारग्रस्त है। क्योंकि जो .विपरीत के बिना नहीं हो सकता, उसमें विपरीत मौजूद है।

समझिए, आप किसी को प्रेम करते हैं। आपके प्रेम में, जिसको आप प्रेम करते हैं, उसके प्रति घृणा भी है या नहीं, इसकी जरा खोज करें। अगर घृणा है, तो यह प्रेम विकारग्रस्त है। और अगर घृणा नहीं है, तो यह प्रेम विकार के बाहर हो जाएगा।

लेकिन फ्रायड कहता है, हमारे सभी प्रेम में घृणा है। जिसको हम प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं। इसलिए ऐसा प्रेमी खोजना कठिन है जो कभी अपनी प्रेयसी के मरने की बात न सोचता हो। ऐसी प्रेयसी खोजनी कठिन है जो कभी सपना न देखती हो कि उसका प्रेमी मर गया, मार डाला गया। हालांकि सपना देखकर सुबह बहुत रोती है कि बहुत बुरा सपना देखा। लेकिन सपना आपका ही है, किसी और का नहीं है। देखा, तो उसका मतलब है कि भीतर चाह है।

आप जिसको प्रेम करते हैं, अगर थोडी समझ का उपयोग करेंगे, तो पाएंगे, आपके मन में उसी के प्रति घृणा भी है। इसीलिए तो सुबह प्रेम करते हैं, दोपहर लड़ते हैं। सांझ प्रेम करते हैं, सुबह फिर कलह करते हैं।

ऐसे प्रेमी खोजना कठिन हैं जो कलह न करते हों। ऐसे पति—पत्नी खोजने कठिन हैं जिनमें झगड़ा न होता हो। और अगर पति—पत्नी में झगड़ा न होता हो, तो पति—पत्नी दोनों को शक हो जाएगा कि लगता है, प्रेम विदा हो गया।

भारत के गांव में तो स्त्रियां यह मानती ही हैं कि जिस दिन पति मार—पीट बंद कर देता है, वे समझ लेती हैं, वह किसी और स्त्री में उत्सुक हो गया है। साफ ही है, जाहिर ही यह बात है कि अब उसका कोई रस नहीं रहा। इतना भी रस नहीं रहा कि झगड़ा करे। इतनी उदासीनता हो गई है।

पति—पत्नी जब तक झगड़ते रहते हैं, तभी तक आप समझना कि प्रेम है। जिस दिन झगड़ा बंद, तो आप यह मत समझना कि प्रेम इतनी ऊंचाई पर पहुंच गया है। इतनी ऊंचाई पर नहीं पहुंचता। बात ही खतम हो गई। अब झगड़ा करने में भी कोई रस नहीं है। अब ठीक है, एक—दूसरे को सह लेते हैं। अब ठीक है, एक—दूसरे से बचकर निकल जाते हैं। अब इतना भी मूल्य नहीं है एक—दूसरे का कि लड़े। जब तक झगड़ा जारी रहता है, तब तक वह दूसरा पहलू भी जारी रहता है। लड़ लेते हैं, फिर प्रेम कर लेते हैं।

सच तो यह है कि अगर हम ठीक से समझें, तो हमारा प्रेम वैसा ही है, जैसे श्वास है। आप श्वास लेते ही चले जाएं और छोड़े न, तो मर जाएंगे। छोड़नी भी पड़ेगी श्वास, तभी आप ले सकेंगे।

खाना और भूख! भूख लगेगी, तो भोजन करेंगे। भूख नहीं लगेगी, तो भोजन कैसे करेंगे? तो भूख जरूरी है भोजन के लिए। फिर भोजन जरूरी है कि अगले दिन की भूख लग सके, इसके लायक आप बच सकें। नहीं तो बचेंगे कैसे?

बड़े मजे की बात है, भोजन करना हो तो भूख जरूरी है। और भूख लगानी हो तो भोजन जरूरी है। ठीक वैसे ही अगर प्रेम करना हो तो बीच—बीच में घृणा का वक्त चाहिए, तब भूख लगती है। फिर प्रेम कर लेते हैं। श्वास बाहर निकल गई, फिर भीतर ले लेते हैं।

हमारी सब चीजें विपरीत से जुड़ी हैं। हमारे प्राण में भी मौत छिपी है। हमारे भोजन में भी भूख छिपी है। हमारे प्रेम में घृणा है। हमारे जन्म में मृत्यु जुड़ी है।

जहां विपरीत के बिना कोई अस्तित्व नहीं होता, वहा विकार है। और उस अस्तित्व को हम विकाररहित कहते हैं, जहां विपरीत की कोई भी जरूरत नहीं है; जहां कोई चीज अपने में ही हो सकती है, विपरीत की कोई आवश्यकता नहीं है। बिना विपरीत के जहां कुछ होता है, वहां कुंवारापन, वहां पवित्रता, वहा निर्दोष घटना घटती है। इसलिए हम क्राइस्ट के प्रेम को, कृष्ण के प्रेम को पवित्र कह सकते हैं। क्योंकि उसमें घृणा नहीं है; उसमें घृणा का कोई तत्व नहीं है।

लेकिन अगर आपको कृष्ण प्रेम करने को मिल जाएं, तो आपको उनके प्रेम में मजा नहीं आएगा। क्योंकि आपको लगेगा ही नहीं, पक्का पता ही नहीं चलेगा कि यह आदमी प्रेम करता भी है कि नहीं। क्योंकि वह घृणा वाला हिस्सा मौजूद नहीं है। वह विपरीत मौजूद नहीं है। तो आपको पता भी नहीं चलेगा।

अगर बुद्ध आपको प्रेम करें, तो आपको कोई रस नहीं आएगा ज्यादा। क्योंकि बुद्ध का प्रेम बहुत ठंडा मालूम पड़ेगा; उसमें कोई गरमी नहीं दिखाई पड़ेगी। वह गरमी तो घृणा से आती है। गरमी विपरीत से आती है। गरमी कलह से आती है। गरमी संघर्षण से आती है। वह संघर्षण वहा नहीं है।

इस बात को खयाल में ले लेंगे कि विपरीत की मौजूदगी जिसके लिए जरूरी है, वह विकार है। इसलिए कृष्ण चेतनता को भी विकार कहते हैं। क्योंकि उसके लिए कोई चाहिए दूसरा, उसके बिना चेतना नहीं हो सकती।

इसलिए, आपको खयाल में है, अगर आप एक दस दिन के लिए काश्मीर चले जाते हैं, तो आपको अच्छा लगता है। क्यों? क्योंकि काश्मीर में सब नया है और आपको ज्यादा चेतन होना पड़ता है। बंबई में जिस रास्ते से आप रोज

निकलते हैं, वहां जिंदगीभर से निकल रहे हैं, वहां आपको चेतन होने की जरूरत ही नहीं है। वहां से आप मूर्च्छित, सोए हुए निकल जाते हैं। वृक्ष होगा, होगा। वह आप देखते नहीं। पास से लोग निकल रहे हैं, वह आप देखते नहीं।

लेकिन आप दस दिन के लिए छुट्टी पर काश्मीर जाते हैं। सब नया है। नए पदार्थ, नए आब्जेक्ट, नए विषय, आपको चेतन होना पड़ता है; जरा रीढ़ सीधी करके, आंख खोलकर गौर से देखना पड़ता है। लेकिन एक—दो दिन बाद फिर आप वैसे ही ढीले पड़ जाएंगे। क्योंकि वे ही चीजें फिर बार—बार क्या देखनी!

तो काश्मीर में जो आदमी रह रहा है, डल झील में जो आपकी नाव को चलाएगा, वह उतना ही ऊबा हुआ है डल झील से, जितना आप बंबई से ऊबे हुए हैं। वह भी बड़ी योजनाएं बना रहा है कि कब मौका हाथ लगे और बंबई जाकर छुट्टियों में घूम आए। उसको भी बंबई में इतना ही मजा आएगा, जितना आपको डल झील पर आ रहा है। और दस दिन आप भी डल झील पर रह गए, तो आप वैसे ही डल हो जाएंगे जैसे बंबई में थे। कोई फर्क नहीं रहेगा। चेतनता खो जाएगी।

इसलिए चेतना के लिए हमें रोज नई चीजों की जरूरत पड़ती है; नई चीजों की रोज जरूरत पड़ती है। वही भोजन रोज करने पर चेतना खो जाती है, बेहोशी आ जाती है, मूर्च्छा हो जाती है।

वही पत्नी रोज—रोज देखकर मूर्च्छा आने लगती है; तो फिल्म जाकर एक फिल्म स्टार को देख आते हैं। रास्ते पर स्त्रियों को झांककर देख लेते हैं। लोग नंगी तस्वीरें देखते रहते हैं बैठकर स्वात में। उन पर ध्यान करते रहते हैं। उससे थोड़ी चेतनता आ जाती है, थोड़ा एक्साइटमेंट आता है। लौटकर घर की पत्नी भी थोड़ी—सी नई मालूम पड़ती है, थोड़ी आंख की धूल गिर गई होती है।

नया विषय चाहिए। अगर आपको सभी विषय पुराने मिल जाएं, और वहा कुछ भी नया न घटित होता हो, तो आप बेहोश हो जाएंगे, आप मूर्च्छित हो जाएंगे।

इस पर पश्चिम में बहुत प्रयोग होते हैं। इस प्रयोग को वे सेंस डिप्राइवेशन कहते हैं। एक आदमी को एक ऐसी जगह बंद कर देते हैं, जहां कोई भी घटना न घटती हो। स्वर—शून्य, साउंड—प्रूफ, गहन अंधकार, आंखों पर पट्टियां, हाथ पर सब इस तरह के कपड़े कि वह अपने को भी न छू सके। सब हाथ—पैर बंधे हुए। भोजन भी इंजेक्शन से पहुंच जाएगा। उसको भोजन भी नहीं करना है। छत्तीस घंटे में ही आदमी बेहोश हो जाता है, वह भी बहुत सजग आदमी। नहीं तो छ: घंटे में आदमी बेहोश हो जाता है। छ: घंटे कोई संवेदना नहीं, कोई सेंसेशन नहीं, तो आदमी बेहोश होने लगता है। क्या करेगा? होश खोने लगता है।

बहुत होश रखने वाला आदमी, छत्तीस घंटे में वह भी बेहोश हो जाता है। क्योंकि करोगे क्या! होश रखने को कुछ भी तो नहीं है। न कोई आवाज होती, न कोई ट्रैफिक का शोरगुल होता, न कोई रेडियो बजता, न कोई घटना घटती। कुछ भी नहीं हो रहा है। तो आप धीरे— धीरे, धीरे— धीरे इस न होने की अवस्था में बेहोश हो जाएंगे। कृष्ण कहते हैं, ऐसी चेतना भी, जो किसी चीज पर निर्भर है, वह भी विकारग्रस्त है। ऐसा ध्यान भी, जो किसी पर निर्भर है, वैसा ध्यान भी विकारग्रस्त है। और जब इस सारे क्षेत्र के पार कोई हो जाता है, तो क्षेत्रज्ञ का अनुभव होता है।

गीता दर्शन–भाग–6
रामकृष्ण की दिव्य बेहोशी—(प्रवचन—तीसरा)
अध्याय—13

सूत्र

अमानित्वमदम्भित्वमीहंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमविनिग्रहः ।।7।।
इन्द्रियाथेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुः खदौषानुदर्शनम्।।8।।
और हे अर्जुन, श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दंभाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन—वाणी की सरलता, श्रद्धा— भक्ति सहित गुरु की सेवा— उपासना, बाहर— भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता, मन और इंद्रियों सहित शरिर का निग्रह तथा इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्य, जरा और रोग आदि में दोषों का बारंबार दर्शन करना, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि चेतना के खो जाने पर प्राप्त समाधि क्या मूर्च्छा की अवस्था है? रामकृष्ण परमहंस कई दिनों तक मृतप्राय अवस्था में लेटे रहते थे!
चेतना के खो जाने पर बहुत बार बाहर से मूर्च्छा जैसी प्रतीति होती है। रामकृष्ण अनेक बार, हमारे लिए बाहर से देखने पर, अनेक दिनों के लिए मूर्च्छित हो जाते थे। शरीर ऐसे पड़ा रहता था, जैसे बेहोश आदमी का हो। पानी और दूध भी प्रयासपूर्वक, जबरदस्ती ही देना पड़ता था।

जहां तक बाहर का संबंध है, वे मूर्च्छित थे; और जहां तक भीतर का संबंध है, वे जरा भी मूर्च्छित नहीं थे। भीतर तो होश पूरा था। लेकिन यह होश, यह चेतना हमारी चेतना नहीं है।

कल कृष्ण के सूत्र में हमने समझा कि चेतना दो तरह की हो सकती है। एक तो चेतना जो किसी वस्तु के प्रति हो और किसी वस्तु के द्वारा पैदा हुई हो। चेतना, जो कि किसी वस्तु का प्रत्युत्तर हो। आप बैठे हैं, कोई जोर से आवाज करता है; आपकी चेतना उस तरफ खिंच जाती है, ध्यान आकर्षित होता है। आप बैठे हैं, मकान में आग लग जाए, तो सारा जगत भूल जाता है। आपकी चेतना मकान में आग लगी है, उसी तरफ खिंच जाती है। मकान में आग लगी हो, तो आप बहुत चेतन हो जाएंगे, अगर नींद भी आ रही हो, तो खो जाएगी। आपको ऐसी एकाग्रता कभी न मिली होगी, जैसी मकान में आग लग जाए, तो तब मिलेगी। आपने लाखों बार कोशिश की होगी कि सारी दुनिया को भूलकर कभी क्षणभर को परमात्मा का ध्यान कर लें। लेकिन जब भी ध्यान के लिए बैठे होंगे, हजार बातें उठ आई होंगी, हजार विचार आए होंगे। एक परमात्मा के विचार को छोड़कर सभी चीजों ने मन को घेर लिया होगा। लेकिन मकान में आग लग गई हो, तो सब भूल जाएगा। सारा संसार जैसे मिट गया। मकान में लगी आग पर ही चित्त एकाग्र हो जाएगा।

यह भी चेतना है। लेकिन यह चेतना बाहर से पैदा हुई है; यह बाहर की चोट में पैदा हुई है; यह बाहर पर निर्भर है। तो कृष्ण ने कहा कि ऐसी चेतना भी शरीर का ही हिस्सा है। वह भी क्षेत्र है। फिर क्या ऐसी भी कोई चेतना हो सकती है, जो किसी चीज पर निर्भर न हो, जो किसी के द्वारा पैदा न होती हो, जो हमारा स्वभाव हो? स्वभाव का अर्थ है कि किसी कारण से पैदा नहीं होगी; हम हैं, इसलिए है, हमारे होने में ही निहित है।

जब कोई आवाज करता है और आपका ध्यान उस तरफ जाता है, तो यह ध्यान का जाना आपके होने में निहित नहीं है। यह आवाज के द्वारा प्रतिपादित हुआ है, यह बाई—प्रोडक्ट है; यह आपका स्वभाव नहीं है।

ऐसा सोचें कि बाहर से कोई भी संवेदना नहीं मिलती, बाहर कोई घटना नहीं घटती, और फिर भी आपका होश बना रहता है। इस चेतना को हम आत्मा कहते हैं। और बाहर से पैदा हुई जो चेतना है, वह धारणा है, ध्यान है। कृष्ण ने उसे भी शरीर का हिस्सा माना है।

रामकृष्ण जब बेहोश हो जाते थे, तो उनकी धृति खो गई, उनका ध्यान खो गया, उनकी धारणा खो गई। अब बाहर कोई कितनी भी आवाज करे, तो उनकी चेतना बाहर न आएगी। लेकिन अपने स्वरूप में वे लीन हो गए हैं; अपने स्वरूप में वे परिपूर्ण चैतन्य हैं। जब उनकी समाधि टूटती थी, तो वे रोते थे और वे चिल्ला—चिल्ला कर कहते थे कि मां मुझे वापस वहीं ले चल। यहां कहां तूने मुझे दुख में वापस भेज दिया! उसी आनंद में मुझे वापस लौटा ले।

जिसको हम मूर्च्छा समझेंगे, वह उनके लिए परम आनंद था। बाहर से सब इंद्रियां भीतर लौट गई हैं। बाहर जो ध्यान जाता था, वह सब वापस लौट गया। जैसे गंगा गंगोत्री में वापस लौट गई। वह जो चेतना बाहर आती थी दरवाजे तक, अब नहीं आती; अपने में लीन और घिर हो गई।

हमारे लिए तो रामकृष्ण मूर्च्छित ही हो गए। और अगर पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों से पूछें, तो वे कहेंगे, हिस्टीरिकल है; यह घटना हिस्टीरिया की है। क्योंकि पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी भी उस दूसरी चेतना का कोई पता नहीं है।

अगर रामकृष्ण पश्चिम में पैदा होते, तो उन्हें पागलखाने ले जाया गया होता। और जरूर मनसविदों ने उनकी चिकित्सा की होती और जबरदस्ती होश में लाने के प्रयास किए जाते। एक्टीवायजर दिए जाते, जिनसे कि वे ज्यादा सक्रिय हो जाएं। इंजेक्शन लगाए जाते, शरीर में हजार तरह की कोशिश की जाती, ताकि चेतना वापस लौट आए। क्योंकि पश्चिम का मनोविज्ञान बाहर की चेतना को ही चेतना समझता है। बाहर की चेतना खो गई, तो आदमी मूर्च्छित है, मरने के करीब है।

रोमां रोला ने लिखा है कि सौभाग्य की बात है कि रामकृष्ण पूरब में पैदा हुए, अगर पश्चिम में पैदा होते, तो हम उनका इलाज करके उनको ठीक कर लेते। ठीक कर लेने का मतलब कि उन्हें हम साधारण आदमी बना लेते, जैसे आदमी सब तरफ हैं। और वह जो परम अनुभूति थी, उसको पश्चिम में कोई भी पहचान न पाता।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक और मनोवैज्ञानिक है, आर. डी. लैंग। आर .डी लैग का कहना है कि पश्चिम में जितने लोग आज पागल हैं, वे सभी पागल नहीं हैं; उनमें कुछ तो ऐसे हैं, जो किसी पुराने जमाने में संत हो सकते थे। लेकिन वे पागलखानों में पड़े हैं। क्योंकि पश्चिम की समझ भीतर की चेतना को स्वीकार नहीं करती। तो बाहर की चेतना खो गई, कि आदमी विक्षिप्त मान लिया जाता है।

हम रामकृष्ण को विमुक्त मानते हैं। फर्क क्या है? हिस्टीरिया और रामकृष्ण की मूर्च्छा में फर्क क्या है? जहां तक बाहरी लक्षणों का संबंध है, एक से हैं। रामकृष्ण के मुंह से भी फसूकर गिरने लगता था, हाथ—पैर लकड़ी की तरह जकड़ जाते थे, मुर्दे की भाति वे पड़ जाते थे। हाथ—पैर में पहले कंपन आता था, जैसे हिस्टीरिया के मरीज को आता है। और इसके बाद वे जड़वत हो जाते थे। सारा होश खो जाता था। अगर उस समय हम उनके पैर को भी काट दें, तो उनको पता नहीं चलेगा। यही तो हिस्टीरिया के मरीज को भी घटित होता है। कोमा में पड़ जाता है, बेहोशी में पड़ जाता है। लेकिन फर्क क्या है?

इस घटना में ऊपर से देखने में तो कोई फर्क नहीं है। और अगर हम चिकित्सक के पास जाएंगे, तो वह भी कहेगा, यह भी हिस्टीरिया का एक प्रकार है। लेकिन भीतर से बड़ा फर्क है। क्योंकि हिस्टीरिया का मरीज जब वापस लौटता है अपनी मूर्च्छा से, तो वही का वही होता है जो मूर्च्छा के पहले था। रामकृष्ण जब अपनी मूर्च्छा से वापस लौटते हैं, तो वही नहीं होते जो मूर्च्छा के पहले थे। वह आदमी खो गया।

अगर वह आदमी क्रोधी था, तो अब यह आदमी क्रोधी नहीं है। अगर वह आदमी अशांत था, तो अब यह आदमी अशांत नहीं है। अगर वह आदमी दुखी था, तो अब यह आदमी दुखी नहीं है। अब यह परम आनंदित है।

हिस्टीरिया का मरीज तो हिस्टीरिया की बेहोशी के बाद वैसा का वैसा ही होता है, जैसा पहले था। शायद और भी विकृत हो जाता है। बीमारी उसे और भी तोड़ देती है। लेकिन समाधि में गया व्यक्ति नया होकर वापस लौटता है; पुनरुज्जीवित हो जाता है। उसके जीवन में नई हवा और नई सुगंध और नया आनंद फैल जाता है। पश्चिम में वे लक्षण से सोचते हैं; हम परिणाम से सोचते हैं। हम कहते हैं कि समाधि के बाद जो घटित होता है, वही तय करने वाली बात है कि समाधि समाधि थी या मूर्च्छा थी।

रामकृष्ण सोने के होकर वापस आते। और जिस मूर्च्छा से कचरा जल जाता हो और सोना निखर आता हो, उसको मूर्च्छा कहना उचित नहीं है। वह जो रामकृष्ण का वासनाग्रस्त व्यक्तित्व था, वह समाप्त हो जाता है; और एक अभूतपूर्व, एक परम ज्योतिर्मय व्यक्तित्व का जन्म होता है। तो जिस मूर्च्छा से ज्योतिर्मय व्यक्तित्व का जन्म होता हो, उसको हम बीमारी न कहेंगे; उसको हम परम सौभाग्य कहेंगे। परिणाम से निर्भर होगा।

रामकृष्ण की बेहोशी बेहोशी नहीं थी। क्योंकि अगर वह बेहोशी होती, तो रामकृष्ण का वह जो दिव्य रूप प्रकट हुआ, वह प्रकट नहीं हो सकता था। बेहोशी से दिव्यता पैदा नहीं—होती। दिव्यता तो। परम चैतन्य से ही पैदा होती है; परम होश से ही पैदा होती है। पर हमारे लिए देखने पर तो रामकृष्ण बेहोश हैं। लेकिन भीतर वे परम होश में हैं।

ऐसा समझें कि द्वार—दरवाजे सब बंद हो गए जहां से किरणें बाहर आती थीं होश की। इंद्रियां सब शांत हो गईं और भीतर का दीया भीतर ही जल रहा है; उसकी कोई किरण बाहर नहीं आती। इसलिए हम पहचान नहीं पाते। लेकिन यह बेहोशी बेहोशी नहीं है। अगर फिर भी कोई जिद्द करना चाहे कि यह बेहोशी ही है, तो यह बडी आध्यात्मिक बेहोशी है। और यह शब्द उचित नहीं है। हम तो इसे परम होश कहते हैं। और पश्चिम के मनोविज्ञान को आज नहीं कल यह भेद स्वीकार करना पड़ेगा। इस संबंध में खोजबीन शुरू हो गई है।

अभी तक तो फ्रायड के प्रभाव में उन्होंने संतों को और पागलों को एक ही साथ रख दिया था। जीसस के संबंध में ऐसी किताबें लिखी हैं पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों ने, जिनमें सिद्ध करने की कोशिश की है कि जीसस भी न्यूरोटिक थे, विक्षिप्त थे।

स्वभावत:, कोई आदमी जो कहता है, मैं ईश्वर का पुत्र हूं हमें पागल ही मालूम पड़ेगा। कोई आदमी जो यह दावा करता है कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं हमें पागल मालूम पड़ेगा। या तो हम समझेंगे कि धूर्त है या हम समझेंगे पाखंडी है या हम समझेंगे पागल है। कौन आदमी अपने होश में दावा करेगा कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं! जीसस के वक्तव्य पागल के वक्तव्य मालूम होते हैं।

लेकिन जो व्यक्ति भी भीतर की चेतना को अनुभव करता है, ईश्वर का पुत्र तो छोटा वक्तव्य है, वह ईश्वर ही है। मंसूर या उपनिषद के ऋषि जब कहते हैं, अहं ब्रह्मास्मि, हम ब्रह्म हैं, तो पश्चिम का मनोवैज्ञानिक समझेगा कि बात कुछ गड़बड़ हो गई; दिमाग कुछ खराब हो गया।

उनका सोचना भी ठीक है, क्योंकि ऐसे पागल भी हैं। आज पागलखानों में अगर खोजने जाएं, तो बहुत—से पागल हैं। कोई पागल कहता है, मैं अडोल्फ हिटलर हूं। कोई पागल कहता है कि मैं बैनिटो मुसोलिनी हूं। कोई पागल कहता है कि मैं स्टैलिन हूं। कोई पागल कहता है, मैं नेपोलियन हूं।

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि एक आदमी ने बर्ट्रेंड रसेल को पत्र लिखा। बर्ट्रेंड रसेल की एक किताब प्रकाशित हुई, उसमें उसने कुछ जूलियस सीजर के संबंध में कोई बात कही थी। एक आदमी ने पत्र लिखा कि आपकी किताब बिलकुल ठीक है, सिर्फ एक वक्तव्य गलत है।

रसेल को आश्चर्य हुआ। क्योंकि किताब में बहुत—सी क्रांतिकारी बातें थीं, जो लोगों को पसंद नहीं पड़ेगी। यह कौन आदमी है, जो कहता है कि सब ठीक है, सिर्फ एक बात गलत है! तो रसेल ने उसे निमंत्रण दिया कि तुम भोजन पर मेरे घर आओ। मैं भी जानना चाहूंगा कि जिस आदमी को मेरी सारी बातें ठीक लगी हैं, उसे कौन—सी बात गलत लगी! वह मेरे लिए भी विचारणीय है।

रसेल ने प्रतीक्षा की। सांझ को वह आदमी आया। उसने कहा, बाकी किताब बिलकुल ठीक है। मैं आपकी सब किताबें पढ़ता रहा हूं। सभी किताबें ठीक हैं। पर एक बात इसमें आपने बिलकुल गलत लिखी है।

रसेल ने बड़ी जिज्ञासा, उत्सुकता से पूछा कि कौन—सी बात गलत लिखी है? तो उसने कहा कि आपने किताब में लिखा है कि जूलियस सीजर मर गया है। यह गलत है!

जूलियस सीजर को मरे सैकड़ों साल हो गए हैं। रसेल बहुत चौंका कि उसने गलती भी क्या खोजी है कि जूलियस सीजर मर गया है, यह आपने लिखा है, यह बिलकुल गलत है। तो रसेल ने पूछा, आपके पास प्रमाण? उसने कहा कि प्रमाण की क्या जरूरत है! मैं जूलियस सीजर हूं।

मनोविज्ञान कहेगा, यह आदमी पागल है। लेकिन मैसूर कहता है, मैं ब्रह्म हूं। उपनिषद के ऋषि कहते हैं, हम स्वयं परमात्मा हैं। रामतीर्थ ने कहा है कि यह सृष्टि मैंने ही बनाई है; ये चांद—तारे मैंने ही चलाए हैं। रामतीर्थ से कोई पूछने आया कि सृष्टि किसने बनाई? तो रामतीर्थ ने कहा, क्या पूछते हो! मैंने ही बनाई है।

निश्चित ही, यह स्वर भी पागलपन का मालूम पड़ता है। और ऊपर से देखने पर, जो आदमी कहता है, मैं जूलियस सीजर हूं वह कम पागल मालूम पड़ता है बजाय रामतीर्थ के, जो कहते हैं, ये चांद—तारे? ये मैंने ही इन्हीं अंगुलियों से चलाए हैं। यह सृष्टि मैंने ही बनाई है।

ये वक्तव्य बिलकुल एक से हैं ऊपर से और भीतर से बिलकुल भिन्न हैं। और भिन्नता का प्रमाण क्या होगा? भिन्नता का प्रमाण यह होगा कि यह जूलियस सीजर जो अपने को कह रहा है, यह दुखी है, पीड़ित है, परेशान है। इसे नींद नहीं है, चैन नहीं है, बेचैन है। और यह जो रामतीर्थ कह रहे हैं कि जगत मैंने ही बनाया, ये परम आनंद और परम शांति में हैं।

ये क्या कह रहे हैं, इस पर निर्भर नहीं करता। ये क्या हैं, उसमें खोजना पड़ेगा। और आप भला नहीं कहते कि जूलियस सीजर हैं या महात्मा गांधी हैं या जवाहरलाल नेहरू हैं, ऐसा आप कोई दावा नहीं करते, तो भी आप ठीक होश में नहीं हैं, तो भी आप विक्षिप्त हैं। और रामतीर्थ यह दावा करके भी विक्षिप्त नहीं हैं कि जगत मैंने ही बनाया है। रामतीर्थ का यह वक्तव्य किसी बड़ी गहरी अनुभुति की बात है।

रामतीर्थ यह कह रहे हैं कि इस जगत की जो परम चेतना है, वह मेरे भीतर है। जिस दिन उसने इस जगत को बनाया, मैं भी उसमें सम्मिलित था। मेरे बिना यह जगत भी नहीं बन सकता, क्योंकि मैं इस जगत का हिस्सा हूं। और परमात्मा ने जब यह जगत बनाया, तो मैं उसके भीतर मौजूद था। मेरी मौजूदगी अनिवार्य है; क्योंकि मैं मौजूद हूं।

इस जगत में कुछ भी मिटता नहीं। विनाश असंभव है। एक रेत के कण को भी नष्ट नहीं किया जा सकता। वह रहेगा ही। आप कुछ भी करो, मिटाओ, तोड़ो, फोड़ो, कुछ भी करो, वह रहेगा; उसके अस्तित्व को मिटाया नहीं जा सकता। जो चीज अस्तित्व में है, वह शून्य में नहीं जा सकती।

तो चेतना कैसे शून्य में जा सकती है! मैं हूं इसका अर्थ है कि मैं था और इसका अर्थ है कि मैं रहूंगा। कोई भी हो रूप, कोई भी हो आकार, लेकिन मेरा विनाश असंभव है। विनाश घटता ही नहीं। जगत में केवल परिवर्तन होता है, विनाश होता ही नहीं। न तो कोई चीज निर्मित होती है और न कोई चीज विनष्ट होती है। केवल चीजें बदलती हैं, रूपांतरित होती हैं, नए आकार लेती हैं, पुराने आकार छोड़ देती हैं। लेकिन विनाश असंभव है।

विज्ञान भी स्वीकार करता है कि विनाश संभव नहीं है। धर्म और विज्ञान एक बात में राजी हैं, विनाश असंभव है।

तो रामतीर्थ अगर यह कहते हैं कि मैंने ही बनाया था, तो यह वक्तव्य बड़ा अर्थपूर्ण है। यह किसी पागल का वक्तव्य नहीं है। सच तो यह है कि उस आदमी का वक्तव्य है, जो पागलपन के पार चला गया है। और जो अब यह देख सकता है, अनंत श्रृंखला जीवन की, और जो अब अपने को अलग नहीं मानता है, उस अनंत श्रृंखला का एक हिस्सा मानता है।

बाहर से देखने पर बहुत बार पागलों के वक्तव्य और संतों के वक्तव्य एक से मालूम पड़ते हैं; भीतर से खोजने पर उनसे ज्यादा भिन्न वक्तव्य नहीं हो सकते। इसलिए पश्चिम में अगर धर्म की अप्रतिष्ठा होती जा रही है, तो उसमें सबसे बड़ा कारण मनोविज्ञान की अधूरी खोजें हैं। मनोविज्ञान जो बातें कहता है, वे आधी हैं और आधी होने से खतरनाक हैं।

साधारण आदमी बीच में है। साधारण आदमी से जो नीचे गिर जाता है, पागल हो जाता है। वह भी एबनार्मल है, वह भी असाधारण है। साधारण आदमी से जो ऊपर चला जाता है, वह भी एबनार्मल है, वह भी असाधारण है। और पश्चिम दोनों को एक ही मान नेता है। साधारण आदमी से नीचे कोई गिर जाए, तो पागल हो जाता है; ऊपर कोई उठ जाए तो महर्षि हो जाता है। दोनों असाधारण हैं; दोनों साधारण नहीं हैं। और पश्चिम की यह मूलभूत भ्रांत धारणा है कि साधारण स्वस्थ है। इसलिए साधारण से जो भी हट जाता है, वह अस्वस्थ है।

तो रामकृष्ण अस्वस्थ हैं, बीमार हैं, पैथालाजिकल हैं। उनका इलाज होना चाहिए। हमने जिनकी पूजा की है, पश्चिम उनका इलाज करना चाहेगा।

लेकिन पश्चिम में भी विरोध के स्वर पैदा होने शुरू हो गए हैं। और पश्चिम में भी नए मनोवैज्ञानिकों की एक कतार खड़ी होती जा रही है, जो कह रही है कि हमारी समझ में भ्रांति है। और हम बहुत—से लोगों को इसलिए पागल करार देते हैं कि हमें पता ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। उनमें बहुत—से लोग असाधारण प्रतिभा के हैं।

एक बहुत मजे की बात है कि असाधारण प्रतिभा के लोग अक्सर पागल हो जाते हैं। इसलिए पागलपन में और असाधारण प्रतिभा में कोई संबंध मालूम पड़ता है। अगर पिछले पचास वर्षों के सभी असाधारण व्यक्तियों की आप खोजबीन करें, तो उनमें से पचास प्रतिशत कभी न कभी पागल हो गए। पचास प्रतिशत! और जो उनमें श्रेष्ठतम है, वह जरूर एक बार पागलखाने हो आता है। निजिंस्की या वानगाग या मायकोवस्की, नोबल प्राइज पाने वाले बहुत—से लोग जिंदगी में कभी न कभी पागल होने के करीब पहुंच जाते हैं या पागल हो जाते हैं। क्या कारण होगा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमारे पागलपन की व्याख्या में कुछ भूल है?

असाधारण प्रतिभा का आदमी ऐसी चीजें देखने लगता है, जो साधारण आदमी को दिखाई नहीं पड़ती। इसलिए साधारण आदमियों से उसका संबंध टूट जाता है। असाधारण प्रतिभा का आदमी ऐसे अनुभव से गुजरने लगता है, जो सबका अनुभव नहीं है। वह अकेला पड़ जाता है। अगर वह आपसे कहे, तो आप भरोसा नहीं करेंगे।

जीसस कहते हैं कि शैतान मेरे पास खड़ा हो गया और मेरे कान में कहने लगा कि तू ऐसा काम कर। मैंने कहा, हट शैतान!

अगर कोई आदमी—आपकी पत्नी, आपका पति आपसे आकर कहे कि आज रास्ते पर अकेला था, शैतान मेरे पास में आ गया और कान में कहने लगा, ऐसा कर। तो आप फौरन संदिग्ध हो जाएंगे। फोन उठाकर डाक्टर को खबर करेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गई है।

अगर आपके पति ऐसी खबर दें..। ऋषि कहते हैं, देवताओं से उनकी बात हो रही है। अगर आपकी पत्नी आपसे कहे कि आज सुबह इंद्र देवता से चर्चा हो गई, तो आप क्या करिएगा? दफ्तर जाइएगा? फिर दफ्तर नहीं जाएंगे। आप चिंता में पड़ जाएंगे कि अब बाल—बच्चों का क्या होगा! यह स्त्री पागल हो गई।

और अगर यह आपकी दृष्टि पत्नी या पति के बाबत है, तो आप कितनी ही बातें करते हों, आप उपनिषद और वेद पढ़कर मान नहीं सकते कि ये बातें ज्ञानियों की हैं। आप कितनी ही श्रद्धा दिखाते हों, वह झूठी होगी। क्योंकि भीतर तो आप समझेंगे कि कुछ दिमाग इनका खराब है। कहां देवता! कहा देवियां! यह सब क्या हो रहा है?

रामकृष्ण बातें कर रहे हैं काली से। घंटों उनकी चर्चा हो रही है। अगर आप देख लेते, तो आप क्या समझते? आपको तो काली दिखाई नहीं पड़ती। आपको तो सिर्फ रामकृष्ण बातें करते दिखाई पड़ते।

तो आप पागलखाने में देख सकते हैं, लोग बैठे हैं, अकेले बातें कर रहे हैं, बिना किसी के। दोनों तरफ से जवाब दे रहे हैं। तो स्वभावत: यह खयाल उठेगा कि कुछ विक्षिप्तता है। विक्षिप्तता में और असाधारणता में कुछ संबंध मालूम पड़ता है। या फिर हमारी व्याख्या की भूल है।

असाधारण व्यक्ति ऐसी चीजों को देख लेते हैं, जो साधारण व्यक्तियों को कभी दिखाई नहीं पड़ सकतीं; और ऐसे अनुभव को उपलब्ध हो जाते हैं, जिसका साधारण व्यक्ति को कभी स्वाद नहीं मिलता। फिर वे ऐसी बातें कहने लगते हैं, जो साधारण व्यक्ति के समझ के पार पड़ती हैं। फिर उनके जीवन में ऐसी घटनाएं होने लगती हैं, जो हमारे तर्क, हमारे नियम, हमारी व्यवस्था को तोड़ती हैं।

हमारी जिंदगी एक राजपथ है, बंधा हुआ रास्ता है। असाधारण लोग रास्ते से नीचे उतर जाते हैं; पगडंडियों पर चलने लगते हैं। और ऐसी खबरें लाने लगते हैं, जिनका हमें कोई भी पता नहीं है, जो हमारे नक्शों में नहीं लिखी हैं, जो हमारी किताबों में नहीं हैं, जो हमारे अनुभव में नहीं हैं। पहली बात यही खयाल में आती है कि इस आदमी का दिमाग खराब हो गया।

रामकृष्ण भी पागल मालूम पड़ेंगे। रामकृष्ण ही क्यों, रामकृष्ण जैसे जितने लोग हुए हैं दुनिया में कहीं भी, वे सब पागल मालूम पड़ेंगे। लेकिन एक फर्क खयाल रख लेंगे, तो भेद साफ हो जाएगा। अगर कोई पागलपन आपको शुद्ध कर जाता हो, अगर कोई पागलपन आपको मौन और शांत और आनंदित कर जाता हो, अगर कोई पागलपन आपको जीवन के उत्सव से भर जाता हो, अगर कोई पागलपन आपके जीवन को चिंता और वासना से छुटकारा दिला देता हो, अगर कोई पागलपन आपके जीवन में संसार का जो बंधन है, जो कष्ट है, जो पीड़ा है, जो जंजीरें हैं, उन सब को तोड़ देता हो, तो ऐसा पागलपन सौभाग्य है और परमात्मा से ऐसे पागलपन की प्रार्थना करनी चाहिए।

और अगर कोई समझदारी आपकी जिंदगी को तकलीफों से भर देती हो, और कोई समझदारी आपकी जिंदगी को पीड़ा और तनाव से घेर देती हो, और कोई समझदारी आपकी जिंदगी को कारागृह बना देती हो, और कोई समझदारी आपको सिवाय दुख और सिवाय नर्क के कहीं न ले जाती हो, तो परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि ऐसी समझदारी से मेरा छुटकारा हो।

यही मैं मूर्च्छा के लिए भी कहूंगा। कोई मूर्च्छा अगर आपके जीवन में आनंद की झलक ले आती हो, तो वह मूर्च्छा चैतन्य से ज्यादा कीमती है। और सिर्फ कोई होश आपको निरंतर तोड़ता जाता हो, तनाव और चिंता से और संताप से भरता हो, तो वह होश मूर्च्छा से बदतर है।

कसौटी क्या है? कसौटी है आपका अंतिम फल, क्या आप हो जाते हैं। ऊपर के लक्षण बिलकुल मत देखें। परिणाम क्या होता है! अंत में आपके जीवन में कैसे भूल लगते हैं!

तो रामकृष्ण के जीवन में जो फूल लगते हैं, वे किसी पागल के जीवन में नहीं लगते। रामकृष्ण के जीवन से जो सुगंध आती है, वह किसी मूर्च्छित, कोमा में, हिस्टीरिया में पड़ गए व्यक्ति के जीवन से नहीं आती। उसी सुगंध के सहारे हम उन्हें परमहंस कहते हैं। और अगर उस सुगंध की आप फिक्र छोड़ दें, और सिर्फ लक्षण देखें और डाक्टर से जांच करवा लें, तो वे भी मूर्च्छित हैं, और हिस्टीरिया के बीमार हैं, और उनके इलाज की जरूरत है।

दो तरह की चेतना है। एक चेतना जो बाहर के दबाव से पैदा होती है—प्रतिक्रिया, रिएक्शन। उस चेतना को कृष्ण कहते हैं, वह क्षेत्र का ही हिस्सा है, वह छोड़ने योग्य है। एक और चेतना है, जो किसी कारण से पैदा नहीं होती; जो मेरा स्वभाव है, जो मेरा स्वरूप है, जो मेरे भीतर छिपी है, जिसका झरना मैं लेकर ही पैदा हुआ हूं या ज्यादा उचित होगा कहना कि मैं और उसका झरना एक ही चीज के दो नाम हैं। मैं वह झरना ही हूं।

लेकिन इस झरने का पता तभी चलेगा, जब हम बाहर के आघात से पैदा हुई चेतना से अपने को मुक्त कर लें। नहीं तो हमारा ध्यान निरंतर बाहर चला जाता है और भीतर ध्यान पहुंच ही नहीं पाता। समय ही नहीं मिलता, अवसर ही नहीं मिलता।

हमारी जिंदगी में दो काम हैं। जिसको हम जागना कहते हैं, वह जागना नहीं है। जिसको हम जागना कहते हैं, वह बाहर की चोट में हमारी चेतना का उत्तेजित रहना है। बाहर की चोट में चेतना का उत्तेजित रहना है। और जिसको हम नींद कहते हैं, वह भी नींद नहीं है। वह भी केवल थक जाने की वजह से है। बाहर की उत्तेजना अब हमको उत्तेजित नहीं कर पाती, हम थककर पड़ जाते हैं। जिसको हम नींद कहते हैं, वह थकान है। और जिसको हम जागरण कहते हैं, वह चोटों के बीच चुनाव, चुनौती के बीच हमारे भीतर होती प्रतिक्रिया है।

कृष्ण और बुद्ध और क्राइस्ट दूसरे ढंग से जागते हैं और दूसरे ढंग से सोते हैं। उनकी नींद थकान नहीं है, उनकी नींद विश्राम है। उनका जागरण बाहर का आघात नहीं है, उनका जागरण भीतर की स्फुरणा है। और जो व्यक्ति थककर नहीं सोया है, वह नींद में भी जागता रहता है। इसलिए कृष्ण ने कहा है कि योगी, जब सब सोते हैं, तब भी जागता है।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह रातभर बैठा रहता है आंखें खोले। कई पागल वैसी कोशिश भी करते हैं कि रातभर आंखें खोले बैठे रहो। क्योंकि योगी रात सोता नहीं है। इसलिए नासमझ यह सोचने लगते हैं कि अगर रात न सोए, तो योगी बन जाएंगे! या नींद कम करो—चार घंटा, तीन घंटा, दो घंटा—जितना कम सोओ, कम से कम उतने योगी हो गए।

कृष्ण का वैसा मतलब नहीं है। योगी भरपूर सोता है; आपसे ज्यादा सोता है, आपसे गहरा सोता है। लेकिन उसकी नींद शरीर में घटती है, क्षेत्र में घटती है; क्षेत्रज्ञ जागा रहता है। शरीर विश्राम में होता है, भीतर वह जागा होता है। वह रात करवट भी बदलता है, तो उसे करवट बदलने का होश होता है। रात उसकी बेहोश नहीं है। और ध्यान रहे, उसकी रात बेहोश नहीं है—कृष्ण ने दूसरी बात नहीं कही है, वह भी मैं आपसे कहता हूं—आपका दिन भी बेहोश है। योगी रात में भी जागता है, भोगी दिन में भी सोता है। इसका यह मतलब नहीं है कि दिन में अगर आप घंटे, दो घंटे सो जाते हों, उससे मेरा मतलब नहीं है। भोगी दिन में भी सोता है, उसका मतलब यह है कि उसके भीतर की चेतना तो जागती ही —नहीं। केवल आघात, चोट उसको जगाए रखती है।

अभी मनसविद कहते हैं कि जितना शोरगुल चल रहा है दुनिया में, बड़े शहरों में, उसकी वजह से लोग बहरे होते जा रहे हैं। और सौ साल अगर इसी रफ्तार से काम आगे जारी रहा, तो सौ साल के बाद शहरों में कान वाला आदमी मिलना मुश्किल हो जाएगा। इतना आघात पड़ रहा है कि कान धीरे— धीरे जड़ हो जाएंगे। वैसे अभी भी आप बहुत कम सुनते हैं; और अच्छा ही है। अगर सब सुनें, जो हो रहा है चारों तरफ, तो आप पागल हो जाएंगे।

और इसलिए आज नए बच्चे हैं, तो रेडियो बहुत जोर से चलाते हैं। धीमी आवाज से चेतना में कोई चोट ही नहीं पड़ती, काफी शोरगुल हो। नए जो संगीत हैं, नए युवक—युवतियों के जो नृत्य हैं, वे भयंकर शोरगुल से भरे हैं। जितना शोरगुल हो उतना ही अच्छा, थोड़ा अच्छा लगता है। क्योंकि छोटे—मोटे शोरगुल से तो कोई चोट ही नहीं पैदा होगी। तेज चुनौती चाहिए, तेज आघात चाहिए, तो थोड़ा—सा रस मालूम होता है कि पैदा हो रहा है। लेकिन यह कब तक चलेगा?

पश्चिम में उन्होंने नए रास्ते निकाले हैं। केवल चोट से भी काम नहीं चलता, तो बहुत तरह के प्रकाश लगा लेते हैं। प्रकाश बदलते रहते हैं तेजी से। बहुत जोर से शोर मचता रहता है। कई तरह के नाच, कई तरह के गीत चलते रहते हैं। एक बिलकुल विक्षिप्त अवस्था हो जाती है। तब घंटेभर उस विक्षिप्त अवस्था में रहकर किसी आदमी को लगता है, कुछ जिंदगी है; कुछ जीवन का अनुभव होता है!

हम इतने मर गए हैं कि जब तक बहुत चोट न हो, तो जीवन का भी कोई अनुभव नहीं होता। धीमे स्वर तो हमें सुनाई ही न पड़ेंगे। और जीवन के नैसर्गिक स्वर सभी धीमे हैं। वे हमें सुनाई नहीं पड़ेंगे। रात का सन्नाटा हमें सुनाई नहीं पड़ेगा। हृदय की अपनी धड़कन हमें सुनाई नहीं पड़ेगी।

आपने कभी अपने खून की चाल की आवाज सुनी है? वह बहुत धीमी है, वह सुनाई नहीं पड़ेगी। लेकिन आवाज तो हो रही है। बक मिनिस्टर फुलर ने लिखा है कि मैं पहली दफा एक ऐसे भवन में गया, एक विज्ञान की प्रयोगशाला में, जो पूर्णरूपेण साउंड—प्रूफ थी, जहां कोई आवाज बाहर से भीतर नहीं जा सकती थी। लेकिन मुझे भीतर दो तरह की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। तो मुझे जो वैज्ञानिक दिखाने ले गया था, उससे मैंने पूछा कि यह क्या बात है! आप तो कहते हैं, एब्सोल्युट साउंड—प्रूफ है। लेकिन यहां दो तरह की आवाजें आ रही हैं!

तो वैज्ञानिक हंसने लगा। उसने कहा, वे आवाजें बाहर से नहीं आ रही हैं, वह आपके खून की चाल की आवाज है। आपका हृदय धड़क रहा है, वह आपने कभी ठीक से सुना नहीं। अब यहां कोई आवाज नहीं है, तो आपके हृदय की धड़कन जोर से आ रही है। और आपका खून जो चल रहा है शरीर के भीतर, उसमें जो घर्षण हो रहा है, उसकी आवाज आ रही है। ये दो आवाजें आपके भीतर हैं। आप अंदर ले आए। बाहर से कोई आवाज भीतर नहीं आ सकती।

आपने कभी अपने खून की आवाज सुनी है? नहीं सुनी है। खून की आवाज तो आपको सुनाई नहीं पड़ती है और बहुत—से लोग बैठकर भीतर ओंकार का नाद सुनने की कोशिश करते हैं! वह अति सूक्ष्म है; वह आपको कभी सुनाई नहीं पड़ सकती।

अब यह खून की आवाज तो स्थूल आवाज है; जैसे झरने की आवाज होती है, वैसे खून की भी आवाज है। लेकिन वही आपको सुनाई नहीं पड़ी; आप सोच रहे हैं कि ओंकार का नाद सुनाई पड़ जाए! वह तो परम गढ़, परम सूक्ष्म, आखिरी आवाज है। जब सब तरह से व्यक्ति पूर्ण शांत हो जाता है, तभी वह सुनाई पड़ती है। तब भीतर निनाद होने लगता है; तब वह जो ओम भीतर गूंजता है, वह पैदा हुआ ओम नहीं है। इसलिए हमने उसको अनाहत नाद कहा है। आहत नाद का अर्थ है, जो चोट से पैदा हो। अनाहत नाद का अर्थ है, जो बिना चोट के अपने आप पैदा होता रहे। वह सुनाई पड़ेगा। लेकिन तब हमें अपनी चेतना को बाहर के आघात से छुटकारा कर लेना जरूरी है।

रामकृष्ण जब मूर्च्छित हैं, तब उन्होंने बाहर की तरफ से अपने द्वार—दरवाजे बंद कर लिए हैं। अब वे भीतर का अनाहत नाद सुन रहे हैं। अब उन्हें भीतर का ओंकार सुनाई पड़ रहा है।

लेकिन हर से मूर्च्छित होना जरूरी नहीं है। और भी विधियां हैं, जिनमें बाहर भी होश रखा जा सकता है और भीतर भी। लेकिन वे थोड़ी कठिन हैं, क्योंकि दोहरी प्रक्रिया हो जाती है।

बुद्ध कभी बेहोश नहीं हुए। रामकृष्ण जैसा बेहोश होकर गिरे, ऐसा बुद्ध के जीवन में कोई उल्लेख नहीं है कि वे बेहोश हुए हों। न कृष्ण के जीवन में हमने सुना है, न जीसस के जीवन में सुना है, न मोहम्मद के जीवन में सुना है कि बेहोश हो गए। रामकृष्ण के जीवन में वैसी घटना है। और कुछ संतों के जीवन में वैसी घटना है।

तो बुद्ध कभी बेहोश नहीं हुए बाहर से भी। तो बुद्ध की प्रक्रिया रामकृष्ण की प्रक्रिया से ज्यादा कठिन है। बुद्ध कहते हैं, दोनों तरफ होश रखा जा सकता है, भीतर भी और बाहर भी। जरूरत नहीं है बाहर से बंद करने की। बाहर भी होश रखा जा सकता है और भीतर भी। हम बीच में खड़े हो सकते हैं। वह जो परम चेतना है, बाहर और भीतर के बीच की देहली पर खड़ी हो सकती है। और दोनों तरफ होश रख सकते हैं।

लेकिन अति जटिल है बात। इसलिए उचित है कि रामकृष्ण की तरफ से ही चलें; दूसरी घटना भी घट जाएगी बाद में। रामकृष्ण ने आधा काम बांट लिया है। बाहर की तरफ से होश छोड़ दिया है, सारा होश भीतर ले गए हैं। एक दफा भीतर का होश सध जाए, तो फिर बाहर भी होश साधा जा सकता है।

रामकृष्ण का प्रयोग सरल है बुद्ध के प्रयोग से। और साधारण आदमी को रामकृष्ण का प्रयोग ज्यादा आसान है, बजाय बुद्ध के प्रयोग के। क्योंकि बुद्ध के प्रयोग में दो काम एक साथ साधने पड़ेंगे; ज्यादा समय लगेगा, और ज्यादा कठिनाई होगी; और अत्यंत अड़चनों से गुजरना पड़ेगा। रामकृष्ण की प्रक्रिया बड़ी सरल है। बाहर को छोड़ ही दें एक बार और भीतर ही डूब जाएं। एक दफा भीतर का रस अनुभव में आ जाए तो फिर बाहर भी उसे जगाए रखा जा सकता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि ऐसा सुना है कि देवताओं को भी अगर मुक्ति चाहिए हो, तो मनुष्य का शरीर धारण करना पड़ता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के बीच का तादात्म्य टूटना क्या देव—योनि में संभव नहीं है? मनुष्य होने की क्या जरूरत है? अगर क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का संबंध टूटने से ही परम ज्ञान घटित होता है, तो देवता इस संबंध को क्यों नहीं तोड़ सकते? इसके लिए मनुष्य के शरीर में आने की जरूरत क्या है?

थोड़ा टेक्निकल, थोड़ा तकनीकी सवाल है। लेकिन समझने जैसा है और आपके काम का भी है। देवता तो यहां मौजूद नहीं हैं, लेकिन आपके भी काम का है, क्योंकि आपको भी कुछ बात समझ में आ सकेगी।

देव—योनि से मुक्ति संभव नहीं, इसका बड़ा गहरा कारण है। और मनुष्य—योनि से मुक्ति संभव है, बड़ी गहरी बात है। और इससे आप यह मत सोचना कि कोई मनुष्य—योनि का बड़ा गौरव है इसमें। ऐसा मत सोच लेना। कुछ अकड़ मत जाना इससे कि देवताओं से भी ऊंचे हम हुए, क्योंकि इस मनुष्य—योनि से ही मुक्ति हो सकती है।

नहीं; ऊंचे—नीचे का सवाल नहीं है; अकड़ने की कोई बात नहीं है। सच तो, अगर ठीक से समझें, तो थोड़ा दीन होने की बात है। कारण यह है कि देव—योनि का अर्थ है कि जहां सुख ही सुख है। और जहां सुख ही सुख है, वहां मूर्च्छा

घनी हो जाती है। दुख मूर्च्छा को तोड़ता है। दुख मुक्तिदायी है। पीड़ा से छूटने का मन होता है। सुख से छूटने का मन ही नहीं होता।

आप भी संसार से छूटना चाहते हैं, तो क्या इसलिए कि सुख से छूटना चाहते हैं? दुख से छूटना चाहते हैं। दुख से छूटना चाहते हैं, इसलिए संसार से भी छूटना चाहते हैं। अगर कोई आपको तरकीब बता दे कि संसार में भी रहकर और दुख से छूटने का उपाय है, तो आप मोक्ष का नाम भी न लेंगे। आप भूलकर फिर मोक्ष की बात न करेंगे। फिर आप कृष्ण वगैरह को कहेंगे कि आप जाओ मोक्ष। हम यहीं रहेंगे। क्योंकि दुख तो छोड़ा जा सकता है, सुख मिल सकता है, फिर मोक्ष की क्या जरूरत है?

संसार को छोड़ने का सवाल ही इसलिए उठता है कि अगर हम दुख को छोड़ना चाहते हैं, तो सुख को भी छोड़ना पड़ेगा। वे दोनों साथ जुड़े हैं।

संसार में सुख और दुख मिश्रित हैं। सब सुखों के साथ दुख जुड़ा हुआ है। सुख पकड़ा नहीं कि दुख भी पकड़ में आ जाता है। आप सुख को लेने गए और दुख की जकड़ में फंस जाते हैं। सुख चाहा और दुख के लिए दरवाजा खुल जाता है।

स्वर्ग या देव—योनि का अर्थ है, जहां सुख ही सुख है। जहां सुख ही सुख है, वहां छोड़ने का खयाल ही न उठेगा। इसलिए देवता गुलाम हो जाते हैं, छोड़ने का खयाल ही नहीं उठता।

नरक से भी मुक्ति नहीं हो सकती और स्वर्ग से भी मुक्ति नहीं हो सकती। जिन्होंने ये वक्तव्य दिए हैं, उन्होंने बड़ी गहरी खोज की है। क्योंकि नरक में दुख ही दुख है, और अगर दुख ही दुख हो, तो आदमी दुख का आदी हो जाता है। यह थोड़ा समझ लें।

अगर दुख ही दुख जीवन में हो, सुख की कोई भी अनुभूति न हो, तो आदमी दुख का आदी हो जाता है। और जहां सुख का कोई अनुभव ही न हो, वहां सुख की आकांक्षा भी धीरे—धीरे तिरोहित हो जाती है। सुख की आकांक्षा वहीं पैदा होती है, जहां आशा हो। इसलिए दुनिया में जितनी सुख की आशा बढ़ती है, उतना दुख बढ़ता जाता है। पांच सौ साल पीछे शूद्र इतने ही दुख में था, जितना आज दुख में है। शायद ज्यादा दुख में था। लेकिन दुखी नहीं था, क्योंकि उसे कभी खयाल ही नहीं था कि शूद्र के अतिरिक्त कुछ होने का उपाय है। अब उसे पता है; अब आशा खुली है। अब उसे पता है कि शूद्र होना जरूरी नहीं है, वह ब्राह्मण भी हो सकता है। शूद्र होना अनिवार्य नहीं है। अब गाव की सड़क ही साफ करना जिंदगी की कोई अनिवार्यता नहीं है; अब वह राष्ट्रपति भी हो सकता है। आशा का द्वार खुल गया है।

अब वह सड़क पर बुहारी तो लगा रहा है, लेकिन बड़े दुख से। वहीं वह पांच सौ साल पहले भी बुहारी लगा रहा था, लेकिन तब कोई दुख नहीं था। क्योंकि दुख इतना मजबूत था, उसके बाहर जाने की कोई आशा नहीं थी, कोई उपाय नहीं था, इसलिए बात ही खतम हो गई थी।

नरक में कोई साधना नहीं करता, और स्वर्ग में भी कोई साधना नहीं करता। क्योंकि नरक में दुख इतना गहन है और आशा का कोई उपाय नहीं है, कि आदमी उस दुख से ही राजी हो जाता है। जब दुख आखिरी हो, तो हम राजी हो जाते हैं। जब तक आशा रहती है, तब तक हम लड़ते हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। जब तक आशा रहती है, तब तक हम लडते हैं। और जहां तक आशा रहती है, वहां तक हम लड़ते हैं। और जब आशा टूट जाती है, हम शांत होकर बैठ जाते हैं। लड़ाई खतम हो गई।

स्वर्ग में भी कोई साधना नहीं करता है, क्योंकि सुख से छूटने का खयाल ही नहीं उठता। सुख से छूटने का कोई सवाल ही नहीं है। मनुष्य दोनों के बीच में है। मनुष्य दोनों है, नरक भी और स्वर्ग भी। मनुष्य आधा नरक और आधा स्वर्ग है। और दोनों मिश्रित है। वहां दुख भी सघन है और सुख की आशा भी। और हर सुख के बाद दुख मिलता है, यह अनुभूति भी है। इसलिए मनुष्य चौराहा है, उसके नीचे नरक है, उसके ऊपर स्वर्ग है। स्वर्ग में आदमी सुख से राजी हो

जाता है, नरक में दुख से राजी हो जाता है; मनुष्य की अवस्था में किसी चीज से कभी राजी नहीं हो पाता। मनुष्य असंतोष है। वह असंतुष्ट ही रहता है। कुछ भी हो, संतोष नहीं होता। इसलिए साधना का जन्म होता है।

जहां असंतोष अनिवार्य हो, कोई भी स्थिति हो। आप झोपड़े में हों, तो दुखी होंगे; और आप महल में हों, तो दुखी होंगे। आपका होना, मनुष्य का होना ही ऐसा है कि वह तृप्त नहीं हो सकता। अतृप्ति वहां बनी ही रहेगी। उसके होने के ढंग में ही उपद्रव है। वह बीच की कड़ी है। आधा उसमें स्वर्ग भी झांकता है, आधा नरक भी झांकता है।

मनुष्य के पास अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। वह आधा—आधा है; अधूरा—अधूरा है, सीढ़ी पर लटका हुआ है; त्रिशंकु की भांति है। इसलिए जो मनुष्य साधना नहीं करता, वह असाधारण है। जो मनुष्य साधना में नहीं उतरता, वह असाधारण है। नरक में नहीं उतरता, समझ में आती है बात। स्वर्ग में नहीं उतरता, समझ में आती है। अगर आप साधना में नहीं उतरते, तो आप चमत्कारी हैं। क्योंकि आपका होना ही असंतोष है। और अगर आपको इस असंतोष से भी साधना का खयाल पैदा नहीं होता, तो आश्चर्य है।

जगत में बड़े से बड़ा आश्चर्य यह है कि कोई मनुष्य हो और साधक न हो। यह बड़े से बड़ा आश्चर्य है। स्वर्ग में देवता होकर कोई साधक हो, यह आश्चर्य की बात होगी। नरक में होकर कोई साधक हो, यह भी आश्चर्य की बात होगी। मनुष्य होकर कोई साधक न हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है। क्योंकि आपके होने में असंतोष है। और असंतोष से कोई कैसे तृप्त हो सकता है! साधना का इतना ही मतलब है कि जैसा मैं हूं उससे मैं राजी नहीं हो सकता, मुझे स्वयं को बदलना है।

इसलिए मनुष्य को चौराहा कहा है ज्ञानियों ने। स्वर्ग से भी लौट आना पड़ेगा। जब पुण्य चुक जाएंगे, तो सुख से लौट आना पड़ेगा। और जब पाप चुक जाएंगे, तो नरक से लौट आना पड़ेगा।

और मनुष्य की योनि से तीन रास्ते निकलते हैं। एक, दुख अर्जित कर लें, तो नरक में गिर जाते हैं; सुख अर्जित कर लें, तो स्वर्ग में चले जाते हैं। लेकिन दोनों ही क्षणिक हैं, और दोनों ही छूट जाएंगे। जो भी अर्जित किया है, वह चुक जाएगा, खर्च हो जाएगा। ऐसी कोई संपदा नहीं होती, जो खर्च न हो। कमाई खर्च हो ही जाएगी।

नरक भी चुक जाएगा, स्वर्ग भी चुक जाएगा, जब तक कि यह खयाल न आ जाए कि एक तीसरा रास्ता और है, जो कमाने का नहीं, कुछ अर्जित करने का नहीं, बल्कि जो भीतर छिपा है, उसको उघाड़ने का है। स्वर्ग भी कमाई है, नरक भी। और आपके भीतर जो परमात्मा छिपा है, वह कमाई नहीं है; वह आपका स्वभाव है। वह मौजूद ही है। जिस दिन आप स्वर्ग और नर्क की तरफ जाना बंद करके स्वयं की तरफ जाना शुरू कर देते हैं, उस दिन फिर लौटने की कोई जरूरत नहीं है।

मुसलमान फकीर औरत हुई है, राबिया। एक दिन लोगों ने देखा कि वह बाजार में भागी जा रही है। उसके एक हाथ में पानी का एक कलश है और एक हाथ में एक जलती हुई मशाल है। लोगों ने कहा कि राबिया, क्या तू पागल हो गई? शक तो हमें बहुत बार होता था तेरी बातें सुनकर कि तू पागल हो गई है। अब तूने यह क्या किया है! यह क्या खेल, नाटक कर रही है? कहा भागी जा रही है? और यह पानी और यह मशाल किसलिए?

तो राबिया ने कहा कि इस पानी में मैं तुम्हारे नर्क को डुबाना चाहती हूं और इस मशाल से तुम्हारे स्वर्ग को जलाना चाहती हूं। और जब तक तुम स्वर्ग और नरक से न छूट जाओ, तब तक तुम्हारा परमात्मा से कोई मिलना नहीं हो सकता।

अब हम सूत्र को लें।

और हे अर्जुन, श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दंभाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमा—भाव, मन—वाणी की सरलता, श्रद्धा— भक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर— भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता, मन और इंद्रियों सहित शरीर का निग्रह तथा इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और

अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुख और दोषों का बारंबार दर्शन करना, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

कौन है ज्ञानी? क्योंकि कल कृष्ण ने कहा कि ज्ञानी जान लेता है तत्व से इस बात को कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अलग हैं। तो जरूरी है, अब हम समझ लें कि ज्ञानी कौन है? कौन जान पाएगा इस भेद को? कौन इस भेद को जानकर अभेद को उपलब्ध होगा? तो अब ज्ञानी के लक्षण हैं। एक—एक लक्षण पर खयाल कर लेना जरूरी है।

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव—शुरू बात, क्योंकि ज्ञान के साथ तत्क्षण श्रेष्ठता का भाव पैदा होता है कि मैं श्रेष्ठ हूं दूसरे निकृष्ट हैं, मैं जानता हूं दूसरे नहीं जानते हैं; मैं ज्ञानी हूं दूसरे अज्ञानी हैं। ज्ञान के साथ जो सबसे पहला रोग, जिससे बचना जरूरी है, वह श्रेष्ठता का अहंकार है।

ब्राह्मण की अकड़ हम देखते हैं। अब उसकी कम होती जा रही है, क्योंकि चारों तरफ से उस पर हमला पड़ रहा है। नहीं तो ब्राह्मण की अकड़ थी। ब्राह्मण की शक्ल ही देखकर कह सकते हैं कि वह ब्राह्मण है। उसके नाक का ढंग, उसके आंख का ढंग, उसके चेहरे का रोब! चाहे वह भीख मांगता हो, लेकिन फिर भी ब्राह्मण पहचाना जा सकता है कि वह ब्राह्मण है। उसकी आंख, उसका श्रेष्ठता का भाव, एक अरिस्टोक्रेसी, एक गहरा आभिजात्य, भीतर मैं श्रेष्ठ हूं! चाहे वह नंगा फकीर हो, चाहे कपड़े फटे हों, चाहे हाथ में भिक्षा का पात्र हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन भीतर

एक दीप्ति श्रेष्ठता की जलती रहेगी।

एक बड़े मजे की घटना घटी है मनुष्य के इतिहास में। और वह यह कि हिंदुस्तान में हमने ब्राह्मण को क्षत्रिय के ऊपर रख दिया था; तलवार के ऊपर ज्ञान को रख दिया था। इसलिए हिंदुस्तान में कभी क्रांति नहीं हो सकी। क्योंकि दुनिया में जब भी कोई उपद्रव होता है, उसकी जड़ में ब्राह्मण होता है। कहीं भी हो, समझदार ही उपद्रव करवा सकता है, नासमझ तो पीछे चलते हैं। अगर यह पश्चिम में इतनी क्रांति की बात चलती है..।

मार्क्स को मैं ब्राह्मण कहता हूं। लेनिन को, ट्राटस्की को ब्राह्मण कहता हूं। ब्राह्मण का मतलब, इटेलिजेंसिया; वह जो सोचती है, विचारती है। उस सोचने—विचारने वाले की श्रेष्ठता को अगर आपने जरा भी चोट पहुंचाई, तो वह उपद्रव खड़ा कर देता है। वह फौरन लोगों को भड़का देता है।

सिर्फ हिंदुस्तान अकेला मुल्क है, जहां पांच हजार साल में कोई क्रांति नहीं हुई। इसका राज क्या है? सारी दुनिया में क्रांति हुई, हिंदुस्तान में क्रांति नहीं हुई। उसका सीक्रेट क्या है? सीक्रेट है कि हमने ब्राह्मण को, जो उपद्रव कर सकता है, उसको पहले ही ऊपर रख दिया। उसको कहा कि तू तो श्रेष्ठ है।

फिर एक बड़े मजे की घटना घटी कि ब्राह्मण भूखा मरता रहा, दीन रहा, दुखी रहा, लेकिन कभी उसने बगावत की बात नहीं की, क्योंकि उसकी भीतरी श्रेष्ठता सुरक्षित है। और जब वह श्रेष्ठ है, तो कोई दिक्कत नहीं है।

रूस फिर इसका अनुगमन कर रहा है। कोई सोच भी नहीं सकता, लेकिन रूस इसका फिर अनुगमन कर रहा है। आज रूस ने सब वर्ग तो मिटा दिए, लेकिन ब्राह्मण को ऊपर बिठा रखा है। जिसको वे एकेडेमीसिएंस कहते हैं वहा। वे जितने भी बुद्धिवादी लोग हैं—लेखक हैं, कवि हैं, वैज्ञानिक हैं, डाक्टर हैं, वकील हैं—जिनसे उपद्रव की कोई भी संभावना है, उनका एक आभिजात्य वर्ग बना दिया है।

रूस में लेखक इतना समादृत है, जितना जमीन पर कहीं भी नहीं। कवि इतना समादृत है, जितना जमीन पर कहीं भी नहीं। वैज्ञानिक, सोचने—समझने वाला आदमी समादृत है। उसको ऊपर बिठा दिया है। उसको फिर ब्राह्मण की कोटि में रख दिया है। रूस में क्रांति तब तक नहीं हो सकती अब, जब तक यह ब्राह्मण का आभिजात्य न टूटे।

दो प्रयोग हुए हैं। हिंदुस्तान ने प्रयोग किया था पांच हजार साल पहले। रूस उसका अनुकरण कर रहा है, जाने—अनजाने। ब्राह्मण को ऊपर बिठा दो, फिर उपद्रव नहीं होगा। उसकी श्रेष्ठता सुरक्षित रहे, फिर कोई बात नहीं है। भीख मांग सकता है वह, लेकिन उसकी भीतरी अकड़ कायम रहनी चाहिए। आप उसको सिंहासन पर भी बिठा दो और कहो कि विनम्र हो जाओ, भीतर की अकड़ छोड़ दो, वह सिंहासन को लात मार देगा। ऐसे सिंहासन का कोई मूल्य नहीं है। उसे भीतर का सिंहासन चाहिए।

जैसे ही किसी व्यक्ति को ज्ञान का जरा—सा स्वाद लगता है कि एक भीतरी श्रेष्ठता पैदा होनी शुरू हो जाती है। उसकी चाल बदल जाती है। उसकी अकड़ बदल जाती है।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञान का लेकिन पहला लक्षण वे कह रहे हैं, श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव।

ब्राह्मण को विनयी होना चाहिए; यह उसका पहला लक्षण है। यह होता नहीं। नहीं होता, इसीलिए पहला लक्षण बताया। जो नहीं होता, उसकी चिंता पहले कर लेनी चाहिए। जो बहुत कठिन है, उसकी फिक्र पहले कर लेनी चाहिए।

ज्ञान आए तो उसके साथ—साथ विनम्रता बढ़ती जानी चाहिए। अगर ज्ञान के साथ विनम्रता न बढ़े, तो ज्ञान जहर हो जाता है। ज्ञान के साथ विनम्रता समानुपात में बढ़ती जाए तो ज्ञान जहर नहीं हो पाता और अमृत हो जाता है।

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दंभाचरण का अभाव...।

आचरण दो तरह से होता है। एक तो आचरण होता है, सहज—स्फूर्त। और एक आचरण होता है, दंभ आयोजित। आप रास्ते पर जा रहे हैं और एक भूखा आदमी हाथ फैला देता है। आप दो पैसे उसके हाथ में रख देते हैं, सहज दया के कारण, वह भूखा है इसलिए।

लेकिन रास्ते पर कोई भी नहीं है, अकेले हैं, और भूखा आदमी हाथ फैलाता है, आप बिना देखे निकल जाते हैं। रास्ते पर लोग देखने वाले मौजूद हैं, तो आप दो पैसे दे देते हैं। अगर साथ में मित्र मौजूद हैं, या ऐसा समझ लीजिए कि आपकी लड़की की शादी हो रही है और लड़का लड़की को देखने आया है, वह आपके साथ है, और भिखमंगा हाथ फैला देता है; दो पैसे की जगह आप दो दे देते हैं

ये दो रुपए आप दामाद को दे रहे हैं, होने वाले दामाद को। आप एक दंभ का आचरण कर रहे हैं। आप उसको दिखला रहे हैं कि मैं क्या हूं! इसका भिखारी से कोई लेना—देना नहीं है। भिखारी से कोई संबंध ही नहीं है। भिखारी को आपने पैसे दिए ही नहीं। और आपको कोई न भीतर दया है, न कोई करुणा है, न कोई सवाल है। आप एक दंभ आरोपित कर रहे हैं, एक आयोजन कर रहे हैं। तो आप अच्छे आदमी भी हो सकते हैं दंभ—आचरण के कारण।

ध्यान रहे, सहज बुरा आदमी भी बेहतर है। कम से कम सहज तो है। और जो सहज है, वह कभी अच्छा हो सकता है। क्योंकि बुराई दुख देती है। दुख कोई भी नहीं चाहता। आज नहीं कल सुख की तरफ जाएगा; खोजेगा, तो बुराई को छोड़ेगा। लेकिन हम झूठे अच्छे आदमी हैं। यह बहुत खतरनाक स्थिति है। झूठे अच्छे आदमी का मतलब है कि हम अच्छे बिलकुल नहीं हैं और बाहर हमने एक अच्छा आरोपण कर रखा है। रिस्पेक्टिबिलिटी.।

मां—बाप बच्चों से कहते हैं कि देख, इज्जत मत गंवा देना, हमारा खयाल रखना, किसका बेटा है। वे उसको यह नहीं कह रहे हैं कि अच्छा काम करना अच्छा है। वे यह कह रहे हैं, अच्छा काम करना अहंकार—पोषक है। वे यह कह रहे हैं, घर की इज्जत का खयाल रखना। वे उससे यह नहीं कह रहे हैं कि अच्छे होने में तेरा आनंद होना चाहिए। वे यह कह रहे हैं, घर की इज्जत का सवाल है, प्रतिष्ठा का सवाल है, वंश का सवाल है।

वे उसको अहंकार सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि समझना कि तू किसका बेटा है। वे उसको झूठ सिखा रहे हैं। वह लड़का अब दंभ से आचरण करेगा। वह अच्छा भी होगा, तो अच्छे के पीछे भी वासना यही होगी कि आदर—सम्मान मिले।

रिस्पेक्टिबिलिटी दंभाचरण है, आदर की तलाश। लेकिन हमने सारा आचरण आदर पर खड़ा कर रखा है। हम एक—दूसरे को यही समझा रहे हैं, सिखा रहे हैं। सारी शिक्षा, सारा संस्कार, कि अगर बुरे हुए, तो बेइज्जती होगी। और बेइज्जती से आदमी डरता है, इसलिए बुरा नहीं होता।

आपको असलियत का तो तब पता चले, जब आप लोगों से कह दें कि कोई फिक्र नहीं, बुरे हो जाओ, बेइज्जती नहीं होगी। और अगर हम एक ऐसा समाज बना लें, जिसमें बुरे होने से बेइज्जती न होती हो, तब आपको पता चलेगा कि कितने आदमी अच्छे हैं। अभी तो बुराई से बेइज्जती मिलती है, अहंकार को चोट लगती है, तो आदमी अच्छा होने की कोशिश करता है। अच्छे होने की आकांक्षा में भी अच्छे होने का खयाल नहीं है, अच्छे होने की आकांक्षा में अहंकार का पोषण है।

कृष्ण कहते हैं ज्ञानी के लिए लक्षणों में, दंभाचरण का अभाव। वह आचरण सहज करेगा, जो ठीक लगता है, वही करेगा। जो आनंदपूर्ण है, वही करेगा। सिर्फ इसलिए कुछ नहीं करेगा कि लोग क्या कहेंगे। लोग अच्छा कहेंगे या बुरा कहेंगे, यह उसकी विचारधारा न होगी।

हम तो हर समय यही सोचते हैं कि लोग क्या कहेंगे। लोगों की हमारी फिक्र इतनी ज्यादा है कि अगर मैं आपको कह दूं कि कल सुबह आप मरने वाले हैं, तो जो आपको पहले खयाल आएगा, वह यह है कि मरघट मुझे कौन लोग पहुंचाने जाएंगे। फलां आदमी जाएगा कि नहीं? मिनिस्टर जाएगा कि नहीं? गवर्नर जाएगा कि नहीं? मरने के बाद अखबार में मेरी खबर छपेगी कि नहीं? लोग क्या कहेंगे?

बहुत लोगों के मन में यह इच्छा होती है कि मरने के बाद लोग मेरे संबंध में क्या कहेंगे, उसका कुछ पता चल जाए। इस तरह की लोगों ने कोशिश भी की है।

एक आदमी ने, राबर्ट रिप्ले ने अपने मरने की खबर उड़ा दी। सिर्फ इसलिए कि अखबारों में पता चल जाए, और कौन—कौन क्या—क्या कहता है, उसे मैं एक दफा पढ़ तो लूं। वह मरने के ही करीब था, डाक्टरों ने कहा था कि अब बस, चौबीस घंटे, छत्तीस घंटे से ज्यादा नहीं बच सकते। तो उसने अपने सेक्रेटरी को बुलाया और कहा कि तू एक काम कर। तू खबर कर दे कि मैं मर गया। मैं अपनी खबर अखबारों में पढ़ लेना चाहता हूं कि मेरे मरने के बाद लोग मेरे संबंध में क्या कहते हैं।

दूसरे दिन जब उसने खबर पढ़ ली और अच्छी—अच्छी बातें पढ़ लीं उसके संबंध में, क्योंकि मरने के बाद लोग अच्छी बातें कहते ही हैं, शिष्टाचारवश। और शायद इसलिए भी कि जब हम मरेंगे, तो लोग भी खयाल रखेंगे। बाकी और तो कुछ खास बात..। जब आप किसी आदमी के संबंध में सुनें कि सभी लोग अच्छी बातें कर रहे हैं, समझ लेना कि मर गया। नहीं तो जिंदा आदमी के बाबत सभी लोग अच्छी बात कर ही नहीं सकते। बड़ा कठिन है, बड़ा कठिन है।

अखबारों में अच्छी बातें सुनकर रिप्ले बहुत संतुष्ट हो गया। और उसने कहा कि अब अखबार वालों को खबर कर दो कि मेरी तस्वीर निकाल लें मरने की खबर पढ़ते हुए। मैं मनुष्य—जाति के इतिहास का पहला आदमी हूं जिसने अपने मरने की खबर पढ़ी। फिर उसने अखबारों में दूसरी खबर छपवाई।

निश्चित ही वह पहला आदमी था, जिसने अपने मरने की खबर पढ़ी और जिसने अपनी मृत्यु पर लोगों के द्वारा दिए गए संदेश पढ़े। दूसरों की फिक्र इतनी है कि आदमी मरते क्षण में भी अपनी फिक्र नहीं करता। जिंदगी की तो बात ही अलग, मौत भी आ रही हो, तो दूसरों की चिंता होती है।

आप यह जो दूसरों की चिंता करके जीते हैं, तो आपका सारा आचरण दंभ—आचरण होगा।

शानी सहज जीएगा; उसके भीतर जो है, वैसा ही जीएगा; परिणाम जो भी हो। दुख मिले, तो दुख झेलने को राजी रहेगा। सुख मिले, तो सुख झेलने को राजी रहेगा। समभाव से जो भी परिणाम हो, उसको झेलेगा, लेकिन जीएगा सहजता से। आपकी तरफ देखकर नहीं जीएगा। वह किसी तरह का आरोपण, किसी तरह का मुखौटा, किसी तरह के वस्त्र आपकी नजर से नहीं पहनेगा। उसे जो ठीक लगेगा, जो उसका आंतरिक आनंद होगा।

दंभाचरण का अभाव, प्राणिमात्र को किसी प्रकार भी न सताना..।

वह भी ज्ञान का लक्षण है। क्यों? क्योंकि जितना ही हम किसी को सताते हैं, उतने ही हम सताएं जाते हैं। यह कोई दूसरे पर दया करने के लिए नहीं है ज्ञानी का लक्षण। यह सिर्फ ज्ञानी की बुद्धिमत्ता है, उसका सहज बोध है, कि जब मैं किसी को सताता हूं तो मैं अपने सतानें के लिए आयोजन कर रहा हूं।

सिर्फ अज्ञानी ही दूसरे को सता सकता है, क्योंकि उसका मतलब है कि उसे पता ही नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं। अपने लिए ही कांटे बो रहा हूं। यह अज्ञानी ही कर सकता है।

ज्ञानी तो देखता है जीवन के अंतः —संबंधों को, कि जो मैं करता हूं वही मुझ पर वापस लौट आता है। जगत एक प्रतिध्वनि है। जो भी मैं बोलता हूं वही मुझ पर बरस जाता है। अगर मैं गाली फेंकता हूं तो गालियां मेरे पास लौट आती हैं। और अगर मैं मुस्कुराहट फेंकता हूं तो हजार मुस्कुराहटें मेरी तरफ वापस लौट आती हैं। जगत वही लौटा देता है, जो हम उसे देते हैं। यह ज्ञानी का अनुभव है, यह कोई सिद्धांत नहीं है। वह जानता है कि मैं दुख दूंगा, तो मैं दुख देने के लिए लोगों को आमंत्रित कर रहा हूं,।

आप किसी को दुख देकर देखें। सीधी—सी बात है कि जब आप किसी को दुख देते हैं, तो आप उसको प्रेरित करते हैं कि वह आपको दुख दे।

इसे आप ऐसा समझें कि जब कोई आपको दुख देता है, तो आपके मन में क्या होता है? जब कोई आपको दुख देता है, तो जो पहली बात आपके मन में बनती है, वह यह कि इसको कैसे दुगुना दुख दें। आप उपाय में लग जाते हैं कि इसको कैसे दुख दें। यह सीधा—सा, सरल—सा नियम है। इसलिए ज्ञानी प्राणिमात्र को भी किसी प्रकार से नहीं सताना चाहता है।

क्षमा भाव.......।

क्षमा का अर्थ लोग समझते हैं कि दूसरे पर दया करना। नहीं, वैसा अर्थ नहीं है। क्योंकि दया में भी अहंकार है। क्षमा बड़ी सूक्ष्म बात है।

क्षमा का अर्थ है, मनुष्य की कमजोरी को समझना और यह जानना कि मैं खुद भी कमजोर हूं दूसरा भी कमजोर है। खुद की कमजोरी का अनुभव ज्ञानी को होता है, वह अपनी सीमाएं जानने लगता है, अपनी सीमाएं जानने के कारण वह प्रत्येक मनुष्य के प्रति क्षमावान हो जाता है, क्योंकि वह समझता है कि सबकी कमजोरी है। जो ज्ञानी आपकी कमजोरी के प्रति क्षमावान नहीं, समझना कि उसने अभी अपना आत्म—विश्लेषण नहीं किया।

मैंने सुना है, यहूदी फकीर बालशेम के पास एक युवक आया। उस युवक ने कहा कि मैं महापापी हूं। कोई भी सुंदर स्त्री मुझे रास्ते पर दिखती है, तो उसे भोगने का मन होता है। फिर मैं कुढ़ता हूं परेशान होता हूं। कोई भी अच्छी चीज दिखाई पड़े, तो चोरी करने का मन होता है। कर न पाऊं, यह दूसरी बात है, लेकिन मन तो हो जाता है। जरा—सा कोई मुझे दुख पहुंचा दे, तो उसकी हत्या करने का मन होता है। मैं महापापी हूं। तो मुझे कोई कठोर दंड दो।

बालशेम ने कहा कि तूने स्वीकार किया, इतना काफी है। बस, तू इसको स्मरण रखना कि जो तुझे होता है, ऐसा ही दूसरे को भी होता है। तो अगर तुझे कल पता चले कि फला आदमी फलां की स्त्री के प्रति बुरी तरह से देख रहा था, तो तू निंदा से मत भर जाना। तू समझना कि मनुष्य कमजोर है, क्योंकि तू कमजोर है। तू क्षमा को जन्म देना।

पर उस युवक ने कहा कि नहीं, मुझे सजा दो, मुझे दंड दो। बालशेम ने कहा कि अगर मैं तुझे दंड दूं तो तू भी दूसरे को दंड देना चाहेगा और क्षमा कभी पैदा न होगी। अगर मैं तुझे कहूं कि तुझे इतना दंड देता हूं क्योंकि तूने दूसरे की स्त्री की तरफ बुरी नजर से देखा; तो तू दंड झेल लेगा, लेकिन तेरा अहंकार मजबूत होगा। और कल अगर किसी ने कहा कि फला आदमी दूसरे की स्त्री की तरफ बुरी नजर से देख रहा है, तो तू चाहेगा कि इसको दंड दिया जाए। तू

क्षमावान नहीं होगा। मैं तुझे यही दंड देता हूं कि कोई दंड नहीं देता। सिर्फ तू इतना खयाल रखना, जब दूसरे में कोई भूल देखे, तो खयाल रखना कि वे सारी भूलें और भी बड़े रूप में तेरे भीतर मौजूद हैं। दूसरा क्षम्य है।

ज्ञानी विश्लेषण करता है अपना। उस विश्लेषण से सारी मनुष्यता से उसकी पहचान हो जाती है। ज्ञानी का यह अनिवार्य लक्षण है कि ज्ञानी निंदा नहीं करेगा, दंडित नहीं करेगा; वह यह नहीं कहेगा कि तुम महापापी हो और नरक में सडोगे। वह तुम्हारे ऊपर खड़े होकर तुम्हें नीचा दिखाने की कोशिश भी नहीं करेगा। क्योंकि उसने अपना विश्लेषण किया है, उसने अपनी स्थिति भी जानी है। और अपनी स्थिति को जानकर वह पूरी मनुष्यता की स्थिति से परिचित हो गया है।

लेकिन उस युवक ने कहा कि नहीं, जब तक आप मुझे दंड न देंगे, तब तक मैं जाऊंगा नहीं। मैं इतना बड़ा पापी हूं! तो बालशेम ने कहा, तू कुछ भी पापी नहीं है। तुझसे बड़ा मैं रहा हूं। तू कुछ भी नहीं है। तुझसे बड़ा मैं रहा हूं। और मैं भी किसी दिन एक गुरु के पास गया था और दंड मैंने भी चाहा था।

अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। बड़े दंड से भी प्रसन्न होता है। कोई दंड नहीं मिल रहा है, तो उसे लग रहा है कि मुझे समझा ही नहीं जा रहा है। समझ रहे हैं कि कोई छोटा—मोटा पापी! मैं बार—बार कह रहा हूं कि मैं बड़ा पापी हूं। मुझे कोई बड़ा दंड दो। बड़े दंड में भी मजा रहेगा। कोई छोटा—मोटा पापी नहीं हूं; कोई आम पापी नहीं हूं—चलता—फिरता, ऐरा—गैरा—खास पापी हूं।

तो बालशेम ने कहा, मैं भी किसी गुरु के पास गया था। और मैंने भी कहा था, मैं महापापी हूं; मुझे बड़ा दंड दो। मेरे गुरु ने कहा था कि तुझे दंड नहीं दूंगा। और याद रखना तू भी किसी को दंड मत देना, सिर्फ क्षमा का भाव देना।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञानी का लक्षण है क्षमा का भाव।

वह जानता है, आदमी कमजोर है। वह जानता है, आदमी मुश्किल में है। वह जानता है, आदमी बड़ी दुविधा में है। वह जानता है कि आदमी जैसा भी है, बड़ी जटिलता में है। इसलिए उसे दोषी क्या ठहराना!

अगर आप कुछ भूल कर लेते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। स्वाभाविक मालूम होता है। सच तो यह है कि अगर आप भूल नहीं करते हैं, तो बड़ा अस्वाभाविक मालूम होता है। आदमी इतना कमजोर, इतनी शक्तियों का दबाव, इतनी जटिलताएं, इतनी मुसीबतें, उनके बीच में भी आदमी किसी तरह अपने को सम्हाले रहता है।

कृष्ण कहते हैं, क्षमा का भाव, मन—वाणी की सरलता...।

सरलता को थोड़ा खयाल में ले लेना चाहिए कि उसका क्या अर्थ होता है। सरलता का अर्थ होता है, बिना किसी कपट के। सरलता का अर्थ होता है, सीधा—सीधा। सरलता का अर्थ होता है, बिना किसी योजना को बनाए, बिना किसी कैलकुलेशन के, बिना किसी गणित के।

छोटे बच्चे में सरलता होती है। अगर उसको क्रोध आ गया है, तो वह आग की तरह जल उठता है, भभक उठता है। उस क्षण ऐसा लगता है, सारी दुनिया को नष्ट कर देने की उसकी मर्जी है। और क्षणभर बाद वह फूल की तरह मुस्कुरा रहा है। और जिसको वह मारने को खड़ा हो गया था, नष्ट कर देने को, उसी के साथ खेल रहा है। जो भीतर था, उसने बाहर ले आया, जैसा था, वैसा ही बाहर ले आया। उसने यह नहीं सोचा कि लोग क्या सोचेंगे। उसने यह नहीं सोचा कि दुनिया क्या कहेगी। उसने यह नहीं सोचा कि इससे नरक जाऊंगा या स्वर्ग जाऊंगा। उसने कुछ सोचा ही नहीं, जो भीतर था, वह बाहर ले आया।

बच्चे में सरलता है। और इसलिए बच्चा अभी रो रहा है, अभी मुस्कुरा सकता है। कई दफे बड़ों को बड़ी हैरानी होती है कि ये बच्चे भी किस तरह के हैं! अभी रो रहा था, अभी मुस्कुरा रहा है। बड़े धोखेबाज मालूम पड़ते है, पाखंडी

मालूम पड़ते हैं। इतने जल्दी यह हो कैसे सकता है कि अभी यह रो रहा था, अभी मुस्कुरा रहा है! आप रोएं, तो दो—चार दिन लग जाएंगे मुस्कुराने में। क्योंकि वह रोना आप में सरकता ही रहेगा। पर आप कारण समझते हैं?

अभी एक मित्र आए; सालभर पहले पत्नी चल बसी। वे अभी तक नहीं हंस पा रहे हैं। सालभर हो गया, रो ही रहे हैं। वे मुझसे बोले कि मुझे किसी तरह रोने से छुटकारा दिलाइए। मैंने कहा कि अगर मेरी आप समझते हों, तो मेरा समझना ऐसा है कि आप ठीक से रोए नहीं हैं। नहीं तो सालभर कैसे रोते! आप ऐसे ही कुनकुने—कुनकुने रो रहे हैं, ल्यूकवार्म। शक्ल लंबी बनाए हुए हैं। दिल खोलकर नहीं रो लिए। छाती पीटकर, नाचकर, कूदकर, जैसा करना हो, ठीक से रो लें। चौबीस घंटे निकाल लें, मैंने उनसे कहा, छुट्टी के और चौबीस घंटे रो लें। चौबीस साल रोने की बजाय चौबीस घंटे रो लें। फिर हंसी अपने आप आ जाएगी। रोना निकल जाए तो हंसी आ जाती है।

वह छोटा बच्चा एक क्षण में रोता है, एक क्षण में हंसता है।

उसका कारण यह नहीं है कि वह धोखा दे रहा है। उसका कारण यह नहीं है कि उसकी हंसी झूठी है। उसका कारण यह है कि उसका रोना इतना सच्चा था कि निकल गया, बात खतम हो गई। अब वह हंस रहा है।

आपका रोना भी झूठा है, हंसना भी झूठा है। ऊपर से चिपकाया हुआ है। दोनों ही झूठे हैं। जिंदगी चल रही है झूठ में। दोनों तरफ झूठ के चक्के लगाए हुए हैं गाड़ी में। कहीं नहीं पहुंच रही है जिंदगी, तो कहते हैं, कहीं पहुंचती नहीं। प्रयोजन क्या है? लक्ष्य नहीं मिलता!

वह लक्ष्य मिलेगा क्या! दोनों चक्के झूठे हैं। वे दिखाई पड़ते हैं, पेंटेड हैं। चक्के नहीं हैं।

सरलता का अर्थ है, जैसा भीतर हो, वैसा ही बाहर प्रकट कर देना। बड़ी कठिनाई होगी। आप कहेंगे, आप उपद्रव की बात कह रहे हैं। उपद्रव की है, इसीलिए तो कम लोग सरल हो पाते हैं। जटिल आप इसीलिए तो हो जाते हैं, क्योंकि सरल होना मुश्किल है। अगर 'सरल होंगे, तो बहुत—सी कठिनाइयां झेलनी पड़ेगी। बहुत—सी कठिनाइयां झेलनी पड़ेगी, बहुत—सी अड़चनें झेलनी पड़ेगी। इसीलिए तो आदमी उनसे बचने के लिए कठिन हो जाता है, जटिल हो जाता है।

एक आदमी सुबह—सुबह मिलता है। मन में होता है कि इस दुष्ट की शक्ल कहां से दिखाई पड़ गई! अब दिनभर खराब हुआ। और उससे आप नमस्कार करके कहते हैं कि धन्यभाग कि आप दिखाई पड़ गए। बड़ी कृपा है। बड़े दिनों में दिखाई पड़े। बड़े दिन से बड़ी इच्छा थी। और भीतर कह रहे हैं, यह दुष्ट कहा से सुबह दिखाई पड़ गया!

अब यह जो भीतर और बाहर हो रहा है, अगर आप सीधे ही कह दें कि महानुभाव, कहां से दिखाई पड़ गए आप सुबह से, दिनभर खराब हो गया। तो आप कठिनाई में पड़ेंगे। क्योंकि यह आदमी झंझट डालेगा। यह आपको फिर ऐसे ही जाने नहीं देगा। फिर दिन तो दूर है, यह अभी आपको उपद्रव खड़ा कर देगा। यह शक्ल फिर दिनभर में करेगी, वह तो अलग रही बात; लेकिन यह अभी कोई मुसीबत खड़ी कर देगा। तो आप ऊपर एक झूठा आवरण खड़ा कर लेते हैं। जिंदगी की जरूरतें आपको झूठा बना देती हैं।

लेकिन ज्ञानी के लिए कृष्ण कहते हैं, कठिनाई भला हो, लेकिन उसको मन—वाणी की सरलता चाहिए। वह वैसी ही बात कह देगा, जैसी है। इसका यह मतलब नहीं है कि वह किसी को चोट पहुंचाना चाहता है। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वह किसी को अपमानित करना चाहता है। इसका सिर्फ इतना मतलब है कि वह जैसा भीतर है, चाहता है कि लोग उसे बाहर भी वैसा ही जानें। फिर इसके कारण जो भी कठिनाई झेलनी पड़े, वह झेल लेगा। लेकिन अपने को झूठा नहीं करेगा।

दो उपाय हैं, या तो बाहर की कठिनाई से बचने के लिए भीतर जटिल हो जाएं; और या फिर बाहर की कठिनाई झेलने की तैयारी हो, तो भीतर सरल हो जाएं।

संतत्व की सबसे बड़ी तपश्चर्या सरलता है। कोई धूप में खड़ा होना संतत्व नहीं है। और न कोई सिर के बल खड़े होकर अभ्यास करे, तो कोई संत हो जाएगा। ये सब कवायदें हैं और इनका कोई बहुत बड़ा मूल्य नहीं है। संतत्व की असली संघर्ष की तपश्चर्या है सरलता, क्योंकि तब आपको बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ेगी। बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ेगी, क्योंकि चारों तरफ आपने झूठ का जाल बिछा रखा है।

आपने ऐसे आश्वासन दे रखे हैं, जो आप पूरे नहीं कर सकते। आपने ऐसे वक्तव्य दे रखे हैं, जो असत्य हैं। आपने सबको धोखे में रख छोड़ा है और आपके चारों तरफ एक झूठी दुनिया खड़ी हो गई है। सरलता का अर्थ है, यह दुनिया गिरेगी, खंडहर हो जाएगा। क्योंकि आप अपनी पत्नी से कहते ही चले जा रहे हैं कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। वह मानती नहीं। वह रोज पूछती है कि प्रेम करते हैं? हजार ढंग से पूछती है कि आप मुझे प्रेम करते हैं?

पति—पत्नी एक—दूसरे से पूछते हैं बार—बार, तरकीबें निकालते हैं पूछने की, कि आप मुझे अभी भी प्रेम करते हैं? क्योंकि भरोसा तो दोनों को नहीं आता, आ भी नहीं सकता। क्योंकि दोनों धोखा दे रहे हैं। पत्नी भी जानती है कि जब मैं ही नहीं करती हूं प्रेम, तो दूसरे का क्या भरोसा! पति भी जानता है कि जब मैं ही नहीं करता हूं प्रेम, तो पत्नी का क्या भरोसा!

इसलिए दोनों छिपी नजरों से जांच करते रहते हैं कि प्रेम है भी या नहीं। और एक—दूसरे से पूछते रहते हैं। और जब एक—दूसरे से पूछते हैं, तो गले लगाकर एक—दूसरे को आश्वासन देते हैं कि अरे, तेरे सिवाय जन्मों—जन्मों में न किसी को किया है, न कभी करूंगा। जन्मों—जन्मों की बात कर रहे हैं और भीतर सोच रहे हैं कि इसी जन्म में अगर छुटकारा हो सके! वह भीतर चल रहा है।

संतत्व की सबसे बड़ी तपश्चर्या है, सरल हो जाना। शुरू में बहुत कठिनाई होगी। लेकिन कठिनाई शुरू में ही होगी, थोड़े ही दिन में कठिनाइयां शांत हो जाएंगी। और थोड़े दिन में आप पाएंगे कि कठिनाइयों के ऊपर उठ गए। और जब आप सरल हो जाएंगे, तो लोग आपकी बात का बुरा भी न मानेंगे।

शुरू में तो बहुत बुरा मानेंगे, क्योंकि आप एकदम बदलेंगे और लगेगा कि यह क्या हो गया! यह आदमी कल तक क्या था, आज क्या हो गया! एकदम पतन हो गया इस आदमी का। कल तक कहता था प्रेम, आज कहता है कि एक क्षण प्रेम का मुझे कोई पता ही नहीं है। मैंने कभी तुझे प्रेम किया नहीं है।

शुरू में कठिनाई होगी, लेकिन जैसे—जैसे सरलता बढ़ती जाएगी, प्रकट होने लगेगी, वैसे—वैसे कठिनाई विदा हो जाएगी। और एक मजा है, सरलता में झेली गई कठिनाई भी सुख देती है और जटिलता में आया सुख भी दुख ही हो जाता है। क्योंकि हम भीतर इतनी गांठों से भर जाते हैं कि सुख हममें प्रवेश ही नहीं कर सकता। हम भीतर इतने अशांत हो जाते हैं कि अब कोई शांति की किरण हममें प्रवेश नहीं कर सकती।

तो कृष्ण कहते हैं, मन—वाणी की सरलता, श्रद्धा— भक्ति सहित गुरु की सेवा—उपासना...।

इतनी क्यों बातें जोड़नी? श्रद्धा— भक्ति सहित गुरु की सेवा—उपासना। क्या जरूरत है इतनी बातें जोड्ने की गुरु की उपासना में?

कारण है। किसी को भी गुरु स्वीकार करना मनुष्य के लिए अति कठिन है। इस जगत में कठिनतम बातों में यह बात है कि किसी को गुरु स्वीकार करें। क्योंकि गुरु स्वीकार करने का अर्थ होता है, मैंने अपने को स्वीकार किया कि मैं अज्ञानी हूं। गुरु को स्वीकार करने का अर्थ होता है, मैंने स्वीकारा कि मैं अज्ञानी हूं। यह बड़ी कठिन बात है। हमारा मानना होता है कि हम तो शानी हैं ही।

तो शिष्य बनना बहुत कठिन है। शायद सर्वाधिक कठिन बात कही जा सकती है, शिष्य बनना, सीखने की तैयारी। अहंकार को छोड़ना पड़े पूरा।

और फिर किसी को गुरु स्वीकार करना, किसी को अपने से ऊपर स्वीकार करना, बड़ा जटिल है। मन तो यही कहता है कि मुझसे ऊपर कोई भी दुनिया में नहीं है। और सब हैं, मुझसे नीचे हैं। हर आदमी अपने को शिखर पर मानता है। यह सहज मन की दशा है।

तो किसी को अपने से ऊपर मानना बडी कठिन है बात। हम कामचलाऊ ढंग से मान लेते हैं। इसलिए किसी को शिक्षक बना लेना आसान है, गुरु बनाया कठिन है। और फर्क है गुरु और शिक्षक में। शिक्षक का मतलब है, यह कामचलाऊ संबंध है। ! तुमसे हम सीख लेते हैं, उसके बदले में हम तुम्हें कुछ दे देते हैं। तुम्हारी फीस ले लो। हम तुम्हें धन दे देते हैं, तुम हमें ज्ञान दे दो, बात खतम हो गई। यह गुरु का संबंध नहीं है।

शिक्षक का संबंध ऐसा है, रास्ते पर किसी आदमी से पूछा कि स्टेशन का रास्ता किधर जाता है। बस, इतनी बात है। उसने रास्ता बता दिया। आपने उसको धन्यवाद दे दिया, अपने रास्ते पर चले गए। कुछ लेना—देना नहीं है। शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध ऐसा है, उसमें कामचलाऊ रिश्ता है, उपयोगिता का संबंध है।

गुरु और शिष्य का रिश्ता गैर—उपयोगिता का है और उसमें कोई कामचलाऊ बात नहीं है। और इसीलिए गुरु को शिष्य कुछ भी तो नहीं दे सकता। प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं दे सकता, कोई धन नहीं दे सकता।

पुराने दिनों में तो व्यवस्था यह थी कि गुरु भोजन भी विद्यार्थी को देगा, आश्रम में रहने की जगह भी देगा। उसकी सब भांति फिक्र करेगा, जैसे पिता अपने बेटे की फिक्र करे। ज्ञान भी देगा और बदले में कुछ भी नहीं लेगा।

आप कठिनाई में पड़ेंगे उस आदमी के साथ, जो बदले में कुछ न ले। जो बदले में कुछ ले ले, उससे तो हमारा नाता—रिश्ता समानता का हो जाता है। जो बदले में कुछ न ले, उससे हमारा नाता—रिश्ता समानता का कभी नहीं हो पाता। वह ऊपर होता है, हम नीचे होते हैं।

तो इतने आग्रहपूर्वक कृष्ण कहते हैं, श्रद्धा— भक्ति सहित गुरु की सेवा—उपासना।

श्रद्धा— भक्ति की बहुत जरूरत पड़ेगी। और इसका एक मनोवैज्ञानिक रूप भी समझ लेना जरूरी है।

मनसविद कहते हैं कि जिस व्यक्ति से भी हम कुछ लेते हैं और उसके उत्तर में नहीं दे पाते, उसके प्रति हमारे मन में दुश्मनी पैदा होती है। क्योंकि उस आदमी ने हमें किसी तरह नीचा दिखाया है। एक मेरे मित्र हैं। बड़े धनपति हैं और बड़े दंभी हैं। और बड़े भले आदमी हैं। और जब भी कोई मुसीबत में हो, तो उसकी सहायता करते हैं। कम से कम उनके रिश्तेदारों में तो कोई भी मुसीबत में हो, तो वे हर हालत में सहायता करते हैं। मित्र, परिचित, कोई भी हो, सहायता करते हैं।

एक दिन मेरे पास आकर वे कहने लगे कि मैंने जिंदगी में सिवाय दूसरों की सहायता के कुछ भी नहीं किया, लेकिन कोई भी मेरा उपकार नहीं मानता है! उलटे लोग मेरी निंदा करते हैं। जिनकी मैं सहायता करता हूं वे ही निंदा करते हैं। जिनको मैं पैसे से सब तरह की सुविधा पहुंचाता हूं वे ही मेरे दुश्मन बन जाते हैं। तो कारण क्या है? किस वजह से ऐसा हो रहा है?

तो मैंने उनसे कहा कि आप उनको भी कुछ उत्तर देने का मौका देते हैं कि नहीं? तो उन्होंने कहा कि उसकी तो कोई जरूरत ही नहीं है। मेरे पास पैसा है, मैं उनकी सहायता कर देता हूं। तो फिर, मैंने कहा कि कठिनाई है। क्योंकि वे क्या करें! जब आप उनकी सहायता करते हैं, तो आपको लगता है कि आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं; लेकिन जिसकी सहायता की जाती है, वह आदमी तो अनुभव करता है कि उसका अपमान हुआ। ऐसा मौका आया कि किसी की सहायता लेनी पड़ी। और फिर लौटा सकता नहीं है, आप किसी को लौटाने देते नहीं हैं। तो फिर वह आपका दुश्मन हो जाएगा। वह आपका उत्तर किसी न किसी तरह तो देगा।

दो ही उपाय हैं, या तो आप उसकी कोई सहायता लें और उसको भी ऊपर होने का कोई मौका दें। और नहीं तो फिर वह आपकी सहायता झूठी थी, धोखे की थी, आप आदमी बुरे हैं, ये सब खबरें फैलाकर अपने मन को यह सांत्वना दिलाएगा कि इतने बुरे आदमी से नीचे होने का कोई सवाल ही नहीं; इस बुरे आदमी से तो मैं ही ऊपर हूं। यह वह कंसोलेशन, सांत्वना खोज रहा है।

आदमी के मन की बड़ी जटिलता है।

गुरु से आप ज्ञान लेते हैं, लौटा तो कुछ भी नहीं सकते। क्योंकि ज्ञान कैसे लौटाया जा सकता है! उससे जो मिलता है, उसका कोई प्रत्युत्तर नहीं हो सकता। इसलिए भारत में बड़े आग्रहपूर्वक यह कहा है कि श्रद्धा और भक्ति सहित।

अगर बहुत प्रगाढ़ श्रद्धा हो, तो ही शिष्य गुरु के विरोध में जाने से बच सकेगा, नहीं तो दुश्मन हो जाएगा। आज नहीं कल शिष्य के दुश्मन हो जाने की संभावना है। वह दुश्मन हो ही जाएगा। वह कोई न कोई बहाना और कोई न कोई कारण खोजकर शत्रुता में खड़ा हो जाएगा, तभी उसको राहत मिलेगी कि झंझट मिटी, इस आदमी के बोझ से मुक्त हुआ।

इसलिए हमने बहुत खोजबीन करके श्रद्धा और भक्ति को अनिवार्य शर्त माना है शिष्य की, तभी शिष्य गुरु के साथ उसके मार्ग पर चल सकता है और दुश्मन होने से बच सकता है। नहीं तो गुरु का शिष्य दुश्मन हो ही जाएगा।

इसे हम ऐसा समझें कि बेटे बाप के दुश्मन हो जाते हैं। इसलिए हमने बाप के प्रति बहुत श्रद्धा का भाव पैदा करने की कोशिश की है, नहीं तो बेटे बाप के दुश्मन हो ही जाएंगे। क्योंकि बाप से सब मिलता है, और लौटाने का क्या है।

पर बाप से तो जो मिलता है, वह लौटाया भी जा सकता है, क्योंकि बाह्य वस्तुएं हैं। गुरु से जो मिलता है, वह तो लौटाया ही नहीं जा सकता है। वह तो ऐसी घटना है कि उसको लौटाने का सिर्फ एक उपाय है कि तुम किसी और को शिष्य बना देना। बस, वही उपाय है, और कोई उपाय नहीं है। जो तुमने गुरु से पाया है, वह तुम किसी और शिष्य को दे देना, यही उपाय है। गुरु तक लौटाने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए श्रद्धा— भक्ति सहित गुरु की उपासना। बाहर— भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता, मन—इद्रियों सहित शरीर का निग्रह।

इन सबके संबंध में मैंने काफी बात पीछे की है।

लोक—परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुख और दोषों का बारंबार दर्शन, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

आखिरी बात जिसकी अभी चर्चा नहीं हुई, उसकी हम बात कर लें। जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, दुख इत्यादि में बारंबार दोषों का दर्शन, ये सब ज्ञान के लक्षण हैं।

जब आप पर कोई बीमारी आती है, कोई दुख आता है, कोई असफलता घटित होती है, कोई संताप घेर लेता है, तब आप क्या करते हैं? तब आप तत्क्षण यही सोचते हैं कि किन्हीं दूसरे लोगों की शरारत षड़यंत्र के कारण आप कष्ट पा रहे हैं। तो यह अज्ञानी का लक्षण है।

ज्ञानी लक्षण यह है कि जब भी वह दुख पाता है, तब वह सोचता है कि जरूर मैंने कोई दोष किया, मैंने कोई पाप किया, मैंने कोई भूल की, जिसका मैं फल भोग रहा हूं। ज्ञान का लक्षण यह है कि जब भी दुख मिले, तो अपने दोष की खोज करना। जरूर कहीं न कहीं मैंने बोया होगा, इसलिए मैं काट रहा हूं।

अज्ञानी दूसरे को दोषी ठहराता है, ज्ञानी सदा अपने को दोषी ठहराता है। और इसलिए अज्ञानी दोष से कभी मुक्त नहीं होता, ज्ञानी दोष से मुक्त हो जाता है। अगर मुझे यह प्रगाढ़ प्रतीति होने लगे—और होगी ही—अगर हर दुख में, हर पीड़ा में, हर रोग में, हर मृत्यु में मैं यही जानूंगा कि मेरी कोई भूल है, तो निश्चित ही आगे उन भूलों को करना मुश्किल हो जाएगा। जिन दोषों से इतना दुख पैदा होता है, उनको करना असंभव हो जाएगा। मेरा मन संस्कारित हो जाएगा। मुझे यह स्मरण गहरे में बैठ जाएगा, तीर की तरह चुभ जाएगा।

अगर सभी दुख मेरे ही कारण से पैदा हुए 'हैं, तो फिर आगे मेरे दुख पैदा होने मुश्किल हो जाएंगे, क्योंकि मैं अपने कारणों को हटाने लगता। लेकिन अज्ञानी के दुख दूसरों के कारण से पैदा होते हैं। इसलिए उसके हाथ में कोई ताकत ही नहीं है, वह कुछ कर सकता नहीं। दूसरे जब बदलेंगे, सारी दुनिया जब बदलेगी, तब वह सुखी हो सकता है!

अज्ञानी सुखी होगा, जब सारी दुनिया बदल जाएगी और कोई गड़बड़ नहीं करेगा, तब। ऐसा कभी होने वाला नहीं है। ज्ञानी अभी सुखी हो सकता है, इसी क्षण सुखी हो सकता है। क्योंकि वह मानता है कि दुख मेरे ही किसी दोष के कारण हैं।

मुसलमान फकीर इब्राहीम एक रास्ते से गुजरता था। उसके शिष्य साथ थे। इब्राहीम के प्रति उनका बड़ा आदर, बड़ा भाव, बड़ा सम्मान था। वह आदमी भी वैसा पवित्र था। अचानक इब्राहीम के पैर में पत्थर की चोट लगी और जमीन पर गिर पड़ा, पैर लहूलुहान हो गया।

शिष्य बहुत चकित हुए, शिष्य बहुत हैरान हुए। शिष्यों ने कहा कि यह किसी की शरारत मालूम पड़ती है। कल शाम को हम निकले थे, तब यह पत्थर यहां नहीं था। और सुबह आप यहां से निकलेंगे और मस्जिद जाएंगे सुबह के अंधेरे में, किसी ने यह पत्थर जानकर यहां रखा है। दुश्मन काम कर रहे हैं।

इब्राहीम ने कहा, पागलों, फिजूल की बातों में मत पड़ो। रुको। और इब्राहीम घुटने टेककर परमात्मा को धन्यवाद देने बैठ गया। प्रार्थना करने के बाद उसने कहा, हे परमात्मा, तेरी बड़ी कृपा है। पाप तो मैंने ऐसे किए हैं कि आज फांसी लगनी चाहिए थी, सिर्फ पत्थर की चोट से तूने मुझे छुड़ा दिया। तेरी अनुकंपा अपार है। ज्ञानी का लक्षण है, जब भी कोई पीड़ा आए, तो खोजना, कहीं अपनी कोई भूल, अपना कोई दोष, जिसके कारण यह दुख आ रहा होगा।

ये कृष्ण ने ज्ञान के लक्षण कहे हैं। इन लक्षणों को जो भी पूरा करने लगे, वह धीरे—धीरे ज्ञान के मंदिर की तरफ बढ़ने लगता है। और मंदिर बहुत दूर नहीं है। जहां आप खड़े हैं, बहुत पास है।

लेकिन जिस ढंग से आप खड़े हैं, बहुत दूर है, क्योंकि आप पीठ किए खड़े हैं। इन लक्षणों के विपरीत आप सब कुछ कर रहे हैं। आपकी पीठ है मंदिर की तरफ। इसलिए अगर आप और गहन अंधकार में, और अज्ञान में, और दुख में प्रवेश करते चले जाते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

गीता दर्शन–भाग–6
समत्व और एकीभाव—प्रवचन—चौथा
अध्याय—13

सूत्र

असक्तिरभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समीचत्ततत्वमिष्टानिष्टोययीत्तषु।।9।।
मयि चानन्ययोगेन भाक्तईरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसोईख्वमरतिर्जनसंसदि।।10।।

अध्यात्मज्ञाननित्यन्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानीमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोउन्यथा।। 11 ।।
तथा पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय—अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही मिल का सम रहना अर्थात मन के अनुकूल और प्रतिकूल के प्राप्त होने पर हर्ष— शोकादि विकारों का न होना। और मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यान— योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति, प्रेम का न होना।

तथा अध्यात्म— ज्ञान में नित्य स्थिति और तत्वज्ञान के अर्थरूय परमत्मा को सर्वत्र देखना, यह सब तो ज्ञान है; और जो हमसे विपरीत है, वह अज्ञान है, ऐसा कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है, मैं बहुत बेचैन हूं और मेरे पास इतनी बेचैनी है कि सारी शक्ति इस बेचैनी में ही समाप्त हो जाती है। तो मैं इस बेचैनी का क्या उपयोग कर सकता हूं और इस बेचैनी का कारण क्या है?
मनुष्य का होना ही बेचैनी है। कम या ज्यादा, लेकिन ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है, जो बेचैन न हो। मनुष्य बेचैन होगा ही।

नीत्शे ने कहा है कि मनुष्य ऐसे है, जैसे एक पुल, दो किनारों पर टिका हुआ, बीच में अधर लटका हुआ। पीछे पशु का जगत है और आगे परमात्मा का आयाम, और मनुष्य बीच में लटका हुआ है। वह पशु भी नहीं है और अभी परमात्मा भी नहीं हो गया है। पशु होने से थोड़ा ऊपर उठ आया है। लेकिन उसकी जड़ें पशुता में फैली हुई हैं। और किसी भी मूर्च्छा के क्षण में वह वापस पशु हो जाता है। और आगे विराट परमात्मा की संभावना है। उसमें से दिव्यता के फूल खिल सकते हैं।

भविष्य है; वह भविष्य भी खींचता है। अतीत खींचता है, क्योंकि अतीत में हमारा अनुभव है, हमारी जड़ें हैं। और भविष्य भी खींचता है, क्योंकि भविष्य में हमारी संभावना और आशा है। और मनुष्य भविष्य और अतीत के बीच में एक तनाव है।

कोई जानवर इतना बेचैन नहीं है, जितना मनुष्य। पशुओं की आंखों में झांकें; कोई बेचैनी नहीं है, कोई अशांति नहीं है। पशु अपने होने से राजी है। कुत्ता कुत्ता है। बिल्ली बिल्ली है। शेर शेर है। और आप किसी शेर से यह नहीं कह सकते कि तू कुछ कम शेर है या किसी कुत्ते से भी नहीं कह सकते कि तू कुछ कम कुत्ता है। लेकिन आदमी से आप कह सकते हैं कि तू कुछ कम आदमी है। सभी आदमी बराबर आदमी नहीं हैं, लेकिन सभी कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। कुत्ता जन्म से ही कुत्ता है। आदमी जन्म से केवल एक बीज है। हो भी सकता है, न भी हो।

आदमी को छोड्कर सभी पशु पूरे के पूरे पैदा होते हैं; आदमी अधूरा है। उस अधूरे में बेचैनी है। और पूरे होने के दो रास्ते हैं। या तो आदमी वापस नीचे गिरकर पशु हो जाए तो थोड़ी राहत मिलती है। क्रोध में आपको जो राहत मिलती है, हिंसा में जो राहत मिलती है, संभोग में जो राहत मिलती है, शराब में जो राहत मिलती है, वह नीचे पशु हो जाने की राहत है। आप वापस गिरकर यह खयाल छोड़ देते हैं कि कुछ होना है। आप राजी हो जाते हैं, नीचे गिरकर।

लेकिन वह राहत बहुत थोड़ी देर ही टिक सकती है। वह राहत इसलिए थोड़ी देर ही टिक सकती है, क्योंकि पीछे गिरने का प्रकृति में कोई उपाय नहीं है। कोई बूढ़ा बच्चा नहीं हो सकता वापस। थोड़ी देर को अपने को भुला सकता है; बच्चों के खिलौनों में भी डूब सकता है थोड़ी देर को, गुड्डा—गुड्डी का विवाह भी रचा सकता है। और थोड़ी देर को शायद भूल भी जाए कि मैं का हूं। लेकिन यह भूलना ही है। कोई बूढ़ा वापस बच्चा नहीं हो सकता।

और यह भूलना कितनी देर चलेगा? यह विस्मरण कितनी देर चलेगा? यह थोड़ी देर में टूट जाएगा। असलियत ज्यादा देर तक नहीं भुलाई जा सकती। और जैसे ही यह टूटेगा, बूढ़ा वापस बूढ़ा हो जाएगा।

आदमी पशु हो सकता है। आप क्रोध में थोड़ी देर मजा ले सकते हैं, लेकिन कितनी देर? और जैसे ही क्रोध के बाहर आएंगे, पश्चात्ताप शुरू हो जाएगा। आप शराब पीकर थोड़ी देर को भूल सकते हैं, लेकिन कितनी देर? शराब के बाहर आएंगे और पश्चात्ताप शुरू हो जाएगा।

जितनी भी मूर्च्छा की विधियां हैं, वे पशु होने के मार्ग हैं। आदमी, आदमी जैसा है, वैसा रहे, तो बेचैन है। या तो पीछे गिरे, तो चैन मिलता है। लेकिन चैन क्षणभर का ही होता है। जिनको हम सुख कहते हैं, वे पशुता के सुख हैं। और इसलिए सुख क्षणभंगुर होता है। क्योंकि हम पशु सदा के लिए नहीं हो सकते। पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है। आगे जाने का ही एकमात्र उपाय है।

और दूसरा उपाय है कि आदमी बेचैनी के बाहर हो जाए कि वह परमात्मा के साथ अपने को एक होना जान ले। उसके भीतर जो छिपा है, वह पूरा प्रकट हो जाए। मनुष्य अपना भविष्य बन जाए। वह जो हो सकता है, वह हो जाए। तो वैसी ही शांति आ जाएगी, जैसी गाय की आंख में दिखाई पड़ती है। इसलिए संतों की आंखों में अक्सर पशुओं जैसी सरलता वापस लौट आती है। लेकिन वह पशुओं जैसी है, पाशविक नहीं है।

पशु भी शांत है। इसलिए शांत है कि अभी उसे बेचैनी का बोध ही नहीं हुआ। अभी विकास का खयाल पैदा नहीं हुआ। अभी आगे बढ़ने की आकांक्षा पैदा नहीं हुई। अभी आकाश को छूने और स्वतंत्रता की तरफ उड़ने के पंख नहीं लगे। अभी स्वप्न नहीं पैदा हुआ सत्य का। वह सोया हुआ है। जैसा सोया हुआ आदमी शांत होता है, ऐसा पशु भी शांत है।

संत भी शांत हो जाता है। लेकिन स्वप्न पूरा हो गया, इसलिए। सत्य पा लिया, इसलिए। संत पूरा हो गया। अब वह अधूरा नहीं है। अधूरे में बेचैनी रहेगी।

तो आप अकेले बेचैन हैं, ऐसा नहीं है। मनुष्य ही बेचैन है। और इस बेचैनी का, पूछा है, क्या उपयोग करें? इस बेचैनी का उपयोग करें, वह जो भविष्य है उसको पाने के लिए; वह जो आप हो सकते हैं, वह होने के लिए। इस बेचैनी में मत उलझे रहें। और इस बेचैनी को ढोते मत रहें। इसका उपयोग कर लें।

हम भी बेचैनी का उपयोग करते हैं, लेकिन हम उपयोग दो ढंग से करते हैं। दोनों ढंग से खतरा होता है। या तो हम बेचैनी का उपयोग करते हैं बेचैनी को निकाल लेने में। क्रोध में, हिंसा में, घृणा में, ईर्ष्या में, प्रतिस्पर्धा में, संघर्ष में हम बेचैनी को निकालने का उपयोग करते हैं। उससे बेचैनी समाप्त नहीं होगी, क्योंकि बेचैनी का वह कारण नहीं है।

जब तक आपके भीतर की मूर्ति नहीं निखरती, और जब तक आपके भीतर का स्वभाव प्रकट नहीं होता, और जब तक आप में छिपा हुआ बीज फूल नहीं बनता, तब तक आपकी बेचैनी दूर नहीं होगी। है।, थोड़ी देर को आप किसी पर बेचैनी उलीच सकते हैं। उस उलीचने में राहत मिलेगी। लेकिन आप अपनी शक्ति को व्यर्थ खो रहे हैं। जिस शक्ति से बड़ी यात्रा हो सकती थी, उससे आप केवल लोगों को और स्वयं को दुख दे रहे हैं। एक तो हम यह उपयोग करते हैं।

और दूसरा हम यह उपयोग करते हैं कि जब हम बेचैनी को नहीं निकाल पाते और बेचैनी को नहीं फेंक पाते, तो फिर हम बेचैनी को भुलाने के लिए उपयोग करते हैं। तो कोई शराब पी लेता है, कोई सिनेमाघर में जाकर बैठ जाता है। कोई संगीत सुनने लगता है। हम कोशिश करते हैं कि यह जो भीतर चलता हुआ तूफान है, यह भूल जाए, यह याद में न रहे। यह भी समय और शक्ति का अपव्यय है। एक तीसरा और ठीक मार्ग है। और वह यह है, इस बेचैनी को समझें, और इस बेचैनी को साधना में रूपांतरित करें। यह बेचैनी साधना बन सकती है। इसे भुलाने की कोई जरूरत नहीं है। और न इसे रुग्ण और हिंसा के मार्गों पर प्रेरित करने की जरूरत है। इस बेचैनी का आध्यात्मिक उपयोग हो सकता है। यह बेचैनी सीढ़ी बन सकती है। यह बेचैनी शक्ति है, यह उबलता हुआ ऊर्जा का प्रवाह है २ इस प्रवाह को आप ऊपर की तरफ ले जा सकते हैं। छोटे—से प्रयोग करें।

आपको खयाल नहीं होगा। आपको क्रोध आ जाए, तो आप सोचते हैं, एक ही रास्ता है कि क्रोध को प्रकट करो। या एक रास्ता है कि क्रोध को दबा लो और पी जाओ। लेकिन पी लिया गया क्रोध आगे—पीछे प्रकट होगा। पी लिया गया क्रोध पीया नहीं जा सकता, वह जहर उबलता ही रहेगा और कहीं न कहीं निकलेगा। और तब खतरे ज्यादा हैं।

क्योंकि वह उन लोगों पर निकलेगा, जिनसे उसका कोई संबंध भी नहीं था। और कहीं न कहीं उसकी छाया पड़ेगी और जीवन को नुकसान पहुंचेगा।

माइकलएंजलो ने लिखा है कि जब भी मुझे क्रोध पकड़ लेता है, तब मैं छैनी उठाकर अपनी मूर्ति को बनाने में लग जाता हूं पत्थर तोड्ने लगता हूं। और लिखा है माइकलएंजलो ने कि मैं हैरान हो जाता हूं कि पांच—सात मिनट पत्थर तोड्ने के बाद मैं पाता हूं कि मैं हलका हो गया; क्रोध तिरोहित हो गया। किसी आदमी को तोड्ने की जरूरत नहीं रही।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब आपको क्रोध आए, तो आप छोटे—से प्रयोग करें। और आप हैरान होंगे कि क्रोध नई यात्रा पर निकल सकता है। माइकलएंजलो मूर्ति बना लेता है क्रोध से। सृजनात्मक हो जाता है क्रोध।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आपको क्रोध आए, तो आप इतना ही करें कि जोर से मुट्ठी बांधें पांच बार और खोलें। और आपका क्रोध तिरोहित हो जाएगा। आप कहेंगे, इतना आसान नहीं है। लेकिन करके देखें। जितनी जोर से मुट्ठी बांध सकते हों, पूरी ताकत लगा दें, और खोलें, फिर बांधें और खोलें—पांच बार। और फिर लौटकर अपने भीतर देखें कि क्रोध कहां है! आप हैरान होंगे कि क्रोध हलका हो गया, या खो भी गया, या समाप्त भी हो गया।

जापान में वे सिखाते हैं बच्चों को कि जब भी क्रोध आए तब तुम गहरी श्वास लो और छोड़ो। आप एक पंद्रह—बीस श्वास गहरी लेंगे और छोड़ेंगे, और आप पाएंगे कि क्रोध विलीन हो गया। न तो उसे दबाना पडा, और न किसी पर प्रकट करना पड़ा। और बीस गहरी श्वास स्वास्थ्य के लिए लाभपूर्ण है। वह सृजनात्मक हो गया।

जो बंधे हुए रास्ते हैं, वे ही आखिरी रास्ते नहीं हैं। अध्यात्म, जीवन की समस्त बेचैनी का नया उपयोग करना लिखा है। जैसे जब आपको क्रोध आए, तो आप आंख बंद कर लें और क्रोध पर ध्यान करें। मुट्ठी बांधकर भी शक्ति व्यर्थ होगी। श्वास लेंगे, तो थोड़ा—सा उपयोग होगा स्वास्थ्य के लिए। मूर्ति बनाएंगे, तो थोड़ा—सा सृजनात्मक काम होगा।

लेकिन क्रोध जब आए, तो आंख बंद करके क्रोध पर ध्यान करें। कुछ भी न करें, सिर्फ क्रोध को देखें कि क्रोध क्या है। क्रोध का दर्शन करें। साक्षी बनकर बैठ जाएं। जैसे कोई और क्रोध में है और आप देख रहे हैं। और अपनी क्रोध से भरी प्रतिमा को पूरा का पूरा निरीक्षण करें।

थोड़े ही निरीक्षण में आप पाएंगे, क्रोध समाप्त हो गया, क्रोध विलीन हो गया। जैसा मुट्ठी बांधने से विलीन होता है, पत्थर तोड्ने से विलीन होता है, वैसा निरीक्षण से भी विलीन होता है।

लेकिन निरीक्षण से जब विलीन होता है क्रोध, तो क्रोध में जो शक्ति छिपी थी, वह आपकी अंतर—आत्मा का हिस्सा हो जाती है। जब मुट्ठी से आप क्रोध को विलीन करते हैं, तो शक्ति बाहर चली जाती है। जब आप पत्थर तोड़ते हैं, तो भी बाहर चली जाती है। लेकिन जब आप सिर्फ शुद्ध निरीक्षण करते हैं, सिर्फ एक विटनेस होकर भीतर रह जाते हैं कि क्रोध उठा है, मैं इसे देखूंगा। और कुछ भी न करूंगा, इस क्रोध के पक्ष में, विपक्ष में कुछ भी न करूंगा, सिर्फ देखूंगा। यह भी न कहूंगा कि क्रोध बुरा है। यह भी न कहूंगा कि क्रोध नहीं करना चाहिए। यह भी न कहूंगा कि मुझे क्रोध क्यों होता है। मैं सिर्फ देखूंगा। जैसे आकाश में एक बादल जा रहा हो, ऐसे भीतर क्रोध के बादल को देखूंगा। जैसे रास्ते से कोई गुजर रहा हो, ऐसे भीतर से गुजरते क्रोध को देखूंगा। सिर्फ देखूंगा, कुछ करूंगा नहीं।

और आप चकित हो जाएंगे। कुछ ही क्षणों में, देखते ही देखते, क्रोध शांत हो गया है। और वह जो क्रोध की शक्ति थी, वह आपको भीतर उपलब्ध हो गई है।

इतनी जीवन की समस्त बेचैनी को, निरीक्षण और साक्षी के द्वारा अंतर्यात्रा के उपयोग में ले आता है। वह स्थूल बन जाती है, वह ईंधन बन जाती है। और इसलिए कई बार ऐसा हुआ है कि महाक्रोधी क्षणभर में आध्यात्मिक हो गए हैं।

हमने वाल्मीकि की कथा सुनी है। ऐसी बहुत कथाएं हैं। और हमें हैरानी होती है कि इतने क्रोधी, हिंसक, हत्यारे तरह के व्यक्ति क्षणभर में कैसे आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर गए? राज, उसका रहस्य यही है।

असल में अगर आपके पास क्रोध की शक्ति भी नहीं है, तो आपके पास ईंधन भी नहीं है, आप उपयोग क्या करिएगा? इसलिए साधारण क्रोधी आध्यात्मिक नहीं हो पाता। खयाल करना। साधारण कामवासना से भरा व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं हो पाता। साधारण दुष्टता से भरा व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं हो पाता। उसके पास जो कुछ भी है, उसमें वह कुनकुना ही हो सकता है, उबल नहीं सकता। उसके पास शक्ति क्षीण है।

इसलिए आप घबड़ाना मत। अगर बेचैनी ज्यादा है, सौभाग्य है। अगर कामवासना प्रगाढ है, सौभाग्य है। अगर क्रोध भयंकर है, बड़ी परमात्मा की कृपा है। इसका अर्थ है कि आपके पास ईंधन है। अब यह दूसरी बात है कि ईंधन से आप यात्रा करेंगे कि घर जला लेंगे। इसमें जल मरेंगे या इस ऊर्जा का उपयोग करके यात्रा पर निकल जाएंगे, यह आपके हाथ में है।

परमात्मा ने जो भी दिया है, वह सभी उपयोगी है। चाहे कितना ही विकृत दिखाई पड़ता हो, और चाहे कितना ही खतरनाक और पापपूर्ण मालूम पडता हो, जो भी मनुष्य को मिला है, उस सबकी उपयोगिता है। और अगर उपयोग आप न कर पाएं, तो आपके अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है।

कुछ लोग हैं, जिनको अगर खाद दे दिया जाए, तो घर में ढेर लगाकर गंदगी भर लेंगे। उनका घर दुर्गंध से भर जाएगा। और कुछ लोग हैं, जो खाद को बगीचे में डाल लेंगे। और उसी खाद से फूल निकल आएंगे, और उनका घर सुगंध से भर जाएगा। जो खाद को ही सम्हालकर बैठ जाएंगे, वे भगवान को गाली देंगे कि हम पर यह किस भांति का अभिशाप है कि यह खाद हमारे ऊपर डाल दिया है! जो जानते हैं, वे खाद से फूल निर्मित कर लेते हैं।

फूलों की जो सुगंध है, वह खाद की ही दुर्गंध है। फूलों में जो रंग है, वह खाद का ही है, वह सब खाद ही रूपांतरित हुआ है। मनुष्य के पास क्रोध, घृणा, हिंसा खाद है; अध्यात्म का फूल खिल सकता है। अगर आप थोड़े—से साक्षी को जगाने की कोशिश करें। साक्षी— भाव माली बन जाता है।

तो बेचैनी से घबडाएं मत, अशांति से घबडाएं मत। भीतर पागलपन उबलता हो, भयभीत न हों। उसका उपयोग करें। उसके साक्षी होना शुरू हो जाएं। और जब भी कोई चीज भीतर पकड़े, तो उसको अवसर समझें, कि वह ध्यान का एक मौका है, उस पर ध्यान करें।

लेकिन हम उलटा करते हैं। जब क्रोध आ जाए, तो हम राम—राम जपते हैं। हम सोचते हैं कि हम ध्यान कर रहे हैं। राम—राम जपना तो सिर्फ डायवर्शन है। वह तो क्रोध उबल रहा है, आप अपने मन को कहीं और लगा रहे हैं, ताकि इस क्रोध में न उलझना पड़े। यह तो इस तरह राम—राम जपकर आप सिर्फ अपने को थोड़ी देर के लिए बचा रहे हैं, मस्तिष्क को हटा रहे हैं।

लेकिन क्रोध वहा पड़ा है, वह बदलेगा नहीं। आपके हटने से नहीं बदलेगा, आपके जम जाने से और देखने से बदलेगा। आप पीठ कर लेंगे, तो क्रोध और घाव बना देगा भीतर, और जड़ें जमा लेगा। आप अपनी दोनों आंखें क्रोध पर गड़ा दें। और यह क्षण है कि आप होशपूर्वक क्रोध को देख लें।

कामवासना मन को पकड़े, तो भागें मत। घबडाएं मत। राम—राम मत जपें। कामवासना को सीधा देखें। सीधा साक्षात्कार जरूरी है वासनाओं का। लेकिन आदमी को भागना सिखाया गया है। उसको कहा गया है, जहां भी कुछ बुरा दिखाई पड़े, भाग खड़े होओ।

लेकिन भागोगे कहां? बुरा तुम्हारे भीतर है, वह तुम्हारे साथ चला जाएगा। अपने से भागने का कोई भी रास्ता नहीं है। अगर बुराई कहीं बाहर होती, तो हम भाग भी जाते। वह हमारे भीतर खड़ी है, उसको बदलना पड़ेगा। इस खाद का उपयोग करना पड़ेगा। और इसका उपयोग करना बहुत कठिन नहीं है।

कठिनाई सिर्फ दो हैं। एक, कि हम पहले से ही दुर्भाव बनाए बैठे हैं। जो आदमी खाद का दुश्मन बना बैठा है, वह खाद का उपयोग न कर पाएगा। हम पहले से ही माने बैठे हैं, क्रोध बुरा है, घृणा बुरी है, सब बुरा है। और उस सबसे हम भरे हैं। बुरे की जो धारणा है, वह देखने नहीं देती। बुरे की जो धारणा है, वह निष्पक्ष विचार नहीं करने देती। बुरे की जो धारणा है, वह समझने के पहले ही भागने और लड़ने में लगा देती है।

तो एक तो धारणाएं छोड़े। निर्धारणापूर्वक देखना शुरू करें। तथ्य उन्हीं के सामने प्रकट होते हैं, जो बिना धारणा के उन्हें देखते हैं। जो धारणा से देखते हैं, वे तो अपनी ही धारणा को परिपुष्ट कर लेते हैं।

दूसरी बात, भागने की आदत छोड़े। पूरी पृथ्वी पर हमें पलायन सिखाया गया है, भागो, बचो। भागने से कोई भी कभी जीत को उपलब्ध नहीं होता। तो क्रोध आ गया है, तो आप रेडियो खोल लेते हैं। मन में कामवासना उठी है, तो रामायण पढ़ने लगते हैं। घृणा मन में उठ गई है, हिंसा का भाव आता है, तो मंदिर चले जाते हैं। भागें मत। भागने से कुछ भी न होगा। वह जो छिपा है भीतर, वह मजबूत होता रहेगा। न तो उसे मंदिर मिटा सकता है, न रामायण मिटा सकती है। कोई भी उसे मिटा नहीं सकता। सिवाय आपके साक्षात्कार के कोई उसे मिटा नहीं सकता। आपको उसे आंख गड़ाकर देखना ही पड़ेगा। अपने भीतर जो है, उसका नग्न दर्शन जरूरी है।

लेकिन भागने वाला दर्शन नहीं कर पाता। और भागने वाला धीरे— धीरे कमजोर हो जाता है। और जितना भागता है, उतने ही शत्रु उसका पीछा करते हैं। क्योंकि वे शत्रु बाहर नहीं हैं। वे आपके साथ हैं, आपमें ही हैं। आपके हिस्से हैं।

दो बातें, एक तो पक्ष छोड़े। पक्ष के कारण बड़ी कठिनाई है। मैंने सुना है कि आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में एक फुटबाल मैच हो रहा था। और दो दल थे। प्रोटेस्टेंट ईसाई, उनका एक दल था, और कैथोलिक ईसाई, उनका एक दल था। हजारों लोग देखने इकट्ठे हुए थे, प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक दोनों ही, क्योंकि दोनों के दल थे। और मामला सिर्फ फुटबाल का नहीं था, धर्म का हो गया था। जो जीतेगा.. .फुटबाल का ही सवाल नहीं है कि फुटबाल में जीत गया। अगर कैथोलिक पार्टी जीत गई, तो कैथोलिक धर्म जीत गया। और अगर प्रोटेस्टेंट पार्टी जीत गई, तो प्रोटेस्टेंट धर्म जीत गया।

तो भारी कशमकश थी, और भारी उत्तेजना थी, और दोनों दलों के लोग दोनों तरफ मौजूद थे अपने—अपने दल को प्रोत्साहन देने के लिए। और तब कैथोलिक दल ने बहुत अच्छा खेल लिया। विजय के करीब आते मालूम पड़े। एक आदमी उछल—उछलकर उनको प्रोत्साहन दे रहा था। वह इतनी खुशी में आ गया था कि अपनी टोपी भी उछाल रहा था। उसके पास के लोगों ने समझा कि यह कैथोलिक मालूम पड़ता है।

फिर हवा बदली और प्रोटेस्टेंट दल तेजी से जीतता हुआ मालूम पड़ने लगा। लेकिन' वह जो आदमी टोपी उछाल रहा था, वह अब भी टोपी उछालता रहा और नाचता रहा।

तब आस—पास के लोग जरा चिंतित हुए। तो पड़ोसी ने पूछा कि माफ करें, आप कैथोलिक हैं या प्रोटेस्टेंट? आप किसके पक्ष में नाच रहे हैं? किसकी खुशी में नाच रहे हैं? क्योंकि पहले जब कैथोलिक जीत रहे थे, तब भी आप टोपी उछाल रहे थे। तब भी बड़े आप आनंदित हो रहे थे। और अब जब कि कैथोलिक हार रहे हैं और प्रोटेस्टेंट जीत रहे हैं, तब भी आप आनंदित हो रहे हैं। तो आप किसके पक्ष में आनंदित हो रहे हैं?

उस आदमी ने कहा, मैं किसी के पक्ष में आनंदित नहीं हो रहा हूं मैं तो खेल का आनंद ले रहा हूं। जिस आदमी ने पूछा था, उसने अपनी पत्नी से कहा कि यह आदमी नास्तिक मालूम होता है।

खेल का आनंद ले रहा हूं उस आदमी ने कहा। बड़ी कीमत की बात कही। उसने कहा, मुझे इससे मतलब नहीं कि कौन जीत रहा है। लेकिन खेल इतना आनंदपूर्ण हो रहा है कि मैं उसका आनंद ले रहा हूं। मैं किसी पक्ष में नहीं हूं। तो उस आदमी को लगा कि यह नास्तिक होना चाहिए, क्योंकि जो कैथोलिक भी नहीं है और प्रोटेस्टेंट भी नहीं है।

आप मन का थोड़ा आनंद लेना सीखें। लेकिन आप पहले से ही या तो कैथोलिक हैं या प्रोटेस्टेंट हैं। पहले से ही माने बैठे हैं और मन की शक्तियों का आनंद नहीं ले पाते हैं। पहले से ही मान लिया है कि क्रोध बुरा है, कामवासना पाप है,

लोभ बुरा है। यह बुरा है, वह बुरा है; यह अच्छा है। सब माने बैठे हैं। पता आपको कुछ भी नहीं है। क्योंकि अगर आपको ही पता हो कि क्या बुरा है, तो बुरा फौरन बंद हो जाए। अगर आपको ही पता हो कि क्या भला है, तो भला आपकी जिंदगी में आ जाए। आपको कुछ पता नहीं है। सुना है, लोगों ने कहा है; हजारों—हजारों साल की हवा और संस्कार है। तो बस, आप उनको मानकर बैठे हैं। और उससे बड़ी अड़चन में पड़े हुए हैं।

क्रोध बुरा है, यह मालूम है, और क्रोध होता है। इसलिए अड़चन दोहरी हो गई है। क्रोध का दुख तो भोगना ही पड़ता है, फिर क्रोध किया, इसका भी दुख भोगना पड़ता है। यह दोहरा दुःख गया। क्रोध ही काफी था आदमी को परेशान करने के लिए। अब आप एक और दुश्मन खड़ा कर लिए कि क्रोध बुरा है। तो पहले क्रोध करें, उसका दुख भोगें; और फिर क्रोध किया, इसका दुख भोगें। कामवासना बुरी है, पहले कामवासना का दुख भोगें। और फिर कामवासना में उतरे, यह पाप किया, इसका दुख भोगें। और इस तरह जीवन और जटिल हो गया है।

कामवासना क्या है? क्रोध क्या है? मन की सारी ऊर्जाएं क्या हैं? इनका निष्पक्ष दर्शन सीखें। और आप बड़े आनंदित होंगे। और उस आनंद से ही आपके जीवन में बेचैनी बदलनी शुरू हो जाएगी और चैन निर्मित होने लगेगा।

दूसरी बात, भागना बंद कर दें।

वैज्ञानिक कहते हैं कि दो ही उपाय हैं, या तो भागो या लड़ो। जिंदगी में यही है। अगर एक शेर आप पर हमला कर दे, तो दो ही उपाय हैं, या तो भागो या लड़ों। अगर लड़ सकते हो, तो ठीक। नहीं तो भाग खड़े होओ। दो ही उपाय हैं।

बाहर की जिंदगी में अगर संघर्ष की स्थिति आ जाए, तो दो ही विकल्प हैं, लड़ो या भागो। लेकिन भीतर की जिंदगी में एक तीसरा विकल्प भी है, जागो। वह तीसरा विकल्प ही धर्म है।

बाहर की जिंदगी में तो कोई उपाय नहीं है। दो ही मार्ग हैं। अगर शेर हमला कर दे, तो क्या करिएगा? या तो लडिए या भागिए। दो में से कुछ चुनना ही पड़ेगा।

लेकिन भीतर दो विकल्प की जगह तीन विकल्प हैं। या तो लड़ो, या भागो, या जागो। न लड़ो, और न भागो, सिर्फ खड़े होकर जाग जाओ। जो भी हो रहा है, उसे देख लो। जागते ही ऊर्जा रूपांतरित होती है। और बेचैनी आनंद की यात्रा पर निकल जाती है। वह नाव बन जाती है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मन—वाणी की सरलता अर्थात भीतर—बाहर एक जैसा होना, धार्मिकता व ज्ञान का लक्षण आपने कहा। यदि व्यक्ति जैसा भीतर है, वैसा ही व्यवहार बाहर भी करने लगे, तो वर्तमान समाज व नीति व्यवस्था में बड़ी अराजकता का आना अवश्यंभावी दिखता है। इस अराजकता से बचने का क्या कोई मध्य मार्ग या किसी नैतिक अनशासन को आप जरूरी नहीं मानते?

पहली तो बात यह समझ लेनी चाहिए कि इसके पहले कि आप समाज के संबंध में सोचें, स्वयं के संबंध में सोचें। तत्क्षण लोग समाज के संबंध में सोचना शुरू कर देते हैं कि समाज में क्या होगा। पहली विचारणा तो यह है कि आप में क्या हो रहा है। दूसरी विचारणा समाज की हो सकती है। तो पहले तो यह ठीक से समझ लें कि जब तक जो आपके भीतर है, आप बाहर प्रकट नहीं करते, तो आप झूठे होते जा रहे हैं, आप झूठे हो गए हैं। एक कागज की प्रतिमा हो गए हैं। असली आदमी भीतर दबा है। और झूठा आदमी ऊपर आपकी छाती पर चढ़ा है। यह झूठा आपके लिए बोझ हो गया है। इस झूठ की पर्त बढ़ती चली जाती है। और जितनी इस झूठ की पर्त बढ़ती है, जिंदगी उतनी बुरी, बेहूदी, निराश, उबाने वाली हो जाती है। क्योंकि केवल स्वभाव के साथ ही रस का संबंध हो सकता है। झूठ के साथ जीवन में कोई रस, कोई अर्थ नहीं जुड़ पाता।

तो पहले तो यह देखें कि आप भीतर जो है, उसे बाहर न लाकर आप झूठे हो गए हैं। और आप ही झूठे नहीं हो गए हैं, सभी झूठे हो गए हैं।

इसलिए हमने एक समाज निर्मित किया है, जो झूठ का समाज है। जब व्यक्ति झूठा होगा, तो समाज भी झूठा होगा। और जब व्यक्ति का आधार ही झूठ होगा, तो समाज की सारी की सारी व्यवस्था झूठ हो जाएगी। फिर हम लाख उपाय करें कि समाज अच्छा हो जाए, वह अच्छा नहीं हो सकता। क्योंकि ईंट गलत है, तो मकान अच्छा नहीं हो सकता। इकाई गलत है, तो जोड़ अच्छा नहीं हो सकता।

तो पहले तो व्यक्ति को सहज, स्वाभाविक कर लेना जरूरी है। तो पहली तो बात यह खयाल रखें कि अगर समाज भी आप अच्छा चाहते हैं, तो उसके लिए सच्चा व्यक्ति जरूरी है। सच्चे व्यक्ति के बिना अच्छा समाज नहीं होगा। और अच्छाई अगर झूठ है, तो समाज ऊपर से कितना ही अच्छा दिखाई पड़े, भीतर सडता रहेगा। सड़ रहा है। सब अच्छी—अच्छी बातें ऊपर हैं। और सब बुरी—बुरी बातें नीचे बह रही हैं।

ऐसा लगता है कि बुरी बातें तो हमारी आत्मा हो गई हैं और अच्छी बातें हमारे वस्त्र हो गई हैं। उन वस्त्रों से हम किसको धोखा दे रहे हैं? कोई उससे धोखे में नहीं आ रहा है, क्योंकि सभी भी वही धोखा कर रहे हैं।

दूसरी बात यह खयाल में ले लेनी जरूरी है कि समाज में अराजकता फैल सकती है, उसका कारण यह नहीं है कि सत्य से अराजकता फैलती है। उसका कारण यह है कि असत्य का अगर समाज हो, तो सत्य से अराजकता फैलती है। अगर सभी लोग झूठ बोलते हों, तो वहां कोई आदमी सच बोले, तो उससे अराजकता फैलेगी। जहां सभी लोग बेईमान हों, वहां कोई आदमी ईमानदार हो जाए, तो उससे अराजकता फैलेगी।

आपने वह कहानी सुनी होगी कि एक सम्राट नग्न रास्ते पर निकला है, लेकिन एक आदमी ने उसे भरोसा दिलवा दिया है कि वह देवताओं के वस्त्र पहने हुए है। एक धोखेबाज आदमी ने उससे लाखों रुपए ले लिए, और उससे कहा है कि मैं तुझे देवताओं के वस्त्र ला दूंगा। और एक दिन वह देवताओं के वस्त्र लेकर आ गया है। और उसने सम्राट को कहा कि आप अपने वस्त्र उतारते जाएं, मैं देवताओं के वस्त्र निकालता हूं।

सम्राट ने अपनी टोपी निकाली। उसने पेटी में से खाली हाथ बाहर निकाला। सम्राट ने देखा कि टोपी तो हाथ में नहीं है। उसने कहा, तुम्हारा हाथ खाली है! उस आदमी ने सम्राट के कान में कहा कि मैं जब चलने लगा, तो देवताओं ने मुझ से कहा था, ये वस्त्र केवल उसी को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो।

उस सम्राट को तत्क्षण टोपी दिखाई पड़ने लगी। क्योंकि अब यह झंझट की बात हो गई। उसने कहा, अहा, ऐसी सुंदर टोपी तो मैंने कभी देखी नहीं! और उसने टोपी सिर पर रख ली, जो थी ही नहीं। लेकिन टोपी का ही मामला नहीं था। फिर उसके बाकी वस्त्र भी निकलते चले गए। दरबारी घबडाए; क्योंकि वह सम्राट नग्न हुआ जा रहा था। लेकिन जब आखिरी वस्त्र भी निकल गया, तब उस आदमी ने जोर से कहा कि दरबारियो, अब तुम्हें मैं एक और खबर बताता हूं। जब मैं चलने लगा, तो देवताओं ने कहा था कि ये वस्त्र उसी को दिखाई पड़ेंगे, जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो।

सम्राट ने कहा कि कितने सुंदर वस्त्र हैं! दरबारी आगे बढ़ आए एक—दूसरे से वस्त्रों की तारीफ करने में। क्योंकि अगर कोई पीछे रह जाए तो कहीं शक न हो जाए कि यह कहीं किसी और से तो पैदा नहीं हुआ। एक— दूसरे से बढ़—बढ़कर तारीफ करने लगे।

जो थोड़े डर भी रहे थे तारीफ करने में, क्योंकि राजा बिलकुल नग्न था, उन्होंने भी देखा कि जब इतने लोग तारीफ कर रहे हैं, तो गलती अपनी ही होगी। जब इतने लोग कह रहे हैं कि ऐसे वस्त्र कभी देखे नहीं, अदभुत, अलौकिक! तो शक अपने पर ही हुआ आदमियों को, कि इसका मतलब यही है कि मेरी मां मुझे धोखा दे गई! मैं अपने ही बाप का बेटा नहीं मालूम पड़ता। अब इसको बताने से क्या सार है! वह भी आदमी आगे बढ़कर तारीफ करने लगा। यह हालत सभी की थी। लेकिन उस बेईमान आदमी ने कहा कि देवताओं ने कहा है कि पहली दफा पृथ्वी पर ये वस्त्र जाते हैं, तो इनका जुलूस निकलना जरूरी है। रथ तैयार करवाएं? और राजधानी में जुलूस निकलेगा।

राजधानी में हवा की तरह खबर फैल गई कि सम्राट को देवता के वस्त्र मिले हैं। लेकिन एक शर्त है। वे उसी को दिखाई पडते हैं, जो अपने ही बाप से पैदा हो।

लाखों लोग रास्तों के किनारे खड़े थे। सभी को वस्त्र दिखाई पड़ते थे। सिर्फ एक छोटा बच्चा, जो अपने बाप के कंधे पर बैठा हुआ था, उसने अपने बाप के कान में कहा, लेकिन पिताजी, राजा नंगा है! उसने कहा, चुप रह नासमझ। अभी तेरी उम्र नहीं है। जब तू बड़ा होगा, तो अनुभव से तुझे भी वस्त्र दिखाई पड़ने लगेंगे। वह लड़का अराजकता फैला रहा था। सारे नगर को, सबको वस्त्र दिखाई पड़ रहे थे। अगर सारा समाज झूठ को पकड़े हो, तो सत्य अराजकता लाता है। लेकिन ऐसी अराजकता स्वागत के योग्य है। संन्यासी का अर्थ ही यही है कि वह समाज के झूठ को मानने को राजी नहीं है। संन्यासी अराजक है, असामाजिक है। वह यह कह रहा है कि तुम्हारे झूठ मानने को मैं राजी नहीं हूं। मैं उसी ढंग से जीऊंगा, जिस ढंग से मुझे ठीक लगता है। चाहे इसके लिए मुझे कुछ भी कष्ट झेलना पड़े। वह कष्ट तपश्चर्या है।

आप यह मत सोचें कि सत्य की यात्रा पर कोई कष्ट न होगा। अगर ऐसा होता कि सत्य की यात्रा पर कोई कष्ट न होता, तो दुनिया में इतना झूठ होता ही नहीं। सत्य की यात्रा पर कष्ट है। इसीलिए तो लोग झूठ के साथ राजी हैं। झूठ सुविधापूर्ण है। सत्य असुविधापूर्ण है। झूठ में कनवीनिएंस है। क्योंकि चारों तरफ झूठ है।

वह बाप अपने बेटे से क्या कह रहा था? वह यही कह रहा था कि उपद्रव खड़ा मत कर। यही सुविधापूर्ण है। जब सबको वस्त्र दिखाई पड़ रहे हों, तो अपने को भी वस्त्र देखना ही सुविधापूर्ण है। झंझट खड़ी करनी उचित नहीं है।

यह जो कृष्ण का सूत्र है कि मन—वाणी की सरलता, सहजता, यह आपको खतरे में तो ले ही जाएगी। खतरे में इसलिए ले जाएगी, क्योंकि चारों तरफ जो लोग हैं, वे मन—वाणी से सरल नहीं हैं, जटिल हैं, छद्म, झूठ, चालाकी से भरे हैं। वे वही नहीं कहते हैं, जो कहना चाहते हैं। वे वही नहीं प्रकट करते हैं, जो प्रकट करना चाहते हैं। और ये इतनी परतें हो गई हैं झूठ की कि उनको खुद भी पता नहीं है कि वे क्या कहना चाहते हैं; उनको खुद भी पता नहीं है कि वे क्या करना चाहते हैं; उनको खुद भी पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं।

तो निश्चित ही, जब कोई व्यक्ति यह निर्णय और संकल्प करेगा कि मैं सरल हो जाऊंगा, तो अड़चनें आएंगी, कठिनाइयां खड़ी होंगी। उन कठिनाइयों के डर से ही तो लोग झूठ के साथ राजी हैं। साधक का अर्थ है कि वह इन कठिनाइयों को झेलने को राजी होगा।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आप जान—बूझकर समाज में अराजकता फैलाएं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आप जान—बूझ कर लोगों को परेशानी में डालें। इसका कुल इतना अर्थ है कि जब भी आपके सामने यह सवाल उठे कि मैं अपनी आत्मा को बेचूं और सुविधा को खरीदूं या सुविधा को तोड्ने दूं और आत्मा को बचाऊं, तो आप आत्मा को बचाना और सुविधा को जाने देना।

यह कोई जरूरी नहीं है कि आप चौबीस घंटे उपद्रव खड़ा करते रहें। लेकिन इतना खयाल रखना जरूरी है कि आत्मा न बेची जाए किसी भी कीमत पर। सुविधा के मूल्य पर स्वयं को न बेचा जाए, इतना ही खयाल रहे, तो आदमी धीरे— धीरे सरलता को उपलब्ध हो जाता है। और कठिनाई शुरू में ही होगी। एक बार आपका सत्य के साथ तालमेल बैठ जाएगा, तो कठिनाई नहीं होगी।

सच तो यह है, तब आपको पता चलेगा कि झूठ के साथ मैंने कितनी कठिनाइयां झेली और व्यर्थ झेली, क्योंकि उनसे मिलने वाला कुछ भी नहीं है।

सत्य के साथ झेली गई कठिनाई का तो परिणाम है, फल है। झूठ के साथ झेली गई कठिनाई का कोई परिणाम नहीं है, कोई फल नहीं है। एक झूठ बोलो, तो दस झूठ बोलने पड़ते हैं। क्योंकि एक झूठ को बचाना हो, तो दस झूठ की दीवाल खड़ी करनी जरूरी है। और फिर दस झूठ के लिए हजार बोलने पड़ते हैं। और इस सिलसिले का कोई अंत नहीं होता। और एक झूठ से हम दूसरे पर पोस्टपोन करते जाते हैं, कहीं पहुंचते नहीं।

सत्य के लिए कोई इंतजाम नहीं करना होता। सत्य के लिए कोई दूसरे सत्य का सहारा नहीं लेना पड़ता।

वाइल्ड ने लिखा है कि झूठ बोलना केवल उन्हीं के लिए संभव है, जिनकी स्मृति बहुत अच्छी हो। जिनकी स्मृति कमजोर है, उन्हें भूलकर झूठ नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि झूठ में बहुत हिसाब रखना पड़ेगा। एक झूठ बोल दिया, तो फिर उसका हिसाब रखना पड़ता है सदा। फिर उसी झूठ के हिसाब से सब बोलना पड़ता है।

तो वाइल्ड ने लिखा है कि मेरी चूंकि स्मृति कमजोर है, इसलिए मैं सत्य का ही भरोसा करता हूं। क्योंकि उसे बोलने में याद रखने की कोई जरूरत नहीं है।

झूठ के लिए स्मृति तो मजबूत चाहिए। इसीलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो समाज अशिक्षित हैं, वहां झूठ कम प्रचलित होता है। क्योंकि झूठ के लिए शिक्षित होना जरूरी है। जो समाज असभ्य हैं, वे कम बेईमान होते हैं। क्योंकि बेईमानी के लिए जितनी कुशलता चाहिए, वह उनके पास नहीं होती। जैसे ही लोगों को शिक्षित करो, बेईमानी बढ़ने लगती है उसी अनुपात में। लोगों को शिक्षा दो, उसी के साथ झूठ बढने लगता है, क्योंकि अब वे कुशलता से झूठ बोल सकते हैं। झूठ के लिए कला चाहिए। सत्य के लिए बिना कला के भी सत्य के साथ जीया जा सकता है। झूठ के लिए आयोजन चाहिए।

हम जिस समाज में जी रहे हैं, वह सब आयोजित है। इस आयोजन के बीच से छूटना हो, तो कठिनाई शुरू में होगी, लेकिन कठिनाई अंत में नहीं होगी।

इस बात को ऐसा समझें कि असत्य के साथ पहले सुविधा होती है, बाद में असुविधा होती है। सत्य के साथ पहले असुविधा होती है, बाद में सुविधा होती है। जिनको हम संसार के सुख कहते हैं, वे पहले सुख मालूम पड़ते हैं, पीछे दुख मालूम पड़ते हैं। और जिनको हम अध्यात्म की तपश्चर्या कहते हैं, वह पहले कष्ट मालूम पड़ती है और पीछे आनंद हो जाता है।

इसको सूत्र की तरह याद कर लें। पहली ही घटना को सब कुछ मत समझना, अंतिम घटना सब कुछ है।

तो पहले अगर असुविधा भी हो, तो उसकी फिक्र न करके यही ध्यान रखना कि बाद में क्या होगा, अंतिम फल क्या होगा, अंतिम परिणाम क्या होगा। नहीं तो लोग जहर की गोली भी शक्कर में लिपटी हो तो खा लेते हैं। क्योंकि पहले स्वाद मीठा मालूम पड़ता है। पहले स्वाद से सावधान होना जरूरी है। अंतिम स्वाद को ध्यान में रखना जरूरी है।

अंतिम प्रश्न।

एक और मित्र ने पूछा है कि अनेक सदगुरूओं के व्यवहार व जीने के ढंग में श्रेष्ठता का अभिमान और दंभाचरण दिखाई पड़ता है। तथाकथित ज्ञानी व वास्तविक धार्मिक व्यक्ति को बाहर से कैसे पहचाना जाए? क्योंकि भीतर से पहचानना अत्यंत कठिन है!

यह थोड़ा समझने जैसा है कि जब भी आपको समझने के लिए कुछ कहा जाता है, तत्काल आप दूसरों के संबंध में सोचना शुरू कर देते हैं। कृष्ण ने यह नहीं कहा है कि ज्ञानी का लक्षण यह है कि वह पता लगाए कि कौन दंभाचरण में है और कौन नहीं है। कृष्ण ने यह नहीं कहा है कि ज्ञानी इसका पता लगाने निकलता है कि कौन गुरु दंभी है और कौन गुरु दंभी नहीं है। कृष्ण ने कहा है कि तुम दंभाचरण में हो या नहीं, इसकी फिक्र करना।

लेकिन हम? हमें अपनी तो फिक्र ही नहीं है। हम जैसे निस्वार्थ आदमी खोजना बहुत कठिन है! हमें अपनी बिलकुल फिक्र नहीं है। हमें सारी दुनिया की फिक्र है। कौन सदगुरु दंभाचरणी है, इसका कैसे पता लगाएं! मुझे एक कहानी याद आ गई।

मैंने सुना, एक गांव में शराब के खिलाफ बोलने के लिए एक महात्मा का आगमन हुआ। उनका देश शराब के विपरीत सप्ताह मना रहा था। तो महात्मा ने बहुत समझाया, शराब के खिलाफ बहुत—सी बातें समझाई। और फिर जोर देने के लिए उसने कहा कि तुम्हें पता है कि गांव में सब से बड़ी हवेली किसकी है? शराब बेचने वाले की। और पैसा

उसका कौन चुकाता है? तुम। और तुम्हें पता है कि गांव में किसकी स्त्री सबसे ज्यादा कीमती गहने पहनती है? शराब बेचने वाले की। और उसका मूल्य तुम अपने खून से चुकाते हो।

जब सभा पूरी हो गई, तो एक जोड़ा, पति—पत्नी, उसके पास आया और महात्मा के चरणों में सिर रखकर उन्होंने कहा कि आपकी बड़ी कृपा है। आपने जो उपदेश दिया, उससे हमारा जीवन बदल गया। तो महात्मा ने कहा कि बड़ी खुशी की बात है। क्या तुमने शराब न पीने का तय कर लिया? उन्होंने कहा कि नहीं, हमने एक शराब की दुकान खोलने का तय कर लिया है। आपने ऐसी हृदय को चोट पहुंचाने वाली बातें कहीं कि अब हम सोचते हैं, सब धंधा छोड्कर शराब ही बेचने का धंधा कर लें।

सुना है मैंने, एक गांव में एक बहुत बड़ा कंजूस धनपति था। उससे कभी कोई दान मांगने में सफल नहीं हो पाया था। और गांव में बड़ी तकलीफ थी। कोई प्लेग फैल गई थी। कोई बीमारी आ गई थी। तो मजबूरी की वजह से दान मांगने लोग उसके घर भी गए। उन्होंने दान की प्रशंसा में बहुत बातें कहीं। और उन्होंने कहा कि दान से बड़ा धर्म जगत में दूसरा नहीं है। और यह समय ऐसी असुविधा का है कि आप जरूर कुछ दान करें।

उस कंजूस ने कहा कि मुझे दान के संबंध में थोड़ा और समझाओ। जो चंदा मांगने आए थे, बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि यह बड़ा शुभ लक्षण था। क्योंकि पहले तो वह दरवाजा ही नहीं खोलता था। भीतर भी आ जाए कोई दान मांगने, तो तत्काल बाहर निकालता था। उसने कहा कि बैठो प्रेम से। मुझे जरा दान के संबंध में और थोड़ा समझाओ।

उन्होंने कहा, कुछ आशा है। यह पहला मौका था कि उसने दान मांगने वालों को इतने प्रेम से बिठाया। फिर तो उसने पानी वगैरह भी बुलाकर पिलाया। और कहा कि जरा और, मुझे दान के संबंध में पूरा ही समझा दो। वे समझे कि अब कोई दिक्कत नहीं रही। कहीं और दान मांगने न जाना पड़ेगा। सभी कुछ यह आदमी दे देगा। इसके पास इतना है कि यह अकेला भी काफी है गाव की बीमारी के मुकाबले में।

जब वे सारी बात कह चुके, तो उस कृपण कंजूस ने कहा कि मैं तुम्हारी बात से इतना प्रभावित हो गया हूं कि जिसका कोई हिसाब नहीं! तो उन्होंने कहा, अब आपका क्या इरादा है? दान मांगने वाले एकदम मुंह बा के बोले कि अब आपका क्या इरादा है? उसने कहा, इरादा क्या! मैं भी तुम्हारे साथ दान मांगने चलता हूं। जब दान इतनी बड़ी चीज है, तो मैं भी लोगों को समझाऊंगा।

कृष्ण कह रहे हैं कि दंभाचरण ज्ञानी का लक्षण नहीं है। आप पूछ रहे हैं कि कई दंभाचरणी हैं, उनका कैसे पता लगाएं? कृष्ण का उनसे कुछ लेना—देना नहीं है। कृष्ण आपसे कह रहे हैं।

और आप दूसरे का पता लगाएंगे कैसे? पहले तो कोई जरूरत नहीं है। दूसरा अपने दंभ के लिए कष्ट खुद पाएगा; आप कष्ट नहीं पाएंगे। अपने दंभ के कारण दूसरा नरक में जाएगा; आपको नहीं जाना पड़ेगा। अपने दंभ के कारण दूसरे के स्वर्ग का द्वार बंद होगा; आपका द्वार बंद नहीं होगा। आप क्यों परेशान हैं? दूसरा दंभी है या नहीं, यह उसकी चिंता है। आप कृपा करें और अपनी चिंता करें। अपने पर थोड़ी कृपा करनी जरूरी है।

फिर अगर आप पता लगाना भी चाहें, तो लगाने का कोई उपाय नहीं है। जब तक कि आप पूरी तरह दंभ—शून्य न हो जाएं, तब तक आप दूसरे में दंभ है या नहीं, इसका कोई पता नहीं लगा सकते। क्योंकि आपका जो दंभ है, वह व्याख्या करेगा। आपके भीतर जो दंभ बैठा है, वह व्याख्या करेगा। आपके भीतर जो अहंकार है, उसके कारण आप दूसरे में भी कुछ देख लेंगे, जो दूसरे में शायद न भी हो।

समझें ऐसा, कि अगर आप कृष्ण के पास खड़े हों दंभ से भरे हुए, तो आपको कृष्ण की बातें बहुत दंभपूर्ण मालूम होंगी। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, सब छोड्कर मेरी शरण आ। अब इससे ज्यादा अहंकार की और क्या बात हो सकती है! सब छोड—सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं वज—सब धर्म—वर्म छोड़, मेरे चरण में आ जा, मेरी शरण आ जा।

अगर आप ईमानदारी से कहें; आप खड़े हों कृष्ण के पास, तो आप कहेंगे कि यह आदमी हद का अहंकारी है। इससे ज्यादा अहंकारी और कोई मिलेगा, जो अपने ही मुंह से अपने ही चरणों में आने का प्रचार कर रहा है!

आपके भीतर दंभ हो, तो कृष्ण का यह वचन दंभपूर्ण मालूम होगा। और आपके भीतर दंभ न हो, तो कृष्ण का यह वचन करुणापूर्ण मालूम होगा। यह सिर्फ करुणा है कृष्ण की कि वे अर्जुन से कह रहे हैं, तू व्यर्थ यहां—वहां मत भटक। और यहां जोर चरणों का नहीं है, यहां जोर समर्पण का है। लेकिन दंभी आदमी को सुनाई पड़ेगा कि कृष्ण अपने पैरों का प्रचार कर रहे हैं कि मेरे पैरों में आ जा। कृष्ण सिर्फ इतना कह रहे हैं उससे कि तू झुकना सीख ले। पैरों में आना तो सिर्फ बहाना है। तू समर्पण की कला , सीख ले, तू झुक जा।

लेकिन आपको दंभपूर्ण मालूम पड़ेगा। आपके भीतर का दंभ होगा, तो अड़चन देगा। इसलिए जब तक आपके भीतर का अहंकार न मिट जाए तब तक आप न जान पाएंगे कि कौन अहंकार—शून्य है, और कौन अहंकार—शून्य नहीं है।

पर इस चिंता में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। थ्यप अपनी ही चिंता कर लें, पर्याप्त है। सदगुरुओं को सदगुरुओं पर छोड़ दें। उनका नरक—स्वर्ग उनके लिए है। उनकी तकलीफें वे भोगेंगे। न तो उनके पुण्य में आप भागीदार हो सकते हैं, न उनके पाप में। आप सिर्फ अपने में ही भागीदार हो सकते हैं। आप अकेले हैं। और दायित्व आपका आपके ऊपर है। समय मत खोए, अवसर मत खोए, शक्ति को व्यर्थ मत लगाएं।

फिर सदगुरुओं के ढंग हैं अपने, उनकी अपनी व्यवस्थाएं हैं, जिनको पहचानना बड़ी जटिल बात है।

मुसलमान फकीर हुआ, बायजीद। तो बायजीद, अक्सर नए लोग आते थे, तो उनके साथ बड़ा बेरुखा व्यवहार करता था। बड़ा बेरुखा, जैसे कि वे आदमी ही न हों। बायजीद बहुत विनम्र आदमी था। उससे विनम्र आदमी खोजना कठिन है। लेकिन नए आगंतुक लोगों से वह बड़ा बेरुखा और बड़ा बुरा व्यवहार करता था।

उसके शिष्य उससे कहते थे कि तुम अचानक, जब भी कोई नए लोग आते हैं, तो तुम इतने सख्त क्यों हो जाते हो? हम तुम्हें जानते हैं भलीभांति, जैसे ही नए लोग जाते हैं, तुम एकदम पिघल जाते हो, तुम नवनीत जैसे कोमल हो। लेकिन तुम पत्थर जैसे कठोर क्यों हो जाते हो नए लोगों के लिए? और फिर नए लोग तुम्हारे संबंध में बड़ी बुरी धारणा ले जाते हैं। वे सारी जगह खबर करते हैं कि यह आदमी बहुत दुष्ट मालूम होता है, अहंकारी मालूम होता है, क्रोधी मालूम होता है।

तो बायजीद कहता था, इसीलिए, ताकि व्यर्थ की भीड़— भड़क्का मेरी तरफ न आने लगे। मेरे पास समय कम है, काम ज्यादा है। और मैं केवल चुने हुए लोगों के ऊपर ही काम करना चाहता हूं। मैं पत्थरों को नहीं घिसना चाहता, सिर्फ हीरों को निकालना चाहता हूं। जिसमें इतनी भी अकल नहीं है कि जो मेरे झूठे अहंकार को पहचान सके, उसके साथ मेहनत करने को मैं राजी नहीं हूं।

लेकिन कोई—कोई बायजीद का यह दंभ और क्रोध देखकर भी रह जाते थे। क्योंकि जो समझदार हैं, वे कहते थे कि पहला ही परिचय काफी नहीं है। थोड़ी निकटता से, थोड़ा रुककर, थोड़े दिन ठहरकर। जल्दी निर्णय नहीं लेना है। जो थोड़े दिन रुक जाते थे, वे सदा के लिए बायजीद के हो जाते थे। अगर आप गए होते, तो आप लौट गए होते।

ऐसे फकीर हुए हैं, हमारे मुल्क में हुए हैं, जो बेहूदी गालियां देते हैं। उनमें कुछ परम ज्ञानी हुए हैं। आप उनके पास जाएंगे, तो वे मां—बहन की और भद्दी गालियां देंगे, जो आप कभी सोच ही नहीं सकते कि संत पुरुष देगा।

खुद रामकृष्ण गालियां देते थे। और कारण कुल इतना था कि जो इतनी जल्दी निर्णय ले ले, कि यह आदमी गलत है, क्योंकि गाली दे रहा है, इस आदमी के साथ मेहनत करनी उचित नहीं है।

जो इतनी जल्दी निर्णय ले लेता है, वह ओछा आदमी है। उसके साथ मेहनत करने की कोई जरूरत नहीं है।

जो आदमी समझदार है, वह सोचेगा कि जब रामकृष्ण गाली दे रहे हैं, तो गाली में भी कोई मतलब होगा। थोड़ा रुकना चाहिए। जल्दी करने की जरूरत नहीं है। रामकृष्ण जैसा आदमी अकारण गाली नहीं देगा; अगर गाली दे रहा

है, तो कोई प्रयोजन होगा, कोई मतलब होगा। तो जरा मैं रुकूं और निर्णय करने की जल्दी न करूं। जो रुक जाता, वह सदा के लिए रुक जाता। जो भाग जाता, वह सदा के लिए भाग जाता।

सदगुरुओं के अपने ढंग हैं, अपनी व्यवस्थाएं हैं। कहना कठिन है कि वे किस लिए क्या कर रहे हैं। आप उस झंझट में पड़ना ही मत। अगर आपको गुरु खोजना हो, तो धैर्यपूर्वक, बिना निर्णय लिए निकट रहने की क्षमता जुटाना। और जितना बड़ा गुरु होगा, उतनी ज्यादा धैर्य की परीक्षा लेगा। क्योंकि उतनी ही बड़ी संपदा देने के पहले वह आपकी पात्रता को पूरी तरह परख लेना चाहेगा। कोई छोटा—मोटा गुरु होगा, तो आपकी कोई परीक्षा भी नहीं लेगा। क्योंकि उसको डर है कि कहीं भाग न जाओ। वह आपको फांसने ही बैठा है।

छोटा—मोटा गुरु तो ऐसा है, जैसे कि मछली को पकड़ने के लिए आटा लगाकर काटे में बैठा हुआ है। वह बड़े प्यार से कहेगा, आइए बैठिए। आपको सिर आंखों पर लेगा। आपके अहंकार को फुसलाएगा। आप राजी होंगे। लगेगा कि बढ़िया बात है, यह आदमी ऊंचा है। कितना विनम्र है! कि मुझसे कहा, आइए बैठिए। जिसे कोई नहीं कहता, आइए बैठिए; इतने बड़े आदमी ने मुझसे कहा, आइए बैठिए!

आपको शायद पता न हो, रूजवेल्ट जब अमेरिका का इलेक्शन जीता प्रेसिडेंट का। इलेक्शन जीतने के बाद उसने अपने पहले वक्तव्य में, किसी ने उससे पूछा कि आपके जीतने की जो विधियां आपने उपयोग कीं, उसमें खास बात क्या थी? तो उसने कहा, छोटे आदमियों को आदर देना। उसने दस हजार आदमियों को निजी पत्र लिखे थे। उनमें ऐसे आदमी थे, कि जैसे टैक्सी ड्राइवर था, जिसकी टैक्सी में बैठकर वह स्टेशन से घर तक आया होगा।

रूजवेल्ट की आदत थी कि वह टैक्सी ड्राइवर से उसका नाम पूछेगा, पत्नी का नाम पूछेगा, बच्चे का नाम पूछेगा। वह टैक्सी ड्राइवर तो आगे गाड़ी चला रहा है, पीछे देख नहीं रहा है। लेकिन रूजवेल्ट नोट करता रहेगा, पत्नी का नाम, बच्चे का नाम; बच्चे की तबियत कैसी है; बच्चा किस क्लास में पढ़ता है। टैक्सी ड्राइवर फूला नहीं समा रहा है। पंडित नेहरू आपसे पूछ रहे हों तो...।

और फिर दो साल बाद एक पत्र आएगा टैक्सी ड्राइवर के नाम, कि तुम्हारी पत्नी की तबीयत खराब थी पिछली बार तुम्हारे गांव जब आया था, अब उसकी तबीयत तो ठीक है न? तुम्हारे बच्चे तो ठीक से स्कूल में पढ़ रहे हैं न? और इस बार मैं चुनाव में खड़ा हुआ हूं? थोड़ा खयाल रखना।

वह किसी भी पार्टी का हो, पागल हो गया। अब उसको दल—वल का कोई सवाल नहीं है। अब रूजवेल्ट से निजी संबंध हो गया। अब वह यह कार्ड लेकर घूमेगा।

छोटे आदमी के अहंकार को फुसलाना राजनीतिज्ञ का काम है, संतों का काम नहीं है। संत आपके अहंकार को तोड़ना चाहते हैं, फुसलाना नहीं चाहते हैं।

तो रामकृष्ण गाली देते हैं, रूजवेल्ट कहता है, आइए बैठिए। वह फर्क है। पर कहना मुश्किल है कि संत का क्या प्रयोजन है। आप जल्दी मत करें। निर्णय सदा अपने बाबत लें, दूसरे के बाबत कभी मत लें।

और संत तो खतरनाक हैं, उनके बाबत तो निर्णय लें ही मत। उनको उनके निर्णय पर छोड़ दें। अगर आपको कुछ लाभ उनसे लेना हो, तो धैर्यपूर्वक, बिना निर्णय के लाभ ले लें। निश्चित ही, अगर आपने धैर्य रखा, तो आप जिस गुरु के पास हैं, उस गुरु की वास्तविक प्रतिमा प्रकट हो जाएगी। अगर आपने जल्दी की, तो आप हो सकता है, कभी किसी बुद्ध के पास आकर भी किनारे से निकल जाएं और वंचित रह जाएं।

अब हम सूत्र को लें।

तथा पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय— अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात मन के अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्राप्त होने पर हर्ष—शोकादि विकारों का न होना।

इस संबंध में एक बात खयाल ले लेनी चाहिए। समता! दुख हो या सुख, प्रिय घटना घटे या अप्रिय, सफलता हो या असफलता, यश या अपयश, दोनों का बराबर मूल्य है। दोनों में से किंचित भी एक को वांछनीय और एक को अवांछनीय न मानना तानी का लक्षण है। समत्व ज्ञानी की आधारशिला है।

लेकिन यह होगा कैसे? क्योंकि जब सफलता मिलती है, तो प्रीतिकर लगती है। कोई हम तय थोड़े ही करते हैं कि जब सफलता मिले तो हम खुश हों। हम सफलता मिलते ही खुश हो जाते हैं। यह हमें खुश होने के लिए कुछ करना थोड़े ही पड़ता है, यह हमारा कोई निर्णय थोड़े ही है।

जब प्रियजन घर आए, तो हम प्रसन्न हो जाते हैं। कोई प्रसन्न होने के लिए चेष्टा थोड़े ही करनी पड़ती है। और जब कोई गाली दे, अपमान करे, तो हम दुखी हो जाते हैं। दुखी होने के लिए हमें सोचना थोड़े ही पड़ता है। चुनाव का मौका कहा है? जो होता है, वह जब हो जाता है, तब हमें पता चलता है। जब हम दुखी हो जाते हैं, तब पता चलता है कि दुखी हो गए।

कृष्ण कहते हैं, समता। यह समता कैसे घटेगी? इसके घटने की प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया खयाल में लेनी चाहिए।

कोई भी अनुभव भीतर पैदा हो, उसे अचेतन पैदा न होने दें। उसमें सजगता रखें। कोई गाली दे, तो इसके पहले कि क्रोध आए, एक पांच क्षण के लिए बिलकुल शांत हो जाएं। क्रोध को कहें कि पांच क्षण रुको। दुख को कहें, पांच क्षण रुको। पांच क्षण का अंतराल देना जरूरी है। तो आपके पास पर्सपेक्टिव, दृष्टि पैदा हो सकेगी। पांच क्षण बाद सोचें कि मुझे दुखी होना है या नहीं। दुख को चुनाव बनाएं। दुख को मूर्च्छित घटना न रहने दें। नहीं तो फिर आप कुछ भी न कर पाएंगे।

गुरजिएफ ने लिखा है कि मेरे पिता ने मरते क्षण मुझे एक मंत्र दिया, उसी मंत्र ने मेरे पूरे जीवन को बदल दिया। मरते वक्त—गुरजिएफ तो बहुत छोटा था, नौ साल का था—पिता ने कहा, मेरे पास देने को तेरे लिए कुछ भी नहीं है। लेकिन एक संपत्ति मेरे पास है, जिससे मैंने जीवन में परम आनंद अनुभव किया। वह मैं कुंजी तुझे दे जाता हूं। अभी तो तेरी समझ भी नहीं है कि तू समझ पाए। इसलिए अभी जो मैं कहता हूं तू सिर्फ याद रखना। किसी दिन समझ आएगी, तो उस दिन समझ लेना।

तो गुरजिएफ के पिता ने कहा कि तू एक ही खयाल रखना, कोई भी प्रतीति, दुख की या सुख की, तत्क्षण मत होने देना। थोड़ी जगह। अगर कोई गाली दे, तो उससे कहकर आना कि चौबीस घंटे बाद मैं जबाब दूंगा। और चौबीस घंटे के बाद बराबर जवाब देना। अगर तुझे लगे कि छुरा भोंकना हो, तो चौबीस घंटे बाद छुरा भोंक देना जाकर। लेकिन चौबीस घंटे का बीच में अंतराल देना।

गुरजिएफ ने लिखा है कि मेरी पूरी जिंदगी बदल दी इस बात ने। क्योंकि मरते बाप की बात थी। इसके बाद बाप मर गया। तो मन पर टंकी रह गई। और एक आश्वासन दिया था बाप को, तो पूरा करना था। तो किसी ने अगर गाली दी, तो मैं कहकर आया कि क्षमा करें। बाप को एक वचन दिया है, चौबीस घंटेभर बाद आपको जवाब दूंगा।

और चौबीस घंटेभर बाद न तो गाली का जवाब देने योग्य लगा, न गाली में कोई मूल्य मालूम पड़ा, बात ही व्यर्थ हो गई। चौबीस घंटे बाद जाकर गुरजिएफ कह आता कि आपने गाली दी, बड़ी कृपा की। लेकिन मेरे पास कोई जवाब देने को नहीं है।

गाली का जवाब तो तत्काल ही दिया जा सकता है। ध्यान रखना, गाली की प्रक्रिया है, उसका जवाब तत्काल दिया जा सकता है। उसमें देरी की, कि आप चूके।

डेल कार्नेगी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक स्त्री ने उसे पत्र लिखा। वह रेडियो पर बोला लिंकन के ऊपर। लिंकन की कोई जन्मतिथि थी, उस पर व्याख्यान दिया। और व्याख्यान में उसने लिंकन के संबंध में कुछ गलत तथ्य बोल दिए। तो एक स्त्री ने उसे पत्र लिखा कि जब तुम्हें लिंकन के संबंध में कुछ भी पता नहीं, तो कम से कम व्याख्यान

देने की जुर्रत तो मत करो। वह भी रेडियो पर! सारे मुल्क ने सुना। और लोग हंसे होंगे। अपनी भूल सुधार करो और क्षमा मांगो। उसने बहुत क्रोध से पत्र लिखा था।

डेल कार्नेगी ने उसी वक्त क्रोध से जवाब लिखा। जितना जहरीला पत्र था, उतना ही जहरीला जवाब लिखा। लेकिन रात देर हो गई थी, तो उसने सोचा, सुबह पत्र डाल देंगे। पत्र को वैसे ही टेबल पर रखकर सो गया।

सुबह उठकर डालते वक्त दुबारा पढ़ना चाहा। तो पत्र को दुबारा पढ़ा तो उसे लगा कि यह जरा ज्यादा है, इतने क्रोध की कोई जरूरत नहीं। वह गरमी कम हो गई, लोहा ठंडा हो गया। तो उसने सोचा, दूसरा पत्र लिखूं यह उचित नहीं है। उसने दूसरा पत्र लिखा, उसमें थोड़ी—सी क्रोध की रेखा रह गई थी। तब उसे खयाल आया कि अगर रात के बारह घंटे में इतना फर्क हो गया, तो मैं बारह घंटे और रुकूं। जल्दी क्या है जवाब देने की! और देखूं कि क्या फर्क होता है।

बारह घंटे बाद पत्र को पढ़ा, तो उसे लगा कि यह भी ज्यादा है। उसने तीसरा पत्र लिखा। लेकिन तब उसने तय किया कि मैं सात दिन रोज सुबह—सांझ पत्र को पढूंगा और सातवें दिन पत्र को लिखूंगा—फाइनल।

सातवें दिन जो पत्र लिखा, वह प्रेमपूर्ण था, क्षमायाचना से भरा था। उसमें उसने लिखा कि आपने मेरी गलती दिखाई, उसके लिए मैं जितना अनुगृहीत होऊं, उतना कम है। और आगे भी कभी मेरी कोई गलती दिखाई पड़े, तो मुझे खबर देना। वह स्त्री उससे मिलने आई। और सदा के लिए मित्रता खड़ी हो गई।

क्या होता है—फासला। हम जल्दी में होते हैं। जो भी होता है, मूर्च्छा में कर लेते हैं। समता अगर चाहिए हो, तो फासला पैदा करने की कला सीखनी चाहिए। लेकिन हम होशियार लोग हैं। हम फासले में भी धोखा दे सकते हैं।

मैंने सुना है, एक बाप ने देखा कि उसका बेटा एक दूसरे बच्चे को, पड़ोसी के बच्चे को दबाए हुए लान में, छाती पर बैठा हुआ है। तो उसने चिल्लाकर कहा कि मुन्ना, कितनी दफा मैंने तुझे कहा कि किसी से भी झगड़ने, मार—पीट करने के पहले सौ तक गिनती पढ़ा कर। तो उसने कहा, वही मैं कर रहा हूं। सौ तक गिनती पढ़ रहा हूं। लेकिन यह निकलकर भाग न जाए सौ तक गिनती जब तक मैं पढ़ुं इसलिए इसको दबाकर रखा हुआ है। सौ की गिनती पूरी होते ही इसे ठिकाने लगा दूंगा।

सौ की गिनती कही इसलिए थी कि फासला पैदा हो जाए। किसी को मारने के पहले सौ तक गिनती पढ़ना। मुन्ना होशियार है। वह उसको दबाकर बैठा है बच्चे को, कि अगर सौ तक गिनती हमने पढ़ी, तब तक यह निकल गया, तो मारेंगे किसको!

तो आप भी ऐसी होशियारी मत करना। अन्यथा कोई सार नहीं है। फासला पैदा करना है इसलिए, ताकि समता आ जाए। फासला हो जाए, तो दुख दुख नहीं देता, और सुख सुख नहीं देता। सुख और दुख दोनों मूर्च्छित अनुभव हैं। तत्क्षण हो जाते हैं, मूर्च्छा में हो जाते हैं।

जैसे कोई बिजली का बटन दबाता है, ऐसे ही आपके भीतर बटन दब जाते हैं। आप सुखी हो जाते हैं, दुखी हो जाते हैं। बिजली का बटन दबाने पर बिजली कह नहीं सकती कि मैं नहीं जलूंगी। मजबूर है, यंत्र है। लेकिन आप यंत्र नहीं हैं।

जब कोई गाली दे, तो क्रोधित होना? तत्क्षण बिजली की बटन की तरह काम हो रहा है। आप यंत्र की तरह व्यवहार कर रहे हैं। रुके। उसने गाली दी, ठीक। लेकिन आप अपने मालिक हैं। गाली लेने में जल्दी मत करें। किसी ने सम्मान किया, वह उसकी बात है। किसी ने आपकी खुशामद की, चापलूसी की, वह उसकी बात है। लेकिन आप जल्दी मत करें, और एकदम पिघल न जाएं। रुके, थोड़ा समय दें। थोड़े फासले पर खड़े होकर देखें कि क्या हो रहा है।

और आप पाएंगे कि जितना आप फासला बढ़ाते जाएंगे, सुख—दुख समान होते जाएंगे। जितने करीब होंगे, सुख—दुख में बड़ा फासला है। जितने फासले पर होंगे, सुख—दुख का फासला कम होने लगता है। जब कोई व्यक्ति दूर से

खड़े होकर देख सकता है, सुख और दुख एक ही हो जाते हैं। क्योंकि दूरी से दिखाई पड़ता है, सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उस दिन समता उपलब्ध हो जाती है।

कृष्ण कहते हैं, समता ज्ञानी का लक्षण है। और मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यान—योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति, प्रेम का न होना।

और मुझ परमेश्वर में एकीभाव। बड़े दंभ की बात है, मुझ परमेश्वर में एकीभाव! कृष्ण कहे ही चले जाते हैं कि मुझ परमेश्वर के साथ तू ऐसा संबंध बना।

अहंकारी पड़ेगा, तो बड़ी अड़चन में पड़ेगा। वह तो अर्जुन का बड़ा निकट संबंध था, बड़ी आत्मीयता थी, इसलिए अर्जुन ने एक भी बार नहीं पूछा कि क्या बार—बार रट लगा रखी है, मुझ परमात्मा में। उसने एक भी बार यह सवाल नहीं उठाया कि क्यों अपने को परमात्मा कह रहे हो? और क्यों अपने ही मुंह से कहे चले जा रहे हो कि मैं परमात्मा हूं?

वह इतना आत्मीय था, इतना निकट था, कि कृष्ण को जानता था कि यह घोषणा किसी अहंकार की घोषणा नहीं है। यह कहना सिर्फ अर्जुन को समर्पण के लिए राजी करने का उपाय है।

मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थितिरूप ध्यान—योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति...।

भक्ति अव्यभिचारिणी, इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। व्यभिचार का अर्थ होता है, अनेक के साथ लगाव। व्यभिचारिणी कहते हैं हम उस स्त्री को, जो पति को भी दिखा रही है कि प्रेम करती, और उसके प्रेमी भी है, उनसे भी प्रेम कर रही है। और प्रेम एक खिलवाड है। क्षणभर भी कोई उसे एकांत में मिल जाए तो उससे भी प्रेम शुरू हो जाएगा। मन में किसी एक की कोई जगह नहीं है।

व्यभिचार का अर्थ है, मन में एक की जगह नहीं है। मन खंडित है। बहुत प्रेमी हैं, बहुत पति हैं; उसका अर्थ है व्यभिचार। एक! तो मन अव्यभिचारी हो जाता है।

और बड़े मजे की बात है, समझने जैसी है, कि यह इतना जो जोर है एक प्रेमी पर, यह प्रेमी के हित में नहीं है। असल में प्रेम करने वाला अगर एक व्यक्ति को प्रेम करने में समर्थ हो जाए, तो

उसके सारे खंड मन के इकट्ठे हो जाते हैं और वह एकीभाव को उपलब्ध हो जाता है।

जितने आपके प्रेम होंगे, उतने आपके खंड होंगे, उतने आपके हृदय के टुकड़े होंगे। अगर आपके दस—पांच प्रेमी हैं, तो आपके हृदय के दस—पांच स्वर होंगे, दस—पांच टुकड़े होंगे। आप एक आदमी नहीं हो सकते, दस प्रेम अगर आपके हैं; आप दस आदमी होंगे। आपके भीतर एक भीड़ होगी।

यह जो इतना जोर है अव्यभिचारिणी भक्ति पर, कि एक का भाव है तो एक का ही भाव रह जाए इसका अर्थ यह है कि जितना ही एक का भाव रहने लगेगा, उतना ही भीतर भी एकत्व घनीभूत होने लगेगा; इंटीग्रेशन भीतर फलित हो जाएगा। इसलिए प्रेमी भी योग को उपलब्ध हो जाता है, और योगी प्रेमी हो जाता है।

अगर कोई पूरे मन से किसी एक व्यक्ति को प्रेम कर सके, तो उस प्रेम में भी एकत्व घटित हो जाता है। भीतर इंटीग्रेशन हो जाता है; भीतर सारे खंड जुड़ जाते हैं। अनेक स्वर समाप्त हो जाते हैं। एक ही स्वर और एक ही भाव रह जाता है। उस एक भाव के माध्यम से प्रवेश हो सकता है अनंत में। अनेक को छोड़कर एक; और तब एक भी छूट जाता है और अनंत उपलब्ध होता है।

कृष्ण कहते हैं, अव्यभिचारिणी भक्ति!

अनन्य रूप से मुझ एक में ही तू समर्पित हो जा। तेरे मन में यह खयाल भी न रहे कि कोई और भी हो सकता है, जिसके प्रति समर्पण होना है। अगर उतना—सा खयाल भी रहा, तो समर्पण पूरा नहीं हो सकता।

इधर मेरे पास अनेक लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम इस गुरु के पास गए, फिर उस गुरु के पास गए फिर उस गुरु के पास गए। वे गुरुओं के पास घूमते रहते हैं। उनकी यह व्यभिचारिणी मन की दशा उन्हें कहीं भी पहुंचने नहीं देती। उनसे मैं कहता हूं तुम एक गुरु के पास रुक जाओ। वे कहते हैं, हमें पक्का कैसे पता लगे कि वही गुरु ठीक है, जब तक हम बहुतों के पास न जाएं! मैं उनसे कहता हूं कि वह गलत हो तो भी तुम एक के पास रुक जाओ। क्योंकि उसके गलत और सही होने का उतना बड़ा सवाल नहीं है, तुम्हारा एक के प्रति रुक जाना तुम्हारे लिए क्रांतिकारी घटना बनेगी। वह गलत होगा, वह वह जाने। उससे तुम चिंता मत लो। तुम उसकी फिक्र मत करो।

कई बार ऐसा भी होता है कि गलत गुरु के पास भी ठीक शिष्य ' सत्य को उपलब्ध हो जाता है। यह बात उलटी मालूम पड़ेगी।

लेकिन हम जानते हैं, हमने एकलव्य की कथा पढ़ी है। गलत गुरु का सवाल ही नहीं है; गुरु था ही नहीं वहां। वहां तो सिर्फ मूर्ति बना रखी थी उसने द्रोणाचार्य की। उस भूतइr के सहारे भी वह उस कुशलता को उपलब्ध हो गया जो एकाग्रता है।

कैसे यह हुआ? क्योंकि मूर्ति तो कुछ सिखा नहीं सकती। द्रोणाचार्य खुद भी इतना नहीं सिखा पाए अर्जुन को, जितना उनकी पत्थर की मूर्ति ने एकलव्य को सिखा दिया।

तो द्रोणाचार्य का कोई हाथ नहीं है उसमें। अगर कुछ भी है हाथ, तो एकलव्य के भाव का ही है। वह उस पत्थर की मूर्ति के पास इतना एकीभाव होकर रुक गया, इतनी अव्यभिचारिणी भक्ति थी उसकी कि पत्थर की मूर्ति के निकट भी उसे जीवंत गुरु उपलब्ध हो गया। और गुरु द्रोणाचार्य इस योग्यता के गुरु नहीं थे, जितना एकलव्य ने उनको माना और फल पाया। क्योंकि गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य को धोखा दिया। और अपने संपत्तिशाली शिष्य के लिए एकलव्य का अनूठा कटवा लिया।

द्रोणाचार्य की उतनी योग्यता नहीं थी, जितनी एकलव्य ने मानी। लेकिन यह बात गौण है। द्रोणाचार्य की योग्यता थी या नहीं, यह सवाल ही नहीं है। एकलव्य की यह अनन्य भाव—दशा, और एकलव्य की यह महानता, कि इस गुरु ने जब अंगूठा मांगा, तब उसकी भी समझ में तो आ ही सकता था। आ ही गया होगा। साफ ही बात है। अंगूठा कट जाने पर वह धनुर्विद नहीं रह जाएगा। और द्रोणाचार्य ने अंगूठा इसीलिए मांगा कि जब उसके निशाने देखे, और उसकी तन्मयता और एकाग्रता और उसकी कला देखी, तो द्रोणाचार्य के पैर कैप गए। उन्हें लगा कि अर्जुन फीका पड़ जाएगा। अर्जुन की अब कोई हैसियत इस एकलव्य के सामने नहीं हो सकती। थी भी नहीं। क्योंकि अर्जुन का इतना भाव द्रोणाचार्य के प्रति कभी भी नहीं था, जितना भाव एकलव्य का द्रोणाचार्य के प्रति था। और द्रोणाचार्य अर्जुन को तो उपलब्ध थे, एकलव्य को उपलब्ध भी नहीं थे।

यह कथा बड़ी मीठी और बड़ी अर्थपूर्ण है। एकलव्य ने अंगूठा भी काटकर दे दिया। मैं मानता हूं कि उसकी धनुर्विद्या तो खो गई अंगूठा कटने से, लेकिन उसने भीतर जो योग उपलब्ध कर लिया अंगूठा काटकर।

उस एकलव्य के लिए कृष्ण को गीता कहने की जरूरत नहीं पड़ी। वह अंगूठा काटने के क्षण में ही उस परम एकत्व को उपलब्ध हो गया होगा। क्योंकि जरा भी संदेह न उठा! ऐसी असंदिग्ध

अवस्था में अगर परमात्मा उपलब्ध न हो, तो फिर कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। तो बाहर की कला तो खो गई, लेकिन वह भीतर की कला को उपलब्ध हो गया।

इसकी फिक्र छोड़ना; मैं लोगों को कहता हूं इसकी फिक्र छोड़ो कि गुरु ठीक है या नहीं। तुम कैसे पता लगाओगे? तुम हजार के पास घूमकर और कनफ्यूज्ड हो जाओगे, तुम और उलझ जाओगे। तुम्हें कुछ पता होने वाला नहीं है। तुम जितनों के पास जाओगे, उतने खंडित हो जाओगे। तुम बेहतर है, कहीं रुकना सीखो। रुकने में खूबी है। बेहतर है, एक के प्रति समर्पित होना सीखो। समर्पण में राज है। वह किसके प्रति, यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है।

और कई दफा तो ऐसा होता है कि गलत के प्रति समर्पण ज्यादा कीमती परिणाम लाता है। इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि ठीक के प्रति समर्पण तो स्वाभाविक है। आपकी कोई खूबी नहीं है उसमें। वह आदमी ठीक है, इसलिए समर्पण आपको करना पड़ रहा है। आपकी कोई खूबी नहीं है। लेकिन आदमी गलत हो और आप समर्पण कर सकें, तो खूबी निश्चित ही आपकी है।

तो कभी—कभी बहुत—से गुरु अपने आस—पास गलत वातावरण स्थापित कर लेते हैं। वह भी समर्पण का एक हिस्सा है। क्योंकि अगर उनके बाबत सभी अच्छा हो, तो समर्पण करने में कोई खूबी नहीं, कोई चुनौती नहीं है। वे अपने आस—पास बहुत—सा जाल खड़ा कर लेते हैं, जो कि गलत खबर देता है। और उस क्षण में अगर कोई समर्पित हो जाता है, तो समर्पण की उस दशा में अव्यभिचारिणी भक्ति का जन्म होता है।

कृष्ण कहते हैं, स्वात और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति, प्रेम का न होना..। आप भीड़ खोजते हैं हमेशा। और अक्सर भीड़ खोजने वाला गलत भीड़ खोजता है। क्योंकि भीड़ खोजना ही गलत मन का लक्षण है।

दूसरे से कुछ भी मिल सकता नहीं। आप जरा सोचें, आप क्या करते हैं दूसरे से मिलकर? कुछ थोड़ी निंदा, पास—पड़ोस की कुछ अफवाहें। किसकी पत्नी भाग गई! किसके बेटे ने धोखा दिया! कौन चोरी कर ले गया! कौन बेईमान है! ये सारी आप बातें करते हैं। यह रस अकेले में नहीं आता, इसके लिए दो—चार लोग चाहिए, इसके लिए आप भीड़ खोजते हैं।

एक दिन चौबीस घंटे अपनी चर्चा का खयाल करें। आप कहां बैठते हैं? क्यों बैठते हैं? क्यों बातें करते हैं ये? क्या रस है इसमें? और अगर यह रस आपका कायम है, तो ज्ञान कभी उपलब्ध न होगा, क्योंकि यह सारा अज्ञान को बचाने की व्यवस्था कर रहे हैं आप।

कृष्ण कहते हैं, ज्ञानी का लक्षण है, एकांत का रस। ज्ञानी ज्यादा से ज्यादा अकेले रहना चाहेगा।

क्यों? क्योंकि अकेले में ही स्वयं का साक्षात्कार हो सकता है; और अकेले में ही भीड़ के प्रभाव और संस्कारों से बचा जा सकता है। और अकेले में ही आदमी शांत और मौन हो सकता है। और अकेले में ही धीरे— धीरे भीतर सरककर उस द्वार को खोल सकता है, जो परमात्मा का द्वार है।

दूसरे के साथ रहकर कोई कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता है। चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, चाहे मोहम्मद, परमात्मा के पास पहुंचने के पहले एकांत में सरक गए थे। महावीर बारह वर्ष तक मौन हो गए थे। बुद्ध छ: वर्ष तक जंगल में चले गए थे। मोहम्मद तीस दिन तक बिलकुल एकांत पर्वत पर रह गए थे। जीसस को तैंतीस वर्ष की उम्र में उनको फांसी हुई। ईसाइयों के पास केवल तीन साल की कहानी है, आखिरी तीन साल की। बाकी तीस साल चुप मौन साधना में गुजरे।

यह जो मौन में सरक जाना है, एकांत का रस है, यह ज्ञानी का लक्षण है। भीड़ का रस, समूह का रस, क्लब, मित्र की तलाश खतरनाक है।

लेकिन आप यह मत सोचना कि क्लब ही सिर्फ क्लब है। लोग तो धर्म—कथाओं में भी इसीलिए चले जाते हैं। विशेषकर स्त्रियां तो इसीलिए पहुंच जाती हैं धर्म—कथाओं में कि वहा जाकर वे सब चर्चा कर लेती हैं, जिसका कि उन्हें मौका कहीं नहीं मिलता। सब जमाने भर की स्त्रियां वहा मिल जाती हैं। जमाने भर के रोग और कहानियां उन्हें वहा मिल जाते हैं। वहां वे सब चर्चा कर लेती हैं। कथा तो बहाना है।

मंदिर में भी आप जा सकते हैं; हो सकता है, परमात्मा से मिलने न जा रहे हों। वहा भी आप गपशप करने जा रहे हों, जो लोग मंदिर आते हैं उनसे। यह भी हो सकता है, आप किसी गुरु के पास भी इसीलिए जाते हों कि थोड़ा आस—पास के उपद्रव की खबरें सुन आएं। लेकिन कुछ स्वात की तलाश न हो।

ध्यान रखना जरूरी है कि आप अकेले ही सत्य से— मिल सकते हैं, भीड़ को साथ लेकर जाने का कोई उपाय नहीं है। आपका निकटतम मित्र भी आपके साथ समाधि में नहीं जाएगा। आपकी पत्नी भी आपके साथ ध्यान में प्रवेश नहीं कर सकती। आपका बेटा भी आपके साथ भक्ति के जगत में नहीं प्रवेश करेगा। वहा आप अकेले होंगे। इसलिए अकेले होने का थोड़ा रस! और जब भी मौका मिल जाए, तो अकेले होने में मजा!

लेकिन हम तो घबड़ाते हैं। जरा अकेले हुए कि लगता है कि मरे। जरा अकेले हुए कि डर लगता है। जरा अकेले हुए कि लगता है, ऊब जाएंगे, क्या करेंगे!

एक बहुत मजे की बात है। आप अपने से इतने ऊबे हुए हैं कि आप अपने साथ थोड़ी देर भी नहीं रह सकते। और जब कोई आपके साथ ऊब जाता है, तो आप सोचते हैं, वह आदमी बुरा है। जब आप खुद ही अपने साथ ऊब जाते हैं, तो दूसरे तो ऊबेंगे ही। अकेले में थोड़ी देर खुद ही से बातें करिए। एक दिन ऐसा प्रयोग करिए। जापान में एक विधि है ध्यान की। वे साधक को कहते हैं कि जो भी तेरे भीतर चलता हो, उसको जोर—जोर से बोल। भीतर मत बोल, जोर—जोर से बोल। बैठ जा एकांत में और जो भी भीतर चलता हो, उसको जोर से बोल।

आप घबडा जाएंगे, अगर भीतर जो जैसा है, उसको जोर से बोलेंगे। घंटेभर में आप कहेंगे कि मैं भी कहां का बोरियत पैदा करने वाला आदमी हूं!

लेकिन यही आप दूसरों से बोल रहे हैं। और जब दूसरे आपसे बोर होते हैं, तो आप समझते हैं, इनकी समझ नहीं है। जरा समझ का.. मैं तो बड़ी ऊंची बातें कर रहा हूं और ये ऊब रहे हैं! लेकिन जब हर आदमी अपने से ऊबा है, तो ध्यान रहे, वह दूसरे को भी उबाएगा।

और दूसरे आपकी कुछ देर तक बात सुनते हैं, उसका कारण आप जानते हैं? इसलिए नहीं कि आपकी बात में कोई रस है। बल्कि इसलिए कि जब आप बंद हो जाएं, तब वे बोलें। और कोई कारण नहीं होता। कि अब आप उबा लिए काफी, अब हमको भी उबाने दो।

इसलिए सब से ज्यादा बोर करने वाला आदमी वह मालूम पड़ता है, जो कि आपको मौका ही नहीं देता। और कोई कारण नहीं है। वह बोले ही चला जाता है। वह आपको अवसर ही नहीं देता। इसलिए आप कहते हैं, बहुत बोर करने वाला आदमी है। उसका केवल मतलब इतना है कि आप ही बोर किए जा रहे हैं! मुझको भी बोर करने का मौका दें। एक अवसर मुझे भी दें, तो मैं भी आपको ठीक करूं। लेकिन जो असली बोर करने की कला में कुशल हैं, वे मौका नहीं देते।

आदमी अपने साथ इतनी ज्यादा पीड़ा अनुभव करता है, और सोचता है, दूसरों को सुख देगा। पति पत्नी को सुख देना चाहता है, पत्नी पति को सुख देना चाहती है। पत्नी सोचती है कि पति के लिए स्वर्ग बना दे, लेकिन अकेली घडीभर नहीं रह सकती, नरक मालूम होने लगता है। तो जब अकेले रहकर पत्नी को खुद नरक मालूम होने लगता है, तो यह पति के लिए नरक ही बना सकती है, स्वर्ग बनाएगी कैसे!

कोई किसी दूसरे के लिए स्वर्ग नहीं बना पाता, क्योंकि हम अकेले अपने साथ रहने को राजी नहीं हैं।

इस जमीन पर उन लोगों के निकट कभी—कभी स्वर्ग की थोड़ी—सी हवा बहती है, जो अपने साथ रहने की कला जानते हैं। इसे थोड़ा समझ लेना। जो आदमी एकांत में रहने की कला जानता है, उसके पास आपको कभी थोड़े—से रस की बूंदें मिल सकती हैं, कोई अमृत की थोड़ी झलक मिल सकती है। लेकिन जो अपने साथ रहना जानता ही नहीं, उसका तो जीवन से कोई संस्पर्श नहीं हुआ है। कृष्ण कहते हैं, शुद्ध देश में, एकांत में, अपने भीतर की शुद्धता में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में अरति..।

अगर कभी जाना भी हो किसी के पास, तो ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए, जो आपको संसार की तरफ न ले जाता हो। जो आपको संन्यास की तरफ ले जाता हो। जो आपको उठाता हो वस्तुओं के पार। जो आपको जीवन के परम मंदिर की तरफ इशारा करता हो। अगर जाना ही हो किसी के पास, तो ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए। अन्यथा भीड़ से, समूह से बचना चाहिए।

तथा अध्यात्म—ज्ञान में नित्य स्थिति और तत्वज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सर्वत्र देखना, यह सब तो ज्ञान है, और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है, ऐसा कहा है। परमात्मा को सर्वत्र देखना, यह तो ज्ञान है। और इससे जो है, वह अज्ञान है।

बड़ा कठिन है परमात्मा को सर्वत्र देखना। अपने ही भीतर नहीं देख सकते, तो बाहर कैसे देख सकेंगे! पहले तो अपने ही भीतर देखना जरूरी है कि परमात्मा मौजूद है। चाहे कितना ही विकृत हो, कितना ही उलझा हो, बंधन में हो, कारागृह में हो, है तो परमात्मा ही। चाहे कितनी ही बेचैनी में, परेशानी में हो, है तो परमात्मा ही। अपने भीतर भी परमात्मा देखना शुरू करना चाहिए, और अपने आस—पास भी देखना शुरू करना चाहिए। धीरे— धीरे यह परमात्म— भाव ऐसा हो जाना चाहिए कि परमात्मा ही दिखाई पड़े, बाकी लोग उसके रूप दिखाई पड़े। यह भाव—दशा बन जाती है। लेकिन अपने से ही शुरू करना पड़े।

और जैसे कोई पत्थर फेंके पानी में, तो पहले छोटा—सा वर्तुल उठता है पत्थर के चारों तरफ। फिर वर्तुल फैलता जाता है, और दूर अनंत किनारों तक चला जाता है। ऐसा पहली दफा परमात्मा का पत्थर अपने भीतर ही फेंकना जरूरी है। फिर वर्तुल उठता है, लहरें फैलने लगती हैं, और चारों तरफ पहुंच जाती हैं।

जब तक आप अपने में देखते हैं पाप, नरक, और आपको कोई परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता, तब तक आपको किसी में भी दिखाई नहीं पड़ सकता। आप कितना ही मंदिर की मूर्ति पर जाकर सिर पटकें और आपको चाहे कृष्ण और राम भी मिल जाएं, तो भी आपको परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता।

जिस धोबी ने राम के खिलाफ वक्तव्य दिया, और जिसकी वजह से राम को सीता को निकाल देना पड़ा, वह राम के गाव का निवासी था, उसको राम में राम दिखाई नहीं पड़ा। उसको सीता में सीता दिखाई नहीं पड़ी। उसको तो सीता में भी दिखाई पड़ी व्यभिचारिणी स्त्री। वह खुद व्यभिचारी रहा होगा। जौ हमारे भीतर होता है, वह हमें दिखाई पड़ता है।

तो राम भी पास खड़े हों, तो आपको गड़बड़ ही दिखाई पड़ेंगे। आपको तो कुछ अड़चन ही मालूम होगी। आपको लगेगा, कुछ न कुछ बात है।

एक मित्र ने थीसिस लिखी है, राम के ऊपर एक शोध—ग्रंथ लिखा है। और शोध—ग्रंथ में उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि शबरी की स्त्री नहीं थी, जवान स्त्री थी। और राम का संबंध प्रेम का था शबरी से, भक्ति का नहीं था।

इन मित्र को मैं जानता हूं। वे कभी—कभी मुझसे मिलने आते थे। मैंने उनसे पूछा कि यह ठीक हो या गलत हो, मुझे कुछ पता नहीं। और इसमें मुझे कोई रस भी नहीं कि राम का शबरी से प्रेम था या नहीं। लेकिन तुम्हें शोध करने का यह खयाल कैसे पैदा हुआ? सच हो भी सकता है। मुझे कुछ पता नहीं कि राम का क्या संबंध था और न मेरी कोई उत्सुकता है कि किसी के संबंधों की जानकारी करूं। न मेरा कोई अधिकार है, न मैं कोई इंसपेक्टर हूं जो तय किया गया है कि पता लगाएं कि किसका किससे प्रेम है। यह शबरी और राम के बीच की बात है। लेकिन तुम्हें यह खयाल कैसे आया? तुम्हें खयाल तो अपने ही किसी अनुभव से आया होगा। और तुम्हारे देखने की दृष्टि से ही तो शोध पैदा हुई है; राम की घटना से पैदा नहीं हुई। क्योंकि राम पर तो बहुत लोग शोध करते हैं, लेकिन यह शोध किसी ने भी नहीं की है।

इन सज्जन ने खोजबीन की है कि सीता का निकालना, धोबी का तो बहाना था, राम सीता को निकालना ही चाहते थे।

राम के मन में क्या था, यह तो पता लगाने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जो आदमी यह खोज कर रहा है, इसके मन की स्थिति तो सोचने जैसी हो जाती है।

आप जब तक अपने भीतर परमात्मा को न देख पाएं, तब तक राम में भी दिखाई नहीं पड़ेगा। और जिस दिन आप अपने भीतर देख पाएं उस दिन रावण में भी दिखाई पड़ेगा। क्योंकि अपनी सारी पीड़ाओं, दुखों, चिंताओं, वासनाओं के बीच भी जब आपको भीतर की ज्योति दिखाई पड़ने लगती है, तो आप जानते हैं कि चाहे कितना ही पाप हो चारों तरफ, भीतर ज्योति तो परमात्मा की ही है। चाहे काच पर कितनी ही धूल जम गई हो, और चाहे काच कितना ही गंदा हो गया हो, लेकिन भीतर की ज्योति तो निष्कलुष जल रही है। ज्योति पर कोई धूल नहीं जमती, और ज्योति कभी गंदी नहीं होती।

ही, ज्योति के चारों तरफ जो काच का घेरा है, वह गंदा हो सकता है। जब आप अपने गंदे से गंदे घेरे में भी उस ज्योति का अनुभव कर लेते हैं, तत्क्षण सारा जगत उसी ज्योति से भर जाता है।

ज्ञानी का लक्षण है, परमात्मा का सर्वत्र अनुभव करना।

गीता दर्शन–भाग–6
समस्त विपरीतताओं का विलय—परमात्मा में—(प्रवचन—पांचवां)
अध्याय—13

सूत्र

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।। 12 ।।
सर्वतः पाणियादं तत्सर्वतोउक्षिशिरोमखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लेके सर्वमावृत्य तिष्ठति।। 13 ।।

सर्वोन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभक्तृ च।। 14 ।।
और हे अर्जुन, जो जानने योग्य है तथा जिसकी जानकर मनुष्य अमृत और परमानंद को प्राप्त होता है, उसको अच्छी प्रकार कहूंगा। वह आदिरहित परम बह्म अकथनीय होने से न सत कहा जाता है और न असत ही कहा जाता है। परंतु वह सब ओर से हाथ—पैर वाला एवं सब ओर नैत्र, सिर और मुख वाला तथा सब ओर से श्रोत बाला हे, क्योंकि वह संसार में सब को व्याप्त करके स्थित है। और संपूर्ण इंद्रिंयों के विषयों को जानने वाला है, परंतु वास्तव में सब इंद्रियों से रहित है। तथा आसक्तिरीहत है और गुणों से अतीत हुआ भी अपनी योगमाया से सब को धारण—पोषण करने वाला और गुणों को भोगने वाला है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि श्रद्धा क्या है और अंध— श्रद्धा क्या है?
गीता के इस अध्याय को समझने में यह प्रश्न भी अंध—श्रद्धा से अर्थ है, वस्तुत: जिसमें श्रद्धा न हो, सिर्फ ऊपर—ऊपर से श्रद्धा कर ली गई हो। भीतर से आप भी जानते हों कि श्रद्धा नहीं है, लेकिन किसी भय के कारण या किसी लोभ के कारण या मात्र संस्कार के कारण, समाज की शिक्षा के कारण स्वीकार कर लिया हो।

ऐसी श्रद्धा के पास आंखें नहीं हो सकतीं। क्योंकि आंखें तो तभी उपलब्ध होती हैं श्रद्धा को, जब हृदय उसके साथ हो। तो अंध—श्रद्धा बुद्धि की ही बात है। यह थोड़ा समझना पड़ेगा।

क्यौंकि आमतौर से लोग समझते हैं कि अंध—श्रद्धा हृदय की बात है, बुद्धि की नहीं। अंध—श्रद्धा बुद्धि की ही बात है; श्रद्धा हृदय की बात है। बुद्धि सोचती है लाभ—हानि, हित—अहित, परिणाम, और उनके हिसाब से श्रद्धा को निर्मित करती है।

आप भगवान में श्रद्धा रखते हैं। इसलिए नहीं कि आपके हृदय का कोई तालमेल परमात्मा से हो गया है, बल्कि इसलिए कि भय मालूम पड़ता है। बचपन से डराए गए हैं कि अगर परमात्मा को न माना, तो कुछ अहित हो जाएगा। यह भी समझाया गया है कि परमात्मा को माना, तो स्वर्ग मिलेगा, पुण्य होगा, भविष्य में सुख पाएंगे।

मन डरता है। मन भयभीत होता है। मन लोभ के पीछे दौड़ता है। लेकिन भीतर गहरे में आप जानते हैं कि आपका परमात्मा से कोई संबंध नहीं है।

यह जो ऊपर की श्रद्धा है, जबरदस्ती आरोपित श्रद्धा है, यह अंधी होगी। क्योंकि हृदय का तालमेल न हो, तो आंख नहीं हो सकती। और ऐसी श्रद्धा सदा ही तर्क से डरेगी, यह उसकी पहचान होगी। ऐसी श्रद्धा सदा ही तर्क से डरेगी, क्योंकि भीतर तो पता ही है कि परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। वह है या नहीं, यह भी पता नहीं है। ऊपर—ऊपर से माना है। अगर कोई खंडन करने लगे, तर्क देने लगे, तो भीतर भय होगा। भय दूसरे से नहीं होता, भीतर अपने ही छिपा होता है।

अगर मेरी श्रद्धा ऊपर—ऊपर है, अंधी है, तो मैं डरूंगा कि कोई मेरी श्रद्धा न काट दे। कोई विपरीत बातें न कह दे। विपरीत बातों से डर नहीं आता। क्योंकि मेरी श्रद्धा कमजोर है, इसलिए डर है कि टूट न जाए। और मेरी श्रद्धा ऊपर—ऊपर है, फट सकती है, छिद्र हो सकते हैं। और छिद्र हो जाएं, तो मेरे भीतर जो अश्रद्धा छिपी है, उसका मुझे दर्शन हो जाएगा।

ध्यान रहे, दुनिया में कोई आदमी आपको संदेह में नहीं डाल सकता। संदेह में डाल ही तब सकता है, जब संदेह आपके भीतर भरा हो। और श्रद्धा की पर्त भर हो ऊपर। पर्त तोड़ी जा सकती है, तो संदेह आपका बाहर आ जाएगा।

जो आस्तिक नास्तिक से भयभीत होता है, वह आस्तिक नहीं है। और जो आस्तिक डरता है कि कहीं ईश्वर के विपरीत कोई बात सुन ली, तो कुछ खतरा हो जाएगा, वह आस्तिक नहीं है, उसे अभी आस्था उपलब्ध नहीं हुई; वह अपने से ही डरा हुआ है। वह जानता है कि कोई भी जरा—सा कुरेद दे, तो मेरे भीतर का संदेह बाहर आ जाएगा। वह संदेह बाहर न आए, इसलिए वह पागल की तरह अपने भरोसे के लिए लड़ता है।

अंधे लोग लड़ते हैं, उद्विग्न हो जाते हैं, उत्तेजित हो जाते हैं। वे आपका सिर तोड्ने को राजी हो जाएंगे, लेकिन आपकी बात सुनने को राजी नहीं होंगे। वे केवल एक ही बात की खबर दे रहे हैं, वे आपसे नहीं डरे हुए हैं, वे खुद अपने से डरे हुए हैं। और कहीं आप उनकी उनसे ही मुलाकात न करवा दें, इससे आपसे डरे हुए हैं। अंध— श्रद्धा लोभ और भय से जन्मती है, श्रद्धा अनुभव से जन्मती है। और जो आदमी अंध— श्रद्धा में पड़ जाएगा, उसकी श्रद्धा सदा के लिए बांझ हो जाएगी, उसे श्रद्धालु होने का मौका ही नहीं मिलेगा। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि नास्तिक होना बेहतर है, बजाय झूठे आस्तिक होने के। क्योंकि नास्तिक होने में एक सच्चाई तो है कि आप कहते हैं, मुझे पता नहीं है। जिस बात का मुझे पता नहीं है, मैं भरोसा नहीं करूंगा। और एक संभावना है नास्तिक के लिए कि अगर उसे कभी पता चलना शुरू हो जाए, तो वह भरोसा करेगा। लेकिन जिसने झूठा भरोसा कर रखा है, वह सच्चे भरोसे तक कैसे पहुंचेगा? झूठा भरोसा उसे यह खयाल दिला देता है कि मुझे तो श्रद्धा उपलब्ध हो गई है।

इस जमीन पर धर्म का न होना इसी कारण है, क्योंकि लोग झूठे आस्तिक हैं, इसलिए सच्ची आस्तिकता उपलब्ध नहीं हो पाती। और जब तक हम झूठी आस्तिकता का भरोसा रखेंगे, तब तक जमीन अधार्मिक रहेगी। आप अपने से ही पूछें, सच में आपको ईश्वर में कोई भरोसा है?

मेरे एक शिक्षक थे, नास्तिक थे। उनकी मरण—तिथि पर मैं उनके घर मौजूद था। बहुत बीमार थे, उनको देखने गया था। फिर उनके चिकित्सक ने कहा कि एक—दो दिन से ज्यादा बचने की उम्मीद नहीं है, तो रुक गया था। नास्तिक थे सदा के, कभी मंदिर नहीं गए। ईश्वर की बात से ही चिढ़ जाते थे। धर्म का नाम किसी ने लिया कि वे विवाद में उतर जाते थे। लेकिन मरने की थोड़ी ही घडीभर पहले मैंने देखा कि वे राम—राम, राम—राम जप रहे हैं। धीमे— धीमे उनके होंठ हिल रहे हैं।

तो मैंने उन्हें हिलाया और मैंने पूछा, यह क्या कर रहे हैं आखिरी वक्त? तो उन्होंने बड़ी दयनीयता से मेरी तरफ देखा और उनके आखिरी शब्द ये थे कि आखिरी वक्त भय पकड़ रहा है। पता नहीं, ईश्वर हो, तो हर्ज क्या है राम—राम कर लेने में! नहीं हुआ तो कोई बात नहीं; अगर हुआ तो आखिरी क्षण स्मरण कर लिया।

यह भयभीत चित्त है। इसलिए अक्सर बूढ़े लोग आस्तिक हो जाते हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में बूढ़े स्त्री—पुरुष दिखाई पड़ते हैं। और पुरुषों की बजाय स्त्रियां ज्यादा दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि स्त्रियां ज्यादा भयभीत होती हैं। और का होते—होते हर आदमी स्त्रैण हो जाता है और भयभीत होने लगता है, डरने लगता है। हाथ—पैर कैंपने लगते हैं। जवानी का भरोसा चला जाता है। मौत करीब आने लगती है। जैसे—जैसे मौत करीब आती है, भय की छाया बढ़ती है। भय की छाया बढ़ती है, तो भगवान का भरोसा बढ़ता है।

यह भरोसा झूठा है। इस भरोसे का असलियत से कोई संबंध नहीं है। यह तो डर से पैदा हो रहा है। और डर से जो पैदा हो रहा है, उससे कोई क्रांति नहीं हो सकती जीवन में।

बच्चों को हम डराकर धार्मिक बना लेते हैं। और सदा के लिए इंतजाम कर देते हैं कि वे कभी धार्मिक न हो पाएंगे। बच्चों को डराया जा सकता है। मां—बाप शक्तिशाली हैं; समाज शक्तिशाली है, शिक्षक शक्तिशाली है। हम बच्चों को डर के आधार पर मंदिरों में झुका देते हैं, मस्जिदों में नमाज पढ़वा देते हैं, प्रार्थना करवा देते हैं। बच्चे मजबूरी में, डर की वजह से झुक जाते हैं, प्रार्थना कर लेते हैं। और फिर यह भय ही उन्हें सदा झुकाए रखता है।

लेकिन इस कारण कभी सच्ची श्रद्धा का जन्म नहीं होता। जिस आदमी को नकली हीरे—मोती असली मालूम पड़ गए, वह असली की खोज ही नहीं करेगा।

धार्मिक व्यक्ति भय से प्रभावित नहीं होता, न लोभ से आंदोलित होता है। धार्मिक व्यक्ति तो सत्य की तलाश में होता है। और उस तलाश के लिए कोई दूसरी प्रक्रिया है। उस तलाश के लिए ऊपर—ऊपर से थोपने का कोई उपाय नहीं है, न कोई लाभ है। उस तलाश के लिए भीतर उतरने की जरूरत है। आप जिस दिन अपने भीतर उतरना सीख जाएंगे, उसी दिन आपको सम्यक श्रद्धा भी उपलब्ध होने लगेगी।

जो व्यक्ति अपने भीतर जितना गहरा जाएगा, परमात्मा में उसकी उतनी ही श्रद्धा हो जाएगी। जो व्यक्ति अपने से बाहर जितना भटकेगा, वह कितनी ही परमात्मा की बातें करे, उसकी श्रद्धा झूठी और अंधी होगी।

परमात्मा तक पहुंचने की एक ही सीढ़ी है, वह आप स्वयं हैं। न तो किसी मंदिर में जाने से उसकी श्रद्धा पैदा होगी? न किसी मस्जिद में जाने से पैदा होगी। उसका मंदिर, उसकी मस्जिद, उसका गुरुद्वारा आप हैं। वह आपके भीतर छिपा है। आप जैसे—जैसे अपने भीतर उतरेंगे, वैसे—वैसे उसका स्वाद, उसका रस, उसका अनुभव आने लगेगा। और उस अनुभव के पीछे जो श्रद्धा जन्मती है, वही

श्रद्धा है। लेकिन नकली सिक्कों से जो राजी हो गया, वह भीतर कभी जाता नहीं।

झूठी श्रद्धा की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि जिस पर हम भरोसा कर रहे हैं, वह भीतर बैठा है। उस पर भरोसा करने की कोई जरूरत नहीं है, उसका तो अनुभव ही किया जा सकता है। और जिसका अनुभव किया जा सकता है, उसका भरोसा क्या करना? क्या जरूरत?

आप सूरज पर विश्वास नहीं करते। कोई आपसे पूछे कि आपकी सूरज में श्रद्धा है? तो आप हंसेंगे कि आप कैसा व्यर्थ का सवाल पूछते हैं! सूरज है; श्रद्धा का क्या सवाल? श्रद्धा का सवाल तो तभी उठता है उन चीजों के संबंध में, जिनका आपको पता नहीं है।

आपसे कोई नहीं पूछता कि आपकी पृथ्वी में श्रद्धा है? पृथ्वी है, श्रद्धा का क्या सवाल है। लेकिन लोग पूछते हैं, ईश्वर में श्रद्धा है? आत्मा में श्रद्धा है? और आप कभी नहीं सोचते कि ये भी असंगत सवाल हैं। लेकिन आप कहते हैं, श्रद्धा है या नहीं है। क्योंकि जिन चीजों के संबंध में पूछा जा रहा है, वे आपको अनुभव की नहीं मालूम होतीं।

लेकिन धर्म का यही आग्रह है कि वे भी उतने ही अनुभव की है, जितना पृथ्वी और सूरज; शायद इससे भी ज्यादा अनुभव की हैं। क्योंकि यह तो हो भी सकता है कि सूरज का हमें भ्रम हो रहा हो। क्योंकि सूरज बाहर है और हमारा उससे सीधा मिलना कभी नहीं होता।

वैज्ञानिक कहते हैं कि हम किसी भी चीज को सीधा नहीं देख सकते। सूरज को आपने कभी देखा नहीं है आज तक। क्योंकि सूरज को आप देखेंगे कैसे सीधा? सूरज की किरणें आती हैं, वे आपकी आंख पर पड़ती हैं। वे किरणें आपकी आंख में रासायनिक परिवर्तन पैदा करती हैं। वे रासायनिक परिवर्तन आपके भीतर विद्युत—प्रवाह पैदा करते हैं। वे विद्युत—प्रवाह आप तक पहुंचते हैं, उनकी चोट। वह चोट आपको अनुभव होती है।

आज तक सूरज कभी आपने देखा नहीं। सूरज को देखने का कोई उपाय नहीं है। अभी आप मुझे देख रहे हैं। लेकिन मैं आपको दिखाई नहीं पड़ रहा। आपको दिखाई तो भीतर रासायनिक परिवर्तन हो रहे हैं। सीधा पदार्थ को अनुभव करने का कोई उपाय नहीं है। बीच में इंद्रियों की मध्यस्थता है।

इसलिए यह तो हो भी सकता है कि सूरज न हो। सूरज के संबंध में जो श्रद्धा है, वह कामचलाऊ है। लेकिन स्वयं का अनुभव अगर हो जाए तो जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह कामचलाऊ नहीं है। वह आत्यंतिक, अल्टिमेट है। उसमें फिर कोई संदेह नहीं हो सकता। सिर्फ एक अनुभव है स्वयं की आत्मा का, जो असंदिग्ध कहा जा सकता है; बाकी सब अनुभव संदिग्ध हैं। सब में धोखा हो सकता है।

पिछले महायुद्ध में एक सैनिक फ्रास के एक अस्पताल में भरती हुआ। उसके पैर में भयंकर चोट पहुंची थी और असह्य पीड़ा थी और पीड़ा के कारण वह बेहोश हो गया था। चिकित्सकों ने देखा कि उसका पैर बचाना असंभव है, और अगर पैर नहीं काट दिया गया, तो पूरे शरीर में भी जहर फैल सकता है। इसलिए घुटने के नीचे का हिस्सा उन्होंने काट दिया। वह बेहोश था।

सुबह जब उसे होश आया, तो उसके पास खड़ी नर्स से उसने पहली बात यही कही कि मेरे पैर में बहुत तकलीफ हो रही है, मेरे पंजे में असह्य पीड़ा है। पंजा तो था नहीं। इसलिए पीड़ा तो हो नहीं सकती पंजे में। पैर तो काट दिया था। लेकिन उसे तो पता नहीं था, वह तो बेहोशी में था। होश आते ही उसने जो पहली बात कही, उसने कहा कि मेरे पंजे में बहुत पीड़ा है। वह तो बंधा कंबल में पड़ा हुआ है। उसे कुछ पता नहीं है।

नर्स हंसने लगी। उसने कहा कि फिर से थोड़ा सोचो। सच में पंजे में पीड़ा है? उस आदमी ने कहा, इसमें भी कोई झूठ होने का सवाल है? असह्य पीड़ा हो रही है मुझे। उस नर्स ने कहा, लेकिन तुम्हारा पैर तो काट दिया गया है, इसलिए यह तो माना नहीं जा सकता कि तुम्हारे पंजे में पीड़ा हो रही है। जो पंजा अब है ही नहीं, उसमें पीड़ा कैसे हो सकती है?

नर्स ने कंबल उघाड़ दिया। उस आदमी ने देखा, उसके घुटने के नीचे का पैर तो कट गया है। लेकिन उसने कहा कि मैं देख रहा हूं कि मेरे घुटने के नीचे का पैर कट गया है, लेकिन फिर भी मुझे पंजे में ही पीड़ा हो रही है; मैं क्या कर सकता हूं!

डाक्टर बुलाए गए। उन्होंने बड़ी खोजबीन की। यह पहला मौका था कि कोई आदमी ऐसी पीड़ा की बात कर रहा है, जो अंग ही न बचा हो! आपका सिर किसी ने काट दिया और आप कह रहे हैं, सिर में दर्द हो रहा है! पैर बचा ही नहीं, तो पंजे में दर्द नहीं हो सकता। घुटने में दर्द हो सकता है, क्योंकि वहां से काटा गया है। लेकिन वह आदमी कहता है, घुटने में मुझे दर्द नहीं, मुझे दर्द तो पंजे में है।

तो उसका बहुत अन्वेषण किया गया। और पाया गया कि दर्द जब आपके पंजे में होता है, तो उससे सीधा तो आपकी मुलाकात होती नहीं। पंजे से स्नायुओं का जाल फैला हुआ है मस्तिष्क तक। वे स्नायु कंपते हैं, उनके कंपन से आपको दर्द का पता चलता है। पंजा तो काट दिया गया। लेकिन जो स्नायु पंजे के दर्द में कंपना शुरू हुए थे, वे अब भी कैप रहे हैं। इसलिए उनके कारण उस आदमी को खबर मिल रही है कि पंजे में दर्द हो रहा है। पंजा नहीं है, और पंजे में दर्द हो रहा है!

उस आदमी के अन्वेषण से यह तय हुआ कि बाहर से जो भी घटनाएं आपको मिल रही हैं, उनके बाबत पक्का नहीं हुआ जा सकता। निश्चित नहीं है; संदिग्ध है। बिना पंजे के दर्द हो सकता है। बिना आदमी के मौजूद आपको आदमी दिखाई पड़ सकता है। अगर आपके भीतर वे ही स्नायु कंपित कर दिए जाएं, जो आदमी के मौजूद होने पर कंपित होते हैं, तो आपको आदमी दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।

अभी उन्होंने चूहों पर बहुत—से प्रयोग किए। स्लेटर ने एक यंत्र छोटा—सा बनाया है। जब कोई व्यक्ति, पुरुष—स्त्री, पशु—पक्षी, कोई भी संभोग करता है, तो संभोग में जो रस आता है वह रस कहां आता है? क्योंकि संभोग तो घटित होता है यौन—केंद्र के पास और रस आता है मस्तिष्क में, तो जरूर मस्तिष्क में कोई तंतु कंपते होंगे जिनके कारण रस आता है।

तो स्लेटर ने उन तंतुओं की खोज की चूहों में। और उसने एक छोटा—सा यंत्र बनाया। और मस्तिष्क से इलेक्ट्रोड जोड़ दिए बिजली के तार जोड़ दिए। और जैसे ही वह बटन दबाता, चूहा वैसे ही आनंदित होने लगता, जैसा संभोग में होता है। फिर तो उसने एक ऐसा यंत्र बनाया कि बटन चूहे के सामने ही लगा दी। और चूहे को ही अनुभव हो गया। जब चूहे ने बार—बार बटन स्लेटर को दबाते देखा और उसे आनंद आया भीतर, तो चूहा खुद बटन दबाने लगा। फिर तो स्लेटर ने लिखा है कि चूहे ने खाना—पीना सब बंद कर दिया। वह एकदम बटन दबाता ही चला जाता, जब तक कि बेहोश न हो जाता। एक चूहे ने छ: हजार बार बटन दबाया। दबाता ही गया। दबाएगा, आनंदित होगा, फिर दबाएगा, फिर आनंदित होगा। छ: हजार बार उसने संभोग का रस लिया। और संभोग तो हो नहीं रहा; मस्तिष्क में तंतु हिल रहे हैं।

स्लेटर का कहना है कि यह यंत्र अगर कभी विकसित हुआ, तो मनुष्य संभोग से मुक्त भी हो सकता है। लेकिन यह खतरनाक यंत्र है। अगर चूहा छ: हजार बार दबाता है, तो आप साठ हजार बार दबाके। चूहे को इतना रस आ रहा है, तो चूहों की कामुकता के बाबत कोई बहुत ज्यादा खबर नहीं है, लेकिन आदमी तो बहुत कामुक मालूम होता है। वह तो फिर दबाता ही रहेगा। चूहा भी जब तक बेहोश होकर नहीं गिर गया, एक्सास्टेड, तब तक वह दबाता ही रहा।

जो कुछ भी बाहर घटित हो रहा है, वह आपके मस्तिष्क में पहुंचता है तंतुओं के द्वारा। इसलिए उसके बाबत सचाई नहीं है कि बाहर सच में घटित हो रहा है या सिर्फ तंतु खबर दे रहे हैं। आपको धोखे में डाला जा सकता है।

सिर्फ अनुभव तो एक है असंदिग्ध, जिस पर श्रद्धा हो सकती है। और वह अनुभव है भीतर का, जो इंद्रियों के माध्यम से घटित नहीं होता। जिसका सीधा साक्षात्कार होता है।

तो जितना कोई व्यक्ति अपने भीतर उतरता है, उतना ही परमात्मा में श्रद्धा बढ़ती है। इसलिए महावीर ने तो कहा है, परमात्मा की बात ही मत करो। सिर्फ आत्मा को जान लो और तुम परमात्मा हो जाओगे। इसलिए महावीर ने परमात्मा की बात के लिए भी मना कर दिया। न तो उसकी बात करो, न उस पर श्रद्धा करो। तुम सिर्फ आत्मा को जान लो और तुम परमात्मा हो जाओगे। क्योंकि उसके जानने में ही वह अनुभव तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा, जो परम और आत्यंतिक है।

श्रद्धा का अर्थ है, अनुभव पर आधारित। अंध— श्रद्धा का अर्थ है, लोभ, भय पर आधारित। आप अपने भीतर खोज करें कि आपकी श्रद्धाएं लोभ पर आधारित हैं, भय पर आधारित हैं या अनुभव पर आधारित हैं। अगर लोभ और भय पर आधारित हैं, तो आप अंध— श्रद्धा में जी रहे हैं।

और जो अंध—श्रद्धा में जी रहा है वह धार्मिक नहीं है, और वह बड़े खतरे में है। वह अपने जीवन को ऐसे ही नष्ट कर देगा। श्रद्धा में जीने की शुरुआत ही धार्मिक होने की शुरुआत है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा कि एक के प्रति अनन्य प्रेम व श्रद्धा को अव्यभिचारिणी की संज्ञा दी तथा अनेक के प्रति प्रेम व श्रद्धा को व्यभिचारिणी कहा। साधारणत: स्थिति उलटी लगती है। अर्थात एक के प्रति प्रेम मोह व आसक्ति बन जाती है और अनेक के प्रति प्रेम मुक्ति व प्रेम का विस्तार तथा प्रार्थना बन जाती है। दूसरी बात यह कि अनेक को प्रेम कर पाना प्रेम का विस्तार व विकास लगता है, व्यभिचारी भाव नहीं। इस विरोधाभास के संबंध में कुछ कहें।

दो बातें हैं। एक तो एक और अनंत, और इन दोनों के बीच में है अनेक। या तो अनंत को प्रेम करें, तो मुक्त हो जाएंगे। और या एक को प्रेम करें, तो मुक्त हो जाएंगे। अनेक उलझा देगा। अनेक व्यभिचार है, अनंत नहीं। या तो एक को प्रेम करें कि सारा प्रेम एक पर आ जाए। इसलिए नहीं कि एक का प्रेम मुक्त करेगा। कल भी मैंने कहा, एक पर अगर प्रेम करेंगे, तो आप भीतर एक हो जाएंगे।

प्रेम तो कला है स्वयं को रूपांतरित करने की। अगर एक को प्रेम किया, तो आप एक हो जाएंगे। और या फिर अनंत को प्रेम करें, तो आप अनंत हो जाएंगे।

लेकिन अनेक को प्रेम मत करें, नहीं तो आप खंड—खंड हो जाएंगे।

एक का प्रेम मोह बन सकता है, अनेक का प्रेम भी मोह बनेगा; सिर्फ जरा बदलता हुआ मोह रहेगा। एक का प्रेम आसक्ति बन सकता है, तो अनेक का प्रेम भी आसक्ति बनेगा। और एक का प्रेम जब इतनी आसक्ति और इतना कष्ट देता है, तो अनेक का प्रेम और आसक्ति और भी ज्यादा कष्ट देगा।

लोग सोचते हैं कि अनेक को प्रेम करने से प्रेम मुक्त होगा, गलत खयाल में हैं। और जो भी वैसा सोचते हैं, वे असल में रुग्ण हैं। जैसे लार्ड बायरन, इस तरह के लोग, डान जुआन टाइप के लोग, जो एक को प्रेम, दो को प्रेम, तीन को प्रेम, इसी चक्कर में भटकते रहते हैं।

पहले तो लोग सोचते थे, मनोवैज्ञानिक भी सोचते थे कि जो डान जुआन टाइप का आदमी जो है, यह बड़ा प्रेमी है। इसके पास इतना प्रेम है कि एक व्यक्ति पर नहीं चुकता, इसलिए बहुत—से व्यक्तियों को प्रेम करता फिरता है। लेकिन अब मनसविद मानते हैं कि यह रुग्ण है। बहुत प्रेम नहीं है, प्रेम है ही नहीं। इसको प्रेम करना ही नहीं आता। और इसलिए केवल व्यक्तियों को बदलता चला जाता है। और जितना आप व्यक्तियों को बदलेंगे, उतना छिछला हो जाएगा प्रेम। क्योंकि गहराई के लिए समय चाहिए। और गहराई के लिए आत्मीयता चाहिए। और गहराई के लिए निकट साहचर्य चाहिए।

अगर एक व्यक्ति रोज एक स्त्री बदल लेता है और प्रेम करता चला जाता है, तो उसका प्रेम शरीर से गहरा कभी भी नहीं हो पाएगा। क्योंकि शरीर से ज्यादा संबंध ही नहीं हो पाएगा। मन तो तब संबंधित होता है, जब दो व्यक्ति सुख—दुख में साथ रहते हैं। और आत्मा तो तब संबंधित होती है, जब धीरे— धीरे, धीरे— धीरे दूसरे की मौजूदगी भी पता नहीं चलती कि दूसरा मौजूद है। जब दो व्यक्ति एक कमरे में इस भाति होते हैं, जैसे एक ही व्यक्ति हो, दो हैं ही नहीं, तब कहीं भीतर की आत्मा का संबंध स्थापित होता है। एक का प्रेम आसक्ति बन सकता है। जरूरी नहीं है कि बने। बनाने वाले पर निर्भर करता है। और जो एक के साथ आसक्ति बना लेगा, वह अनेक के साथ भी आसक्ति बना लेगा। एक के साथ प्रेम प्रार्थना भी बन सकता है। वह बनाने वाले पर निर्भर है।

जिस व्यक्ति को आप प्रेम करते हैं, अगर वह प्रेम केवल शरीर का ही प्रेम न हो, अगर उसके भीतर के मनुष्यत्व का और उसके भीतर की आत्मा का भी प्रेम हो, और धीरे— धीरे बाहर गौण हो जाए और भीतर प्रमुख हो जाए; और धीरे— धीरे उसका आकार और रूप भूल जाए और उसका निराकार और निर्गुण स्मरण में रहने लगे, तो वह प्रेम प्रार्थना बन गया।

और अच्छा है कि एक के साथ ही यह प्रेम प्रार्थना बने। क्योंकि एक के साथ गहराई आसान है; अनेक के साथ गहराई आसान नहीं है। अनेक के साथ प्रेम ऐसा ही है, जैसे एक आदमी एक हाथ जमीन यहां खोदे, दो हाथ जमीन कहीं और खोदे, तीन हाथ जमीन कहीं और खोदे, और जिंदगीभर इस तरह खोदता रहे और कुआं कभी भी न बने। क्योंकि कुआं बनाने के लिए एक ही जगह खोदते जाना जरूरी है। साठ हाथ, सौ हाथ एक ही जगह खोदे, तो शायद जल—स्रोत उपलब्ध हो पाए।

दो व्यक्तियों के बीच अगर गहरा प्रेम हो, तो वे एक ही जगह खोदते चले जाते हैं। खोदते—खोदते एक दिन शरीर की पर्त टूट जाती है, मन की पर्त भी टूट जाती है और एक—दूसरे के भीतर के चैतन्य का संस्पर्श शुरू होता है। पति—पत्नी अगर गहरे प्रेम में हों, तो एक—दूसरे में परमात्मा को खोज ले सकते हैं। दो प्रेमी परमात्मा को खोज ले सकते हैं। उनका प्रेम धीरे— धीरे प्रार्थना बन जाएगा। लेकिन अगर यह लगता हो कि इसमें खतरा है, तो खतरा इस कारण नहीं लगता कि एक व्यक्ति के प्रति प्रेम में खतरा है। खतरा अपने ही किसी दोष के कारण लगता है।

तो दूसरा उपाय है। और वह दूसरा उपाय है, अनंत के प्रति प्रेम। तब फिर एक का खयाल ही छोड़ दें; अनेक का भी खयाल छोड़ दें। फिर रूप का खयाल ही छोड़ दें, शरीर का खयाल ही छोड़ दें। फिर तो अनंत का, शाश्वत का, जो चारों तरफ मौजूद निराकार है, उसके प्रेम में लीन हों। फिर पत्थर से भी प्रेम हो, वृक्ष से भी प्रेम हो, आकाश में घूमते हुए बादल के टुकड़े से भी प्रेम हो। फिर व्यक्तियों का सवाल न रहे; फिर अनंत के साथ प्रेम हो। तो भी व्यभिचार पैदा न होगा।

एक के साथ अव्यभिचार हो सकता है और अनंत के साथ अव्यभिचार हो सकता है। दोनों के बीच में व्यभिचार पैदा होगा। और आदमी बहुत बेईमान है। और अपने को धोखा देने में बहुत कुशल है। अभी पश्चिम में इसकी बहुत तेज हवा है। क्योंकि पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि एक के साथ प्रेम जड़ता बन जाता है, कुंठा बन जाता है, अवरोध हो जाता है; प्रेम तो मुक्त होना चाहिए। और मुक्त प्रेम मुक्ति लाएगा। तो उसका परिणाम केवल गहरी अनैतिकता है। न तो कोई मुक्ति आ रही है, न कोई प्रेम आ रहा है, न कोई प्रार्थना आ रही है। लोग व्यक्तियों को बदलते जा रहे हैं और व्यक्तियों के साथ एक तरह का खिलवाड़ शुरू हो गया है। वह जो पवित्रता है, वह जो आत्मीयता है, उसका उपाय ही नहीं रहा। आज एक स्त्री है, कल दूसरी स्त्री है। आज एक पति है, कल दूसरा पति है। पति—पत्नी का भाव ही गिरता जा रहा है। दो व्यक्तियों के बीच जैसे क्षणभर का संबंध है। न कोई दायित्व है, न कोई गहरा लगाव है, न कोई कमिटमेंट। नहीं, कुछ भी नहीं है। एक ऊपर के तल पर मिलना—जुलना है। यह मिलना—जुलना खतरनाक है। और इसके परिणाम पश्चिम में प्रकट होने शुरू हो गए हैं।

आज पश्चिम में प्रेम की इतनी चर्चा है, और प्रेम बिलकुल नहीं है। क्योंकि प्रेम के लिए अनिवार्य बात थी कि एक व्यक्ति के साथ गहरी संगति हो। और एक व्यक्ति के प्रति ऐसा भाव हो कि जैसे उस व्यक्ति के अतिरिक्त अब तुम्हारे लिए जगत में और कोई नहीं है, तो ही उस व्यक्ति में गहरे उतरना संभव हो पाएगा।

कृष्ण ने जो कहा है, अव्यभिचारिणी भक्ति, उसका प्रयोजन यही है।

एक मित्र को मैं जानता हूं। वे कहते हैं, कुरान भी ठीक, गीता भी ठीक, बाइबिल भी ठीक, सभी ठीक। मस्जिद भी ठीक, मंदिर भी ठीक। लेकिन न तो उन्हें मंदिर में रस है और न मस्जिद में; न गीता में, न कुरान में। सबको ठीक कहने का मतलब ऐसा नहीं है कि वे जानते हैं कि सब ठीक है। सबको ठीक कहने का मतलब यह है कि हमें कोई मतलब ही नहीं है। सभी ठीक है। उपेक्षा का भाव है। कोई रस नहीं है, कोइ लगाव नहीं है। एक इनडिफरेंस है। इस उपेक्षा से कोई आस्तिकता तो पैदा होगी नहीं। क्योंकि इस उपेक्षा से कोई काम ही नहीं हो सकता। न मंदिर में झुकते हैं वे, न मस्जिद में झुकते हैं।

यह भी हो सकता है, ऐसे लोग भी हैं, जो मंदिर के सामने भी झुक जाते हैं, मस्जिद के सामने भी झुक जाते हैं। लेकिन उनका झुकना औपचारिक है। लेकिन एक अनन्य भाव नहीं है।

वह जो आदमी कहता है कि नहीं, मस्जिद में ही भगवान हैं; भला हमें उसकी बात जिद्दपूर्ण मालूम पड़े, और परम ज्ञान की दृष्टि से जिद्दपूर्ण है। परम ज्ञान की दृष्टि से मंदिर में भी है, मस्जिद में भी है, गुरुद्वारा में भी है। लेकिन परम

ज्ञान की दृष्टि से! वह अभी परम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। अभी तो उचित है कि उसका एक के प्रति ही पूरा भाव हो। वह अभी मंदिर में ही पूरा डूब जाए या मस्जिद में ही पूरा डूब जाए।

जिस दिन वह मस्जिद में पूरा डूब जाएगा, उस दिन मस्जिद में ही मंदिर भी प्रकट हो जाएगा। लेकिन वह बाद की बात है। अभी मस्जिद में भी डूबा नहीं, मंदिर में भी डूबा नहीं। और वह कहता है, सब ठीक है। मंदिर में भी सिर झुका लेता हूं मस्जिद में भी सिर झुका लेता हूं। उसका हृदय कहीं भी नहीं झुकेगा।

यह ऐसा है, जैसे आपका किसी स्त्री से प्रेम हो जाए। जब आपका किसी स्त्री से प्रेम हो जाता है,. तो आपको लगता है, ऐसी सुंदर स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। यह कोई सच्ची बात नहीं है। क्योंकि न तो आपने सारी जगत की स्त्रियां देखी हैं, न जांच—परख की है, न तौला है। यह वक्तव्य गलत है। और यह आप कैसे कह सकते हैं बिना दुनियाभर की स्त्रियों को जाने हुए कि तुझसे सुंदर कोई भी नहीं है!

लेकिन आपकी भाव—दशा यह है। अगर आज सारी दुनिया की स्त्रियां भी खड़ी हों, तो भी आपको यही लगेगा कि यही स्त्री सबसे ज्यादा सुंदर है। सौंदर्य स्त्री में नहीं होता, आपके प्रेम के भाव में होता है। और जब किसी स्त्री पर आपका प्रेम— भाव आरोपित हो जाता है, तो वही सुंदर है। सारा जगत फीका हो जाता है। इस क्षण में, इस भाव— दशा में, यही सत्य है।

और आप ज्ञान की बातें मत करें, कि आप कहें कि नहीं, दूसरी स्त्री भी सुंदर है; यह भी सुंदर है और सभी सुंदर हैं। सुंदर तो सभी हैं। और यह बात कहनी ठीक नहीं है, क्योंकि गणित के हिसाब से ठीक नहीं बैठती। तो आप कभी प्रेम में ही न पड़ पाएंगे। और अगर सच में आप प्रेम में पड़ जाएं, तो उस क्षण में एक स्त्री, एक पुरुष आपको परम सुंदर मालूम पड़ेगा।

उसमें अगर आप लीन हो सकें, तो धीरे— धीरे स्त्री का व्यक्तित्व खो जाएगा। और स्त्रैण तत्व का सौंदर्य दिखाई पड़ने लगेगा। और गहरे उतरेंगे, तो स्त्रैण तत्व भी खो जाएगा, सिर्फ चैतन्य का सौंदर्य अनुभव में आने लगेगा। जितने गहरे उतरेंगे, सीमा टूटती जाएगी और असीम प्रकट होने लगेगा। लेकिन प्राथमिक क्षण में तो यही भाव पैदा होगा कि इससे ज्यादा सुंदर और कोई भी नहीं है।

बहुत बार धार्मिक, सामाजिक सुधार करने वाले लोग, बहुत तरह के नुकसान पहुंचा देते हैं। वे समझा देते हैं, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। वे बिलकुल ठीक कह रहे हैं। और फिर भी गलत कह रहे हैं। क्योंकि जिस आदमी को ऐसा लग गया, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, न तो अल्लाह के प्रति डूबने की क्षमता आएगी और न राम के प्रति डूबने की क्षमता आएगी।

प्राथमिक क्षण में तो ऐसा मालूम होना चाहिए कि अल्लाह ही सत्य है, राम वगैरह सब व्यर्थ। या राम ही सत्य है, अल्लाह वगैरह सब व्यर्थ। प्राथमिक क्षण में तो यह प्रेम का ही भाव होना चाहिए। अंतिम अनुभव में पता चल जाएगा, शिखर पर पहुंचकर, कि सभी रास्ते यहीं आते हैं।

लेकिन जमीन पर बैठा हुआ आदमी, जो पहाड़ पर चढ़ा नहीं, वह कहता है, सभी रास्ते वहीं जाते हैं। फिर वह चलेगा कैसे! चलना तो एक रास्ते पर होता है। सभी रास्तों पर कोई भी नहीं चल सकता। चलने के लिए तो यह भाव होना चाहिए कि यही रास्ता जाता है, बाकी कोई रास्ता नहीं जाता। तो ही हिम्मत, उत्साह पैदा होता है। लेकिन जो चला नहीं है, बैठा है अभी दरवाजे पर ही यात्रा के, वह कहता है, सभी रास्ते वहां जाते हैं। वह चल ही नहीं पाएगा, पहला कदम ही नहीं उठेगा।

तो जो अंतिम रूप से सत्य है, वह प्रथम रूप से सत्य हो, यह जरूरी नहीं है। और जो प्रथम रूप से सत्य मालूम होता है, वह अंत में भी बचेगा, यह भी जरूरी नहीं है।

आखिर में तो न अल्लाह उसका नाम है और न राम उसका नाम है। उसका कोई नाम ही नहीं है। लेकिन प्राथमिक रूप से तो कोई एक नाम को ही पकड़कर चलना, अगर चलना हो। अगर बैठना हो, तो सभी नाम बराबर हैं। जिस

आदमी को चलना नहीं है, वह आदमी इस तरह की बातें कर सकता है। लेकिन जिसको चलना है, उसका सिर तो एक जगह झुकना चाहिए। क्योंकि झुकने के लिए जो अनन्य भाव न हो, तो पूरा समर्पण नहीं हो सकता।

मस्जिद में गया हुआ आदमी सोचता है, मंदिर भी ठीक, गिरजा भी ठीक, गुरुद्वारा भी ठीक, तो झुक नहीं सकता। वह जो झुकने की दशा चाहिए कि डूब जाए पूरा, वह नहीं हो सकता। वह तो होगा अनन्य भाव से।

तो कृष्ण जो कहते हैं अव्यभिचारिणी भक्ति, उसका अर्थ है, एक के प्रति। फिर सवाल यह नहीं है कि वह अल्लाह के प्रति हो, कि राम के प्रति हो, कि बुद्ध के प्रति हो, कि महावीर के प्रति हो, यह सवाल नहीं है। किसी के प्रति हो, वह एक के प्रति हो।

इस संबंध में यह बात समझ लेनी जरूरी है कि दुनिया के जो पुराने दो धर्म हैं, यहूदी और हिंदू बाकी सब धर्म उनकी ही शाखाएं हैं। इस्लाम, ईसाइयत यहूदी धर्म की शाखाएं हैं। जैन, बौद्ध हिंदू धर्म की शाखाएं हैं। लेकिन मौलिक धर्म दो हैं, हिंदू और यहूदी। और दोनों के संबंध में एक बात सच है कि दोनों ही नान—कनवर्टिंग हैं। न तो यहूदी पसंद करते हैं कि किसी को यहूदी बनाया जाए समझा—बुझाकर। और न हिंदू पसंद करते रहे हैं कि किसी को समझा—बुझाकर हिंदू बनाया जाए। दोनों की मान्यता यह रही है कि किसी की भी जो अनन्य श्रद्धा हो, उससे उसे जरा भी हिलाया न जाए। उसकी जो श्रद्धा हो, वह उसी श्रद्धा से आगे बढ़े। और अगर कोई व्यक्ति आधे जीवन में परिवर्तित कर लिया जाए, तो उसकी श्रद्धा कभी भी अनन्य न हो पाएगी।

एक बच्चा हिंदू की तरह पैदा हुआ और तीस साल तक हिंदू भाव में बड़ा हुआ। और फिर तीस साल के बाद उसे यहूदी बना दिया जाए। वह यहूदी भला बन जाए, लेकिन भीतर हिंदू रहेगा, ऊपर यहूदी रहेगा। और ये दो परतें उसके भीतर रहेंगी। इन दो परतों के कारण वह कभी भी एक भाव को और एक समर्पण को उपलब्ध नहीं हो पाएगा।

इसलिए दुनिया के ये पुराने दो धर्म नान—कनवर्टिंग थे। इन्होंने कहा, हम किसी को बदलेंगे नहीं। अगर कोई बदलने को भी आएगा, तो भी बहुत विचार करेंगे, बहुत सोचेंगे, समझेंगे—तब। जहां तक तो कोशिश यह करेंगे उसको समझाने की कि वह बदलने की चेष्टा छोड़ दे। वह जहां है, जिस तरफ चल रहा है, वहीं अनन्य भाव से चले। वहीं से पहुंच जाए।

इसमें बड़ी समझने की बात है, बहुत विचारने की बात है। क्योंकि व्यक्ति को हम जितनी ज्यादा दिशाएं दे दें, उतना ही ज्यादा चलना मुश्किल कर देते हैं।

कृष्ण का यह कहना कि तू अनन्य भाव से एक के प्रति समर्पित हो जा, इसका प्रयोजन है। क्योंकि तब तू भीतर भी एक और इंटिग्रेटेड हो जाएगा। और वह जो तेरे भीतर एकत्व घटित होगा, वही तुझे परमात्मा की तरफ ले जाने वाला है।

अगर यह बात ठीक न लगती हो, तो अनेक विकल्प नहीं है। विकल्प है फिर, अनंत। तो फिर अनंत के प्रति समर्पित हो जाएं। दो के बीच चुनाव कर लें। लेकिन अनेक खतरनाक है। अनेक दोनों के बीच में है, और उससे व्यभिचार पैदा होता है। और आप खंड—खंड हो जाते हैं, टूट जाते हैं। और आपका टूटा हुआ व्यक्तित्व किसी भी गहरी यात्रा में सफल नहीं हो सकता।

अब हम सूत्र लें।

और हे अर्जुन, जो जानने के योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य अमृत और परम आनंद को प्राप्त होता है, उसको अच्छी प्रकार कहूंगा।

जो जानने के योग्य है..।

इसे थोड़ा हम खयाल में ले लें। बहुत—सी बातें जानने की इच्छा पैदा होती है, जिज्ञासा पैदा होती है, कुतूहल पैदा होता है। लेकिन हम यह कभी नहीं सोचते कि सच में वे बातें जानने योग्य भी हैं या नहीं। कुतूहल काफी नहीं है। क्योंकि कुतूहल से कुछ हल न होगा, समय और शक्ति व्यय होगी।

बहुत—सी बातें हम जानने की कोशिश करते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि जानकर क्या करेंगे। बच्चों जैसी उत्सुकता है। अगर बच्चों को साथ ले जाएं, तो वे कुछ भी पूछेंगे, कुछ भी सवाल उठाते जाएंगे। और ऐसा भी नहीं है कि सवालों से उन्हें कुछ मतलब है। अगर आप जवाब न दें, तो एक—दो क्षण बाद वे दूसरा सवाल उठाएंगे। पहले सवाल को फिर न उठाएंगे।

बच्चों की तो बात छोड़ दें। मेरे पास बड़े—बूढ़े आते हैं, उनसे भी मैं चकित होता हूं। आते हैं सवाल उठाने। कहते हैं कि बड़ी जिज्ञासा है। और मैं दो मिनट कुछ और बातें करता हूं फिर वे घंटेभर बैठते हैं, लेकिन दुबारा वह सवाल नहीं उठाते। फिर वे चले जाते हैं। वह सवाल कुछ मूल्य का नहीं था। वह सिर्फ कुतूहल था, क्यूरिआसिटी थी।

अभी तो पश्चिम के वैज्ञानिक भी यह सोचने लगे हैं कि हमें विज्ञान के कुतूहल पर भी रोक लगानी चाहिए। क्योंकि विज्ञान कुछ भी पूछे चला जाता है, कुछ भी खोजे चला जाता है, बिना इसकी फिक्र किए कि इसका परिणाम क्या है? इससे होगा क्या? इसको जान भी लेंगे, तो क्या होगा?

जानने को तो बहुत है, और आदमी के पास समय तो थोड़ा है। जानने को तो अनंत है, और आदमी की तो सीमा है। जानने के तो कितने आयाम हैं, और अगर आदमी ऐसा ही जानता रहे सभी रास्तों पर, तो खुद समाप्त हो जाएगा और कुछ भी जान न पाएगा। तो कृष्ण कहते हैं, जो जानने योग्य है..।

जिसको जानने का मन होता है, वह जानने योग्य है, जरूरी नहीं है। फिर जानने योग्य क्या है? क्या है परिभाषा जानने योग्य की? जानने की जिज्ञासा तो बहुत चीजों की पैदा होती है—यह भी जान लें, यह भी जान लें, यह भी जान लें।

कृष्ण कहते हैं—और भारत की पूरी परंपरा कहती है—कि जानने योग्य वह है, जिसको जानने पर फिर कुछ जानने को शेष न रह जाए। अगर फिर भी जानने को शेष रहे, तो वह जानने योग्य नहीं था। उससे तो प्रश्न थोड़ा आगे हट गया और कुछ हल न हुआ। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि जब मैं बच्चा था और मेरी पहली दफा उत्सुकता दर्शन में बढ़ी, तो मैं सोचता था, दर्शनशास्त्र में सभी प्रश्नों के उत्तर हैं। नब्बे वर्ष का का होकर अब मैं यह कह सकता हूं कि मेरी धारणा बिलकुल गलत थी और परिणाम बिलकुल दूसरा निकला है। दर्शनशास्त्र के पास उत्तर तो हैं ही नहीं, सिवाय प्रश्नों के। और पहले मैं सोचता था कि खोज करने से प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे, और नब्बे वर्ष तक मेहनत करके अब मैं पाता हूं कि खोज करने से एक प्रश्न में से' दस प्रश्न निकल आते हैं, उत्तर वगैरह कुछ भी मिलता नहीं है।

पूरे दर्शनशास्त्र का इतिहास पुराने प्रश्नों में से नए प्रश्न निकालने का इतिहास है। उत्तर कुछ भी नहीं है। और जो लोग उत्तर देने की कोशिश भी करते हैं, उनका उत्तर भी कोई मानता नहीं है। उन उत्तर में से भी दस प्रश्न लोग खड़े करके पूछने लगते हैं। एक प्रश्न दूसरे प्रश्न को जन्म देता है, उत्तर कहीं दिखाई नहीं पड़ते। कारण कुछ होगा। और कारण यही है।

धर्म पूछता है उसी प्रश्न को, जो पूछने योग्य है। और जानना चाहता है वही, जो जानने योग्य है। और दर्शनशास्त्र जानना चाहता है कुछ भी, जो भी जानने योग्य लगता है; जिसमें भी कुतूहल पैदा हो जाता है।

दर्शनशास्त्र खुजली की तरह है। खुजाने का मन होता है, इसकी बिना फिक्र किए कि परिणाम क्या होगा। खुजाते वक्त अच्छा भी लगता है। लेकिन फिर लहू निकल आता है और पीड़ा होती है! धर्म कहता है, खुजाने के पहले पूछ लेना जरूरी है कि परिणाम क्या होगा। जिस जानने से और जानने के सवाल उठ जाएंगे, वह जानना व्यर्थ है। पर एक ऐसा जानना भी है, जिसको जानकर सब जानने की दौड़ समाप्त हो जाती है। वह कब होगी? उस बात को भी ठीक से समझ लेना चाहिए। आखिर आदमी जानना ही क्यों चाहता है?

इसे हम ऐसा समझें कि अगर कोई मृत्यु न हो, तो दुनिया में दर्शनशास्त्र होगा ही नहीं। मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, जीवन क्या है? मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, शरीर ही सब कुछ तो नहीं है, आत्मा भीतर है या नहीं? मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, जब शरीर गिर जाएगा तो क्या होगा? मृत्यु के कारण आदमी पूछता है, परमात्मा है या नहीं है?

थोड़ी कल्पना करें एक ऐसे जगत की, जहां मृत्यु नहीं है, जीवन शाश्वत है। वहां न तो आप पूछेंगे आत्मा के संबंध में, न परमात्मा के संबंध में। वहा दर्शनशास्त्र का जन्म ही नहीं होगा।

सारा दर्शनशास्त्र मृत्यु से जन्मता है।

इसलिए धर्म कहता है, जब तक अमृत का पता न चल जाए, तब तक तुम्हारे प्रश्नों का कोई अंत न होगा, क्योंकि तुम मृत्यु के कारण पूछ रहे हो। जब तक तुम्हें अमृत का पता न चल जाए, तब तक तुम पूछते ही रहोगे, पूछते ही रहोगे। और कोई भी उत्तर दिया जाए, हल न होगा, जब तक कि अमृत का अनुभव न मिल जाए। इसलिए बुद्ध अक्सर कहते थे उनके पास आए लोगों से, कि तुम प्रश्नों के उत्तर चाहते हो या समाधान? जो भी आदमी आता उसको तो एकदम से समझ में भी न पड़ता कि फर्क क्या है? कोई आदमी आकर पूछता कि ईश्वर है या नहीं? तो बुद्ध कहते, तू उत्तर चाहता है कि समाधान? तो वह आदमी तो पहले चौंकता ही कि दोनों में फर्क क्या है? तो बुद्ध कहते, उत्तर अगर चाहिए, तो उत्तर तो हां या न में दिया जा सकता है, कि ईश्वर है या ईश्वर नहीं है। लेकिन तुझे उत्तर मिलेगा नहीं। क्योंकि मेरे कहने से क्या होगा! उत्तर तो मैं दे सकता हूं; समाधान तुझे खोजना पड़ेगा। उत्तर तो ऐसे मुफ्त मिल सकता है, समाधान साधना से मिलेगा। उत्तर तो ऊपरी होगा, समाधान आंतरिक होगा। तो तू ईश्वर है या नहीं, इसका उत्तर चाहता है कि समाधान? उत्तर चाहिए, तो शास्त्र में भी मिल जाएगा। और अगर समाधान चाहिए, तो फिर साधना की तैयारी करनी पड़ेगी। समाधान तो तेरे रूपांतरण से होगा।

तो कृष्ण कहते हैं, जो जानने योग्य है और जिसको जानकर मनुष्य अमृत को प्राप्त होता है..।

वही जानने योग्य है, जिसको जानकर आदमी अमृत को प्राप्त होता है। और अमृत परमानंद है, मृत्यु दुख है।

हमारे सभी दुखों के पीछे मृत्यु छिपी है। अगर आप खोज करेंगे, तो आप जिन बातों को भी दुख मानते हैं, उन सबके पीछे मृत्यु की छाया मिलेगी। चाहे ऊपर से दिखाई भी न पड़े, थोड़ा खोज करेंगे, तो पाएंगे, सभी दुखों के भीतर मृत्यु छिपी है। जहां भी मृत्यु की झलक मिलती है, वहीं दुख आ जाता है।

बुढ़ापे का दुख है, बीमारी का दुख है, असफलता का दुख है, सब मृत्यु का ही दुख है। धन छिन जाए, तो दुख है; वह भी मृत्यु का ही दुख है। क्योंकि धन से लगता है, इस जीवन को सुरक्षित करेंगे। धन छिन गया, असुरक्षित हो गए।

मकान जल जाए, तो दुख होता है। वह भी मकान के जलने का दुख नहीं है। मकान की दीवारों के भीतर मालूम होता था, सब ठीक है, सुरक्षित है। मकान के बाहर आकाश के नीचे खड़े होकर मौत ज्यादा करीब मालूम पड़ती है।

धन पास में न हो, तो मौत पास मालूम पड़ती है। धन पास में हो, तो मौत जरा दूर मालूम पड़ती है। धन की दीवार बीच में खड़ी हो, तो हम मौत को टाल सकते हैं, कि अभी कोई फिक्र नहीं; देखेंगे। और फिर धन हमारे पास है, कुछ न कुछ इंतजाम कर लेंगे। चिकित्सा हो सकती है, डाक्टर हो सकता है। कुछ होगा। हम मृत्यु को पोस्टपोन कर सकते हैं। वह हो या न, यह दूसरी बात है। लेकिन हम अपने मन में सोच सकते हैं कि इतनी जल्दी नहीं है कुछ, कुछ उपाय किया जा सकता है। धन पास में न हो, प्रियजन पास में न हों, अकेले आप खड़े हों आकाश के नीचे, मकान जल गया हो, मौत एकदम पास मालूम पड़ेगी।

सफल होता है आदमी, तो मौत बहुत दूर मालूम पड़ती है। असफल होता है आदमी, तो खयाल आने लगते हैं उदासी के, मरने का भाव होने लगता है।

जहां भी दुख है, समझ लेना कि वहां मौत कहीं न कहीं से झांक रही है।

तो हम मृत्यु को जानते हुए और मृत्यु में जीते हुए कभी भी आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकते। हम भुला सकते हैं अपने को, कि मौत दूर है, लेकिन दूर से भी उसकी काली छाया पड़ती ही रहती है। हमारे सभी सुखों में मौत की छाया आकर जहर घोल देती है, कितने ही सुखी हों। बल्कि सच तो यह है कि सुख के क्षण में भी मौत की झलक बहुत साफ होती है, क्योंकि सुख के क्षण में भी तत्क्षण दिखाई पड़ता है कि क्षणभर का ही है यह सुख। वह जो क्षणभर का दिखाई पड़ रहा है, वह मौत की छाया है।

पढ़ रहा था मैं हरमन हेस के बाबत। जिस दिन उसे नोबल प्राइज मिली, उसने अपने मित्र को एक पत्र में लिखा है कि एक क्षण को मैं परम आनंदित मालूम हुआ। लेकिन एक क्षण को! और तत्क्षण उदासी छा गई, अब क्या होगा? अभी तक एक आशा थी कि नोबल प्राइज। वह मिल गई; अब? घनघोर अंधेरा घेर लिया। अब जीवन व्यर्थ मालूम पड़ा, क्योंकि अब कुछ पाने योग्य भी नहीं। मौत करीब दिखाई पड़ने लगी।

आदमी दौड़ता रहता है, जब तक सुख नहीं मिलता। जब मिलता है, तब अचानक दिखाई पड़ता है, अब? अब क्या होगा? जिस स्त्री को पाना था, वह मिल गई। जिस मकान को बनाना था, वह मिल गया। बेटा चाहिए था, बेटा पैदा हो गया। अब?

सुख के क्षण में सुख क्षणभंगुर है, तत्क्षण दिखाई पड़ जाता है। सुख के क्षण में सुख जा चुका, यह अनुभव में आ जाता है। सुख के क्षण में दुःख मौजुद हो जाता है।

मौत सब तरफ से घेरे हुए है, इसलिए कृष्ण कहते हैं, अमृत और परमानंद को जिससे प्राप्त हो जाए, वही ज्ञान है। और ऐसी जानने योग्य बातें मैं तुझसे अच्छी प्रकार कहूंगा।

वह आदिरहित परम ब्रह्म अकथनीय होने से न सत कहा जाता है और न असत ही कहा जाता है।

यह बहुत सूक्ष्म बात है। थोड़ा ध्यानपूर्वक समझ लेंगे।

वह आदिरहित परम ब्रह्म अकथनीय होने से न सत कहा जाता है और न असत ही कहा जाता है।

परमात्मा को हम न तो कह सकते कि वह है, और न कह सकते कि वह नहीं है। कठिन बात है। क्योंकि हमें तो लगता है, दोनों बातों में से कुछ भी कहिए तो ठीक है, समझ में आता है। या तो कहिए कि है, या कहिए कि नहीं है। दुनिया में जो आस्तिक और नास्तिक हैं, वे इसी विवाद में होते हैं।

इसलिए अगर कोई पूछे कि गीता आस्तिक है या नास्तिक? तो मैं कहूंगा, दोनों नहीं है। कोई पूछे कि वेद आस्तिक हैं या नास्तिक? तो मैं कहूंगा, दोनों नहीं हैं। धार्मिक हैं, आस्तिक—नास्तिक नहीं हैं।

क्योंकि आस्तिकता—नास्तिकता तो जीवन को दो हिस्सों में तोड़ लेती हैं। आस्तिक कहता है, ईश्वर है। नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है। लेकिन दोनों एक ही भाषा का उपयोग कर रहे हैं। आस्तिक कहता है, है में हमने ईश्वर को पूरा कह दिया। और नास्तिक कहता है कि नहीं है में हमने पूरा कह दिया। उनमें फर्क शब्दों का है। लेकिन दोनों दावा करते हैं कि हमने पूरे ईश्वर को कह दिया।

गीता कहती है कि कोई भी शब्द उसे पूरा नहीं कह सकता। क्योंकि शब्द छोटे हैं और वह बहुत बड़ा है। हम कहेंगे है, तो भी आधा कहेंगे, क्योंकि नहीं होना भी जगत में घटित होता है। वह भी तो परमात्मा में ही घटित हो रहा है। नहीं है अगर परमात्मा के बाहर हो, तो इसका अर्थ हुआ कि जगत के दो हिस्से हो गए। कुछ परमात्मा के भीतर है, और कुछ परमात्मा के बाहर है। तब तो परमात्मा दो हो गए; तब तो जगत विभाजित हो गया।

अगर हम कहें कि परमात्मा सिर्फ जीवन है, तो फिर मौत किस में होगी? और अगर हम कहें कि परमात्मा सिर्फ सुख है, तो दुख किस में होगा? और अगर हम कहें कि परमात्मा सिर्फ स्वर्ग है, तो फिर नर्क कहां होगा? फिर हमें नर्क को अलग बनाना पड़ेगा परमात्मा से। उसका अर्थ हुआ कि हमने अस्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ दिया। और अस्तित्व दो हिस्सों में टूटा हुआ नहीं है, अस्तित्व एक है।

परमात्मा ही जीवन है और परमात्मा ही मृत्यु। दोनों है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह अकथनीय है। क्योंकि जब कोई चीज दोनों हो, तो अकथनीय हो जाती है। कथन में तो तभी तक होती है, जब तक एक हो और विपरीत न हो।

अरस्तु ने कहा है कि आप दोनों विपरीत बातें एक साथ कहें, तो वक्तव्य व्यर्थ हो जाता है।

जैसे कि अगर आप मुझसे पूछें कि आप यहां हैं या नहीं हैं 7 मैं कहूं कि मैं यहां हूं भी और नहीं भी हूं तो वक्तव्य व्यर्थ हो गया। अदालत आपसे पूछे कि आपने हत्या की या नहीं की? और आप

कहें, हत्या मैंने की भी है और मैंने नहीं भी की है, तो आपका वक्तव्य व्यर्थ हो गया। क्योंकि दोनों विपरीत बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

अरस्तु का तर्क कहता है, एक ही बात सही हो सकती है। और यही बुनियादी फर्क है, भारतीय चितना में और यूनानी चितना में, पश्चिम और पूरब के विचार में।

पश्चिम कहता है कि विपरीत बातें साथ नहीं हो सकती हैं, कंट्राडिक्टरीज साथ नहीं हो सकते। या तो ऐसा होगा, या वैसा होगा; दोनों एक साथ नहीं हो सकते। इसलिए पश्चिम कहता है, या तो कहो गॉड इज, ईश्वर है; या कहो गॉड इज नाट, ईश्वर नहीं है। लेकिन गीता कहती है, गॉड इज एंड इज नाट, बोथ, ईश्वर है भी, नहीं भी है।

वह सत भी है, असत भी है, या तो यह उपाय है कहने का। और या दूसरा उपाय यह है कि न तो वह सत है, और न वह असत है। और चूंकि दोनों को एक साथ उपयोग करना पड़ता है, इसलिए अकथनीय है; कहा नहीं जा सकता। कहने में आधे को ही कहना पड़ता है। क्योंकि भाषा द्वंद्व पर निर्भर है, भाषा द्वैत पर निर्भर है, भाषा विरोध पर निर्भर है। भाषा में अगर दोनों विरोध एक साथ रख दिए जाएं, तो व्यर्थ हो जाता है, अर्थ खो जाता है। इसलिए अकथनीय है। लेकिन क्यों नहीं कहा जा सकता ईश्वर को कि है?

थोड़ा समझें। हम कह सकते हैं, टेबल है, कुर्सी है, मकान है। इसी तरह हम कह नहीं सकते कि ईश्वर है। क्योंकि मकान कल नहीं हो जाएगा। कुर्सी कल जलकर राख हो जाएगी, मिट जाएगी। टेबल परसों नहीं होगी। मकान आज है, कल नहीं था। जब हम कहते हैं, मकान है, तो इसमें कई बातें सम्मिलित हैं। कल मकान नहीं था, और कल मकान फिर नहीं हो जाएगा। और जब हम कहते हैं, ईश्वर है, तो क्या हम ऐसा भी कह सकते हैं कि कल ईश्वर नहीं था और कल ईश्वर नहीं हो जाएगा?

हर है के दोनों तरफ नहीं होता है। मकान कल नहीं था, कल फिर नहीं होगा, बीच में है। हर है के दोनों तरफ नहीं होता है। इसलिए ईश्वर है, यह कहना गलत है। क्योंकि उसके दोनों तरफ नहीं नहीं है। वह कल भी था, परसों भी था। कल भी होगा, परसों भी होगा। वह सदा है।

तो जो सदा है, उसको है कहना उचित नहीं। क्योंकि हम है उन चीजों के लिए कहते हैं, जो सदा नहीं हैं। और जिसके लिए है कहना ही उचित न हो, उसके लिए नहीं है कहने का तो कोई अर्थ नहीं रह जाता।

ईश्वर अस्तित्व ही है। नहीं और है, दोनों उसमें समाविष्ट हैं। उसका ही एक रूप है है; और उसका ही एक रूप नहीं है। कभी वह प्रकट होता है, तब है मालूम होता है। और कभी अप्रकट हो जाता है, तब नहीं है मालूम होता है।

एक बीज है। अगर मैं आपसे पूछूं कि बीज में वृक्ष है या नहीं? तो आपको कहना पड़ेगा कि दोनों बातें हैं। क्योंकि बीज में वृक्ष है, इस अर्थ में, कि वृक्ष हो सकता है, अगर हम बो दें, तो वृक्ष हो जाएगा। जो कल हो सकता है, वह आज भी कहीं न कहीं छिपा होना चाहिए, नहीं तो कल होगा कैसे। फिर कोई बीज बो देने से हर कोई वृक्ष नहीं हो जाएगा। जो वृक्ष छिपा है, वही होगा। नहीं तो हम आम बो दें और नीम पैदा हो जाए। नीम बी दें और आम पैदा हो जाए। लेकिन नीम से नीम पैदा होगी। इसका एक मतलब साफ है कि नीम में नीम का ही वृक्ष छिपा था। जो बीज है आज, वह कल वृक्ष हो सकता है, इसलिए वृक्ष उसमें है—अव्यक्त, अप्रकट, अनमैनिफेस्ट।

फिर कल वृक्ष हो गया। अगर मैं आपसे पूछूं कि बीज कहां है? कल बीज था, वृक्ष छिपा था। आज वृक्ष है, बीज छिप गया। बीज अब भी है, लेकिन अब छिप गया। अप्रकट है। लेकिन हम कहेंगे, बीज नहीं है।

नहीं अप्रकट रूप है, और है प्रकट रूप है। ईश्वर दोनों है, कभी प्रकट है, कभी अप्रकट है। जगत उसका है रूप है, पदार्थ उसका है रूप है, और आत्मा उसका नहीं रूप है।

यह थोड़ा जटिल है। इसलिए बुद्ध ने आत्मा को नथिंगनेस कहा है, नहीं। यह जो दिखाई पड़ता है, यह परमात्मा का है रूप है। और जो भीतर नहीं दिखाई पड़ता है, वह उसका नहीं रूप है। और जब तक दोनों को हम न जान लें, तब तक हम मुक्त नहीं हो सकते। है को तो हम जानते हैं, नहीं है को भी जानना होगा। इसलिए ध्यान मिटने का उपाय है, नहीं होने का उपाय है। प्रेम मिटने का उपाय है, नहीं होने का उपाय है। समर्पण, भक्ति, श्रद्धा, सब मिटने के उपाय हैं, ताकि नहीं रूप को भी आप जान लें।

जो न सत है, जो न असत है, या जो दोनों है, वह अकथनीय है। उसे कहा नहीं जा सकता। इसलिए सभी शास्त्र उस संबंध में बहुत कुछ कहकर भी यह कहते हैं कि कुछ कहा नहीं जा सकता। हमारा सब कहना बच्चों की चेष्टा है। हमारा सब कहना प्रयास है आदमी का, कमजोर आदमी का, सीमित आदमी का। जैसे कोई आकाश को मुट्ठी में बांधने की कोशिश कर रहा हो।

निश्चित ही, मुट्ठी में भी आकाश ही होता है। जब आप मुट्ठी बांधते हैं, तो जो आपके भीतर है मुट्ठी के, वह भी आकाश ही है। लेकिन फिर भी क्या आप उसको आकाश कहेंगे? क्योंकि आकाश तो यह विराट है।

आपकी मुट्ठी में भी आकाश ही होता है, लेकिन पूरा आकाश नहीं होता। क्योंकि आपकी मुट्ठी भी आकाश में ही है, पूरे आकाश को मुट्ठी नहीं घेर सकती। मुट्ठी आकाश से बड़ी नहीं हो सकती। मनुष्य की चेतना परमात्मा को पूरा अपनी मुट्ठी में नहीं ले पाती, क्योंकि मनुष्य की चेतना स्वयं ही परमात्मा के भीतर है। फिर भी हम कोशिश करते हैं। उस कोशिश में थोड़ी—सी झलकें मिल सकती हैं। लेकिन झलक भी तभी मिल सकती है, जब कोई सहानुभूति से समझने की कोशिश कर रहा हो। अगर जरा भी सहानुभूति की कमी हो, तो झलक भी नहीं मिलेगी, झलक भी खो जाएगी।

शब्द असमर्थ हैं। लेकिन अगर सहानुभूति हो, तो शब्दों में से कुछ सार—सूचना मिल सकती है।

परंतु वह सब ओर से हाथ—पैर वाला एवं सब ओर से नेत्र, सिर और मुख वाला है तथा सब ओर से श्रोत वाला है, क्योंकि वह संसार में सब को व्याप्त करके स्थित है।

लेकिन इसका यह मतलब मत समझना कि वह अकथनीय है, निराकार है, निर्गुण है, न कहा जा सकता सत, न असत, तो हमसे सारा संबंध ही छूट गया। फिर आदमी को लगता है कि ऐसी चीज, शून्य जैसी, उससे हमारा क्या लेना—देना! फिर हम किसके सामने रो रहे हैं? और किससे प्रार्थना कर रहे हैं? और किसकी पूजा कर रहे हैं? और किसके प्रति समर्पण करें? जो न है, न नहीं है, जो अकथनीय है। कृष्ण खुद जिसको कहने में समर्थ न हों, उसके बाबत बात ही क्या करनी है! फिर बेहतर है, हम अपने काम—काज की दुनिया में लगे रहें। ऐसे अकथनीय के उपद्रव में हम न पड़ेंगे। क्योंकि जिसे कहा नहीं जा सकता, समझा नहीं जा सकता, उससे संबंध भी क्या निर्मित होगा!

तो तत्क्षण दूसरे वचन में ही कृष्ण कहते हैं, परंतु वह सब ओर से हाथ—पैर वाला, सब ओर से नेत्र, सिर, मुख वाला, कान वाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त कर के स्थित है।

जैसे उसका प्रकट और अप्रकट रूप है, वैसे ही उसका आकार और निराकार रूप है। जैसा उसका निराकार और आकार रूप है, वैसा ही उसका सगुण और निर्गुण रूप है। वह दोनों है, दोनों विपरीतताएं एक साथ। इसलिए अगर कोई चाहे तो उससे बात कर सकता है। कोई चाहे तो उसके कान में बात डाल सकता है। कोई कान आपके सामने नहीं आएगा। लेकिन अगर आप पूरे हृदयपूर्वक उससे कुछ कहें, तो उस तक पहुंच जाएगा, क्योंकि सभी तरफ उसके कान हैं।

कृष्ण यह कह रहे हैं, सब ओर से कान वाला, सब ओर से हाथ वाला......।

अगर आप हृदयपूर्वक अपने हाथ को उसके हाथ में दे दें, असंदिग्ध मन से, तो शून्य आकाश भी उसका हाथ बन जाएगा। और आपके हाथ को वह सम्हाल लेगा। लेकिन यह निर्भर आप पर है। क्योंकि अगर यह हृदय पूरा हो, तो यह घटना घट जाएगी, क्योंकि सब कुछ वही है। हर जगह उसका हाथ उठ सकता है। हर हवा की लहर उसका हाथ बन सकती है। लेकिन वह बनाने की कला आपके भीतर है। अगर यह श्रद्धा पूरी हो, तो यह घटना घट जाएगी। लेकिन अगर जरा—सा भी संदेह हो, तो यह घटना नहीं घटेगी।

लोग कहते हैं कि हमारा संदेह तो तब मिटेगा, जब घटना घट जाए। वे भी ठीक ही कहते हैं। संदेह तभी मिटेगा, जब घटना घट जाए। लेकिन तब बड़ी कठिनाई है। कठिनाई यह है कि जब तक संदेह न मिटे, घटना भी नहीं घटती। यह बड़ी उलझन की बात है। मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक बार नदी में तैरना सीखने गया। लेकिन पहली दफा पानी में उतरा और गोता खा गया, और मुंह में पानी चला गया, और नाक में पानी उतर गया। तो घबड़ाकर बाहर निकल आया। उसने कहा, कसम खाता हूं भगवान की, अब जब तक तैरना न सीख लूं पानी में न उतरूंगा।

लेकिन जो उसे सिखाने ले गया था, उसने कहा, नसरुद्दीन, अगर यह कसम तुम्हारी पक्की है, तो तुम तैरना सीखोगे कैसे? क्योंकि जब तक तुम पानी में न उतरो, तैरना न सीख पाओगे। और तुमने खा ली कसम कि जब तक तैरना न सीख लूं पानी में न उतरूंगा। अब बड़ी मुश्किल हो गई। पानी में उतरोगे, तभी तैरना भी सीख सकते हो।

थोड़ा डूबने की, गोता खाने की तैयारी चाहिए। थोड़ा जीवन को संकट में डालने की तैयारी चाहिए, तो ही कोई तैरना सीख सकता है। अब कोई घाट पर बैठकर तैरना नहीं सीख सकता।

अगर आपको लगता हो कि संदेह तो हम तभी छोड़ेंगे, जब उसका हाथ हमारे हाथ को पकड़ ले, तो बड़ी कठिनाई में हैं आप। क्योंकि उसका हाथ तो सब तरफ मौजूद है। लेकिन जिसका संदेह छूट गया, उसी के लिए हाथ उसकी पकड़ में आता है। आप तभी पकड़ पाएंगे—उसका हाथ तो मौजूद है—आप तभी पकड़ पाएंगे, जब आपका संदेह छूट जाए।

तो कुछ प्रयोग करने पड़ेंगे, जिनसे संदेह छूटे। कुछ प्रयोग करने पड़ेंगे, जिनसे श्रद्धा बढ़े। कुछ प्रयोग करने पड़ेंगे, जिनसे वह खुला आकाश उसके हाथ, उसके कान, उसकी आंखों में रूपांतरित हो जाए।

एक ही बात मेरे खयाल में आती है। खुद पर विश्वास करने की कोई भी जरूरत नहीं है, हमें खुद पर विश्वास होता ही है। आप हैं, इतना पक्का है। ऐसा कोई भी आदमी नहीं है, जिसको यह शक हो कि मैं नहीं हूं।

क्या आपको कभी कोई ऐसा आदमी मिला, जिसको शक हो कि मैं नहीं हूं। इस शक के लिए भी तो खुद का होना जरूरी है। कौन करेगा शक? एक बात असंदिग्ध है कि मैं हूं। इसलिए इस मैं हूं के साथ कुछ प्रयोग करने चाहिए, जो असंदिग्ध है।

और जैसे—जैसे इस मैं हूं में प्रवेश होता जाएगा, वैसे—वैसे ही संदेह बिलकुल समाप्त हो जाएंगे। और जिस दिन मैं हूं की पूरी प्रतीति होती है, हाथ फैला दें, और परमात्मा का हाथ हाथ में आ जाएगा। आंख खोलें, और उसकी आंख आपकी आंख के सामने होंगी। बोलें, और उसके कान आपके होंठों से लग जाएंगे।

कृष्ण कहते हैं, वह सब ओर से हाथ—पैर वाला है, क्योंकि सब को व्याप्त करके वही स्थित है। और संपूर्ण इंद्रियों के विषयों को जानने वाला है, परंतु वास्तव में सब इंद्रियों से रहित है।

वह आपके बाहर ही है, ऐसा नहीं है; वह आपके भीतर भी है। हमारा और उसका संबंध ऐसे है, जैसे मछली और सागर का संबंध।

सुना है मैंने, एक दफा एक मछली बड़ी मुसीबत में पड़ गई थी। कुछ मछुए नदी के किनारे बैठकर बात कर रहे थे कि जल जीवन के लिए बिलकुल जरूरी है, जल के बिना जीवन नहीं हो सकता। मछली ने भी सुन लिया। मछली ने सोचा, लेकिन मैं तो बिना जल के ही जी रही हूं। यह जल क्या है? ये मछुए किस चीज की बात कर रहे हैं? तो इसका अर्थ यह हुआ कि अभी तक मुझे जीवन का कोई पता ही नहीं चला! क्योंकि मछुए कहते हैं कि जल के बिना जीवन नहीं हो सकता। जल तो जीवन के लिए अनिवार्य है।

तो मछली पूछती फिरने लगी जानकार मछलियों की तलाश में। उसने बड़ी—बड़ी मछलियों से जाकर पूछा कि यह जल क्या है? उन्होंने कहा, हमने कभी सुना नहीं। हमें कुछ पता नहीं। अगर तुझे पता ही करना है, तो तू नदी की धार में बहती जा। सागर में सुनते हैं कि और बड़ी—बड़ी ज्ञानी मछलियां हैं, वे शायद कुछ बता सकें।

तो मछली यात्रा करती हुई सागर तक पहुंच गई। वहां भी उसने मछलियों से पूछा। एक मछली ने उसे कहा कि ही, पूछने से कुछ सार नहीं है। और एक दफा यह पागलपन मुझे भी सवार हो गया था, कि जल क्या है? सुना था कथाओं में, शास्त्रों में पढ़ा था, कि जल क्या है? लेकिन उसका कोई पता नहीं था। पता तो तब चला जब एक दफे मैं मछुए के जाल में पकड़ गई, और मछुए ने मुझे बाहर खींच लिया। बाहर खिंचते ही पता चला कि जिसमें मैं जी रही थी, वह जल था। तड़पने लगी प्यास से।

तो तुझे अगर जल का पता करना है, तो पूछने से पता नहीं चलेगा। तू छलाग लगाकर किनारे पर थोड़ी देर तड़प ले। क्योंकि जल में ही हम पैदा हुए हैं। जल ही बाहर है और जल ही भीतर है। इसलिए कुछ पता नहीं चलता। दोनों तरफ जल है।

मछली जल ही है; और जल में ही पैदा हुई है; और जल में ही कल क्षीण होकर लीन हो जाएगी। आदमी और परमात्मा के बीच जल और मछली का संबंध है। हम उसी में हैं। इसलिए हम पूछते फिरते हैं, परमात्मा कहां है? खोजते फिरते हैं, परमात्मा कहां है? और वह कहीं नहीं मिलता।

मछली को तो सुविधा है किनारे उतर जाने की, तड़प ले। हम को वह भी सुविधा नहीं है। ऐसा कोई किनारा नहीं है, जहां परमात्मा न हो। इसलिए परमात्मा के बीच रहकर हम परमात्मा से प्यासे रह जाते हैं। वही भीतर है, वही बाहर है।

कृष्ण कहते हैं, संपूर्ण इंद्रियों को जानने वाला भी वही है। भीतर से वही आंख में से देख रहा है। बाहर वही दिखाई पड़ रहा है फूल में। भीतर आंख से वही देख रहा है। और सब इंद्रियों के भीतर से जानते हुए भी सब इंद्रियों से रहित है।

इसका थोड़ा प्रयोग करें, तो खयाल में आ जाए। क्योंकि यह कोई तर्क—निष्पत्ति नहीं है। यह कोई तर्क का वक्तव्य होता, तो हम गणित और तर्क से इसको समझ लेते। ये सभी वक्तव्य अनुभूति—निष्पन्न हैं।

थोड़ा प्रयोग कर के देखें। थोड़ा आंख बंद कर लें और भीतर देखने की कोशिश करें। आप चकित होंगे, थोड़े ही दिन में आपको भीतर देखने की कला आ जाएगी। इसका मतलब यह हुआ कि आंख जब नहीं है, बंद है, तब भी आप भीतर देख सकते हैं।

कान बंद कर लें और थोड़े दिन भीतर सुनने की कोशिश करें। एक घंटेभर कान बंद करके बैठ जाएं और सुनने की कोशिश करें भीतर। पहले तो आपको बाहर की ही बकवास सुनाई पड़ेगी। पहले तो जो आपने इकट्ठा कर रखा है कानों में संग्रह, कान उसी को मुक्त कर देंगे और वही कोलाहल सुनाई पड़ेगा। लेकिन धीरे—धीरे, धीरे— धीरे— धीरे कोलाहल शांत होता जाएगा और एक ऐसी घड़ी आएगी कि आपको भीतर का नाद सुनाई पड़ने लगेगा। वह नाद बिना कान के सुनाई पड़ता है। फिर अगर कोई आपके कान बिलकुल भी नष्ट कर दे, तो भी वह नाद सुनाई पड़ता रहेगा।

अंधा भी आत्मा को देख सकता है। अंधा भी भीतर के अनुभव में उतर सकता है। और बहरा भी ओंकार के नाद को सुन सकता है। लेकिन हम उस दिशा में मेहनत नहीं करते। हम तो बहरे को निंदित कर देते हैं कि तुम बहरे हो, तुम्हारा जीवन व्यर्थ है।

अगर दुनिया कभी ज्यादा समझदार होगी, तो हम बहरे को सिखाएंगे वह कला, जिसमें वह भीतर का नाद सुन ले। क्योंकि बहरा हमसे ज्यादा आसानी से सुन सकता है। क्योंकि हम तो बाहर के कोलाहल में बुरी तरह उलझे होते हैं। बहरे को भीतर का नाद जल्दी सुनाई पड़ सकता है।

और अंधे को भीतर का दर्शन जल्दी हो सकता है। लेकिन हम तो निंदित कर देते हैं। क्योंकि हमारी बाहर आंखों की दुनिया है, जो बाहर नहीं देख सकता, वह अंधा है, वह जीवन से व्यर्थ है। जो बाहर नहीं सुन सकता, वह व्यर्थ है। जो बोल नहीं सकता, वह बेकार है। लेकिन भीतर के प्रवेश के लिए मूक होना पड़ता है, बहरा होना पड़ता है और अंधा होना पड़ता है।

और जब कोई अंधा होकर भी भीतर देख लेता है, बहरा होकर भी भीतर सुन लेता है, तब हमें पता चल जाता है कि वह जो भीतर छिपा है, वह इंद्रियों से जानता है, लेकिन इंद्रियों से रहित है। वह इंद्रियों के बिना भी जान सकता है।

तथा आसक्तिरहित और गुणों से अतीत हुआ निर्गुण भी है, अपनी योगमाया से सब का धारण—पोषण करने वाला और गुणों को भोगने वाला भी है।

इन सारे वक्तव्यों में विरोधों को जोड्ने की कोशिश की गई है। वह कोशिश यह है कि हम परमात्मा को विभाजित न करें। और हम यह न कहें कि वह ऐसा है और ऐसा नहीं है। वह दोनों है। निर्गुण भी है, और गुणों को भोगने वाला भी है।

मनुष्य के मन को सबसे बड़ी कठिनाई यही है, विपरीत को जोड़ना। हमें तोड़ना तो आता है, जोड़ना बिलकुल नहीं आता। हम तो किसी भी चीज को बड़ी आसानी से तोड़ लेते हैं। तोड्ने में हमें जरा अड़चन नहीं होती। क्योंकि बुद्धि की व्यवस्था ही तोड्ने की है। बुद्धि खडक है। जैसे कि कोई आपने अगर कांच का प्रिज्य देखा हो; तो प्रिज्म से किरण को गुजारें प्रकाश की, वह सात टुकड़ों में टूट जाती है।

इंद्रधनुष दिखाई पड़ता है वर्षा में, वह इसीलिए दिखाई पड़ता है। वर्षा में कुछ पानी के कण हवा में टंगे रह जाते हैं। सूरज की किरण उन कणों से निकलती है; वे कण प्रिज्य का काम करते हैं। वे किरण को सात टुकड़ों में तोड़ देते हैं। सूरज की किरण तो सफेद है। लेकिन पानी के लटके कणों में से गुजरकर सात टुकड़ों में टूट जाती है। इसलिए आपको इंद्रधनुष दिखाई पड़ता है।

मनुष्य की बुद्धि भी प्रिज्य का काम करती है और चीजों को तोड़ती है। जब तक आप बुद्धि को हटाकर देखने की कला न पा जाएं, तब तक आपको इंद्रधनुष दिखाई पड़ेगा, चीजें टूटी हुई अनेक रंगों में दिखाई पड़ेगी। अगर आप इस प्रिज्य को हटा लें, तो चीज एक रंग की हो जाती है, सफेद हो जाती है।

सफेद कोई रंग नहीं है। सफेद सब रंगों का जोड़ है। सफेद में सब रंग छिपे हैं। इसलिए स्कूल में बच्चों को सिखाया जाता है, तो एक छोटा—सा चाक बना लेते हैं। चाक में सात रंग की पंखुड़ियां लगा देते हैं। और फिर चाक को जोर से घुमाते हैं। चाक जब जोर से घूमता है, तो सात रंग नहीं दिखाई पड़ते, चाक सफेद रंग का दिखाई पड़ने लगता है। सफेद सातों रंगों का जोड़ है। सातों रंग सफेद के टूटे हुए हिस्से हैं।

जगत इंद्रधनुष है। इंद्रियों से टूटकर जगत का इंद्रधनुष निर्मित होता है। इंद्रियों को हटा दें, मन को हटा दें, बुद्धि को हटा दें, तो सारा जगत शुभ्र, एक रंग का हो जाता है। वहां सभी विरोध मिल जाते हैं। वहां काला और हरा और लाल और पीला, सब रंग एक हो जाते हैं।

यह जो कृष्ण कह रहे हैं, यह इंद्रधनुष मिटाने वाली बातें हैं। वे कह रहे हैं, निर्गुण भी वही, सगुण भी वही, सब गुण उसी के हैं; और फिर भी कोई गुण उसका नहीं है।

इस तरह की बातों को पढ़कर पश्चिम में तो लोग समझने लगे कि ये भारत के ऋषि—महर्षि, अवतार, ये थोड़े—से विक्षिप्त मालूम होते हैं। ये इस तरह के वक्तव्य देते हैं, जिनमें कोई अर्थ ही नहीं है।

क्योंकि अरस्तु ने कहा है कि ए इज़ ए, एंड कैन नेवर बी नाट ए—अ अ है और न—अ कभी नहीं हो सकता। इस आधार पर आज की सारी शिक्षण—पद्धति विकसित हुई है कि विरोध इकट्ठे नहीं हो सकते। और यह क्या बात है, वेद, उपनिषद, गीता एक ही बात कहे चले जाते हैं कि वह दोनों है!

इसे हम समझ लें ठीक से। इसे कहने का कारण है।

आपकी बुद्धि को तोड़ने के लिए यह कहा जा रहा है, आपकी बुद्धि को समझाने के लिए नहीं। यह कृष्ण अर्जुन की बुद्धि को समझाने की कोशिश नहीं कर रहे है यह अर्जुन की बुद्धि को तोड़ने

की कोशिश कर रहे हैं। क्योंकि बुद्धि समझ भी ले, तो भी बुद्धि के पार न जाएगी। बुद्धि तो टूट जाए, तो ही अर्जुन पार जा सकता है। यह वक्तव्य बुद्धि विनाशक है। वह जो खंड—खंड करने वाली बुद्धि है, उसको तोड्ने का उपाय है, उसे व्यर्थ करने का उपाय है। और जब दोनों विरोध एक साथ दे दिए जाएं, तो बुद्धि व्यर्थ हो जाती है। फिर सोचने को कुछ भी नहीं बचता।

थोड़ा सोचें, निर्गुण भी वही, सगुण भी वही, क्या सोचिएगा? इसलिए दो पंथ हमने निर्मित कर लिए हैं। निर्गुणवादियो ने अलग पथ निर्मित कर लिया है। उन्होंने कहा कि नहीं, वह निर्गुण है। सगुणवादियो ने अलग पंथ निर्मित कर लिया। उन्होंने कहा कि नहीं, वह सगुण है; निर्गुण कभी नहीं है।

ये दोनों बातें बुद्धिगत हैं। अगर निर्गुण है, तो सगुण नहीं हो सकता। सगुण है, तो निर्गुण नहीं हो सकता। हमने दो पंथ निर्मित कर लिए। ये दोनों पंथ अधार्मिक हैं, क्योंकि दोनों पंथ बुद्धिगत बात को मानते हैं। बुद्धि के पार नहीं जाते।

धर्म विरोध को जोड्ने वाला है। वह कहता है, वह दोनों है और दोनों नहीं है। जो व्यक्ति इस बात को समझने में राजी हो जाएगा कि दोनों है, उसको समझने की कोशिश में अपनी समझ ही छोड़ देनी पड़ेगी

एक घटना मुझे याद आती है। झेन फकीर हुआ रिंझाई, वह खड़ा था अपने मंदिर के द्वार पर। मंदिर के ऊपर लगी हुई पताका हवा में हिल रही थी। रिंझाई के दो शिष्य मंदिर के सामने से गुजर रहे थे। उन्होंने खड़े होकर पताका की तरफ देखा। सुबह का सूरज था, हवाएं थीं, और पताका कैप रही थी, और जोर से आवाज कर रही थी। रिंझाई के एक शिष्य ने कहा कि मैं पूछता हूं हवा हिल रही है या पताका हिल रही है? हिल कौन रहा है? दूसरे शिष्य ने कहा, हवा हिल रही है। पहले शिष्य ने कहा कि गलत, पताका हिल रही है। बड़ा विवाद हो गया।

अब हवा और पताका जब हिलते हैं, तो कौन हिल रहा है? आसान है एक के पक्ष में वक्तव्य देना। लेकिन सच में कौन हिल रहा है? रिंझाई खड़ा सुन रहा था, वह बाहर आया। और उसने कहा कि न तो पताका हिल रही है और न हवा हिल रही है, तुम्हारे मन हिल रहे हैं।

लेकिन रिंझाई के शिष्यों को बात जमी नहीं। तो रिंझाई का बूढ़ा गुरु मौजूद था, जिंदा था। तो उन्होंने कहा, यह बात हमें जमती नहीं है। यह तो और उपद्रव हो गया। हमारा तो दो ही का विवाद था।

और अब एक तीसरा वक्तव्य और हो गया कि मन हिल रहा है। पताका हिल रही है; हवा हिल रही है, मन हिल रहा है। हम बूढ़े गुरु के पास जाएंगे।

वे तीनों के गुरु के पास गए। बूढ़े गुरु ने कहा कि जब तक तुम देखते हो, हवा हिल रही है, पताका हिल रही है, मन हिल रहा है—जब तक तुम विभाजित करते हो तीन में—तब तक तुम न समझ पाओगे। संसार हिलने का नाम है। यहां सभी कुछ हिल रहा है। और सभी चीजें अलग— अलग नहीं हिल रही हैं, सब चीजें जुड़ी हैं। हवा भी हिल रही है, पताका भी हिल रही है, मन भी हिल रहा है। तीनों जुड़े हैं। तीनों हिल रहे हैं। संसार कंपन है।

लेकिन गुरु ने कहा कि रिंझाई थोड़ा ठीक कहता है तुम दोनों से, क्योंकि न तो तुम पताका का हिलना रोक सकते हो और न हवा का हिलना रोक सकते हो, लेकिन मन का हिलना तुम रोक सकते हो। और अगर मन का हिलना रुक जाए, तो पताका भी नहीं हिलेगी, हवा भी नहीं हिलेगी; सब हिलना बंद हो जाएगा। तुम्हारा मन हिलता है, इसलिए तुम हिलने को अनुभव कर पाते हो।

हमारी जो बुद्धि है, वह विरोधों में बंटी है। वह चीजों को बाटती है, एनालाइज करती है, विश्लिष्ट करती है। वह कहती है, यह जन्म है, यह मौत है। वह कहती है, यह मित्र है, यह शत्रु है। वह कहती है, यह जहर है, यह अमृत है। वह कहती है, यह अच्छा है, और यह बुरा है। हर चीज को बांटती है।

यह कृष्ण का पूरा प्रयास यही है कि बांटो मत। जगत को, अस्तित्व को एक की तरह देखो। बांटी मत। निर्गुण भी वही, गुणों वाला भी वही है।

इस पर अगर थोड़े प्रयास करेंगे, इस तरह की विपरीत बातों को अगर एक साथ आंख बंद करके ध्यान करेंगे, तो बहुत आनंद आएगा। मन तो कहेगा कि एक कुछ भी तय कर लो जल्दी, या तो निर्गुण या सगुण।

इसे जरा प्रयोग करके देखें। आंख बंद करके कभी बैठ जाएं अपने मंदिर में, अपनी मस्जिद में और कहें कि वह दोनों है। और फिर अपने से पूछें कि क्या राजी हैं? मन कहेगा कि नहीं, दोनों नहीं हो सकते। एक कुछ भी हो सकता है। मन फौरन कहेगा कि या तो मान लो कि सगुण है, या मान लो कि निर्गुण है।

तो मुसलमान मान लिए कि निर्गुण है। तो मूर्तियां तोड़ते फिरे, क्योंकि सगुण को नहीं बचने देना है। उनको लगा कि जब निर्गुण है, तो फिर सगुण को तोड़ देना है।

एक आदमी मूर्ति—पूजा कर रहा है। वह कहता है, भगवान सगुण है, इसलिए हम मूर्ति बनाते हैं। एक आदमी कहता है, वह निर्गुण है, इसलिए हम मूर्ति तोड़ते हैं। लेकिन दोनों मूर्ति की तरफ ध्यान लगाए हुए हैं, एक तोड्ने के लिए, एक बनाने के लिए। मुसलमानों से ज्यादा मूर्ति—पूजक खोजना बहुत मुश्किल है, क्योंकि मूर्ति को तोड़ना भी उसके ही साथ संबंधित हो जाना है। आखिर मूर्ति पर इतना ध्यान देने की जरूरत क्या है! अगर वह निर्गुण है और सगुण नहीं है, तो मूर्ति को तोड्ने से क्या फायदा है? कोई अर्थ नहीं है।

लेकिन आदमी का मन ऐसा है कि वह एक पक्ष में हो जाए तो दूसरे पक्ष के खिलाफ कोशिश करता है, तो ही एक पक्ष में रह सकता है। डर लगता है कि कहीं दूसरा पक्ष ठीक न हो; तो मिटा दो दूसरे पक्ष को।

लेकिन कुछ मिट सकता नहीं। पत्थर की मूर्तियां टूट सकती हैं। ये आदमी भी सब मूर्तियां हैं। इनको कैसे तोडिएगा? वृक्ष भी एक मूर्ति है। पत्थर को भी तोड़ दो, तो वह जो टूटा हुआ पत्थर है, वह भी मूर्ति है, वह भी एक मूर्त रूप है; वह भी आकार है। आकार कैसे मिटाइएगा?

अस्तित्व में दोनों समाविष्ट हैं, निराकार भी, आकार भी। न तो बनाने की कोई जरूरत है, न मिटाने की कोई जरूरत है। बनाने और मिटाने का अगर कोई काम ही करना हो, तो भीतर करना जरूरी है कि भीतर इस मन को इस हालत में लाना जरूरी है कि जहां यह दोनों विरोधों को एक साथ स्वीकार कर ले।

जैसे ही दोनों विरोध एक साथ स्वीकार होते हैं, मन तीर जाता है और समाप्त हो जाता है। और अमन की स्थिति पैदा हो जाती है। वह अमनी स्थिति ही समाधि है।

यह सारा प्रयोजन कृष्ण का इतना ही है कि आप दोनों को एक साथ स्वीकार करने को राजी हो जाएं। राजी होते ही आप रूपांतरित हो जाएंगे। और जब तक आप राजी न होंगे और एक पक्ष में झुकेंगे, तब तक आप बदल नहीं सकते हैं, तब तक आप द्वंद्व में ही घिरे रहेंगे।

दो में से एक को चुनना द्वैत को समर्थन करना है। दोनों को एक साथ स्वीकार कर लेना, अद्वैत की उपलब्धि है।

गीता दर्शन–भाग–6
स्वयं को बदलो—(प्रवचन—छठवां)
अध्याय—13

सूत्र—

बहिरन्तश्चइ भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थ चान्तिके च तत्।। 15 ।।
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तीमव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रीअष्णु प्रभविष्णु च।। 16 ।।

ज्योतिषामयि तज्जयोतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।। 17 ।।
तथा वह परमात्मा बराबर अब भूतों के बाहर— भीतर परियूर्ण है और चर— अचर रूप भी की है। और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है अर्थात जानने में नहीं आने वाला है। तथा अति समीप में और अति दूर में भी स्थित वही है।

और वह विभागरीहत एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर संपूर्ण भूतों में पृथक— पथक के सदृश स्थित प्रतीत होता है। तथा वह जानने योग्य परमात्मा भूतों का धारण— पोषण करने वाला और संहार करने वाला तथा सब का उत्पन्न करने वाला है।

और वह ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जमा है। तथा वह परमात्मा बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है, आप बोलते हैं, तो ठीक लगता है। कभी—कभी कोई शांत ध्यान का प्रयोग—सूत्र भी दे दिया करते हैं; यहां तक तो ठीक है। लेकिन जब आपके कीर्तन का प्रयोग चलता है, तो मन में वैसा भाव आता ही नहीं कि जैसा मंच पर सभी लोग इतनी तेजी से नाचा करते हैं!

तीन बातें समझनी चाहिए। एक, बोला हुआ ठीक लगना बहुत मूल्य का नहीं है। बोला हुआ ठीक लगता है, यह सिर्फ मनोरंजन हो सकता है, यह केवल एक बौद्धिक व्यायाम हो सकता है। या यह भी हो सकता है कि आप जो सुनना चाहते हैं, उससे तालमेल बैठ जाता है, इसलिए रसपूर्ण लगता है। यह भी हो सकता है कि इतनी देर मन बोलने में उलझ जाता है, तो आपकी चिंताएं, परेशानियां, अशांति भूल जाती है। बहुत कारण हो सकते हैं।

इसलिए भी अच्छा लग सकता है बोलना कि गीता आपको प्रीतिकर हो, आपके धर्म का ग्रंथ हो, तो आपके अहंकार को पोषण मिलता हो कि गीता ठीक है। आपकी सांप्रदायिक संस्कार वाली मनःस्थिति को सहारा मिलता हो कि हमारा मानना बिलकुल ठीक है, गीता महान ग्रंथ है।

लेकिन सिर्फ बोलना ठीक लगे, तो कोई भी लाभ नहीं है; नुकसान भी हो सकता है। कुछ लोग शब्दों में ही जीते हैं। जीवनभर पढ़ते हैं, सुनते हैं, और कभी कुछ करते नहीं। ऐसे लोग जीवन को ऐसे ही गंवा देंगे, और मरते समय सिवाय पछतावे के कुछ भी हाथ न रहेगा। क्योंकि मैंने क्या कहा गीता के संबंध में, वह मरते वक्त काम आने वाला नहीं है। आपने क्या किया! सुना, वह मूल्य का नहीं है। क्या किया, वही मूल्य का है। लेकिन करने में कठिनाई मालूम पड़ती है।

सुनने में आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता। मैं बोलता हूं आप सुनते हैं, करना आपको कुछ भी नहीं पड़ता। सुनने में आपको करना ही क्या पड़ता है? विश्राम करना पड़ता है। करने में आपसे शुरुआत होती है। और जैसे ही कुछ करने की बात आती है, वैसे ही तकलीफ शुरू हो जाती है।

उन मित्र ने भी पूछा है कि कभी—कभी आप कोई ध्यान का शांत प्रयोग—सूत्र भी दे दिया करते हैं, यहां तक तो ठीक है.।

क्योंकि वह प्रयोग भी उन्होंने किया नहीं है। वह भी मैं दे दिया करता हूं; यहां तक ठीक है। वह शांत प्रयोग भी उन्होंने किया नहीं है। वह भी सुन लिया है। कीर्तन में अड़चन आती है, क्योंकि यहां कुछ लोग करते हैं।

अब यहां कुछ लोग करते हैं, तो उससे बचने के दो उपाय हैं। या तो आप समझें कि ये पागल हैं, तब आपको कोई अड़चन न होगी। इनका दिमाग खराब हो गया है, हिप्नोटाइज्ड हो गए हैं, या नाटक कर रहे हैं; बनकर कर रहे हैं; या कुछ पैसे ले लिए होंगे, इसलिए कर रहे हैं। ऐसा सोच लें, तो आपको सुविधा रहेगी, सांत्वना रहेगी। आपको करने की फिर कोई जरूरत नहीं है।

कुछ लोग करने से इस तरह बचते हैं, वे अपने मन को समझा लेते हैं कि कुछ गलत हो रहा है। इसलिए फिर खुद को करने की तो कोई जरूरत नहीं रह जाती।

तकलीफ तो उन लोगों को होती है, जिनको यह भी नहीं लगता कि गलत हो रहा है और करने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते। ये मित्र उसी वर्ग में हैं। उनको लगता है कि ठीक हो रहा है। लेकिन इतना लगना काफी नहीं है। करने की हिम्मत बड़ी दूसरी बात है। क्योंकि जैसे ही आप करना शुरू करते हैं कुछ, बहुत—से परिणाम होंगे।

पहला तो यह साहस करना पडेगा, पागल होने का साहस। क्योंकि धर्म साधारण आदमी करता नहीं, सुनता है। और जब भी धर्म को कोई करने लगता है, तो बाकी लोग उसको पागल समझते हैं। कबीर को भी लोग पागल समझते हैं। मीरा को भी लोग पागल। समझते हैं। बुद्ध को भी लोग पागल समझते हैं। क्राइस्ट को भी लोग पागल समझते हैं। यह तो बहुत बाद में लोग उनको समझ पाते हैं कि वे पागल नहीं हैं। यह भी वे तभी समझ पाते हैं, जब बात इतनी दूर हो जाती है कि उनसे सीधा संबंध नहीं रह जाता।

आप भी जब पहली दफा धर्म के जीवन में उतरेंगे, तो आस—पास के लोग आपको पागल समझना शुरू कर देंगे। संसार ने यह इंतजाम किया हुआ है कि उसके जाल के बाहर कोई जाए, तो उसके मार्ग में सब तरह की बाधाएं खड़ी करनी हैं। और यह उचित भी है, क्योंकि अगर सभी लोगों को धर्म की तरफ जाने में आसानी दी जाए, तो बाकी लोग

जो धार्मिक न होंगे, उनको बड़ा कष्ट होना शुरू हो जाएगा। अपने कष्ट से बचने के लिए वे धार्मिक व्यक्ति को पागल करार देकर सुविधा में रहते हैं। वे समझ लेते हैं कि दिमाग खराब हो गया है। आसानी हो जाती है।

आप कृष्ण को पूजते भला हों, लेकिन कृष्ण अगर आपको मिल जाएं, तो आप उनको भी पागल ही समझेंगे। वे तो मिलते नहीं; मूर्ति को आप पूजते रहते हैं। असली कृष्ण खड़े हो जाएं, तो शायद आप घर में टिकने भी न दें। शायद आप रात घर में ठहरने भी न दें। क्योंकि इस आदमी का क्या भरोसा! हो सकता है आपकी पत्नी इसके लगाव में पड जाए, सखी बन जाए, गोपी हो जाए। तो आप घबडाएंगे।

जीवित कृष्ण से तो आप परेशान हो जाएंगे। मरे हुए कृष्ण को पूजना बिलकुल आसान है। क्योंकि मरे हुए कृष्ण से आपकी जिंदगी में कोई फर्क नहीं होता।

जीसस को मानने वाले लोगों को भी अगर जीसस मिल जाएं, तो वे उनको फिर सूली पर चढ़ा देंगे। क्योंकि वह आदमी अब भी वैसा ही खतरनाक होगा।

समय बहुत जब बीत जाता है और कथाएं हाथ में रह जाती हैं, जिनको सुनने और पढ़ने का मजा होता है, तब धर्म की अड़चन मिट जाती है।

तो यहां जब कुछ लोग कीर्तन कर रहे हैं, तो वे लोग तो हिम्मत करके पागल हो रहे हैं। अगर आपको लगता है कि ठीक कर रहे हैं, तो सम्मिलित हो जाएं। सम्मिलित होने में आपको भय छोड़ना पड़ेगा। लोग क्या कहेंगे, यह पहला भय है; और गहरे से गहरा भय है। लोग क्या समझेंगे?

एक महिला मेरे पास कुछ ही दिन पहले आई। और उसने मुझे कहा कि मेरे पति ने कहा है कि सुनना तो जरूर, लेकिन भूलकर कभी कीर्तन में सम्मिलित मत होना। तो मैंने उससे पूछा कि पति को क्या फिक्र है तेरे कीर्तन में सम्मिलित होने से? तो उसने कहा, पति मेरे डाक्टर हैं; —प्रतिष्ठा वाले हैं। वे बोले कि अगर तू कीर्तन में सम्मिलित हो जाए, तो लोग मुझे परेशान करेंगे कि आपकी पत्नी को क्या हो गया! तो तू और सब करना, लेकिन कीर्तन भर में सम्मिलित मत होना।

घर से लोग समझाकर भेजते हैं कि सुन लेना, करना भर मत कुछ, क्योंकि करने में खतरा है। सुनने तक बात बिलकुल ठीक है। करने में अड़चन मालूम होती है, क्योंकि आप पागल होने के लिए तैयार नहीं हैं। और जब तक आप पागल होने के लिए तैयार नहीं हैं, तब तक धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है।

तो सुनें मजे से, फिर चिंता में मत पड़े। जिस दिन भी करेंगे, उस दिन आपको दूसरे क्या कहेंगे, इसकी फिक्र छोड़ देनी पड़ेगी।

दूसरे बहुत—सी बातें कहेंगे। वे आपके खिलाफ नहीं कह रहे हैं, वे अपनी आत्म—रक्षा कर रहे हैं। क्योंकि अगर आपको ठीक मानें, तो वे गलत लगेंगे। इसलिए उपाय एक ही है कि आप गलत हैं, तो वे अपने को ठीक मान सकते हैं। और निश्चित ही उनकी संख्या ज्यादा है। आपको गलत होने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

बड़े से बड़ा साहस समूह के मत से ऊपर उठना है। लोग क्या कहेंगे, यह फिक्र छोड़ देनी है। इस फिक्र के छोड़ते ही आपके भीतर भी रस का संचार हो जाएगा। यही द्वार बांधा हुआ है, इसी से दरवाजा रुका हुआ है। यह फिक्र छोडते ही से आपके पैर में भी। थिरकन आ जाएगी, और आपका हृदय भी नाचने लगेगा, और आप भी गा सकेंगे।

और अगर यह फिक्र छोड्कर आप एक बार भी गा सके और नाच सके, तो आप कहेंगे कि अब दुनिया की मुझे कोई चिंता नहीं है। एक बार आपको स्वाद मिल जाए किसी और लोक का, तो फिर कठिनाई नहीं है लोगों की फिक्र छोडने में।

कठिनाई तो अभी है कि उसका कोई स्वाद भी नहीं है, जिसे पाना है। और लोगों से जो प्रतिष्ठा मिलती है, उसका स्वाद है, जिसको छोड़ना है। जिसको छोड़ना है, उसमें रस है, और जिसको पाना है, उसका हमें कोई रस नहीं है। इसलिए डर लगता है। हाथ की आधी रोटी भी, मिलने वाली स्वर्ग में पूरी रोटी से ज्यादा मालूम पड़ती है। स्वाभाविक है, सीधा गणित है।

लेकिन अगर इस दशा में, जिसमें आप हैं, आप सोचते हैं सब ठीक है, तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप कोई बदलाहट करें। और आपको लगता हो कि सब गलत है, जिस हालत में आप हैं, तो फिर हिम्मत करें और थोड़े परिवर्तन की खोज करें।

शांत प्रयोग करना हो, शांत प्रयोग करें। सक्रिय प्रयोग करना हो, सक्रिय प्रयोग करें। लेकिन कुछ करें।

अधिक लोग कहते हैं कि शांत प्रयोग ही ठीक है। क्योंकि अकेले में आंख बंद करके बैठ जाएंगे, किसी को पता तो नहीं चलेगा। लेकिन अक्सर शांत प्रयोग सफल नहीं होता। क्योंकि आप भीतर इतने अशांत हैं कि जब आप आंख बंद करके बैठते हैं, तो सिवाय अशांति के भीतर और कुछ भी नहीं होता। शांति तो नाम को भी नहीं होती। वह जो भीतर अशांति है, वह चक्कर जोर से मारने लगती है। जब आप शांत होकर बैठते हैं, तब आपको सिवाय भीतर के उपद्रव के और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

इसलिए उचित तो यह है कि वह जो भीतर का उपद्रव है, उसे भी बाहर निकल जाने दें। हिम्मत से उसको भी बह जाने दें। उसके बह जाने पर, जैसे तूफान के बाद एक शांति आ जाती है, वैसी शांति आपको अनुभव होगी। तूफान तो धीरे— धीरे विलीन हो जाएगा और शांति स्थिर हो जाएगी।

यह कीर्तन का प्रयोग कैथार्सिस है। इसमें जो नाच रहे हैं लोग, कूद रहे हैं लोग, ये उनके भीतर के वेग हैं, जो निकल रहे हैं। इन वेगों के निकल जाने के बाद भीतर परम शून्यता का अनुभव होता है। उसी शून्यता से द्वार मिलता है और हम अनंत की यात्रा पर निकल जाते हैं।

लेकिन कुछ करें। कम से कम शांत प्रयोग ही करें। अभी शांत करेंगे, तो कभी सक्रिय भी करने की हिम्मत आ जाएगी। लेकिन सुनने पर भरोसा मत रखें। अगर सुनने से मुक्ति होती होती, तो सभी की हो गई होती। सभी लोग काफी सुन चुके हैं। कुछ करना होगा। करने से जीवन बदलेगा और क्रांति होगी।

मैं जो बोलता भी हूं तो प्रयोजन बोलना नहीं है। बोलना तो सिर्फ बहाना है, ताकि आपको करने की तरफ ले जा सकूं। और अगर आप बोलने से ही खुश होकर चले जाते हैं, तो प्रयोजन व्यर्थ गया। वह लक्ष्य नहीं था।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि गीता में बार—बार कृष्ण का कहना है कि मैं ही परम ब्रह्म हूं। सब छोड्कर मेरी शरण आ जाओ, मैं तुम्हें मुक्त करूंगा। लेकिन यह वचन अन्य— धर्मी स्वीकार नहीं करते। और आपने कहा है कि ठीक जीवन जीने की कला ही गीता है। फिर भी अन्य— धर्मी कृष्ण को परमात्मा मानने को राजी नहीं हैं। और कहते हैं, गीता वैष्णव संप्रदाय का धार्मिक ग्रंथ है।

अन्य— धर्मियों की फिक्र क्या है आपको? और आप अन्य— धर्मियों का कौन—सा ग्रंथ मानने को तैयार हैं? आप कुरान पढ़ते हैं? और आप मानने को तैयार हैं कि कुरान परमात्मा का वचन है? आप बाइबिल पढ़ते हैं? और आप मानने को तैयार हैं कि जीसस ईश्वर का पुत्र है? और अगर आप मानने को तैयार नहीं हैं, तो अप अपने कृष्ण को किसी दूसरे को मनाने के लिए क्यों परेशान हैं!

और फिर दूसरे से प्रयोजन क्या है? आपको कृष्ण की बात ठीक लगती है, उसे जीवन में उतारें। अपने को बदलें। जिसको मोहम्मद की बात ठीक लगती हो, वह मोहम्मद की बात को जीवन में उतार ले, और अपने को बदल ले। जब आप दोनों बदल चुके होंगे, तो दोनों एक से होंगे, जरा भी फर्क न होगा।

लेकिन गीता वाले को फिक्र है कि किसी तरह मुसलमान को राजी कर ले कि गीता महान ग्रंथ है।

इससे क्या हल है? तुम्हें तो पता है कि गीता महान ग्रंथ है और तुम्हारी जिंदगी में कुछ भी नहीं हो रहा, तो मुसलमान भी मान लेगा कि गीता महान ग्रंथ है, तो क्या फर्क हो जाएगा? बीस करोड़ हिंदू तो मान रहे हैं, कुछ फर्क तो हो नहीं रहा है। तुम तो माने ही बैठे हो कि गीता महान ग्रंथ है और कृष्ण परम ब्रह्म हैं, तो तुम्हारे जीवन में कुछ नहीं हो रहा, तो तुम दूसरे की क्या फिक्र कर रहे हो!

दूसरे की हमें चिंता है नहीं। असल में हमें खुद ही भय है और शक है कि कृष्ण भगवान हैं या नहीं! और जब तक कोई शक करने वाला मौजूद है, तब तक हमारे शक को भी हवा मिलती है।

अब मुसलमान कहता है कि हम नहीं मानते, तुम्हारी गीता में कुछ सार है; तो हमें खुद ही डर पैदा होता है कि कहीं यह ठीक तो नहीं है। इससे हम पहले इसको राजी करने को उत्सुक हो जाते हैं। ध्यान रहे, जब भी आदमी किसी दूसरे को राजी करने में बहुत श्रम उठाता है, तो उसका मतलब यह है कि वह खुद संदिग्ध है। वह जब तक सबको राजी न कर लेगा, तब तक उसका खुद भी मन राजी नहीं है। वह खुद भी डरा हुआ है कि बात पक्की है या नहीं! क्योंकि इतने लोग शक करते हैं।

बीस करोड़ हिंदू हैं, तो कोई अस्सी करोड़ मुसलमान हैं। तो बीस करोड़ हिंदू जिसको मानते हैं, अस्सी करोड़ मुसलमान तो इनकार करते हैं। कोई एक अरब ईसाई हैं, वे इनकार करते हैं। कोई अस्सी करोड़ बौद्ध हैं, वे इनकार करते हैं। तो सारी दुनिया तो इनकार करती है बीस करोड़ हिंदुओं को छोड़कर!

तो' शक पैदा होता है कि यह गीता अगर सच में परम ब्रह्म का वचन होता, तो साढ़े तीन, चार अरब आदमी सभी स्वीकार करते। दो—चार न करते, तो हम समझ लेते कि दिमाग फिरा है। यहां तो हालत उलटी है। दो—चार स्वीकार करते हैं, बाकी तो स्वीकार नहीं कर रहे हैं। तो भीतर संदेह पैदा होता है। उस संदेह से ऐसे सवाल उठते हैं।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कौन स्वीकार करता है या कौन स्वीकार नहीं करता। तुम्हारी जिंदगी बदल जाए, तो बात सत्य है। तुम कृष्ण की बात मानकर अपनी जिंदगी को बदल लो। तुम अकेले काफी हो। कोई पूरी दुनिया में स्वीकार न करे, लेकिन तुम अकेले अगर अपनी जिंदगी में स्वर्ण ले आते हो और कचरा जल जाता है, तो कृष्ण की बात सही है। सारी दुनिया इनकार करती रहे, तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता।

लेकिन खुद तो हम कोई परिवर्तन लाना नहीं चाहते, हम सब दूसरे को कनवर्ट करने में लगे हैं। हम जैसे अजीब लोग खोजने मुश्किल हैं। हमारी हालत ऐसी है कि जैसे घर में हमारे कुआं हो, जिसमें अमृत भरा हो। हम तो उसको कभी नहीं पीते, हम पड़ोसियों को समझाते हैं कि आओ, हमारे पास अमृत का कुआं है, उसको पीओ। और पड़ोसी भी उसको कैसे माने, क्योंकि हमने खुद ही अमृत का कोई स्वाद नहीं लिया है।

अगर आपके घर में अमृत का कुआं होता, तो पहले आप पीते, फिर दूसरे की फिक्र करने जाते। और सच तो यह है कि अगर अमृत आपने पी लिया होता और आप अमर हो गए होते और मृत्यु आपके जीवन से मिट गई होती, तो किसी को समझाने जाने की जरूरत नहीं थी। पड़ोसी खुद ही पूछने आता कि मामला क्या है! तुम ऐसे अमृत आनंद को उपलब्ध कैसे हो गए? क्या पीते हो? क्या खाते हो? क्या राज है तुम्हारा? तुम्हें पड़ोसी के पास कहने की जरूरत न होती।

तुम्हें जरूरत इसलिए पड़ती है कि तुम्हारे कुएं पर तुम्हें खुद ही भरोसा नहीं है। तुमने खुद ही कभी उसका पानी पीकर नहीं देखा। तुम पहले पड़ोसी को पिलाने की कोशिश में लगे हो। शायद तुम्हें डर है कि पता नहीं जहर है या अमृत। पहले पड़ोसी पर देख लें परिणाम क्या होता है, फिर अपना सोचेंगे।

क्या फिक्र है तुम्हें? अपने शास्त्र को दूसरों पर लादने की चिंता क्यों है? अपने को बदलो। तुम्हारी बदलाहट दूसरों को दिखाई पड़ेगी और उन्हें लगेगा कि कुछ सार है, तो वे भी तुम्हारे शास्त्र में से शायद कुछ ले लें। लेकिन लें या न लें, इसे लक्ष्य बनाना उचित नहीं है।

सभी लोग ऐसा सोचते हैं। मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं कि गीता इतना महान ग्रंथ है, मुसलमान क्यों नहीं मानता? ईसाई क्यों नहीं मानता?

महान ग्रंथ उनके पास भी हैं। और गीता से इंचभर कम महान नहीं हैं। लेकिन महान ग्रंथ से तुमको भी मतलब नहीं है, उनको भी मतलब नहीं है।

तुम जब गीता को महान कहते हो, तो तुम यह मत सोचना कि तुम्हें पता है कि गीता महान है। गीता को तुम महान सिर्फ इसलिए कहते हो कि गीता तुम्हारी है। और गीता को महान कहने से तुम्हारे अहंकार को रस आता है। गीता महान है, इसके पीछे यह छिपा है कि मैं महान हूं। क्योंकि मैं गीता को मानने वाला हूं।

कुरान महान है, तो मुसलमान सोचता है, मैं महान हूं। बाइबिल महान है, तो ईसाई सोचता है, मैं महान हूं।

अगर कोई कह दे, गीता महान नहीं है, तो तुम्हें चोट लगती है। वह इसलिए नहीं कि तुम्हें गीता का पता है। वह चोट इसलिए लगती है कि तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है।

हमारे अहंकार के बड़े जाल हैं। हम कहते हैं, भारत महान देश है। भारत—वारत से किसी को लेना—देना नहीं है। कि चीन महान देश है। मतलब हमें अपने से है। भारत इसलिए महान देश है, क्योंकि आप जैसा महान व्यक्ति भारत में पैदा हुआ। और कोई कारण नहीं है। अगर आप इंग्लैंड में पैदा होते, तो इंग्लैंड महान देश होता। आप जर्मनी में पैदा होते, तो जर्मनी महान देश होता। जहां आप पैदा होते, वही देश महान होने वाला था।

कोई जमीन पर एकाध देश है, जो यह कहता हो, हम महान नहीं हैं? कोई एकाध जाति है, जो कहती हो, हम महान नहीं हैं? कोई एकाध धर्म है, जो कहता हो, हम महान नहीं हैं?

सब अहंकार की घोषणाएं हैं। धर्म का इससे कोई भी संबंध नहीं है।

पर हम अहंकार की सीधी घोषणा नहीं कर सकते। अगर कोई आदमी खड़े होकर कहे कि मैं महान हूं तो हम सबको एतराज होगा। सीधी घोषणा खतरनाक है। क्योंकि सीधी घोषणा से दूसरों के अहंकार को चोट लगती है। क्योंकि अगर मैं कहूं कि मैं महान हूं तो फिर आप? आप तत्क्षण छोटे हो जाएंगे। तो आप फौरन इनकार करेंगे कि यह बात नहीं मानी जा सकती। आपका दिमाग खराब है।

लेकिन मैं कहता हूं, हिंदू धर्म महान है। हिंदुओं के बीच तो यह बात स्वीकार कर ली जाएगी, क्योंकि मेरे अहंकार से किसी के अहंकार की टक्कर नहीं होती। हिंदुओं के अहंकार को भी मेरे अहंकार के साथ पुष्टि मिलती है। ही, मुसलमान इनकार करेगा। लेकिन अगर मैं कहूं, भारत महान है। तो भारत में रहने वाले सभी लोग स्वीकार कर लेंगे, क्योंकि उनके अहंकार को चोट नहीं लगती। चीन के अहंकार को चोट लगेगी, जर्मनी के अहंकार को चोट लगेगी।

अगर कहीं हमने किसी दिन मंगल पर या किसी और तारे पर मनुष्यता खोज ली या मनुष्य जैसे प्राणी खोज लिए, तो हम घोषणा कर सकेंगे, पृथ्वी महान है। फिर पृथ्वी पर किसी को चोट नहीं लगेगी। लेकिन मंगल ग्रह पर जो आदमी होगा, उसको फौरन चोट लगेगी।

ये सारी घोषणाएं छिपे हुए अहंकार की घोषणाएं हैं, परोक्ष घोषणाएं हैं। आपके कृष्ण परम ब्रह्म हैं, तो जीसस परम ब्रह्म क्यों नहीं हैं? वे भी परम ब्रह्म हैं। और जीसस ही क्यों? परम ब्रह्म तो हर एक के भीतर छिपा है। किसी के भीतर प्रकट हो गया है और किसी के भीतर अप्रकट है। सच तो यह है कि परम ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन बड़ी कठिनाई है।

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है..। बर्ट्रेंड रसेल तो विचारशील से विचारशील व्यक्तियों में एक है। और जिसका पूरा भरोसा बुद्धि और तर्क पर है। उसने भी लिखा है कि जब मैं सोचता हूं तो मुझे लगता है कि बुद्ध से महान व्यक्ति जमीन पर

दूसरा नहीं हुआ। जब मैं सोचता हूं निष्पक्ष भाव से, तो मुझे लगता है, बुद्ध से महान व्यक्ति जमीन पर दूसरा नहीं हुआ। लेकिन मेरे भीतर छिपा हुआ ईसाई, जिसको मैं वर्षों पहले त्याग कर चुका हूं..।

क्योंकि बर्ट्रेंड रसेल ने ईसाइयत का त्याग कर दिया था। उसने एक बहुत अदभुत किताब लिखी है, जिसका नाम है, व्हाय आई एम नाट ए क्रिश्चियन—मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? लेकिन बचपन तो ईसाइयत में बड़ा हुआ था। मां—बाप ने धर्म तो ईसाइयत दिया था, संस्कार तो ईसाइयत के थे। फिर सोच—विचार करके ईसाई धर्म का त्याग कर दिया।

तब भी बर्ट्रेंड रसेल कहता है कि मैं ऊपर से विचार करके कहता हूं कि बुद्ध से महान कोई भी नहीं। लेकिन भीतर मेरे हृदय में कोई कहता है कि बुद्ध कितने ही महान हों, लेकिन जीसस से महान हो नहीं सकते। भीतर कोने में कोई छिपा हुआ कहता है। और ज्यादा से ज्यादा मैं इतना ही कर सकता हूं कि बुद्ध और जीसस दोनों समान हैं। बड़ा—छोटा कोई भी नहीं, ज्यादा से ज्यादा। लेकिन जीसस को बुद्ध से नीचे रखना मुश्किल हो जाता है।

इसलिए नहीं कि बुद्ध से नीचे हैं या ऊंचे हैं, ये बातें मूढ़तापूर्ण हैं। जो व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गया, उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। न वह किसी से नीचे है और न किसी से ऊपर है। असल में ज्ञान को उपलब्ध होते ही व्यक्ति तुलना के बाहर हो जाता है।

बुद्ध और कृष्ण और महावीर और क्राइस्ट किसी से ऊंचे—नीचे नहीं हैं। यह ऊंचे—नीचे की भाषा ही उस लोक् में व्यर्थ है। यह तो हमारी भाषा है। यहां हम ऊंचे—नीचे होते हैं। जैसे ही अहंकार छूट गया। कौन ऊंचा होगा और कौन नीचा होगा? क्योंकि ऊंचा—नीचा अहंकार की तौल है।

बुद्ध भी अहंकारशून्य हैं और क्राइस्ट भी अहंकारशून्य हैं और कृष्ण भी, तो ऊंचा—नीचा कौन होगा! ऊंचा—नीचा तभी तक कोई हो सकता है, जब तक अहंकार का भाव है।

तो यह आप जो कहते हैं कि कृष्ण ब्रह्म हैं, ऐसा दूसरे धर्म के लोग क्यों नहीं मानते? इसीलिए नहीं मानते हैं कि इससे उनके अहंकार की कोई तृप्ति नहीं होती; और आप इसीलिए मानते हैं कि आपके अहंकार की तृप्ति होती है। बहुत दूर के धर्मों को तो छोड़ दें, जैन भी राजी नहीं हैं आपसे मानने को, जो कि बिलकुल आपके पड़ोस में रह रहा है। और आपके और उसके धर्म में कोई बुनियादी फर्क नहीं दिखता, वह भी मानने को राजी नहीं है। जैन को तो छोड़ दें, राम— भक्त, जो कि हिंदू है, वह भी इस बात को मानने को राजी नहीं है।

असल में हम मानते उसी बात को हैं, जिससे हमारा अहंकार खिलता है। जिससे हमारे अहंकार में खिलावट नहीं आती, हम मानते—वानते नहीं हैं।

यह धार्मिक आदमी की चिंता ही नहीं है लेकिन। धार्मिक आदमी इसकी फिक्र करता है कि जो मुझे ठीक लगता है, उस रास्ते से चलूं और अपने को बदल लूं, और नए जीवन को उपलब्ध हो जाऊं। वह रास्ता कृष्ण के मार्ग से मिले, तो ठीक, और क्राइस्ट के मार्ग से मिले, तो ठीक। मार्गों की चिंता ही नासमझ करते हैं। मंजिल की चिंता!

लेकिन कुछ लोग होते हैं, आम नहीं खाते, गुठलियां गिनते हैं। इस तरह के लोग उसी कोटि में हैं। उन्हें फुर्सत ही नहीं है आम को चखने की। वे गुठलियां गिनते रहते हैं!

इन मित्र ने यह भी पूछा है कि क्या निराकार परमात्मा ही कृष्ण नहीं हैं?

निराकार परमात्मा सभी के भीतर है। कृष्ण के भीतर भी है। कृष्ण के भीतर वह ज्योति पूरी प्रकट होकर दिखाई पड़ रही है, क्योंकि सारे परदे गिर गए हैं। आपके भीतर परदे हैं, इसलिए वह ज्योति दिखाई नहीं पड़ रही है। ज्योति में कोई अंतर नहीं है। किसी का दीया ढंका है और किसी का दीया उघड़ा है। बस, उतना ही फर्क है। दीए में कोई फर्क नहीं है, ज्योति में कोई फर्क नहीं है।

कृष्ण में और आपमें जो अंतर है, वह भीतर की ज्योति का नहीं है, बाहर के आवरण का है।

अभी भी कई भक्तों को और संतों को कृष्ण का साक्षात दर्शन होता है। चौबीस घंटे मुझे भी कृष्ण के सिवाय दूसरा कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तो निराकार परमात्मा भक्तों के लिए साकार रूप लेते हैं, क्या यह सच है?

आप भाव से जिसका भी स्मरण करते हैं, वह आपके लिए रूपवान हो जाता है, वह आपके लिए रूपायित हो जाता है। आपका भाव निर्माता है, स्रष्टा है। भाव सृजनात्मक है। कोई कृष्ण आ जाते हैं, ऐसा नहीं है, कोई क्राइस्ट आ जाते हैं, ऐसा नहीं है। लेकिन भाव क्रिएटिव है। आप जब गहन भाव से स्मरण करते हैं, तो आपकी चेतना ही उस रूप की हो जाती है जिस रूप का आपने स्मरण किया है। आप कृष्णमय हो जाते हैं, अपने ही भाव के कारण। कोई क्राइस्टमय हो जाता है, अपने ही भाव के कारण। आपने शायद सुना होगा, ईसाई फकीर हैं बहुत—से, आज भी जीवित हैं, जिनको स्टिगमेटा निकलता है। स्टिगमेटा है, जहां—जहां जीसस को खीले ठोंके गए थे हाथों में। हाथ में, पैर में जीसस को खीले ठोंककर सूली पर लटकाया गया था। तो ऐसे ईसाई फकीर हैं, जो इतने जीससमय हो जाते हैं कि शुक्रवार के दिन, जिस दिन जीसस को सूली हुई थी, उस दिन उनके हाथ और पैर में छेद हो जाते हैं और खून बहने लगता है।

इसके तो वैज्ञानिक परीक्षण हुए हैं। खुले समूह के सामने फकीर आंख बंद किए बैठा रहा है और ठीक समय पर—डाक्टरों ने सारी परीक्षा कर ली है—और उसके हाथ में से खून बहना शुरू हो जाता

है। और ठीक चौबीस घंटे बाद खून की धारा बंद हो जाती है, घाव पुर जाता है। इतना भाव से एक हो जाता है कि मैं जीसस हूं कि जीसस के शरीर पर जो घटना घटी थी, वह उसके शरीर पर घटनी शुरू हो जाती है।

इसलिए जीसस के भक्त को जीसस दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण के भक्त को कृष्ण दिखाई पड़ते हैं। राम के भक्त को राम दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण के भक्त को क्राइस्ट कभी दिखाई नहीं पड़ते। क्राइस्ट के भक्त को कृष्ण कभी नहीं दिखाई पड़ते। भाव जब सघन हो जाता है, तो आपकी चेतना रूपांतरित हो जाती है, उसी भाव में एक हो जाती है।

वह जो कृष्ण आपको दिखाई पड़ते हैं, वह आपके ही भीतर की ज्योति है, जो आपको बाहर दिखाई पड़ रही है भाव के कारण। कोई कृष्ण वहां खडे हुए नहीं हैं।

इसलिए आप दूसरे को नहीं दिखा सकते हैं कि मुझे कृष्ण दिखाई पड़ रहे हैं, तो आप दस मुहल्ले के लोगों को बुला लें और उनको कहें कि तुम भी देखो, मुझे दिखाई पड़ रहे हैं। या आप फोटोग्राफर को लिवा लाएं और कहें कि फोटो निकालो; मुझे कृष्ण दिखाई पड़ रहे हैं। कोई फोटो नहीं आएगा। और पड़ोसी को, किसी को दिखाई नहीं पड़ेंगे। पड़ोसी तय करके जाएंगे कि आपका दिमाग खराब हो गया है।

सब्जेक्टिव है, आंतरिक है, आत्मिक है। आपका ही भाव साकार हुआ है। और यह कला बड़ी अदभुत है। यह भाव अगर पूरी तरह साकार होने लगे, तो आप मनुष्य की हैसियत से मिटते जाएंगे और परमात्मा की हैसियत से प्रकट होने लगेंगे। अपने भाव से यह सृजन की क्षमता को उपलब्ध कर लेना स्रष्टा हो जाना है। यही क्रिएटर हो जाना है।

लेकिन आप इससे ऐसा मत समझ लेना कि आपको कृष्ण का स्मरण आता है, इसलिए जिसको क्राइस्ट का स्मरण आता है उसको गलती हो रही है। आप ऐसा भी मत समझ लेना कि कृष्ण के आपको दर्शन होते हैं, इसलिए सभी को कृष्ण के दर्शन से ही परमात्मा की प्राप्ति होगी। इस भूल में आप मत पड़ना। अपने—अपने भाव, अपना—अपना मार्ग, अपनी—अपनी प्रतीति।

और भूलकर भी दूसरे की प्रतीति को छूना मत, और गलत मत कहना। अपनी प्रतीति बता देना कि मुझे ऐसा होता है, और मुझे यह आनंद हो रहा है। लेकिन दूसरे की प्रतीति को गलत कहने की कोशिश मत करना, क्योंकि वह अनधिकार है, वह ट्रेसपास है। और दूसरे के भाव को नुकसान —पहुंचाना अधार्मिक है।

आपको ऐसा भी लगता हो कि यह गलत हो रहा है दूसरे को, तो भी आप जल्दी मत करना, क्योंकि दूसरे के संबंध में आपको कुछ भी पता नहीं है। थोड़ा धैर्य रखना। और अगर दूसरे के संबंध में कुछ भी कहना हो, तो दूसरा जो प्रयोग कर रहा है, वह प्रयोग खुद भी कर लेना और फिर ही कहना।

रामकृष्ण को ऐसा ही हुआ। रामकृष्ण को लोग आकर पूछते थे कि इस्लाम धर्म कैसा? ईसाइयत कैसी? तंत्र के मार्ग कैसे हैं? तो रामकृष्ण ने कहा कि मैं जब तक उन प्रयोगों को नहीं किया हूं, कुछ भी नहीं कह सकता। तो लोग पूछते हैं, तो रामकृष्ण ने कहा कि मैं सब प्रयोग करूंगा।

तो रामकृष्ण छः महीने के लिए 'मुसलमान की तरह रहे। पृथ्वी पर यह प्रयोग पहला था, अपने ढंग का था। रामकृष्ण छः महीने तक मंदिर नहीं जाते थे, मस्जिद ही जाते थे। और छः महीने तक नमाज ही पढ़ते थे, प्रार्थना नहीं करते थे। छः महीने तक उन्होंने हिंदुओं जैसे कपड़े पहनने बंद कर दिए थे और मुसलमान जैसे कपड़े पहनने लगे थे। छः महीने उन्होंने अपने को इस्लाम में पूरी तरह डुबा लिया।

और जब इस्लाम से भी उन्हें वही अनुभव हो गया, जो अनुभव उन्होंने काली की प्रार्थना और पूजा करके पाया था, तब उन्होंने कहा कि ठीक है, यह रास्ता भी वहीं आता है। यह रास्ता भी वहीं ले जाता है। इस रास्ते से चलने वाले भी वहीं पहुंच जाएंगे, जहां दूसरे रास्तों से चलने वाले पहुंचते हैं।

फिर तो रामकृष्ण ने कोई छः धर्मों के अलग—अलग प्रयोग किए। और सभी धर्मों से जब वे एक ही समाधि को पहुंच गए, तब उन्होंने यह वक्तव्य दिया कि रास्ते अलग हैं, लेकिन पर्वत का शिखर एक है। और अलग—अलग रास्तों से, कभी—कभी विपरीत दिशाओं में जाने वाले रास्तों से भी आदमी उसी एक शिखर पर पहुंच जाता है।

तो जल्दी मत करना। दूसरे पर कृपा करना। दूसरे को चोट पहुंचाने की कोशिश मत करना। एक ही ध्यान रखना कि आपकी पूरी शक्ति अपने ही प्रयोग में लगे। और धीरे— धीरे आपकी चेतना आपके ही भाव के साथ एक हो जाए।

परमात्मा को निकट लाने की एक ही कला है। और वह कला यह है कि आप अपने भाव को पूरा का पूरा उसमें डुबा दें।

इसके दो उपाय हैं। अगर आपके मन की वृत्ति सगुण की हो, तो आप कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध, महावीर, कोई भी प्रतीक चुन लें, कोई भी रूप, कोई भी आकार चुन लें; और उसी आकार में अपने को लीन करने लगें।

लेकिन अगर आकार में आपकी रुचि न हो, तो जरूरत नहीं है किसी आकार की भी। तब आप निराकार ध्यान में सीधे उतरने लगें। तब आप अनंत और अनादि का, शाश्वत और सनातन का, निराकार आकाश का ही भाव करें— किसी मूर्ति का, किसी बिंब का, किसी प्रतीक का नहीं।

यह भी आपको खोज लेना चाहिए कि आपके लिए क्या उचित होगा। आपका अपना भीतरी झुकाव और लगन, आपका भीतरी ढांचा क्या है, यह आपको ठीक से समझ लेना चाहिए। क्योंकि सभी लोगों को सभी बातें ठीक नहीं होंगी; सभी मार्ग सभी के लिए ठीक नहीं होंगे।

जो आदमी निर्गुण को समझ ही नहीं सकता, वह आदमी निर्गुण के पीछे पड़ जाएगा, तो कष्ट पाएगा और कभी भी उपलब्धि न होगी।

इसे आप ऐसा समझें। स्कूल में बच्चे भर्ती होते हैं। सभी बच्चों को गणित नहीं जमता, क्योंकि गणित बिलकुल निराकार है। गणित का कोई आकार तो है नहीं। गणित तो एब्सट्रैक्ट है। सभी बच्चों

को गणित नहीं जमता। जिन बच्चों को गणित नहीं जमता, या जिनको गणित में बिलकुल रस नहीं आता, या जिनको गणित में कोई गति नहीं होती, उन्हें भूलकर भी निराकार और निर्गुण की बात में नहीं पड़ना चाहिए। मैं सिर्फ एक

उदाहरण दे रहा हूं। जिनकी गणित पर पकड़ नहीं बैठती, उनको निराकार और निर्गुण की बात ही नहीं करनी चाहिए। क्योंकि गणित तो स्थूलतम निराकार की यात्रा है। ध्यान तो परम यात्रा है।

आइंस्टीन जैसा व्यक्ति निराकार में उतर सकता है सरलता से, क्योंकि सारा खेल ही निराकार गणित का है।

गणित बाहर कहीं भी नहीं है, केवल बुद्धि के निराकार में है। अगर आदमी मर जाए, तो गणित बिलकुल मिट जाएगा। क्योंकि गणित का कोई सवाल ही नहीं है। आप कहते हैं, एक, दो, तीन, चार—ये कहीं भी नहीं हैं। यह सिर्फ खयाल है, सिर्फ एक निराकार भाव है।

इस तरह का कोई व्यक्ति हो कि उसका निराकार से, एब्सट्रैक्ट से कोई संबंध न बैठता हो, तो उसे साकार की यात्रा करनी चाहिए। जैसे मीरा है। तो मीरा को निराकार से कोई रस नहीं, कोई संबंध नहीं है। वह तो कृष्ण को जितना रसपूर्ण देख पाती है, नाचते हुए, बांसुरी बजाते हुए, उतनी ही लीन हो जाती है।

स्त्रियां अक्सर निराकार की तरफ नहीं जा सकतीं। क्योंकि स्त्रैण मन आकृति को प्रेम करता है, आकार को प्रेम करता है। पुरुष अक्सर निराकार की तरफ जा सकते हैं। क्योंकि पुरुष मन एब्सट्रैक्ट है, निर्गुण की तलाश करता है।

लेकिन सभी पुरुष पुरुष नहीं होते और सभी स्त्रियां स्त्रियां नहीं होतीं। बहुत—सी स्त्रियां पुरुष के ढांचे की होती हैं, बहुत—से पुरुष स्त्री के ढांचे के होते हैं। यह ढांचा केवल शरीर का नहीं, मन का भी है।

तो आपको ठीक पता लगा लेना चाहिए कि आपका भीतरी ढांचा क्या है। इसलिए गुरु की बड़ी उपयोगिता है। क्योंकि आपको शायद यह समझ में भी न आ सके कि आपका ढांचा क्या है। और शायद आप गलत ढांचे पर प्रयोग करते रहें और परेशान होते रहें। अनेक लोग परेशान होते हैं और वे यही समझते हैं कि अपने कर्मों के फल के कारण उपलब्धि नहीं हो रही है। अक्सर तो कर्मों के फल का कोई संबंध नहीं होता। उपलब्धि में भूल इसलिए होती है कि आपसे तालमेल नहीं पड़ता, जिस विधि का आप प्रयोग कर रहे हैं। जो आप प्रयोग कर रहे हैं। और जो आप हैं, उन दोनों में कोई

संगति नहीं बैठती, उनमें विरोध है। तो आप जन्मों—जन्मों तक कोशिश करते रहें, वह रेत से तेल निकालने जैसी चेष्टा है। वह कभी सफल न होगी। और आप शायद यही सोचते रहेंगे कि कर्मों के फल के कारण बाधा पड़ रही है। कर्मों के फल के कारण बाधा पड़ती है, लेकिन इतनी बाधा नहीं पड़ती, जितनी बाधा ढांचे के विपरीत अगर कोई मार्ग चुन ले तो पड़ती है।

इसलिए गुरु का उपयोग है कि वह आपके ढांचे के संबंध में खोज कर सकता है।

पश्चिम में मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि आपको अपने मन के संबंध में उतना पता नहीं है, जितना कि मनसविद को पता है। और मनसविद आपका विश्लेषण करके आपके संबंध में वे बातें जान लेता है, जो आपको ही पता नहीं थीं।

तो आप यह मत समझ लेना कि चूंकि आप हैं, इसलिए आप अपने संबंध में सब जानते हैं। आप अपने संबंध में एक प्रतिशत भी नहीं जानते। निन्यानबे प्रतिशत तो आपको अपने बाबत ही पता नहीं है। और उसके लिए कोई दूर से निष्पक्ष खड़े होकर देखने वाला चाहिए, जो ठीक से पहचान ले कि क्या—क्या आपके भीतर छिपा है। अगर वह आपके भीतर को ठीक से पहचान ले और पकड़ ले, तो मार्ग चुनना आसान हो जाए।

अनंत मार्ग हैं और अनंत तरह के लोग हैं। और ठीक मार्ग ठीक व्यक्ति को मिल जाए, तो कभी—कभी क्षण में भी मुक्ति फलित हो जाती है। लेकिन वह तभी, जब बिलकुल ठीक मार्ग और ठीक व्यक्ति से मिल जाए।

यह करीब—करीब वैसा है, जैसे आप रेडिओ लगाते हैं। और आपकी सुई अगर ढीली हो, तो दो—दो, चार—चार स्टेशन एक साथ पकड़ती है। कुछ भी समझ में नहीं आता। फिर आप धीमे— धीमे, धीमे— धीमे टयून करते हैं। और जब ठीक जगह पर सुई रुक जाती है, ठीक स्टेशन पर, तो सभी स्पष्ट हो जाता है।

करीब—करीब आपके बीच और विधि के बीच जब तक ठीक टयूनिंग न हो जाए, तब तक सत्य की कोई प्रतीति नहीं होती। तब तक बहुत बार आपको बहुत मार्ग बदलने पड़ते हैं; बहुत बार बहुत—सी विधियां बदलनी पड़ती हैं।

लेकिन अगर आदमी सजग हो, तो बिना गुरु के भी मार्ग खोज ले सकता है। समय थोड़ा ज्यादा लगेगा। अगर आदमी समर्पणशील हो, तो गुरु के सहारे बहुत जल्दी घटना घट सकती है।

आखिरी सवाल। एक मित्र पूछते हैं कि मैंने सुना है कि रामकृष्ण परमहंस जब भी गुह्य ज्ञान के बारे में बताते थे, तभी बीच—बीच में रूक जाते थे, और कहते थे, मां मुझे सच बोलने को नहीं देती। इसका क्या अर्थ है?

सत्य बोला नहीं जा सकता; बोलने की कोशिश की जा सकती है। और जिनको सत्य का कोई पता नहीं है, उन्हें यह अनुभव कभी नहीं होता कि सत्य बोला नहीं जा सकता। जिन्हें सत्य का पता ही नहीं है, वे मजे से बोल सकते हैं। उन्हें कभी खयाल भी न आएगा कि सत्य को शब्द में रखना अत्यंत कठिन, करीब—करीब असंभव है।

जिनको भी सत्य का पता है, उन्हें बहुत बार भीतर यह अड़चन आ जाती है, बहुत बार यह अड़चन आ जाती है। उन्हें मालूम है कि क्या है सत्य, लेकिन कोई शब्द उससे मेल नहीं खाता। अगर वे कोई भी शब्द चुनते हैं, तो पाते हैं कि उससे कुछ भूल हो जाएगी। वे जो कहना चाहते हैं, वह तो कहा नहीं जाएगा। और कई बार ऐसा लगता है कि जो वे नहीं कहना चाहते, वह भी इस शब्द से ध्वनित हो जाएगा। बहुत बार ऐसा होता है कि यह शब्द का उपयोग तो किया जा सकता है, लेकिन सुनने वाला गलत समझेगा। तो रुकावट हो जाती है।

रामकृष्ण का मतलब वही है। वह उनके काव्य की भाषा है कि वे कहते हैं, मां रोक लेती है सत्य को कहने से। वह उनकी काव्य— भाषा है। लेकिन असली कारण. कोई रोकता नहीं है; सत्य ही रोक लेता है। क्योंकि सत्य शब्द के साथ बैठ नहीं पाता। फिर रामकृष्ण की तकलीफ दूसरी भी है। क्योंकि वे शब्द के संबंध में बहुत कुशल भी नहीं थे। बेपढ़े—लिखे थे। बुद्ध इस तरह नहीं रुकते। रामकृष्ण दूसरी कक्षा तक मुश्किल से पढ़े थे। पढ़ना—लिखना नहीं हुआ था। शब्द से उनका कोई बहुत संबंध न था। और फिर उन्हें अनुभव तो वही हुआ, जो बुद्ध को हुआ।

लेकिन बुद्ध सुशिक्षित थे, शाही परिवार से थे। जो भी हो सकता था संस्कार श्रेष्ठतम, वह उन्हें उपलब्ध हुआ था। जो भी आभिजात्य की भाषा थी, जो भी काव्य की, कला की भाषा थी, जो भी श्रेष्ठतम था साहित्य में, उसका उन्हें पता था। तो बुद्ध नहीं रुकते हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि बुद्ध कह पाते हैं सत्य है वह। नहीं।

तो बुद्ध ज्यादा कुशल हैं। वे बीच—बीच में नहीं रुकते, वे पहले ही घोषणा कर देते हैं। बुद्ध जिस गाव में जाते थे, वे कहलवा देते थे कि ग्यारह प्रश्न मुझसे कोई न पूछे।

उन ग्यारह प्रश्नों में वे सब बातें आ जाती थीं, जो गुह्य सत्य के संबंध में हैं। वे कहते थे, इन्हें छोड्कर तुम कुछ भी पूछो। ये ग्यारह प्रश्न मुझसे मत पूछो। क्योंकि इनके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ये अव्याख्येय हैं।

रामकृष्ण ग्राम्य थे। उनकी भाषा ग्रामीण की थी। उनके प्रतीक भी ग्राम्य थे। उनकी कहानियां भी ग्राम्य थीं। उन्होंने पहले से घोषणा नहीं की थी, लेकिन जब वे बोलते थे, तो बीच—बीच में अड़चन आ जाती थी। वे कुछ कहना चाहते थे और वह नहीं प्रकट होता था। कोई शब्द नहीं मिलता था।

लेकिन यह घटना तभी घटती है, जब आपके पास कुछ महत्वपूर्ण कहने को हो। अगर आप बाजार में चीजें खरीदने और बेचने की ही भाषा को, और उतना ही आपके पास कहने को हो, तो यह अड़चन कभी नहीं आती। लेकिन जैसे

ही आप ऊपर उड़ते हैं और समाज और बाजार की भाषा के बाहर की दुनिया में प्रवेश करते हैं, वैसे ही कठिनाई आनी शुरू हो जाती है।

रवींद्रनाथ ने छ: हजार गीत लिखे हैं। शायद दुनिया में किसी कवि ने इतने गीत नहीं लिखे। पश्चिम में शेली को वे कहते हैं महाकवि। लेकिन उसके भी दो हजार गीत हैं। रवींद्रनाथ के छ: हजार गीत हैं, जो संगीत में बद्ध हो सकते हैं।

मरने के तीन या चार दिन पहले एक मित्र ने आकर रवींद्रनाथ को कहा कि तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि पृथ्वी पर अब तक हुए महाकवियों में तुम्हारा सबसे बड़ा दान है—छ: हजार गीत, जो संगीत में बंध सकते हैं! और प्रत्येक गीत अनूठा है। तुम्हें मृत्यु का कोई भय नहीं होना चाहिए और न कोई दुख लेना चाहिए, क्योंकि तुम काम पूरा कर चुके हो, तुम फुलफिल्ड हो। आदमी तो वह दुःखी मरता, जिसका कुछ काम अधूरा रह गया हो। तुम्हारा काम तो जरूरत से ज्यादा पूरा हो गया है।

रवींद्रनाथ ने कहा कि रुको, आगे मत बढ़ो। मेरी हालत दूसरी ही है। मैं इधर परमात्मा से प्रार्थना किए जा रहा हूं कि अभी तो मैं अपना साज बिठा पाया था, अभी मैंने गीत गाया कहां! अभी तो मैं ठोंक—पीट करके अपना साज बिठा पाया था। और अब गाने का वक्त करीब आता था कि इस शरीर के विदा होने का वक्त करीब आ गया! ये छ: हजार गीत तो मेरी कोशिश हैं सिर्फ, उस गीत को

गाने के लिए, जो मैं गाना चाहता हूं। अभी उसे गा नहीं पाया हूं। और यह तो वक्त जाने का आ गया! वह गीत तो अनगाया रह गया है, जो मेरे भीतर उबलता रहा है। उसी को गाने के लिए ये छ: हजार मैंने प्रयास किए थे। ये सब असफल गए हैं। मैं सफल नहीं हो पाया। जो मैं कहना चाहता था, वह अभी भी अनकहा मेरे हृदय में दबा है।

असल में जितनी ही ऊंचाई की प्रतीति और अनुभूति होगी, शब्द उतने ही नीचे पड़ जाएंगे। बाजार की भाषा ऐसे रह जाती है, जैसे कोई आकाश में उड़ गया दूर, और बाजार की भाषा बहुत नीचे रह गई। अब उससे कोई संबंध नहीं जुड़ता।

और आकाश की कोई भाषा नहीं है। अभी तक तो नहीं है। कवि बडी कोशिश करते हैं, कभी—कभी कोई एक झलक ले आते हैं। संतों ने बड़ी कोशिश की है, और कभी—कभी कोई एक झलक शब्दों में उतार दी है। लेकिन सब झलकें अधूरी हैं। क्योंकि सब शब्द आदमी के हैं और अनुभूति परमात्मा की है। आदमी बहुत छोटा है और अनुभूति बहुत बड़ी है। इतना बड़ा हो जाता है अनुभव कि वाणी सार्थक नहीं रह जाती।

इसलिए रामकृष्ण बीच—बीच में रुक जाते थे। लेकिन वे भक्त थे; उनकी भाषा भक्त की है। जो मैंने कहा, ऐसा उत्तर वे नहीं देते। वे कहते कि मां ने रोक लिया। मां सत्य नहीं बोलने देती। बात यही है।

मां क्यों रोकेगी सत्य बोलने से? लेकिन रामकृष्ण तो सत्य और मां को एक ही मानते हैं। उनके लिए मां सत्य है, सत्य मां है। वह मां उनके लिए सत्य का साकार रूप है। तो वे कहते हैं, मां रोक लेती है। वे कभी—कभी बीच में रुक जाते थे। बहुत देर तक चुप रह जाते थे। फिर बात शुरू करते थे। वह कहीं और से शुरू होती थी। जहां से उन्होंने शुरू की थी, जहां टूट गई थी, बीच में अंतराल आ जाता था। इन अंतरालों का एक कारण और है।

रामकृष्ण अनेक बार बीच—बीच में समाधि में भी चले जाते थे। और कभी भी कोई ईश्वर—स्मरण आ जाए, तो उनकी समाधि लग जाती थी। कभी तो ऐसा होता कि रास्ते पर चले जा रहे हैं और

किसी ने किसी से जयरामजी कर ली, और वे खड़े हो गए, और आंख उनकी बंद हो गई। यह नाम सुनकर ही, राम का स्मरण सुनकर ही वे समाधि में चले गए। उनको सडक पर ले जाते वक्त भी ध्यान रखना पड़ता था। कोई मंदिर की घंटी बज रही है और धूप जल रही है, उनको सुगंध आ गई और घंटी की आवाज सुन ली, वे समाधि में चले गए।

तो कभी—कभी बोलते वक्त भी, जैसे ही वे करीब आते थे सत्य के कहने के, उसका स्मरण आते ही वे लीन हो जाते थे, इसलिए भी अंतराल हो जाता था।

अब हम सूत्र को लें।

तथा वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर— भीतर परिपूर्ण है और चर—अचर रूप भी वही है। और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय अर्थात जानने में नहीं आने वाला है। तथा अति समीप में और अति दूर में भी स्थित वही है। और वह विभागरहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर संपूर्ण भूतों में पृथक—पृथक के सदृश स्थित प्रतीत होता है। तथा वह जानने योग्य परमात्मा भूतों का धारण—पोषण करने वाला और संहार करने वाला तथा सब का उत्पन्न करने वाला है। और वह ज्योतियों की भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है। तथा वह बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सब के हृदय में स्थित है।

तीन महत्वपूर्ण बातें। पहली बात, परमात्मा के संबंध में जब भी कुछ कहना हो, तो भाषा में जो भी विरोध में खड़ी हुई दो अतियां हैं, एक्सट्रीम पोलेरिटीज हैं, उन दोनों को एक साथ जोड़ लेना जरूरी है। क्योंकि दोनों अतियां परमात्मा में समाविष्ट हैं। और जब भी हम एक अति के साथ परमात्मा का तादात्म्य करते हैं, तभी हम भूल कर जाते हैं और अधूरा परमात्मा हो जाता है। और हमारा परमात्मा के संबंध में जो वक्तव्य है, वह असत्य हो जाता है, वह पूरा नहीं होता।

मगर मनुष्य का मन ऐसा है कि वह एक अति को चुनना चाहता है। हम कहना चाहते हैं कि परमात्मा स्रष्टा है। तो दुनिया के सारे धर्म, सिर्फ हिंदुओं को छोड्कर, कहते हैं कि परमात्मा स्रष्टा है, क्रिएटर है। सिर्फ हिंदू अकेले हैं जमीन पर, जो कहते हैं, परमात्मा दोनों है, स्रष्टा भी और विनाशक भी, क्रिएटर और डिस्ट्रायर।

यह बहुत विचारणीय है और बहुत मूल्यवान है। क्योंकि परमात्मा स्रष्टा है, यह तो समझ में आ जाता है। लेकिन वही विनाशक भी है, वही विध्वंसक भी है, यह समझ में नहीं आता।

आपके बेटे को जन्म दिया, तब तो आप परमात्मा को धन्यवाद दे देते हैं कि परमात्मा ने बेटे को जन्म दिया। और आपका बेटा मर जाए, तो आपकी भी हिम्मत नहीं पड़ती कहने की कि परमात्मा ने बेटे को मार डाला। क्योंकि यह सोचते ही कि परमात्मा ने बेटे को मार डाला, ऐसा लगता है, यह भी कैसा परमात्मा, जो मारता है!

लेकिन ध्यान रहे, जो जन्म देता है, वही मारने वाला तत्व भी होगा। चाहे हमें कितना ही अप्रीतिकर लगता हो। हमारी प्रीति और अप्रीति का सवाल भी नहीं है। जो बनाता है, वही मिटाएगा भी। नहीं तो मिटाएगा कौन?

और अगर मिटने की क्रिया न हो, तो बनने की क्रिया बंद हो जाएगी। अगर जगत में मृत्यु बंद हो जाए, तो जन्म बंद हो जाएगा। आप यह मत सोचें कि जन्म जारी रहेगा और मृत्यु बंद हो सकती है। उधर मृत्यु बंद होगी, इधर जन्म बंद होगा। और अनुपात निरंतर वही रहेगा। उधर मृत्यु को रोकिएगा, इधर जन्म रुकना शुरू हो जाएगा।

इधर चिकित्सकों ने, चिकित्साशास्त्र ने मृत्यु को थोड़ा दूर हटा दिया है, बीमारी थोड़ी कम कर दी है, तो सारी दुनिया की सरकारें संतति—निरोध में लगी हैं। वह लगना ही पड़ेगा। उसका कोई उपाय ही नहीं है। और अगर सरकारें संतति—निरोध नहीं करेंगी, तो अकाल करेगा, भुखमरी करेगी, बीमारी करेगी। लेकिन जन्म और मृत्यु में एक अनुपात है। उधर आप मृत्यु को रोकिए, तो इधर जन्म को रोकना पड़ेगा।

अब इधर हिंदुस्तान में बहुत— से साधु—संन्यासी हैं, वे कहते हैं, संतति—निरोध नहीं होना चाहिए। उनको यह भी कहना चाहिए कि अस्पताल नहीं होने चाहिए। अस्पताल न हों, तो संतति—निरोध की कोई जरूरत नहीं है। इधर मौत को रोकने में सब राजी हैं कि रुकनी चाहिए। संत—महात्मा लोगों को समझाते हैं, अस्पताल खोलो; मौत को रोको। मौत को हटाओ, बीमारी कम करो। और वही संत—महात्मा लोगों को समझाते हैं कि बर्थ कंट्रोल मत करना। इससे तो बड़ा खतरा हो जाएगा। यह तो परमात्मा के खिलाफ है।

अगर बर्थ कंट्रोल परमात्मा के खिलाफ है, तो दवाई भी परमात्मा के खिलाफ है। क्योंकि परमात्मा बीमारी दे रहा है और तुम दवा कर रहे हो! परमात्मा मौत ला रहा है और तुम इलाज करवा रहे हो! तब सब चिकित्सा परमात्मा के विरोध में है। चिकित्सा बंद कर दो, संतति—निरोध की कोई जरूरत ही नहीं रहेगी। लोग अपने आप ही ठीक अनुपात में आ जाएंगे। इधर मौत रोकी, इधर जन्म रुकता है।

आप सोच लें, अगर किसी दिन विज्ञान ने यह तरकीब खोज निकाली कि आदमी को मरने की जरूरत नहीं, तो हमें सभी लोगों को बांझ कर. देना पड़ेगा, क्योंकि फिर पैदा होने की कोई जरूरत नहीं।

जन्म और मृत्यु एक ही धागे के दो छोर हैं। उनमें एक संतुलन है। यह सूत्र पहली बात यह कर रहा है कि परमात्मा दोनों अतियों का जोड़ है। सब भूतों के बाहर— भीतर परिपूर्ण है।

बहुत लोग हैं, जो मानते हैं, परमात्मा बाहर है। आम आदमी की धारणा यही होती है कि कहीं आकाश में परमात्मा बैठा है। एक बहुत बड़ी दाढ़ी वाला का आदमी, वह सारी दुनिया को सम्हाल रहा है सिंहासन पर बैठा हुआ! इससे बड़ा खतरा भी होता है कभी—कभी।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक कार्ल गुस्ताव कं ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मुझे बचपन में यह समझाया गया कि परमात्मा आकाश में बैठा हुआ है अपने सिंहासन पर और दुनिया का काम कर रहा है, तो उसने लिखा है कि मैं अपने बाप से कह तो नहीं सका, लेकिन मुझे सदा एक ही खयाल आता था कि वह अगर पेशाब, मल—मूत्र त्याग करता होगा, तो वह सब हम ही पर गिरता होगा। आखिर वह सिंहासन पर बैठा—बैठा कब तक बैठा रहता होगा; कभी तो मल—मूत्र त्याग करता होगा!

उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि .यह बात मेरे मन में बुरी तरह घूमने लगी। छोटा बच्चा ही था। किसी से कह तो सकता नहीं, क्योंकि किसी से कहूं तो वह पिटाई कर देगा कि यह भी क्या बात कर रहे हो, परमात्मा और मल—मूत्र! लेकिन जब परमात्मा सिंहासन पर बैठता है आदमियों की तरह, जैसे आदमी कुर्सियों पर बैठते हैं, और जब परमात्मा की दाढ़ी—मूंछ और सब आदमी की तरह है, तो फिर मल—मूत्र भी होना ही चाहिए। किसी से, जुग ने लिखा है, मैं कह तो नहीं सका, तो फिर मुझे सपना आने लगा। कि वह बैठा है अधर में और मल—मूत्र गिर रहा है!

आम आदमी की धारणा यही है कि वह कहीं आकाश में बैठा हुआ है बाहर। इसलिए आप मंदिर जाते हैं, क्योंकि परमात्मा बाहर है। यह एक अति है।

एक दूसरी अति है, जो मानते हैं कि परमात्मा भीतर है, बाहर का कोई सवाल नहीं। इसलिए न कोई मंदिर, न कोई तीर्थ; न बाहर कोई जाने की जरूरत। परमात्मा भीतर है।

यह सूत्र कहता है कि दोनों बातें अधूरी हैं। जो कहते हैं, परमात्मा भीतर है, वे भी आधी बात कहते हैं। और जो कहते हैं, परमात्मा बाहर है, वे भी आधी बात कहते हैं। और दोनों गलत हैं, क्योंकि अधूरा सत्य असत्य से भी बदतर होता है। क्योंकि वह सत्य जैसा भासता है और सत्य नहीं होता। परमात्मा बाहर और भीतर दोनों में है।

वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर— भीतर परिपूर्ण है।

क्योंकि बाहर— भीतर उसके ही दो खंड हैं। हमारे लिए जो बाहर है और हमारे लिए जो भीतर है, वह उसके लिए न तो बाहर है, न भीतर है। दोनों में वही है।

ऐसा समझें कि आपके कमरे के भीतर आकाश है और कमरे के बाहर भी आकाश है। आकाश बाहर है या भीतर? आपका मकान ही आकाश में बना है, तो आकाश आपके मकान के भीतर भी है और बाहर भी है। दीवालों की वजह से बाहर— भीतर का फासला पैदा हो रहा है। यह शरीर की दीवाल की वजह से बाहर— भीतर का फासला पैदा हो रहा है। वैसे बाहर—भीतर वह दोनों नहीं है; या दोनों है।

सूत्र कहता है, बाहर भीतर दोनों है परमात्मा। चर—अचर रूप भी वही है।

चर—अचर रूप भी वही है। जो बदलता है, वह भी वही है, जो नहीं बदलता, वह भी वही है।

यहां भी हम इसी तरह का द्वंद्व खड़ा करते हैं कि परमात्मा कभी नहीं बदलता और संसार सदा बदलता रहता है। लेकिन बदलाहट में भी वही है और गैर—बदलाहट में भी वही है। दोनों द्वंद्व को वह घेरे हुए है।

सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है, जानने में आने वाला नहीं है।

बहुत सूक्ष्म है। सूक्ष्मता दो तरह की है। एक तो कोई चीज बहुत सूक्ष्म हो, तो समझ में नहीं आती। या कोई चीज बहुत विराट हो, तो समझ में नहीं आती। न तो यह अनंत विस्तार समझ में आता है और न सूक्ष्म समझ में आता है। दो चीजें छूट जाती हैं।

दो छोर हैं, विराट और सूक्ष्म। सूक्ष्म को कहना चाहिए, शून्य जैसा सूक्ष्म। एक से भी नीचे, जहां शून्य है। दो तरह के शून्य हैं। एक से भी नीचे उतर जाएं, तो एक शून्य है। और अनंत का (रक शून्य है। ये दोनों समझ में नहीं आते। परमात्मा दोनों अर्थों में सूक्ष्म है। विराट के अर्थों में भी, शून्य के अर्थों में भी। और इसलिए अविज्ञेय है। समझ में आने जैसा नहीं है।

पर यह तो बड़ी कठिन बात हो गई। अगर परमात्मा समझ में आने जैसा ही नहीं है, तो समझाने की इतनी कोशिश! सारे शास्त्र, सारे ऋषि एक ही काम में लगे हैं कि परमात्मा को समझाओ। और वह समझ में आने योग्य नहीं है। फिर यह समझाने से क्या सार होगा! समझ में आने योग्य नहीं है, इसका यह मतलब आप मत समझना कि वह अनुभव में आने योग्य नहीं है। समझ में तो नहीं आएगा, लेकिन अनुभव में आ सकता है।

जैसे अगर मैं आपको समझाने बैठूं नमक का स्वाद, तो समझा नहीं सकता। परमात्मा तो बहुत दूर है, नमक का स्वाद भी नहीं समझा सकता। और अगर आपने कभी नमक नहीं चखा है, तो मैं लाख सिर पटकू और सारे शास्त्र इकट्ठे कर लूं और दुनियाभर के वितान की चर्चा आपसे करूं, तो भी आखिर में आप पूछेंगे कि आपकी बातें तो सब समझ में आईं, लेकिन यह नमकीन क्या है? उसका उपाय एक ही है कि एक नमक का टुकड़ा आपकी जीभ पर रखा जाए। शास्त्र—वास्त्र की कोई जरूरत नहीं है। जो समझ में आने वाला नहीं है, वह भी अनुभव में आने वाला हो जाएगा। और आप कहेंगे कि आ गया अनुभव में—स्वाद।

परमात्मा का स्वाद आ सकता है। इसलिए कोई प्रत्यय के ढंग से, कंसेप्ट की तरह समझाए, कोई सार नहीं होता। इसीलिए तो हम परमात्मा के लिए कोई स्कूल नहीं खोल पाते, कोई पाठशाला नहीं बना पाते। या बनाते हैं तो उससे कोई सार नहीं होता।

कितनी ही धर्म की शिक्षा दो, कोई धर्म नहीं होता। सीख—साख कर आदमी वैसे का ही वैसा कोरा लौट जाता है। और कई दफे तो और भी ज्यादा चालाक होकर लौट जाता है, जितना वह पहले नहीं था। क्योंकि अब वह बातें बनाने लगता है। अब वह अच्छी बातें करने लगता है। वह धर्म की चर्चा करने लगता है। और स्वाद उसे बिलकुल नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है, समझ में आने वाला नहीं है। अति समीप है और अति दूर भी है।

पास है बहुत, इतना पास, जितना कि आप भी अपने पास नहीं हैं। असल में पास कहना ठीक ही नहीं है, क्योंकि आप ही वही हैं। और दूर इतना है, जितने दूर की हम कल्पना कर सकें। अगर संसार की कोई भी सीमा हो, विश्व की, तो उस सीमा से भी आगे। कोई सीमा है नहीं, इसलिए अति दूर और अति निकट। ये दो अतियां हैं, जिन्हें जोड्ने की कृष्ण कोशिश कर रहे हैं।

विभागरहित, उसका कोई विभाजन नहीं हो सकता। और सभी विभागों में वही मौजूद है। तथा वह जानने योग्य परमात्मा भूतों का धारण—पोषण करने वाला और संहार करने वाला और उत्पन्न करने वाला, सभी वही है।

वही बनाता है, वही सम्हालता है, वही मिटाता है। यह धारणा बड़ी अदभुत है। और एक बार यह खयाल में आ जाए, वही बनाता है, वही सम्हालता है, वही मिटाता है, तो हमारी सारी चिंता समाप्त हो जाती है।

यह एक सूत्र आपको निश्चित कर देने के लिए काफी है। यह एक सूत्र आपको सारे संताप से मुक्त कर देने के लिए काफी है। क्योंकि फिर आपके हाथ में कुछ नहीं रह जाता। न आपको परेशान होने का कोई कारण रह जाता है। और न आपको शिकायत की कोई जरूरत रह जाती है। और न आपको कहने की जरूरत रह जाती है कि ऐसा क्यों है? बीमारी क्यों है? बुढ़ापा क्यों है? मौत क्यों है? कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं रह जाती। आप जानते हैं कि वही एक तरफ से बनाता है और दूसरी तरफ से मिटाता है। और वही बीच में सम्हालता भी है।

इसलिए हमने परमात्मा का त्रिमूर्ति की तरह प्रतीक निर्मित किया है। उसमें तीन मूर्तियां, तीन तरह के परमात्मा की धारणा की है। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, वह हमने तीन धारणा की हैं। ब्रह्मा सर्जक है, स्रष्टा है। विष्णु सम्हालने वाला है। शिव विनष्ट कर देने वाला है। लेकिन त्रिमूर्ति का अर्थ तीन परमात्मा नहीं है। वे केवल तीन चेहरे हैं। मूर्ति तो एक है। वह अस्तित्व तो एक है, लेकिन उसके ये तीन ढंग हैं।

और वही ज्योतियों की ज्योति, माया से अति परे कहा जाता है। तथा वह परमात्मा बोधस्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में स्थित है।

अविज्ञेय है, समझ में न आने वाला है, और फिर भी जानने योग्य वही है। ये बातें उलझन में डालती हैं। और लगता है कि एक—दूसरे का विरोध है। विरोध नहीं है। समझ में तो वह नहीं आएगा, अगर आपने समझदारी बरती। अगर आपने कोशिश की कि बुद्धि से समझ लेंगे, तर्क लगाएंगे, गणित बिठाएंगे, आर्ग्यू करेंगे, प्रमाण जुटाएंगे, तो वह आपकी समझ में नहीं आएगा। क्योंकि सभी प्रमाण आपके हैं, आपसे बड़े नहीं हो सकते। सभी तर्क आपके हैं, आपके अनुभव से ज्यादा की उनसे कोई उपलब्धि नहीं हो सकती। और सभी तर्क बांझ हैं, उनसे कोई अनुभव नहीं मिल सकता।

लेकिन जानने योग्य वही है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि जानने की कोई और कीमिया, कोई और प्रक्रिया हमें खोजनी पड़ेगी। बुद्धि उसे जानने में सहयोगी न होगी। क्या बुद्धि को छोड़कर भी जानने का कोई उपाय है? क्या कभी आपने कोई चीज जानी है, जो बुद्धि को छोड़कर जानी हो?

अगर आपके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव हो, तो शायद थोड़ा—सा खयाल आ जाए। प्रेम के अनुभव में आप बुद्धि से नहीं जानते, कोई और ढंग है जानने का, कोई हार्दिक ढंग है जानने का।

मां अपने बेटे को बुद्धि के ढंग से नहीं जानती। सोचती नहीं उसके बाबत; जानती है। हृदय की धड़कन से जुड़कर जानती है। वह उसे पहचानती है। वह पहचान कुछ और मार्ग से होती है। वह मार्ग सीधा—सीधा खोपड़ी से नहीं जुड़ा हुआ है। वह शायद हृदय की धड़कन से और भाव, अनुभूति से जुड़ा हुआ है।

परमात्मा को जानने के लिए बुद्धि उपकरण नहीं है। बुद्धि को रख देना एक तरफ मार्ग है। इसलिए सारी साधनाएं बुद्धि को हटा देने की साधनाएं हैं। और बुद्धि को जो एक तरफ उतारकर रख दे, जैसे स्नान करते वक्त किसी ने कपड़े उतारकर रख दिए हों, ऐसा प्रार्थना और ध्यान करते वक्त कोई बुद्धि को उतारकर रख दे, बिलकुल निर्बुद्धि हो जाए, बिलकुल बच्चे जैसा हो जाए, बाल—बुद्धि हो जाए, जिसे कुछ बचा ही नहीं, सोच—समझ की कोई बात ही न रही, तो तत्क्षण संबंध जुड़ जाता है।

क्यों ऐसा होता होगा? ऐसा इसलिए होता है कि बुद्धि तो बहुत संकीर्ण है। बुद्धि का उपयोग है संसार में। जहां संकीर्ण की हम खोज कर रहे हैं, क्षुद्र की खोज कर रहे हैं, वहा बुद्धि का उपयोग है। लेकिन जैसे ही हम विराट की तरफ

जाते हैं, वैसे ही बुद्धि बहुत संकीर्ण रास्ता हो जाती है। उस रास्ते से प्रवेश नहीं किया जा सकता है। उसको हटा देना, उसे उतार देना।

संतों ने न मालूम कितनी तरकीबों से एक ही बात सिखाई है कि कैसे आप अपनी बुद्धि से मुक्त हों। इसलिए बड़ी खतरनाक भी है। क्योंकि हमें तो लगता है कि बुद्धि को बचाकर कुछ करना है, बुद्धि साथ लेकर कुछ करना है, सोच—विचार अपना कायम रखना है। कहीं कोई हमें धोखा न दे जाए। कहीं ऐसा न हो कि हम बुद्धि को उतारकर रखें, और इसी बीच कुछ गड़बड़ हो जाए। और हम कुछ भी न कर पाएंगे।

तो बुद्धि को हम हमेशा पकड़े रहते हैं, क्योंकि बुद्धि से हमें लगता है, हमारा कंट्रोल है, हमारा नियंत्रण है। बुद्धि के हटते ही नियंत्रण खो जाता है। और हम सहज प्रकृति के हिस्से हो जाते हैं। इसलिए खतरा है और डर है। इस डर में थोड़ा कारण है। वह खयाल में ले लेना जरूरी है।

अगर आपको क्रोध आता है, तो बुद्धि एक तरफ हो जाती है। जब क्रोध चला जाता है, तब बुद्धि वापस आती है। और तब आप पछताते हैं। जब कामवासना पकड़ती है, तो बुद्धि एक तरफ हो जाती है। और जब काम कृत्य पूरा हो जाता है, तब आप उदास और दुखी और चिंतित हो जाते हैं कि फिर वही भूल की। कितनी बार सोचा कि नहीं करें, फिर वही किया। फिर बुद्धि आ गई।

एक बात खयाल रखें, प्रकृति भी तभी काम करती है, जब बुद्धि बीच में नहीं होती। आपके भीतर जो निम्न है, वह भी तभी काम करता है, जब बुद्धि नहीं होती। अगर आप बुद्धि को सजग रखें, तो आप क्रोध भी नहीं कर पाएंगे और कामवासना में भी नहीं उतर पाएंगे।

अगर दुनिया बिलकुल बुद्धिमान हो जाए तो संतान पैदा होनी बंद हो जाएगी, संसार उसी वक्त बंद हो जाएगा। क्योंकि नीचे की प्रकृति की भी सक्रियता तभी हो सकती है, जब आप बुद्धि का नियंत्रण छोड़ दें। क्योंकि प्रकृति तभी आपके भीतर काम कर पाती है, जब आपकी बुद्धि बीच में बाधा नहीं डालती।

वह जो श्रेष्ठ प्रकृति है, जिसको हम परमात्मा कहते हैं, वह भी तभी काम करता है, जब आपकी बुद्धि नहीं होती। पर इसमें एक खतरा है, जो समझ लेने जैसा है। वह यह कि चूंकि हम नीचे की प्रकृति से डरे हुए हैं, इसलिए बुद्धि के नियंत्रण को हम हमेशा कायम रखते हैं। हम डरे हुए हैं। अगर बुद्धि को छोड़ दें, तो क्रोध, हिंसा, कुछ भी हो जाए। अगर बुद्धि को हम छोड़ दें, तो हमारे भीतर की वासनाएं स्वच्छंद हो जाएं, तो हम तो अभी पागल की तरह न मालूम क्या कर गुजरें।

कितनी बार हत्या करने की सोची है बात! लेकिन बुद्धि ने कहा, यह क्या कर रहे हो? पाप है। जन्मों—जन्मों तक भटकोगे, नरक में जाओगे। और न भी गए नरक में, तो अदालत है, कोर्ट है, पुलिस है। और कहीं भी न गए, तो खुद की कासिएंस है, अंतःकरण है, वह कचोटेगा सदा, कि तुमने हत्या की। फिर क्या मुंह दिखाओगे? कैसे चलोगे रास्ते पर? कैसे उठोगे? तो बुद्धि ने रोक लिया है।

अगर आज कोई कहे कि बुद्धि का नियंत्रण छोड़ दो, तो पहला खयाल यही आएगा, अगर नियंत्रण छोड़ा कि उठाई तलवार और किसी की हत्या कर दी। क्योंकि वह तैयार बैठा है भाव भीतर। नीचे की प्रकृति के डर के कारण हम बुद्धि को नहीं छोड़ पाते। और हमें ऊपर की प्रकृति का कोई पता नहीं है। क्योंकि वह भी बुद्धि के छोड़ने पर ही काम करती है।

इसे हम ऐसा भी समझें। अगर कोई आदमी बीमार हो, तो चिकित्सक पहली फिक्र करते हैं कि उसको नींद ठीक से आ जाए। क्योंकि वह जगा रहता है, तो शरीर की प्रकृति को काम नहीं करने देता, बाधा डालता रहता है। नींद आ जाए, तो शरीर अपना काम पूरा कर ले, प्रकृति उसके शरीर को ठीक कर दे, उसके घाव भर दे; उसकी बीमारी को दूर कर।

इसलिए चिकित्सक की पहली चिंता होती है कि मरीज सो जाए। बाकी काम दूसरा है, नंबर दो पर है। दवा वगैरह नंबर दो पर है। पहला काम है कि मरीज सो जाए। क्यों इतनी चिंता है? क्योंकि मरीज की बुद्धि दिक्कत दे रही है। सो जाए, तो प्रकृति काम कर सके।

आप भी जब सोते हैं, तभी आपका शरीर स्वस्थ हो पाता है। दिनभर में आप उसको अस्वस्थ कर लेते हैं।

आपको पता है, बच्चा जब पैदा होता है तो बाईस घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है। और मां के पेट में नौ महीने चौबीस घंटे सोता है। फिर जैसे—जैसे उम्र बड़ी होने लगती है, नींद कम होने लगती है। फिर का और कम सोता है। फिर बुढ़ापे में कोई आदमी दो ही घंटे, तीन घंटे ही सो ले, तो बहुत।

के बहुत परेशान होते हैं। सत्तर साल के बूढ़े भी मेरे पास आ जाते हैं। वे कहते हैं, कुछ नींद का रास्ता बताइए।

नींद की आपको जरूरत नहीं रही है अब। जैसे—जैसे शरीर मरने के करीब पहुंचता है, प्रकृति शरीर में काम करना कम कर देती है। उसकी जरूरत नहीं है। बनाने का काम बंद हो जाता है।

बच्चा चौबीस घंटे सोता है, क्योंकि प्रकृति को बनाने का काम करना है। अगर बच्चा जग जाए, तो बाधा डालेगा। उसकी बुद्धि बीच में आ जाएगी। वह कहेगा, टांग जरा लंबी होती, जो अच्छा था। नाक जरा ऐसी होती, तो अच्छा था। आंख जरा और बड़ी होती, तो मजा आ जाता। वह गडबड़ डालना शुरू कर देगा।

तो नौ महीने प्रकृति उसको एक दफे भी होश नहीं देती। बेहोश, प्रकृति अपना काम करती है। जैसे ही बच्चा पूरा हो जाता है, बाहर आ जाता है। लेकिन तब भी बाईस घंटे सोता है। अभी बहुत काम होना है। अभी उसकी पूरी जिंदगी की तैयारी होनी है।

जैसे ही बच्चे के शरीर का काम पूरा हो जाता है, वैसे ही नींद एक जगह आकर रुक जाती है—छ घंटा, सात घंटा, आठ घंटा। काम प्रकृति का पूरा हो गया। अब ये आठ घंटे तो रोज के काम के लिए हैं। रोज में आप शरीर को जितना तोड़ लेंगे, उतना प्रकृति रात में पूरा कर देगी। दूसरे दिन आप सुबह ताजा होकर काम में लग जाएंगे। का तो अब मरने के करीब है, उसको तीन घंटा भी जरूरत से ज्यादा है। क्योंकि अब प्रकृति कुछ बना नहीं रही है, सिर्फ तोड़ रही है। इसलिए नींद कम होती जा रही है।

प्रकृति भी काम करती है, जब आप बुद्धि से बीच में बाधा नहीं डालते। यह मैं इसलिए उदाहरण दे रहा हूं कि जो नीचे की प्रकृति के संबंध में सच है, वही ऊपर की प्रकृति के संबंध में भी सच है। जब आप परमात्मा को भी बाधा नहीं डालते और बुद्धि को हटा लेते हैं, तब वह भी काम करता है। लेकिन नीचे के भय के कारण हम ऊपर से भी भयभीत होते हैं। नीचे के डर के कारण, हम ऊपर की तरफ भी नहीं खुलते।

इसलिए मेरा कहना है कि प्रकृति को भी परमात्मा का बाह्य रूप समझें। उससे भी भयभीत न हों। उससे भी भयभीत न हों, उसमें भी उतरें। उससे भी डरें मत। उससे भी भागें मत। उसको भी घटने दें। उसमें भी बाधा मत डालें और नियंत्रण मत बनाएं। बिना बाधा डाले, बिना नियंत्रण बनाए, होश को कायम रखें। वह अलग बात है। फिर वह बुद्धि नहीं है।

बुद्धि का अर्थ है, बाधा डालना, नियंत्रण करना। ऐसा न हो, ऐसा हो। उपाय करना। होश का अर्थ है, साक्षी होना। हम कोई बाधा न डालेंगे। अगर क्रोध आ रहा है, तो हम क्रोध के भी साक्षी हो जाएंगे। और कामवासना आ रही है, तो हम कामवासना के भी साक्षी हो जाएंगे। हम देखेंगे, हम बीच में कुछ निर्णय न करेंगे कि अच्छा है, कि बुरा है, होना चाहिए, कि नहीं होना चाहिए; मैं रोकू? कि न रोकूं; करूं, कि न करूं, हम कुछ भी निर्णय न लेंगे। हम सिर्फ शांत देखेंगे, जैसे दूर खड़ा हुआ कोई आदमी चलते हुए रास्ते को देख रहा हो। आकाश में पक्षी उड रहे हों और आप देख रहे हों, ऐसा हम देखेंगे।

नीचे की प्रकृति को भी दर्शन करना सीखें, तो बुद्धि हटेगी और साक्षी जगेगा। और जब नीचे का भय न रह जाएगा, तो आप ऊपर की तरफ भी बुद्धि को हटाकर रख सकेंगे। क्योंकि आपको भरोसा आ जाएगा कि बुद्धि को ढोने की कोई भी जरूरत नहीं है। और जैसे ही बुद्धि हटती है, परमात्मा शांत होना शुरू हो जाता है।

वह अविज्ञेय है बुद्धि से। लेकिन बुद्धि के हटते ही प्रज्ञा से, साक्षी भाव से वही ज्ञान योग्य है, वही जानने योग्य है, वही अनुभव योग्य है।

आखिरी बात इस संबंध में खयाल ले लें, क्योंकि साक्षी का सूत्र बहुत मूल्यवान है। और अगर आप साक्षी के सूत्र को ठीक से समझ लें, तो परमात्मा का कोई भी रहस्य आपसे अनजाना न रह जाएगा। और इस साक्षी के सूत्र को समझने के लिए छोटा—छोटा प्रयोग करें। कुछ भी छोटा—मोटा काम कर रहे हों, तो कर्ता बनकर मत करें, साक्षी बनकर करें, ताकि थोड़ा अनुभव होने लगे कि देखने वाले का अनुभव क्या है।

भोजन कर रहे हैं। साक्षी हो जाएं। अचानक खयाल आए, एक गहरी श्वास लें और देखने लगें कि आप देख रहे हैं अपने शरीर को भोजन करते हुए। पहले थोड़ी अड़चन होगी, थोड़ा—सा विचित्र मालूम पड़ेगा, क्योंकि दो की जगह तीन आदमी हो गए। अभी भोजन था, करने वाला था, भूख थी, करने वाला था। अब एक यह तीसरा और आ गया, देखने वाला।

यह देखने वाले की वजह से थोड़ी कठिनाई होगी। एक तो भोजन करना धीमा हो जाएगा। आप ज्यादा चबाके, आहिस्ता उठाएंगे। क्योंकि यह देखने वाले की वजह से क्रियाओं में जो विक्षिप्तता है, वह कम हो जाती है। शायद इसीलिए हम देखने वाले को बीच में नहीं लाते, क्योंकि जल्दी ही डालकर भागना है। किसी तरह अंदर कर देना है भोजन को और निकल पड़ना है।

अगर आप चलेंगे भी होशपूर्वक, तो आप पाएंगे, आपकी गति धीमी हो गई।

बुद्ध चलते हैं। उनके चलने की गति ऐसी शांत है, जैसे कोई परदे पर फिल्म को बहुत धीमी स्पीड में चला रहा हो; बहुत आहिस्ता है। बुद्ध से कोई पूछता है कि आप इतने धीमे क्यों चलते हैं? तो बुद्ध ने कहा कि उलटी बात है। तुम मुझ से पूछते हो कि मैं इतना धीमा क्यों चलता हूं! मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम पागल की तरह क्यों चलते हो? यह इतना ज्वर, इतना बुखार चलने में क्यों है? चलने में इतनी विक्षिप्तता क्यों है? मैं तो होश से चलता हूं तो सब कुछ धीमा हो जाता है।

ध्यान रहे, जितना होश होगा, उतनी आपकी क्रिया धीमी हो जाएगी। और जितना कर्ता शून्य होगा, उतना क्रियाओं में से उन्माद, ज्वर चला जाएगा; क्रियाएं शांत हो जाएंगी।

और ध्यान रहे, शांत क्रियाओं से पाप नहीं किया जा सकता। अगर आप किसी की हत्या करने जा रहे हैं और धीमे—धीमे जा रहे हैं, तो पक्का समझिए, हत्या—वत्या नहीं होने वाली है। अगर आप किसी का सिर तोड्ने को खड़े हो गए हैं और बड़े आहिस्ता से तलवार उठा रहे हों, तो इसके पहले कि तलवार उसके सिर में जाए, म्यान में वापस चली जाएगी।

उतने धीमे पाप होता ही नहीं। पाप के लिए ज्वर, त्वरा, तेजी चाहिए। और जो आदमी तेजी से जी रहा है, वह चाहे पाप कर रहा हो, न कर रहा हो, उससे बहुत पाप अनजाने होते रहते हैं। उसकी तेजी से ही होते रहते हैं। उसके ज्वर से ही हो जाते हैं। ज्वर ही पाप है।

बुद्ध कहते हैं, जैसे ही होश से करोगे, सब धीमा हो जाएगा। रास्ते पर चलते वक्त अचानक खयाल कर लें; एक गहरी श्वास लें, ताकि खयाल साफ हो जाए और धीमे से देखें कि आप चल रहे हैं।

खाली बैठे हैं; आंख बंद कर लें और देखें कि आप बैठे हुए हैं। आंख बंद करके बराबर आप देख सकते हैं कि आपकी मूर्ति बैठी हुई है। एक पैर की तरफ से देखना शुरू करें कि पैर की क्या हालत है। दब गया है। परेशान हो रहा है। चींटी काट रही है। ऊपर की तरफ बढ़े। पूरे शरीर को देखें कि आप देख रहे हैं। आप देखते—देखते ही बड़ी गहरी शांति में उतर जाएंगे, क्योंकि देखने में आदमी साक्षी हो जाता है।

रात बिस्तर पर लेट गए हैं। सोने के पहले एक पांच मिनट आंख बंद करके पूरे शरीर को भीतर से देख लें।

शायद आपको पता हो या न हो, पश्चिम तो अभी एनाटॉमी की खोज कर पाया है कि आदमी के शरीर में क्या—क्या है। क्योंकि उन्होंने सर्जरी शुरू की, आदमी को काटना शुरू किया। यह कोई तीन सौ साल में ही आदमी को काटना संभव हो पाया, क्योंकि दुनिया का कोई धर्म लाश को काटने के पक्ष में नहीं था। तो पहले सर्जन जो थे, वे चोर थे। उन्होंने लाशें चुराई मुरदाघरों से, काटा, आदमी को भीतर से देखा। लेकिन योग हजारों साल से भीतर आदमी के संबंध में बहुत कुछ जानता है।

अब ये पश्चिम के सर्जन कहते हैं कि पूरब में योग को कैसे पता चला आदमी के भीतर की चीजों का? वह पता काटकर नहीं चला है। वह योगी के साक्षी भाव से चला है।

अगर आप भीतर साक्षी भाव से प्रवेश करें और घूमने लगें, तो थोड़े दिन में आप अपने शरीर को भीतर से देखने में समर्थ हो जाएंगे। आप भीतर का हड्डी, मास—मज्जा, स्नायु—जाल सब भीतर से देखने लगेंगे। और एक बार आपको भीतर से शरीर दिखाई पड़ने लगे, कि आप शरीर से अलग हो गए। क्योंकि जिसने भीतर से शरीर को देख लिया, वह अब यह नहीं मान सकता कि मैं शरीर हूं। वह देखने वाला हो गया, वह द्रष्टा हो गया।

चौबीस घंटे में जब भी आपको मौका मिल जाए, कोई भी क्रिया में, साक्षी को सम्हाले। साक्षी के सम्हालते दो परिणाम होंगे। क्रिया धीमी हो जाएगी, कर्ता क्षीण हो जाएगा; और विचार और बुद्धि कम होने लगेंगे, विचार शांत होने लगें। बुद्धि का ऊहापोह बंद हो जाएगा।

कोई छोटा—सा प्रयोग। कुछ नहीं कर रहे हैं; श्वास को ही देखें। श्वास भीतर गई, बाहर गई। श्वास भीतर गई, बाहर गई। आप उसको ही देखें

लोग मुझसे पूछते हैं, कोई मंत्र दे दें। मैं उनसे कहता हूं मंत्र वगैरह न लें। एक मंत्र परमात्मा ने दिया है, वह श्वास है। उसको देखें। श्वास पहला मंत्र है। बच्चा पैदा होते ही पहला काम करता है श्वास लेने का। और आदमी जब मरता है, तो आखिरी काम करता है श्वास छोड़ने का। श्वास से घिरा है जीवन।

जन्म के बाद पहला काम श्वास है; वह पहला कृत्य है। आप श्वास लेकर ही कर्ता हुए हैं। इसलिए अगर आप श्वास को देख सकें, तो आप पहले कृत्य के पहले पहुंच जाएंगे। आपको उस जीवन का पता चलेगा, जो श्वास लेने के भी पहले था, जो जन्म के पहले था।

अगर आप श्वास को देखने में समर्थ हो जाएं, तो आपको पता चल जाएगा कि मृत्यु शरीर की होगी, श्वास की होगी, आपकी नहीं होने वाली। आप श्वास से अलग हैं।

बुद्ध ने बहुत जोर दिया है अनापानसती—योग पर, श्वास के आने—जाने को देखने का योग। वे अपने भिक्षुओं को कहते थे, तुम कुछ भी मत करो, बस एक ही मंत्र है, श्वास भीतर गई, इसको देखो; श्वास बाहर गई, इसको देखो। और जोर से मत लेना। कुछ करना मत श्वास को, सिर्फ देखना। करने का काम ही मत करना। सिर्फ देखना।

आंख बंद कर ली, श्वास ने नाक को स्पर्श किया, भीतर गई, भीतर गई। भीतर पेट तक जाकर उसने स्पर्श किया। पेट ऊपर उठ गया। फिर श्वास वापस लौटने लगी। पेट नीचे गिर गया। श्वास वापस आई। श्वास बाहर निकल गई। फिर नई श्वास शुरू हो गई। यह वर्तुल है। इसे देखते रहना।

अगर आप रोज पंद्रह—बीस मिनट सिर्फ श्वास को ही देखते रहें, तो आप चकित हो जाएंगे, बुद्धि हटने लगी। साक्षी जगने लगा। आंख खुलने लगी भीतर की। हृदय के द्वार, जो बंद थे जन्मों से, खुलने लगे, सरकने लगे। उस सरकते द्वार में ही परमात्मा की पहली झलक उपलब्ध होती है।

साक्षी द्वार है; बुद्धि बाधा है।

गीता दर्शन–भाग–6
पुरूष—प्रकृति—लीला—(प्रवचन—सातवां)
अध्याय—13

सूत्र—

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्यावायोपपद्यते।। 18 ।।
प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। 19 ।।

कार्यकरणकर्तृन्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुखानां भोक्तृत्वे हैतुरूच्यते।। 20 ।।
हे अर्जुन, इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान अर्थात ज्ञान का साधन और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से कहा गया, इसको तत्व से जानकर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

और हे अर्जुन, कृति अर्थात त्रिगुणमयी मेरी माया और पुरुष अर्थात क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान और रागद्वेषदि विकारों को तथा त्रिगुणास्थ्य संपूर्ण यदार्थो को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान।

क्योंकि कार्य और करण के उत्पन्न करने में प्रकृति हेतु कही जाती है और पुरुष सुख— दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि व्यक्ति का ढांचा, उसका व्यक्तित्व जानने के लिए गुरु का उपयोग होता रहा है। पर क्या हम किसी के सम्मोहन में, हिप्नोसिस में अपना टाइप, अपना ढांचा नहीं जान सकते? क्या सम्मोहन का प्रयोग साधना के लिए खतरनाक भी हो सकता है?
सम्मोहन एक बहुत पुरानी प्रक्रिया है। लाभप्रद भी है, खतरनाक भी। असल में जिस चीज से भी लाभ पहुंच सकता हो, उससे खतरा भी हो सकता है। खतरा होता ही उससे है, जिससे लाभ हो सकता हो। जिसमें लाभ की शक्ति है, उसमें नुकसान की शक्ति भी होती है।

तो सम्मोहन कोई होमियोपैथिक दवा नहीं है कि जिससे सिर्फ लाभ ही पहुंचता हो और नुकसान न होता हो।

सम्मोहन के संबंध में बड़ी भ्रांतिया हैं। लेकिन पश्चिम में तो भ्रांतियां टूटती जा रही हैं। पूरब में भ्रातियों का बहुत जोर है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि पूरब ही सम्मोहन का पहला खोजी है। लेकिन हम उसे दूसरा नाम देते थे। हमने उसे योग—तंद्रा कहा है। नाम हमारा बढ़िया है। नाम सुनते ही अंतर पड़ जाता है।

हिप्नोसिस का मतलब भी तंद्रा है। वह भी ग्रीक शब्द हिप्नोस से बना है, जिसका अर्थ नींद होता है।

दो तरह की नींद संभव है। एक तो नींद, जब आपका शरीर थक जाता है, रात आप सो जाते हैं। वह प्राकृतिक है। दूसरी नींद है, जो चेष्टा करके आप में लाई जा सकती है, इनडघूस्त स्लीप। योग—तंद्रा या सम्मोहन या हिप्नोसिस वही दूसरी तरह की नींद है। रात जब आप सोते हैं, तब आपका चेतन मन धीरे—धीरे, धीरे— धीरे शात हो जाता है। और अचेतन मन सक्रिय हो जाता है। आपके मन की गहरी परतों में आप उतर जाते हैं। सम्मोहन में भी चेष्टापूर्वक यही प्रयोग किया जाता है कि आपके मन की ऊपर की पर्त, जो रोज सक्रिय रहती है, उसे सुला दिया जाता है। और आपके भीतर का मन सक्रिय हो जाता है।

भीतर का मन ज्यादा सत्य है। क्योंकि भीतर के मन को समाज विकृत नहीं कर पाया है। भीतर का मन ज्यादा प्रामाणिक है। क्योंकि भीतर का मन अभी भी प्रकृति के अनुसार चलता है। भीतर के मन में कोई पाखंड, कोई धोखा, भीतर के मन में कोई संदेह, कोई शक—सुबहा कुछ भी नहीं है। भीतर का मन एकदम निर्दोष है। जैसे पहले दिन पैदा हुए बच्चे का जैसा निर्दोष मन होता है, वैसा निर्दोष मन भीतर है। धूल तो ऊपर—ऊपर जम गई है। मन के बाहर की परतों पर कचरा इकट्ठा हो गया है। भीतर जैसे हम प्रवेश करते हैं, वैसा शुद्ध मन उपलब्ध होता है।

इस शुद्ध मन को हिप्नोसिस के द्वारा संबंधित, हिप्नोसिस के द्वारा इस शुद्ध मन से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। स्वभावत:, लाभ भी हो सकता है, खतरा भी।

अगर कोई खतरा पहुंचाना चाहे, तो भी पहुंचा सकता है। क्योंकि वह भीतर का मन संदेह नहीं करता है। उससे जो भी कहा जाता है, वह मान लेता है। वह परम श्रद्धावान है।

अगर एक पुरुष को सम्मोहित करके कहा जाए कि तुम पुरुष नहीं, स्त्री हो, तो वह स्वीकार कर लेता है कि मैं स्त्री हूं। उससे कहा जाए कि अब तुम उठकर चलो, तुम स्त्री की भांति चलोगे। तो वह पुरुष, जो कभी स्त्री की भांति नहीं चला, स्त्री की भांति चलने लगेगा। उस पुरुष को कहा जाए कि तुम्हारे सामने यह गाय खड़ी है—और वहा कोई भी नहीं खडा है—अब तुम दूध लगाना शुरू करो, तो वह बैठकर दूध लगाना शुरू कर देगा।

वह जो अचेतन मन है, वह परम श्रद्धावान है। उससे जो कहा जाए, वह उस पर प्रश्न नहीं उठाता। वह उसे स्वीकार कर लेता है। यही श्रद्धा का अर्थ है। वह यह नहीं कहता कि कहां है गाय? वह यह नहीं कहता कि मैं पुरुष हूं स्त्री नहीं हूं। वह संदेह करना जानता ही नहीं। संदेह तो मन की ऊपर की पर्त, जो तर्क सीख गई है, वही करती है।

इसका लाभ भी हो सकता है, इसका खतरा भी है। क्योंकि उस परम श्रद्धालु मन को कुछ ऐसी बात भी समझाई जा सकती है, जो व्यक्ति के अहित में हो, जो उसको नुकसान पहुंचाए। मृत्यु तक घटित हो सकती है। सम्मोहित व्यक्ति को अगर भरोसा दिला दिया जाए कि तुम मर रहे हो, तो वह भरोसा कर लेता है कि मैं मर रहा हूं।

उन्नीस सौ बावन में अमेरिका में एटी—हिप्नोटिक एक्ट बनाया गया। यह पहला कानून है हिप्नोसिस के खिलाफ दुनिया में कहीं भी बना। क्योंकि चार लड़के विश्वविद्यालय के एक छात्रावास में सम्मोहन की किताब पढ़कर प्रयोग कर रहे थे। और उन्होंने एक लड़के को, जिसको बेहोश किया था, भरोसा दिला दिया कि तू मर गया है। वे सिर्फ मजाक कर रहे थे। लेकिन वह लड़का सच में ही मर गया। वह हृदय में इतने गहरी बात पहुंच गई—वहा कोई संदेह नहीं है—मृत्यु हो गई, तो मृत्यु को स्वीकार कर लिया। शरीर और आत्मा का संबंध तत्क्षण छूट गया। तो हिप्नोसिस के खिलाफ एक कानून बनाना पड़ा।

अगर मृत्यु तक पर भरोसा हो सकता है, तो फिर किसी भी चीज पर भरोसा हो सकता है।

तो सम्मोहन का लाभ भी उठाया जा सकता है। पश्चिम में बहुत बड़ा सम्मोहक था, कूए। कूए ने लाखों मरीजों को ठीक किया सिर्फ सम्मोहन के द्वारा। अब तक दुनिया का कोई चिकित्सक किसी भी चिकित्सा पद्धति से इतने मरीज ठीक नहीं कर सका है, जितना कूए ने सिर्फ सम्मोहन से किया। असाध्य बीमारियां दूर कीं। क्योंकि भरोसा दिला दिया भीतर कि यह बीमारी है ही नहीं। इस भरोसे के आते ही शरीर बदलना शुरू हो जाता है।

कूए ने हजारों लोगों की शराब, सिगरेट, और तरह के दुर्व्यसन क्षणभर में छुड़ा दिए क्योंकि भरोसा दिला दिया। मन को गहरे में भरोसा आ जाए तो शरीर तक परिणाम होने शुरू हो जाते हैं।

तो लाभ भी हो सकता है। अगर आपको ध्यान नहीं लगता है, सम्मोहन में अगर आपको सुझाव दे दिया जाए, दूसरे दिन से ही आपका ध्यान लगना गहरा हो जाएगा। आप प्रार्थना करते हैं, लेकिन व्यर्थ के विचार आते हैं। सम्मोहन में कह दिया जाए कि प्रार्थना के क्षण में कोई भी विचार न आएंगे, तो प्रार्थना आपकी परम शात और आनंदपूर्ण हो जाएगी, कोई विचार का विष्य न रह जाएगा। आपकी साधना में सहयोग पहुंचाया जा सकता है।

योग के गुरु सम्मोहन का प्रयोग करते ही रहे हैं सदियों से। लेकिन कभी उसका प्रयोग जाहिर और सार्वजनिक नहीं किया गया। वह निजी गुरु के और शिष्य के बीच की बात थी। और जब गुरु किसी शिष्य को इस योग्य मान लेता था कि अब उसके अचेतन में प्रवेश करके काम शुरू करे, तो ही प्रयोग करता था। और जब कोई शिष्य किसी गुरु को इस योग्य मान लेता था कि उसके चरणों में सब कुछ समर्पित कर दे, तभी कोई गुरु उसके भीतर प्रवेश करके सम्मोहन का प्रयोग करता था।

रास्ते पर काम करने वाले सम्मोहक भी हैं। स्टेज पर प्रयोग करने वाले सम्मोहक भी हैं। उनके साथ आपका कोई श्रद्धा का नाता नहीं है। उनके साथ आपका नाता भी है, तो व्यावसायिक हो सकता है कि आप पांच रुपया फीस दें और वह आपको सम्मोहित कर दे। लेकिन जो आदमी पांच रुपए में उत्सुक है सम्मोहित करने को, वह आपको नुकसान पहुंचा सकता है।

इस तरह की घटनाएं दुनियाभर के पुलिस थानों में रिपोर्ट की गई हैं कि किसी ने किसी को सम्मोहित किया और उससे कहा कि रात तू अपनी तिजोरी में चाबी लगाना भूल जाना; या रात तू अपने घर का दरवाजा खुला छोड़ देना। पोस्ट हिप्नोटिक सजेशन! आपको अभी बेहोश किया जाए, आपको बाद के लिए भी सुझाव दिया जा सकता है कि आप अड़तालीस घंटे बाद ऐसा काम करना। तो आप अड़तालीस घंटे बाद वैसा काम करेंगे और आपको कुछ समझ में नहीं आएगा कि आप क्यों कर रहे हैं। या आप कोई तरकीब खोज लेंगे, कोई रेशनलाइजेशन, कि मैं इसलिए कर रहा हूं।

मैं एक युवक पर प्रयोग कर रहा था पोस्ट हिप्नोटिक सजेशन के। उसे मैंने बेहोश किया और उसे मैंने कहा कि छः घंटे बाद तू मेरी फला नाम की किताब को उठाएगा और उसके पंद्रहवें पेज पर दस्तखत कर देगा। फिर वह होश में आ गया। छः घंटे बाद की बात है। वह अपने काम में लग गया। मैंने वह किताब अलमारी में बंद करके ताला लगा दिया।

ठीक छः घंटे बाद उसने आकर मुझे कहा कि मुझे आपकी फलां नाम की किताब पढ़नी है। मैंने पूछा कि तुझे अचानक क्या जरूरत पड गई? उसने कहा कि नहीं, मुझे कई दिन से खयाल है पढ़ने का। अभी मेरे पास सुविधा है, तो मैं पढ़ना चाहता हूं। मैंने उसे चाबी दी और उसने खोला, और जब मैं भीतर पहुंचा कमरे में, तो वह किताब पढ़ नहीं रहा था, वह पंद्रह नंबर के पृष्ठ कर दस्तखत कर रहा था।

जब वह पकड़ गया दस्तखत करते, तो बहुत घबडाया; और उसने कहा कि मेरी समझ के बाहर है, लेकिन मुझे बड़ी बेचैनी हो रही थी कि कुछ करना है। और कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करना है। और दस्तखत करते ही मेरा मन एकदम हलका हो गया, जैसे कोई बोझ मेरे ऊपर से उतर गया है। पर मैंने क्यों दस्तखत किए हैं, मुझे कुछ पता नहीं है।

तो ऐसी रिपोर्ट की गई हैं पुलिस में कि किसी सम्मोहक ने किसी को सम्मोहित कर दिया और उससे कहा कि तू जाते वक्त अपने पैसे की थैली यहीं छोड़ जाना, अपना मनीबैग यहीं छोड़ जाना; या अपनी चेक बुक यहीं छोड़ जाना। वह आदमी चेक बुक वहीं छोड़ गया जाते वक्त। तब तो खतरे हो सकते हैं।

अचेतन मन बड़ा शक्तिशाली है। आपके चेतन मन की कोई भी शक्ति नहीं है। आपका चेतन मन तो बहुत ही कमजोर है। इसीलिए तो आप संकल्प करते हैं कि सिगरेट नहीं पीऊंगा, छोड़ दूंगा; और घंटेभर भी संकल्प नहीं

चलता है। क्योंकि जिस मन से आपने किया है, वह बहुत कमजोर मन है। उसकी ताकत ही नहीं है कुछ। अगर यही संकल्प भीतर के मन तक पहुंच जाए, तो यह महाशक्तिशाली हो जाता है। फिर उसे तोड़ना असंभव है।

सम्मोहन के द्वारा व्यक्ति का ढांचा खोजा जा सकता है। लेकिन सम्मोहित ऐसे व्यक्ति से ही होना, जिस पर परम श्रद्धा हो। व्यावसायिक सम्मोहन करने वाले व्यक्ति से सम्मोहित मत होना। क्योंकि उसकी आपमें उत्सुकता ही व्यावसायिक है। आपसे कोई आत्मिक और आंतरिक संबंध नहीं है। और जब तक आत्मिक और आंतरिक संबंध न हो, तब तक किसी व्यक्ति को अपने इतने भीतर प्रवेश करने देना खतरनाक है।

इसलिए गुरु तो प्रयोग करते रहे हैं। लेकिन इस प्रयोग को सदा ही निजी समझा गया है। यह सार्वजनिक नहीं है। दो व्यक्तियों के बीच की निजी बात है। कभी—कभी तो... यह प्रयोग पूरा भी तभी हो सकता है, जब कि बहुत निकट और प्रगाढ़ संबंध हों।

जैसे कि स्टेज पर कोई सम्मोहित कर रहा है आपको, तो आप कितने ही सम्मोहित हो जाएं, आपके भीतर एक हिस्सा असम्मोहित बना रहता है। क्योंकि आपको डर तो रहता ही है कि पता नहीं, यह आदमी क्या करवाए! तो अगर वह कहे कि गाय का दूध लगाओ, तो आप लगा लेंगे। वह कहे कि आप स्त्री की तरह चलो, तो चल लेंगे। लेकिन अगर वह कोई ऐसी बात कहे, जो आपके अंतःकरण के विपरीत पड़ती है, अनुकूल नहीं पड़ती है, या आपकी नैतिक दृष्टि के एकदम खिलाफ है, तो आप तत्क्षण जाग जाएंगे और इनकार कर देंगे।

जैसे किसी जैन को जो बचपन से ही गैर—मांसाहारी रहा है, सम्मोहित करके अगर कहा जाए कि मांस खा लो, वह फौरन जग जाएगा; वह सम्मोहन टूट जाएगा उसी वक्त।

किसी सती स्त्री को, जिसका अपने पति के अलावा कभी किसी के प्रति कोई भाव पैदा नहीं हुआ है, अगर उसे कहा जाए सम्मोहन में कि इस व्यक्ति को चूम लो, उसकी फौरन नींद खुल जाएगी, सम्मोहन टूट जाएगा। लेकिन अगर स्त्री का मन दूसरे पुरुषों के प्रति जाता रहा हो, तो सम्मोहन नहीं टूटेगा, क्योंकि इसमें कुछ खास विरोध नहीं हो रहा है। शायद उसकी दबी हुई इच्छा ही पूरी हो रही है।

तो जब कोई व्यावसायिक रूप से किसी को सम्मोहित करता है, तो आपके भीतर एक हिस्सा तो सजग रहता ही है। बहुत गहरे प्रवेश नहीं हो सकता। लेकिन जब कोई गुरु और शिष्य के संबंध में सम्मोहन घटित होता है, तो प्रवेश बहुत आंतरिक हो जाता है। व्यक्ति अपने को पूरा छोड़ देता है। इसलिए समर्पण का इतना मूल्य है, श्रद्धा का इतना मूल्य है।

सम्मोहन के माध्यम से निश्चित ही व्यक्ति के टाइप का पता लगाया जा सकता है। सम्मोहन के द्वारा व्यक्ति के पिछले जन्मों में प्रवेश किया जा सकता है। सम्मोहन के द्वारा व्यक्ति के भीतर कौन—से कारण हैं, जिनके कारण वह परेशान और उलझा हुआ है, वे खोजे जा सकते हैं। और सम्मोहन के माध्यम से बहुत—सी बातों का निरसन किया जा सकता है, रेचन किया जा सकता है; बहुत—सी बातें मन से उखाड़कर बाहर फेंकी जा सकती हैं।

हम जो भी करते हैं ऊपर—ऊपर से, वह ऐसा है, जैसे कोई किसी वृक्ष की शाखाओं को काट दे। शाखाएं कटने से वृक्ष नहीं कटता, नए पीके निकल आते हैं। वृक्ष समझता है कि आप कलम कर रहे हैं। जब तक जड़ें न उखाड़ फेंकी जाएं, तब तक कोई परिवर्तन नहीं होता। वृक्ष फिर से सजीव हो जाता है।

आप मन के ऊपर—ऊपर जो भी कलम करते हैं, वह खतरनाक है। वह फायदा नहीं करती, नए अंकुर निकल आते हैं। वही बीमारियां और घनी होकर पैदा हो जाती हैं। जड़ उखाड़कर फेंकना हो, तो गहरे अचेतन में जाना जरूरी है।

लेकिन सम्मोहन अकेला मार्ग नहीं है। अगर आप ध्यान करें, तो खुद भी अपने भीतर इतने ही गहरे जा सकते हैं। सम्मोहन के द्वारा दूसरा व्यक्ति आपके भीतर गहरे जाता है और आपको सहायता पहुंचा सकता है। ध्यान के द्वारा आप स्वयं ही अपने भीतर गहरे जाते हैं और अपने को बदल सकते हैं।

जिन लोगों को ध्यान में बहुत कठिनाई होती हो, उनके लिए सम्मोहन का सहारा लेना चाहिए। लेकिन अत्यंत निकट संबंध हो किसी गुरु से, तभी। और जो व्यक्ति ध्यान में सीधे जा सकते हों, उनको सम्मोहन के विचार में नहीं पड़ना चाहिए। उसकी कोई भी जरूरत नहीं है।

और सम्मोहन का भी सहारा इसीलिए लेना चाहिए कि ध्यान में गहरे जाया जा सके, बस। और किसी काम के लिए सहारा नहीं लेना चाहिए। क्योंकि बाकी सब काम तो ध्यान में गहरे जाकर किए जा सकते हैं। सिर्फ ध्यान न होता हो, तो ध्यान में कैसे मैं गहरे जाऊं, सम्मोहन का इसके लिए सहारा लिया जा सकता है।

सम्मोहन गहरी प्रक्रिया है और बड़ी वैज्ञानिक है। और मनुष्य के बहुत हित में सिद्ध हो सकती है। लेकिन स्वभावतः, जो भी हितकर हो सकता है, वह खतरनाक भी है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि हमें नीचे बह रही प्राकृतिक ऊर्जा के ऊपर ऊर्ध्वगमन की चेष्टा क्यों करनी चाहिए?

कोई नहीं कहता है कि आप चेष्टा करें। आपकी ऊर्जा नीचे बह रही है, उससे दुख हो रहा है, उससे पीड़ा हो रही है, उससे जीवन व्यर्थ रिक्त हो रहा है। तो आपको ही लगता हो कि पीड़ा हो रही है, दुख हो रहा है, जीवन व्यर्थ जा रहा है, तो ऊपर ले जानी चाहिए। कोई आपसे कह नहीं रहा है कि आप ऊपर ले जाएं। और किसी के कहने से आप कभी ऊपर ले भी न जाएंगे।

लेकिन नीचे का अनुभव ही पीड़ादायी है। ऊर्जा का नीचे जाने का अर्थ है दुख, ऊर्जा का ऊपर जाने का अर्थ है आनंद। लेकिन नीचे जाती ऊर्जा अगर सिर्फ दुख ही देती हो, तब तो सभी लोग रुक जाएंगे। लेकिन नीचे जाती ऊर्जा सुख का प्रलोभन देती है और अंत में दुख देती है। इसीलिए तो इतने लोग उसमें बहे चले जाते हैं। नीचे बहती हुई ऊर्जा आशा बंधाती है कि सुख मिलेगा। आशा ही रहती है, दुख मिलता है। लेकिन हम इतने बुद्धिहीन हैं कि प्रथम और अंतिम को कभी जोड़ नहीं पाते। हजार बार दुख पाकर भी फिर जब नया प्रलोभन आता है, तो हम उसी मछली की तरह व्यवहार करते हैं, जो अनेक बार आटे को पकडने में कांटे से पकड़ गई है, लेकिन फिर जब आटा लटकाता है मछुआ, तो फिर मछली आटे को पकड़ लेती है।

आटे और काटे में मछली संबंध नहीं जोड़ पाती। हम भी नहीं जोड़ पाते कि हम जहां—जहां। सुख की आशा रखते हैं, वहां—वहां दुख मिलता है, सुख मिलता नहीं। लेकिन इसका हम संबंध नहीं जोड़ पाते।

जहां भी आपको दुख मिलता हो, आप थोड़ा सोचें कि वहां आपने सुख चाहा था। सुख न चाहा होता, तो दुख मिल ही नहीं सकता। दुख मिलता ही तब है, जब हमने सुख चाहा हो। आटे को कोई मछली पकड़ेगी, तो ही काटे से जकड़ सकती है। लेकिन जब काटे से मछली जकड़ जाती है, तब वह भी नहीं सोच पाती कि इस आटे के कारण मैं काटे में फंस गई हूं। आप भी नहीं सोच पाते कि जब दुख में आप उलझते हैं, तो किसी सुख की आशा में फंस गए हैं। नीचे बहती ऊर्जा पहले सुख का आश्वासन देती है, फिर दुख में गिरा देती है। ऊपर उठती ऊर्जा पहले कष्ट, तप, साधना, जो कि कठिन है; द्वार पर ही मिलता है दुख ऊपर जाती साधना में, लेकिन अंत में सुख हाथ आता है।

तो आप एक बात ठीक से समझ लें, दुख अगर पहले मिल रहा हो और पीछे सुख मिलता हो, तो आप समझना कि ऊर्जा ऊपर की तरफ जा रही है। और अगर सुख पहले मिलता हुआ लगता हो और पीछे दुख हाथ में आता हो, तो ऊर्जा नीचे की तरफ जा रही है। यह लक्षण है कि आपकी शक्ति कब निम्न हो रही है और कब ऊर्ध्व हो रही है।

कोई भी आपसे नहीं कहता कि आप अपनी जीवन शक्ति को ऊपर ले जाएं। लेकिन आप आनंद चाहते हैं, तो जीवन शक्ति को ऊपर ले जाना पड़ेगा।

समस्त धर्म जीवन शक्ति को ऊपर ले जाने की विधियां है। सारा योग, सारा तंत्र, सब एक ही बात की चेष्टा है कि आपके जीवन की जो ऊर्जा नीचे गिरती है, वह ऊपर कैसे जाए। और एक बार ऊपर जाने लगे, तो दूसरे जगत का प्रारंभ हो जाता है।

देखा आपने, पानी नीचे की तरफ बहता है। लेकिन पानी को गरम करें और पानी भाप बन जाए, तो ऊपर की तरफ उड़ना शुरू हो जाता है। पानी ही है। लेकिन सौ डिग्री पर भाप बन गया, और क्रांतिकारी अंतर हो गया। आयाम बदल गया। दिशा बदल गई। पहले नीचे की तरफ बहता था; पहले कहीं भी पानी होता, तो वह गड्ढे की तलाश करता, अब आकाश की तलाश करता है।

आपके भीतर जो जीवन है, जो एनर्जी है, जो ऊर्जा है, वह भी एक विशेष प्रक्रिया से गुजरकर ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाती है। उस ऊपर उठती हुई ऊर्जा को हमने कुंडलिनी कहा है।

साधारणत: जैसा आदमी पैदा होता है प्रकृति से, वह ऊर्जा नीचे की तरफ जाती है। जमीन का ग्रेविटेशन उसे नीचे की तरफ खींचता है। जमीन की कशिश नीचे की तरफ खींचती है। और आप नीचे की तरफ चौबीस घंटे खिंच रहे हैं। और जिंदगी उतार है। बच्चा जितना पवित्र होता है, का उतना पवित्र नहीं रह जाता। बड़ी अदभुत बात है!

बच्चा जैसा निर्दोष होता है, बूढ़ा वैसा निर्दोष नहीं रह जाता। होना तो उलटा चाहिए। क्योंकि जीवन होना चाहिए एक विकास। यह तो हुआ पतन।

अगर हम के आदमी के मन को खोल सकें, तो हम पाएंगे कि बूढ़ा आदमी डर्टी, एकदम गंदा हो जाता है। जीवन की सारी की सारी वासना तो बनी रहती है और शक्ति सब खो जाती है। और वासना मन में घूमती है। जैसे—जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है, शरीर की शक्ति तो खोती जाती है और वासना चित्त को घेरती है। क्योंकि चित्त कभी भी का नहीं होता, वह जवान ही बना रहता है। तो बड़ी गंदगी घिर जाती है।

बच्चे और बूढ़े में विकास न दिखाई देकर, पतन दिखाई पड़ता है। कारण सिर्फ एक है, कि बच्चे की ऊर्जा अभी बहनी शुरू नहीं हुई है। जैसे—जैसे वह बड़ा होगा, ऊर्जा नीचे की तरफ बहनी शुरू होगी। और अगर कोई प्रयोग न किए जाएं, तो ऊर्जा ऊपर की तरफ न बहेगी।

इन मित्र ने यह भी पूछा है कि अगर साक्षी— भाव या साधना लानी पड़ती है, तब तो फिर वह अप्राकृतिक हो गई। तो क्या प्रकृति का विरोध करना ठीक है?

प्रकृति नीचे भी है और ऊपर भी है। जब भाप आकाश की तरफ उड़ती है, तब भी प्राकृतिक नियमों का ही अनुगमन कर रही है। और जब पानी नीचे की तरफ बहता है, तब भी प्राकृतिक नियमों का ही अनुगमन कर रहा है।

ऊपर की तरफ ले जाने वाले नियम भी प्राकृतिक हैं। और नीचे की तरफ ले जाने वाले नियम भी प्राकृतिक हैं। चुनाव आपको कर लेना है। और मनुष्य स्वतंत्र है चुनाव के लिए, यही मनुष्य की गरिमा है। मनुष्य की खूबी यही है। पशुओं से उसमें विशेषता है, तो सिर्फ एक, कि पशु चुनाव करने को स्वतंत्र नहीं है। उसको कोई च्वाइस नहीं है। उसकी ऊर्जा नीचे की तरफ ही बहेगी। वह चुनाव नहीं कर सकता ऊपर की तरफ बहने का। वह चाहे तो भी नहीं कर सकता। वह चाह भी नहीं सकता।

पशु बंधा हुआ है, नीचे की तरफ ही बहेगा। मनुष्य को संभावना है। अगर वह कुछ न करे, तो नीचे की तरफ बहेगा। अगर कुछ करे, तो ऊपर की तरफ भी बह सकता है। मनुष्य के पास उपाय है। और जो मनुष्य चुनाव नहीं करता, वह पशु ही बना रह जाता है। वह कभी मनुष्य नहीं बन पाता। क्योंकि फिर पशु में और उसमें कोई फर्क नहीं है। एक ही शुरुआत है फर्क की और वह यह है कि हम चुन सकते हैं। हम चाहें तो ऊपर की तरफ भी बह सकते हैं।

एक बड़े मजे की बात है। चूंकि हम ऊपर की तरफ भी बह सकते हैं, इसलिए हम पशु से भी ज्यादा नीचे गिर सकते हैं। अगर आदमी पशु होना चाहे, तो सभी पशुओं को मात कर देता है। दुनियाभर के सारे जंगली जानवरों को भी इकट्ठा कर लें, तो भी हिटलर का मुकाबला नहीं कर सकते, चंगेजखा का मुकाबला नहीं कर सकते। दुनिया का कोई पशु आदमी जैसा पशु नहीं हो सकता, अगर आदमी पशु होना चाहे। क्योंकि जितने आप ऊपर उठ सकते हैं, उतने ही अनुपात में नीचे गिर सकते हैं। जितने बड़े शिखर पर चढ़ने की संभावना है, उतनी ही बड़ी खाई में गिर जाने की भी संभावना साथ ही जुड़ी हुई है। शिखर और खाई साथ—साथ चलते हैं। पतन और विकास साथ—साथ चलते हैं।

लेकिन कोई भी पशु बहुत नीचे नहीं गिर सकता। आप जंगल में चले जाएं, तो आप पता भी नहीं लगा सकते कि कौन—सा सिंह ज्यादा पशु है। सभी सिंह एक जैसे पशु हैं। भूख लगती है, चीर—फाड़कर खा जाते हैं। लेकिन दो सिंहों में कोई फर्क नहीं किया जा सकता। एक सिंह नीचा गिर गया है और एक सिंह ऊंचा है, ऐसा आप फर्क नहीं कर सकते।

आदमी ऊपर उठना चाहे, तो बुद्ध और कृष्ण भी और क्राइस्ट भी उसमें पैदा हो जाते हैं। और नीचे गिरना चाहे, तो चंगेज और नादिर और हिटलर और स्टैलिन भी पैदा हो जाते हैं। कोई अड़चन नहीं है। और आदमी कुछ न करे, तो साधारण किस्म का पशु रह जाता है।

ऊपर की तरफ जाने के लिए श्रम करना होगा। लेकिन श्रम के कारण आप यह मत समझ लेना कि वह अप्राकृतिक है। आदमी जमीन पर चलता है। नाव में पानी में चलता है। हवाई जहाज में हवा में चलता है। अब अंतरिक्ष यान हमने बनाए हैं, वे आकाश में हवा के पार भी चले जाते हैं। अप्राकृतिक कुछ भी नहीं है। क्योंकि अप्राकृतिक तो घटित ही नहीं हो सकता।

हवा में जब आदमी उड़ रहा है हवाई जहाज में, तब भी प्रकृति के नियमों का ही उपयोग कर रहा है। और जब आदमी नहीं उड़ता था, तो उसका मतलब यह नहीं है कि तब नियम नहीं थे। नियम थे, हमें उनका पता नहीं था।

तो जब आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होते हैं, तब भी आप प्रकृति के ही नियमों का काम कर रहे हैं। और जब आप कामवासना में गिरते हैं, तब भी प्रकृति के ही नियमों का काम हो रहा है।

एक हवाई जहाज जब हवा में उड़ता है, तब भी प्रकृति के नियम काम रहे हैं। और जब हवाई जहाज में कुछ गड़बड हो जाती है और हवाई जहाज ऊपर से नीचे गिरकर जमीन पर टकराता है, तब भी प्रकृति के ही नियम काम कर रहे हैं।

आप कितने ढंग से प्रकृति के नियमों का अपने अनुकूल उपयोग करते हैं, उस मात्रा में आपके जीवन में आनंद फलित होता है। और आप किस मात्रा में प्रकृति के नियमों का उपयोग नहीं कर पाते अपने अनुकूल या अपने को नियमों के अनुकूल नहीं बना पाते, उस मात्रा में दुख होता है।

ऊपर की यात्रा भी प्राकृतिक ही है, अप्राकृतिक नहीं; लेकिन उच्चतर प्रकृति की तरफ है। नीचे की यात्रा भी प्राकृतिक है, लेकिन निम्न है। और जो निम्न है, वह दुख लाता है। और जो निम्न है, वह नरक बन जाता है। और जो श्रेष्ठ है, उच्च है, वह स्वर्ग बन जाता है और आनंद की संभावना के द्वार खुल जाते हैं।

लेकिन कोई आपसे कह नहीं रहा है कि आप ऐसा करें। और किसी के कहने से आप करेंगे भी नहीं।

तो मैं तो आपसे इतना ही कह रहा हूं कि आप पहचानें कि अगर आप दुख में हैं, तो आप पहचान लें कि आप नीचे की तरफ जा रहे हैं। और आपको अगर दुख में ही रहना हो, तो फिर कुशलता से नीचे की तरफ जाएं। लेकिन नीचे की तरफ जाकर सुख की आशा न करें। वह आशा गलत है। और आपको लगता हो कि दुख को बदलना है जीवन से और आनंद की यात्रा करनी है, तो ऊपर की तरफ उठना शुरू हों। और ऊपर की तरफ उठने में पहले कष्ट होगा; उसको ही हमने तप कहा है।

जब भी कोई पहाड़ की तरफ चढ़ेगा, तो परेशानी होगी। पहाड़ से उतरते वक्त कोई परेशानी नहीं होती। सभी चढ़ाव कष्टपूर्ण हैं। लेकिन सभी चढ़ावों के अंत पर विश्राम है। और कष्ट के बाद जो विश्राम है, उसका स्वाद, उसका मूल्य ही कुछ और है।

और बहुत मजे की बात है। अगर एक हवाई जहाज से आपको एवरेस्ट पर उतार दिया जाए, तो आपको वह आनंद कभी उपलब्ध न होगा, जो हिलेरी और तेनसिह को चढकर एवरेस्ट पर पहुंचकर हुआ है। आप भी उसी जगह खड़े हो

जाएंगे हवाई जहाज से उतरकर, जिस जगह हिलेरी और तेनसिह जाकर खड़े हुए थे। लेकिन जो आनंद उनको मिला था, वह आपको न मिलेगा। क्योंकि आनंद सिर्फ मंजिल में ही नहीं है, यात्रा में भी है। और यात्रा से मंजिल अगर अलग कर ली जाए, तो कोरी, निस्सार, रसहीन हो जाती है।

इसलिए शार्टकट खोजने की फिक्र नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जितना शार्टकट आप खोज लेंगे, उतना ही मंजिल का रस चला जाएगा। यात्रा का अपना सुख है। और यात्रा का सुख ही इकट्ठा होकर मंजिल पर उपलब्ध होता है। जो यात्रा से बचने की कोशिश करता है, वह एक दफे पहुंच भी सकता है। लेकिन उस पहुंचने में कोई भी रस न होगा, कोई भी रस न होगा।

जो लोग बद्री और केदार की यात्रा पैदल करते रहे थे, उनका मजा और था। अब बस से जा सकते हैं, अब वह बात न रही। कल हवाई जहाज से सीधा उतरेंगे; कोई रस न रह जाएगा। क्योंकि यात्रा और मंजिल दो चीजें नहीं हैं। यात्रा का ही अंतिम पडाव है मंजिल। और जिसने यात्रा ही काट दी, एक अर्थ में उसकी मंजिल ही कट गई।

यात्रा के कष्ट से भयभीत न हों, क्योंकि मंजिल के सुख में उसका भी अनुदान है।

इसी संदर्भ में एक मित्र ने और पूछा है कि स्लेटर ने चूहे के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड्स डालकर उसके मस्तिष्क के विशेष तंतु कंपित करके संभोग का आनंद दिलाया। समाधि भी अस्तित्व से एक तरह का संभोग है। क्या यह संभव नहीं है कि मस्तिष्क के कोई तंतु समाधिस्थ अवस्था में कंपित होते हों? और इनकी वैज्ञानिक व्यवस्था की जा सके, तो फिर साधारण आदमी को भी उसके समाधि वाले तंतुओं को कंपित करके समाधि का अनुभव दिया जा सकता है। फिर साधना की, योग की कोई जरूरत न रहेगी। योग तो कहता है कि समाधि को उपलव्य करने वाला सहस्रार चक्र तक मस्तिष्क में छिपा हुआ है!

निश्चित ही, स्लेटर जैसे मनोवैज्ञानिकों का यही खयाल अइ है कि समाधि भी यंत्रों के द्वारा पैदा की जा सकती है। न केवल खयाल है, बल्कि यंत्र भी निर्मित हो गए हैं। न केवल यंत्र निर्मित हो गए हैं, हजारों —लाखों लोग पश्चिम में यंत्रों का उपयोग भी कर रहे हैं। कोई हजार रुपए की कीमत का यंत्र है। उस यंत्र से आप मस्तिष्क में तार जोड़ देते हैं, यंत्र को चला देते हैं और यंत्र आपके मस्तिष्क के भीतर की तरंगों की खबर देने लगता है।

एक खास तरंग, जिसको पश्चिम में वे अल्फा कहते हैं, अल्का तरंग में आदमी ध्यान की अवस्था में पहुंच जाता है। तो यंत्र खबर देने लगता है कि आपमें कब अल्फा पैदा होती है। और जैसे ही अल्फा पैदा होती है, यंत्र आवाज करता है और आप समझ जाते हैं कि अल्फा तरंग पैदा हो गई। अब इसी तरंग में आपको ठहरे रहना है।

यंत्र की सहायता से आप थोड़े दिन में ठहरना सीख जाते हैं। बहुत कठिन नहीं है। दों—चार दिन में आप ठहरना सीख जाते हैं। क्योंकि आपको अंदाज हो जाता है, यंत्र खबर देता है कि ठीक यही चीज अल्का है। क्योंकि यंत्र आवाज करता है और आप पहचान जाते हैं कि अल्फा भीतर पैदा हो रही है। बस, अब इसी तरंग में रुक जाना है। एक दो—चार दिन के अभ्यास से।

मेरे पास वह यंत्र है। इधर मैं उस पर प्रयोग किया हूं। दों—चार दिन के अभ्यास से आप ध्यान अनुभव करने लगते हैं। बहुत शांति और विश्राम अनुभव होता है। ध्यान जो लोग करते हैं, जब वे ध्यान की अवस्था में हैं, तब यह यंत्र लगा दिया जाए, तो फौरन अल्फा की आवाज देना शुरू कर देता है।

तो अब तो पश्चिम में वे इसकी भी जांच करने में सफल हो गए हैं कि कौन आदमी ध्यान में है, कौन नहीं है। अब आप झूठा दावा नहीं कर सकते, क्योंकि यंत्र खबर देगा कि आप ध्यान में हैं या नहीं हैं। आप ऐसे ही नहीं कह सकते कि मैं ध्यान में हूं। क्योंकि वह यंत्र को धोखा नहीं दिया जा सकता। आप धोखा देने की कोशिश करेंगे, फौरन अल्फा चली जाएगी, क्योंकि धोखा देने का खयाल भी बाधा है। जरा—सा कोई विचार आएगा, यंत्र आवाज बंद कर देगा। जैसे ही विचार बंद होंगे, यंत्र आवाज देने लगेगा।

इस यंत्र पर काफी काम चल रहा है। लेकिन इस यंत्र से जो पैदा होता है, वह भी यात्रारहित मंजिल है। और इसलिए एक बहुत मजे की बात खयाल में वहां भी आनी शुरू हो गई है कि इस यंत्र से भी अल्फा पैदा हो जाती है और ध्यान करने वालों को भी अल्का पैदा होती है। लेकिन ध्यान करने वाला कहता है, परम आनंद मुझे मिल रहा है। और यह अल्फा, यंत्र से पैदा हुआ वाला आदमी कहता है, मुझे थोड़ी शांति मालूम पड़ रही है। दोनों के वक्तव्य में बुनियादी भेद है।

ध्यान करने वाला कहता है, मुझे परम आनंद मिल रहा है। और यंत्र दोनों के बाबत एक ही खबर दे रहा है कि अल्का! यंत्र में कोई फर्क नहीं है। जो समाधि का प्रयोग कर के पहुंचा है उसके बाबत, और जो केवल मशीन के साथ तारतम्य बिठाया है उसके बाबत, यंत्र एक—सी खबर देता है। लेकिन मशीन से जिसने सीखा है, वह कहता है, मुझे थोड़ी शांति मालूम पड़ती है। और जो ध्यान से आया है, वह कहता है, मुझे आनंद मालूम पड़ता है। तब बड़ी कठिनाई है।

तब अभी विचारकों को संदेह पैदा होने लगा है कि यंत्र से जो चीज पैदा हो रही है, वह शायद बाह्य रूप से एक—सी है, लेकिन भीतरी हिस्से पर भिन्न है। क्योंकि जिस आदमी ने तीस साल ध्यान किया है, वह कहता है, मुझे परम आनंद की, परम ब्रह्म की अनुभूति हो रही है। और यह मशीन से तो तीन महीने में उतनी स्थिति पैदा हो जाएगी, जितनी बुद्ध को वर्षों में पैदा हुई है। महावीर को वर्षों में—वर्षों में भी कहना ठीक नहीं, जन्मों में पैदा हुई। उतना तो तीन महीने में यह यंत्र पैदा कर देगा।

लेकिन जिन लोगों में तीन महीने में इस यंत्र ने वह हालत पैदा कर दी, वे बुद्ध नहीं हो जाते। न तो उनके जीवन में कोई परिवर्तन होता है, न उनके जीवन में कोई सत्य, न उनके जीवन में कोई प्रफुल्लता, न उनके जीवन में कोई उत्सव आता है। उनके जीवन में वह सुगंध नहीं दिखाई पड़ती, जो बुद्ध के जीवन में दिखाई पड़ती है। तो कुछ बुनियादी भीतरी फर्क होगा। वह फर्क क्या है? क्योंकि यंत्र तो कहता है, दोनों में एक—सी तरंगें पैदा हो रही हैं। वह फर्क है, यात्रा का फर्क। वह फर्क है, असली फूल और बाजार से खरीद लाए फूल—अपने बगीचे में पैदा किए गए फूल और जाकर बाजार से एक फूल खरीद लाएं हैं, टूटा हुआ, उसमें जो फर्क है।

यह जो यंत्र से पैदा हो रहा है, यह ऊपर से चेष्टित और आरोपित है। मन यह अभ्यास सीख लेगा, और इस यंत्र के साथ तालमेल बिठा लेगा। तालमेल बैठ जाने से शांति मालूम पड़ेगी। और जिन लोगों को अशांति से तकलीफ है, उनके लिए यंत्र उपयोगी है। लेकिन ध्यान की पूर्ति नहीं होगी। ध्यान की पूर्ति असंभव है।

इसको हम ऐसा समझें। स्लेटर का जो प्रयोग मैंने आपसे कहा कि चूहे को उसने संभोग का प्रयोग करा दिया यंत्र से, और चूहा प्रयोग करता चला गया। इसमें भी वही फर्क है।

अगर किसी स्त्री से आपका प्रेम है—जो जरा मुश्किल बात है। क्योंकि आमतौर से तो लोग सोचते हैं कि सभी को प्रेम है। प्रेम इतनी ही कठिन बात है, जैसा कभी—कभी कोई वैज्ञानिक होता है। कभी—कभी कोई कवि होता है। कभी—कभी कोई दार्शनिक होता है। कभी—कभी कोई चित्रकार होता है। ऐसे ही कभी—कभी कोई प्रेमी होता है। प्रेमी भी सब लोग होते नहीं।

अगर सच में ही किसी पुरुष को किसी स्त्री से प्रेम है, तो उस स्त्री के साथ संभोग में जो आनंद उसे उपलब्ध होगा, वह स्लेटर का यंत्र पैदा नहीं करवा सकता। ही, अगर आपको स्त्री से कोई प्रेम नहीं है और आप किसी वेश्या के पास संभोग करने चले गए हैं, तो जो आपको क्षणभर की जो प्रतीति होगी संभोग में—मुक्तता की, खाली हो जाने की, बोझ के उतर जाने की—वह स्लेटर के यंत्र से भी हो जाएगी।

यंत्र के द्वारा भी वह संभोग पैदा हो सकता है, जो उस व्यक्ति के साथ आपको पैदा होता है, जिससे आपका कोई गहरा प्रेम नहीं है। लेकिन अगर प्रेम है, तो यंत्र फिर उस संभोग को पैदा नहीं कर सकता।

अगर आपको सिर्फ मन की थोड़ी—सी शांति चाहिए, जो कि ट्रैंक्वेलाइजर से भी पैदा हो जाती है, तो वैसी ही शांति आपको अल्फा तरंगें पैदा करने वाले यंत्र से भी पैदा हो जाएगी।

लेकिन अगर ध्यान आपकी कोई आत्मिक यात्रा है, जैसी बुद्ध की खोज है, महावीर की खोज है, ऐसी अगर कोई खोज है, जिस पर आपका पूरा जीवन समर्पित है, यह कोई शांति की तलाश नहीं है, सत्य की तलाश है; यह केवल दुख और बोझ के कम होने की बात नहीं है, आनंद में स्थापित होने की बात है, यह कोई कामचलाऊ जिंदगी ठीक से चल सके, इसलिए थोड़ी शांति रहे, ऐसी व्यवस्था नहीं है, बल्कि परम मुक्ति कैसे अनुभव हो, उसकी खोज है; तो फिर यंत्र से यह आनंद, यह समाधि, यह ध्यान उपलब्ध नहीं होगा।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कोई यंत्र का विरोध कर रहा हूं। मैं सिर्फ इतना कह रहा हूं कि यंत्र का भी उपयोग करना अच्छा है। उससे कम से कम शांति तो मिलेगी। और यह भी खयाल आएगा कि जब यंत्र से इतनी शांति मिल सकती है, तो ध्यान से कितनी संभावना हो सकती है और समाधि से कितना...! एक झलक उससे मिलेगी, वह झलक अपने आप में बुरी नहीं है। लेकिन अगर कोई सोचता हो कि यंत्र योग की जगह ले लेंगे, तो भूल में है। कोई अगर सोचता हो कि यंत्र प्रेम की जगह ले लेंगे, तो भूल में है

वह जो आंतरिक है, उसकी जगह कोई भी यंत्र नहीं ले सकता। लेकिन अगर आपकी जिंदगी सिर्फ बाह्य है, तो यंत्र उसकी जगह ले सकते हैं।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, इस प्रकार क्षेत्र तथा जान अर्थात ज्ञान का साधन और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से कहा गया। इसको तत्व से जानकर मेरा भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संबंध में, ज्ञान और ज्ञान के साधन के संबंध में, कृष्ण कहते हैं, मैंने थोड़ी—सी बातें कहीं। इनको अगर कोई तत्व से जान ले, तो वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

तत्व से जानकर! इसे हम समझ लें।

एक तो जानकारी है सूचना की। कोई कहता है, हम सुन लेते हैं और हम भी जान लेते हैं। वह तत्व से जानना नहीं है। एक जानकारी है अनुभव की, स्वयं के साक्षात की। हम ही जानते हैं। तब हम तत्व से जानते हैं।

एक आदमी कहता है कि सागर का जल खारा है। हम समझ गए। जल भी हमने देखा है। सागर भी हमने देखा है। खारेपन का भी हमको पता है। समझ गए। वाक्य का अर्थ हमारी समझ में आ गया कि सागर का जल खारा है। लेकिन यह अर्थ शाब्दिक है। हमने सागर के जल को कभी चखा नहीं। और बिना चखे हमें कुछ पता न चलेगा। चखकर जो हमें पता चलेगा, वह तत्व से ज्ञान होगा। अनुभव से अपने जो ज्ञान होता है, वह तत्व है। दूसरे से भी उसके संबंध में खबर मिल सकती है।

खतरा यह है कि हम दूसरे से मिली खबरों को भी अपना ज्ञान समझ लेते हैं। इसी तरह दुनिया में अनेक लोग अज्ञानी के अज्ञानी मर जाते हैं, इस भांति में कि वे जानते हैं, इस भ्रांति में कि उन्हें ज्ञान है।

रोज मुझे ऐसे लोगों से मिलना हो जाता है, जिन्हें शास्त्र कंठस्थ हैं। अगर कृष्ण भी मिल जाएं और फिर से उनसे कहा जाए कि गीता कहो, तो दोहरा न सकेंगे। क्योंकि कृष्ण को कोई यह कंठस्थ नहीं है। बहुत—सी बातें छूट जाएंगी, बहुत—सी नई जुड़ जाएंगी। सब ढांचा बदल जाएगा। लेकिन इनको जिनको गीता कंठस्थ है, इनसे भूल होने का उपाय नहीं है। ये कृष्ण में भी भूलें बता सकते हैं। क्योंकि कृष्ण दुबारा दोहरा न सकेंगे। यह तो सहजस्फूर्त थी। मगर इनको कंठस्थ है।

ये जो कंठस्थ हैं, इनको धीरे— धीरे यह भांति पैदा हो जाती है कि इन्हें पता है।

ऐसा हुआ एक बार कि इंग्लैंड में एक प्रतियोगिता रखी गई। प्रतियोगिता यह थी कि सारी दुनिया से अभिनेता आमंत्रित किए गए थे कि वे चार्ली चैपलिन का अभिनय करें। चार्ली चैपलिन को मजाक सूझा; उसने सोचा मैं भी क्यों न किसी और नाम से अभिनय में सम्मिलित हो जाऊं! मुझे तो पुरस्कार निश्चित है। शक की कोई बात ही नहीं, क्योंकि चार्ली चैपलिन का ही अभिनय करना था दूसरों को।

सारी दुनिया में अनेक जगह प्रतियोगिताएं हुईं और फिर सौ प्रतियोगी लंदन में इकट्ठे हुए; किसी को शक भी नहीं था कि उसमें एक चार्ली चैपलिन भी है। वे सभी चार्ली चैपलिन जैसे लग रहे थे। वैसी ही मूंछ लगाई थी। वैसे ही कपड़े पहने थे। वैसी ही चाल चलते थे। तो उसमें चार्ली चैपलिन भी छिप गया था। वह भी किसी दूसरे नाम से भर्ती हो गया था।

अगर पता चल जाता आयोजकों को, तो उसे निकाल बाहर करते। क्योंकि उसका तो कोई सवाल ही नहीं था। फिर तो प्रतियोगिता खराब ही हो गई। इसलिए वह छिपकर ही सम्मिलित था।

मगर कठिनाई तो तब हुई, जब उसको तीसरा नंबर मिला। और जब पता चला कि वह मौजूद था और नंबर तीन आया चार्ली चैपलिन की नकल करने में, तब तो बड़ी हैरानी हुई कि यह बात क्या हो गई! दूसरे लोग हाथ मार ले गए। क्योंकि दूसरे लोगों के लिए सिर्फ नकल थी बंधी हुई! चार्ली चैपलिन को सहज मामला है। उसने कुछ नया कर दिया होगा, जो उसने पहले कभी नहीं किया था। उसी में फंस गया वह। क्योंकि जो उसने पहले नहीं किया था, वह तो निरीक्षकों को भी पता नहीं था, जजेस को भी पता नहीं था। और जो उसने पहले नहीं किया था, वह तो चार्ली चैपलिन का माना ही नहीं जा सकता। और उसे कभी खयाल ही नहीं था कि अपनी नकल कैसे करनी। उसने जिंदगीभर जो भी किया था, वह सहज था। पहली दफा उसने नकल करने की कोशिश की। खुद ही हार गया अपनी ही नकल में! नंबर तीन पर आया।

आप पक्का समझिए कि अगर कृष्ण भी कहीं बिठा दिए जाएं प्रतियोगिता में कंठस्थ गीता वालों से, हारेंगे। इनसे जीतने का कोई उपाय नहीं है। ये हाथ मार ले जाएंगे। क्योंकि इनको बिलकुल कंठस्थ है, यंत्रवत।

ज्ञान को कंठस्थ होने की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ अज्ञान कंठस्थ करता है। कंठस्थ का मतलब ही यह है कि तुम्हें पता नहीं है। तुम्हारे भीतर नहीं है। सिर्फ कंठ में है। शब्दों की याददाश्त है। हम सबको शब्द याद हैं। और शब्दों के याद होने से भ्रांति होती है कि हमें मालूम है। शब्द खतरनाक हैं। अगर बार—बार दोहराते रहें, तो आप ही भूल जाते हैं कि पता नहीं है। ईश्वर, ईश्वर, ईश्वर सुनते—सुनते ऐसा लगने लगता है कि हमें मालूम है कि ईश्वर है। आत्मा, आत्मा, आत्मा सुनते—सुनते आप भूल ही जाते हैं कि आत्मा न हमें पता है कि क्या है, न कोई अनुभव है, न कोई स्वाद है।

यह बड़ी खतरनाक स्थिति है। क्योंकि शब्द एक भ्रम पैदा कर देते हैं, एक हवा पैदा कर देते हैं चारों तरफ कि मालूम है।

अगर कोई आपसे पूछे, आत्मा है? आप फौरन कहेंगे, हां। बिना एक रत्तीभर शक पैदा हुए कि हमें कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा है या नहीं है।

और जितने आप विश्वास से कह रहे हैं, है, उतने ही विश्वास से रूस में किसी से पूछो, वह कहता है, नहीं है। क्योंकि बचपन से उसको सिखाया जा रहा है, नहीं है, नहीं है। आपको सिखाया जा रहा है, है, है। आप दोनों एक से हैं। जरा भी फर्क नहीं है। वह भी तोते की तरह दोहराया गया है उसको कि आत्मा नहीं है। और आपको भी तोते की तरह दोहराया गया है कि आत्मा है।

ऊपर से देखने पर कितना फर्क मालूम पड़ता है! आप लगते हैं आस्तिक और वह रूस का आदमी लगता है नास्तिक। आप दोनों एक से हैं। न तो आप आस्तिक हैं, न वह नास्तिक है। वह भी, जो उसने सुना है, दोहरा रहा है। जो आपने सुना है, आप दोहरा रहे हैं। फर्क क्या है? फर्क तो पैदा होगा, जब तत्व से ज्ञान होगा।

सुनी हुई बातचीतों का कोई भी मूल्य नहीं है। और उसी आदमी को मैं बुद्धिमान कहता हूं, जो यह याद रख सके कि सुनी हुई बातें मेरा ज्ञान नहीं है। सुनी हुई बातों को एक तरफ रखे।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुनी हुई बातें बुरी हैं। यह भी नहीं कह रहा हूं कि सुनी हुई बातों का कोई उपयोग नहीं है। लेकिन इतना स्मरण होना चाहिए कि क्या है मेरी स्मृति और क्या है मेरा ज्ञान! क्या मैंने सुना है और क्या मैंने जाना है!

जो जाना है, वही तुम्हारा है, वही तत्व है। जो नहीं जाना है, सुना है, वह सिर्फ धारणाएं हैं, प्रत्यय हैं, कंसेप्ट्स हैं। उनसे कोई जीवन बदलेगा नहीं।

तो कृष्ण कहते हैं, जो तत्व से जानता है, वह मेरा भक्त मेरे स्वरूप को उपलब्ध हो जाता है। स्वभावत:, जो तत्व से जानेगा, वह परम ईश्वर के स्वरूप के साथ एक हो ही जाएगा। उसे कोई बाधा नहीं है।

और हे अर्जुन, प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी मेरी माया और पुरुष अर्थात क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान।

यह प्रश्न विचारणीय है और बहुत ऊहापोह मनुष्य इस पर करता रहा है।

हमारे मन में यह सवाल उठता ही रहता है कि किसने बनाया जगत को? किसने बनाया? कौन है स्रष्टा? जरूर कोई बनाने वाला है। हमारा मन यह मान ही नहीं पाता कि बिना बनाए यह जगत हो सकता है। बनाने वाला तो चाहिए ही।

तो हम बच्चों जैसी बातें करते रहते हैं और हम बच्चों जैसी बातें प्रचारित भी करते रहते हैं कि जैसे कुम्हार घडे को बनाता है, ऐसा स्रष्टा है कोई, जो सृष्टि को बनाता है।

कृष्ण कहते हैं, तू दोनों को अनादि जान, प्रकृति को भी और पुरुष को भी।

वे बनाए हुए नहीं हैं, वे सदा से हैं। कभी प्रकट होते हैं, कभी अप्रकट। लेकिन मिटता कुछ भी नहीं है और न कुछ बनता है। कभी दृश्य होते हैं, कभी अदृश्य। लेकिन जो अदृश्य है, वह भी है। जो दृश्य है, वही नहीं है; अदृश्य भी है। आज मौजूद है, कल गैर—मौजूद हो जाता है। यह गैर—मौजूदगी भी अस्तित्व का एक ढंग है। यह न होना भी होने का एक प्रकार है। क्योंकि बिलकुल परिपूर्ण रूप से नहीं तो जो है, वह हो ही नहीं सकता।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, प्रकृति भी और पुरुष भी!

वह जो दिखाई पड़ता है वह, और वह जो देखता है वह, वे दोनों अनादि हैं। उनका कोई प्रारंभ नहीं है। उनके प्रारंभ की बात ही बचकानी है।

एक मित्र ने सवाल पूछा है। उन्होंने पूछा है कि विज्ञान तो धर्म से जीत गया संघर्ष में! वह इसीलिए जीत गया कि वह जो भी कहता है, स्पष्ट है। और धर्म जो भी कहता है, वह स्पष्ट नहीं है। और उन मित्र ने यह कहा है कि धर्म अभी तक नहीं बता पाया कि जगत को किसने बनाया? सृष्टि कैसे हुई? क्यों हुई?

उनके प्रश्न में थोड़ा अर्थ है।

धर्म तो वस्तुत: कहता है कि जगत अनादि है; किसी ने बनाया नहीं है। बनाने की बात ही बच्चों को समझाने के लिए है। और इस संबंध में विज्ञान भी राजी है। विज्ञान भी कहता है कि अस्तित्व प्रारंभ—शून्य है।

ईसाइयत से विज्ञान की थोड़ी कलह हुई। और कलह का कारण यह था कि ईसाइयत ने तय कर रखा था कि जगत एक खास तारीख को बना। एक ईसाई पादरी ने तो तारीख और दिन सब निकाल रखा था। जीसस से चार हजार चार साल पहले, फला—फलां दिन, इतने बजे सुबह जगत का निर्माण हुआ!

विज्ञान को अड़चन और कलह शुरू हुई ईसाइयत के साथ। विज्ञान और धर्म का संघर्ष नहीं है। विज्ञान और ईसाइयत में संघर्ष हुआ जरूर, क्योंकि ईसाइयत की बहुत—सी धारणाएं बचकानी थीं। और विज्ञान ने कहा कि यह तो बात एकदम गलत है कि चार हजार साल पहले जीसस के पृथ्वी बनी या जगत बना। क्योंकि पृथ्वी में ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं, जो लाखों—लाखों साल पुराने हैं।

आदमी लेकिन बड़ा बेईमान है। और आदमी अपने लिए जो भी ठीक मानना चाहता है, उसको ठीक मान लेता है। तरकीबें निकाल लेता है। जिस बिशप ने यह सिद्ध किया था कि जीसस के चार हजार चार साल पहले पृथ्वी बनी, उसने एक वक्तव्य जाहिर किया। और उसने कहा कि हम यह मानते हैं कि पृथ्वी में ऐसी चीजें मिलती हैं, जो लाखों साल पुरानी हैं।

अब यह बड़ी कठिन बात है। अगर पृथ्वी में ऐसी चीजें मिलती हैं, जो लाखों साल पुरानी हैं, तो पृथ्वी कैसे बन सकती है चार हजार साल पहले या छ: हजार साल पहले?

उस बिशप ने कहा कि भगवान के लिए सभी कुछ संभव है। उसने चार हजार साल पहले पृथ्वी बनाई और पृथ्वी में ऐसी चीजें रख दीं जो लाखों साल पुरानी मालूम पड़ती हैं; लोगों की भक्ति की परीक्षा के लिए! कि लोग अगर सच में निष्ठावान हैं, तो वे कहेंगे, हमारी तो निष्ठा है। यह भगवान हमारी परीक्षा ले रहा है।

ये आदमी के बेईमान होने के ढंग इतने हैं कि वह अपनी बेईमानी में ईश्वर तक को भी फंसा लेता है। ईश्वर ने बनाई तो चार हजार साल पहले ही चीजें, लेकिन ईश्वर के लिए क्या असंभव है! सर्व शक्तिशाली है। उसने उसको इस ढंग से बनाया कि वैज्ञानिक धोखा खा जाते हैं कि लाख साल पुरानी है। सिर्फ छांटने के लिए कि जो असली आस्तिक हैं, वे राजी रहेंगे, और जो नकली आस्तिक हैं, वे नास्तिक हो जाएंगे। उसने यह तरकीब बिठाई।

लेकिन कृष्ण की धारणा बहुत वैज्ञानिक है। वे कहते हैं कि प्रकृति और पुरुष का कोई आदि—प्रारंभ नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि इस जगत का प्रारंभ नहीं है।

इसका फर्क समझ लें।

प्रकृति का कोई प्रारंभ नहीं है, पुरुष का कोई प्रारंभ नहीं है। आपके शरीर का कोई प्रारंभ नहीं है और आपकी आत्मा का भी कोई प्रारंभ नहीं है। लेकिन आपका प्रारंभ है। आपकी आत्मा भी अनादि है और आपका शरीर भी अनादि है। क्योंकि शरीर में क्या है जो आपके पहले नहीं था! सभी कुछ था। मिट्टी थी, हड्डी—मांस, जो भी आपके भीतर है, वह सब था; किसी रूप में था।

अगर आपके शरीर की सब चीजें निकाली जाएं, तो वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार, साढ़े चार रुपए का सामान उसमें निकलता है। अल्युमिनियम, तांबा, पीतल सब है। बहुत थोड़ा— थोड़ा है। सब निकाल लिया जाए, तो कोई सस्ते जमाने में साढ़े चार रुपए का होता था, अब कुछ महंगा होता होगा। लेकिन यह सब था।

शरीर भी आपका अनादि है। और आपके भीतर जो छिपी हुई आत्मा है, वह भी अनादि है। लेकिन आप अनादि नहीं हैं। आपका तो जन्म हुआ। आपका तो म्युनिसिपल के दफ्तर में सब हिसाब—किताब है। कब आप पैदा हुए, कहां पैदा हुए, कैसे पैदा हुए, वह सब है।

आप पैदा हुए, आप एक जोड हैं। आप तत्व नहीं हैं, आप एक कंपाउंड हैं। इलिमेंट नहीं हैं, संयोग हैं। संयोग का जन्म होता है; और संयोग का वियोग होता है, विनाश होता है। लेकिन जो तत्व है, उसका विनाश नहीं होता। जब आप

मरेंगे, तो शरीर अपनी दुनिया में लौट जाएगा मिट्टी—पत्थर की। और आपकी चेतना चेतना की दुनिया में लौट जाएगी। वे दोनों पहले भी थे।

आप? आप एक संयोग हैं दो के। आपका जन्म होता है, आपका अंत होता है।

भारतीय मनीषा कहती है कि न तो प्रकृति का कोई आदि है, न कोई अंत है। और न पुरुष का कोई आदि है और अंत है। लेकिन संसार का आदि और अंत है।

संसार ऐसे ही है, जैसे आपका शरीर और आत्मा के मिलने से आपका व्यक्तित्व। ऐसे ही इतने सारे पुरुषों और इस प्रकृति के मिलने से जो प्रकट होता है संसार, वह प्रारंभ होता है और उसका अंत होता है।

हम जिस संसार में रह रहे हैं, वह सदा नहीं था। वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारा सूरज कोई चार हजार साल में ठंडा हो जाएगा। अरबों वर्ष से गरमी दे रहा है। उसकी गरमी चुकती जा रही है। चार हजार साल और, और वह ठंडा हो जाएगा। उसके ठंडे होते ही पृथ्वी भी ठंडी हो जाएगी। फिर पौधा यहां नहीं फूटेगा; फिर बच्चे यहां पैदा नहीं होंगे, फिर श्वास यहां नहीं चलेगी, फिर यहां जीवन शून्य हो जाएगा।

आदमी ही नहीं मरता, पृथ्वियां भी मरती हैं। अभी हमारी पृथ्वी जीवित है, लेकिन वह भी बुढ़ापे के करीब पहुंच रही है। अभी कई पृथ्वियां मृत हैं। अभी कई पृथ्वियां जन्मने के करीब हैं। अभी कई पृथ्वियां जवान हैं। अभी कई पृथ्वियां बचपन में हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पचास हजार ग्रहों पर जीवन है। पचास हजार पृथ्वियां हैं कम से कम, जिन पर जीवन है। उसमें कोई बिलकुल बच्चों जैसी है। अभी— अभी उसमें काई फूट रही है और घास उग रहा है, अभी और बड़ा जीवन नहीं आया है। कोई बिलकुल की हो गई है; सब सूख गया है। आदमी भी जा चुके हैं, प्राणी भी जा चुके हैं; आखिरी काई भी सूखती जा रही है। कोई बिलकुल बंजर हो गई है, मृत। कोई अभी गर्भ में है; अभी तैयारी कर रही है। जल्दी ही जीवन का अंकुर उस पर फूटेगा।

पृथ्वियां आती हैं, खो जाती हैं। संसार बनते हैं, विनष्ट हो जाते हैं। लेकिन मूल तत्व दो हैं, प्रकृति और पुरुष, प्रकृति और परमात्मा, पदार्थ और चैतन्य, वे दोनों अनादि हैं।

तब एक सवाल उठेगा मन में, तो फिर हम कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ब्रह्मा बनाता है, विष्णु सम्हालते हैं, महेश मिटाते हैं—इनका क्या अर्थ?

ये भी सम्हालते, मिटाते, बनाते हैं संसारों को, अस्तित्व को नहीं। ये भी एक संसार को बनाते हैं। इसलिए बौद्धों ने तो अनेक ब्रह्मा माने हैं। क्योंकि जितने संसार हैं, उतने ब्रह्मा। क्योंकि हर संसार को बनाने की शक्ति का नाम ब्रह्मा है; ब्रह्मा कोई व्यक्ति नहीं हैं। सम्हालने की शक्ति का नाम विष्णु है; विष्णु कोई व्यक्ति नहीं हैं। विनष्ट हो जाने की संभावना का नाम शिव है; शिव कोई व्यक्ति नहीं हैं।

तो जहां—जहां जीवन है, जीवन का विस्तार है, और जहां—जहां जीवन का अंत है, वहा—वहां ये तीन शक्तियां काम करती रहेंगी। लेकिन इन सबका संबंध संसारों से है।

इसलिए बहुत मजेदार घटना बौद्ध कथाओं में है। वह यह कि जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो जो पहला व्यक्ति जिज्ञासा करने आया, वह था ब्रह्मा। ब्रह्मा ने आकर सिर टेक दिया बुद्ध के चरणों में और कहा कि मुझे ज्ञान दें। हमें तो बड़ी घबड़ाहट होगी। क्योंकि ब्रह्मा बनाने वाला संसार का, वह बुद्ध के चरणों में आया पूछने कि मुझे ज्ञान दें!

ब्रह्मा संसार को बनाने वाला जरूर है, लेकिन संसार को वह बनाता ही इसलिए है कि उसमें संसार को बनाने की वासना है। बुद्ध वासना—मुक्त हो गए। इसलिए बुद्ध' ब्रह्मा से ऊपर हो गए। बुद्ध शुद्ध पुरुष हो गए। ब्रह्मा उनसे नीचे

रह गया। क्योंकि ब्रह्मा भी बनाता है। बनाने का अर्थ ही है कि कामवासना है। जहां वासना नहीं है, वहां कोई सृजन न होगा। इसलिए हम ब्रह्मा को मुक्त नहीं मानते। ब्रह्मा को भी हम मानते हैं कि वह भी बंधन में है, क्योंकि बनाने का...।

स्वभावत:, आप एक छोटी—सी दुकान चलाते हैं, कितनी मुसीबत है! अगर ब्रह्मा को हम समझें और इतने सारे संसार को चलाता है, तो उसकी मुसीबत का हम अंदाज लगा सकते हैं। उसकी मुसीबत का हम खयाल कर सकते हैं। इतना बड़ा संसार अगर किसी को चलाना पड़ रहा है, तो उसके पीछे एक तो प्रगाढ़ कामना होनी चाहिए, अंतहीन वासना होनी चाहिए। और फिर उसका उपद्रव और जाल भी होगा ही।

वह बुद्ध से कहता है ब्रह्मा—यह कथा मीठी है—कि मुझे भी कुछ जान दें, मैं भी उलझा हूं अभी, मेरा मन भी शात नहीं है। आप जहां पहुंच गए हैं, वहां से कुछ अमृत मेरे लिए भी!

लेकिन बुद्ध चुप हैं। और बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो उन्हें लगा कि अब बोलने की क्या जरूरत। जो जाना है, वह कहा नहीं जा सकता। और जो सुनने वाले हैं, उनमें कोई समझ भी न पाएगा। इसलिए व्यर्थ की मेहनत नहीं करनी है।

तो ब्रह्मा उनके पैर पर सिर रख—रखकर बार—बार कहता है कि आप लोगों से कहें, क्योंकि हम हजारों—हजारों साल तक प्रतीक्षा करते हैं कि कोई बुद्ध हो, तो हमें कुछ ज्ञान मिले। हम भी कुछ जान पाएं। हमें भी कुछ पता चले कि क्या है।

ब्रह्मा का यह पूछना बड़ा मजेदार है। उसे भी पता नहीं कि क्या है। वह भी अपनी वासना में जी रहा है।

हम सब छोटे—छोटे ब्रह्मा हैं, जब हम बनाते हैं। और हम सब छोटे—छोटे विष्णु हैं, जब हम सम्हालते हैं। और हम सब छोटे—छोटे शिव हैं, जब हम मिटाते हैं। इसी को विराट करके देखें, तो पूरे संसार का खयाल आ जाएगा।

कृष्ण कहते हैं, लेकिन दो मौलिक तत्व, प्रकृति और पुरुष अनादि हैं। और राग—द्वेष आदि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक संपूर्ण

पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ जान।

और जो कुछ भी तुझे दिखाई पड़ता है इस जगत में पैदा होता हुआ—राग—द्वेष, विकार, त्रिगुण—यह संपूर्ण पदार्थ, इनको तू प्रकृति के ही रूप जान। ये प्रकृति से ही पैदा हुए हैं।

तत्व दो हैं, प्रकृति और पुरुष। बाकी जितना फैलाव दिखाई पड़ता है, वह दो में से किसी से जुड़ा होगा। तो कृष्ण कहते हैं, यह जितना विस्तार है माया का, त्रिगुण का; ये जो भी दिखाई पड़ रहे हैं पदार्थ, इतने रूप, इतने रंग, इतना परिवर्तन; ये सब प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान। ये प्रकृति में ही उत्पन्न होते हैं और प्रकृति में ही लीन होते रहते हैं। जिससे ये उत्पन्न होते हैं और जिसमें लीन होते हैं, उसी का नाम प्रकृति है।

यह प्रकृति शब्द हमारा बड़ा अदभुत है। ऐसा शब्द दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं है। अंग्रेजी में अक्सर हम प्रकृति को नेचर या क्रिएशन से अनुवादित करते हैं। दोनों ही गलत हैं। प्रकृति शब्द का अर्थ है, कृति के पहले। उसका अर्थ है, प्रि—क्रिएशन। शब्द बहुत अनूठा है। प्रकृति का अर्थ है कि कृति के पहले। जब कुछ भी नहीं था, तब भी जो था। जब कुछ भी नहीं बना था, तब भी जो था, प्रि—क्रिएशन। पहले जो था, सृजन के भी पहले जो था, उसका नाम प्रकृति है।

इसलिए प्रकृति को क्रिएशन तो अनुवाद किया ही नहीं जा सकता। नेचर भी अनुवाद नहीं किया जा सकता। क्योंकि नेचर तो, जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह है।

प्रकृति सांख्यों का बड़ा अनूठा शब्द है। उसका अर्थ है, जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, यह जब नहीं था और जिसमें छिपा था, उसका नाम प्रकृति है। जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, जब यह सब मिट जाएगा और उसी में डूब जाएगा जिससे निकला है, उसका नाम प्रकृति है। तो प्रकृति है वह, जिससे सब निकलता है और जिसमें सब लीन हो जाता है। प्रकृति है मूल उदगम सभी रूपों का।

क्योंकि कार्य और कारण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है। और पुरुष सुख—दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है।

इन दो बातों को बहुत गौर से समझ लेना चाहिए। जिनकी साधना की दृष्टि है, उनके लिए बहुत काम की है।

कार्य और कारण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है। और पुरुष सुख—दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है। घटनाएं घटती हैं प्रकृति में, भोग की कल्पना और मुक्ति की कल्पना घटती है पुरुष में।

एक फूल खिला। फूल का खिलना प्रकृति में घटित होता है। और अगर कोई आदमी न हो पृथ्वी पर, तो फूल न तो सुंदर होगा और न कुरूप। या होगा? कोई आदमी नहीं है जगत में, एक फूल खिला एक पहाड़ के किनारे। वह सुंदर होगा कि कुरूप होगा? वह सुखद होगा कि दुखद होगा? वह किसी को आनंदित करेगा कि किसी को पीडित करेगा? कोई है ही नहीं पुरुष।

सिर्फ फूल खिलेगा। न सुंदर होगा, न असुंदर; न सुखद, न लेकिन फूल खिलेगा, फूल अपने में पूरी तरह से खिलेगा।

फिर एक पुरुष प्रकट होता है। फूल के पास खड़ा हो जाता है। फूल तो प्रकृति में खिल रहा है। पुरुष के मन में, पुरुष के भाव में, कल्पना खिलनी शुरू हो जाती है फूल के साथ—साथ समानांतर। पुरुष कहता है, सुंदर है। यह सुंदर का जो फूल खिल रहा है, यह पुरुष के भीतर खिल रहा है। फूल बाहर खिल रहा है। यह जो सुंदर होने का भाव खिल रहा है, यह पुरुष के भीतर खिल रहा है। और अगर पुरुष कहता है सुंदर है, तो सुख पाता है, सुख भोगता है। अगर पुरुष कहता है असुंदर है, तो दुख पाता है।

और ऐसा नहीं है। सुंदर और असुंदर धारणाओं पर निर्भर करते हैं। आज से सौ साल पहले कोई सोच भी नहीं सकता था कि कैक्टस के पौधे को घर में रखेगा। सौ साल पहले कोई रख लेता, तो हम उसका पागलखाने में इलाज करवाते। कैक्टस का पौधा गांव के बाहर लोग अपने खेत के चारों तरफ बागुड़ लगाने के काम में लाते रहे हैं। सुंदर है, ऐसा कभी किसी ने सोचा नहीं था।

अब हालत ऐसी है कि जिनको भी खयाल है सौंदर्य का थोड़ा—बहुत, वे गुलाब वगैरह को निकाल बाहर कर रहे हैं घरों से, कैक्टस के पौधे लगा रहे हैं! जिनको कहें अवांगार्द जो बहुत आभिजात्य हैं, जिनको सौंदर्य का बड़ा बोध है, या जो अपने समय से बहुत आगे हैं, वे सब तरह के ऐड़े—तिरछे काटो वाले पौधे घरों में इकट्ठे कर रहे हैं। उनमें ऐसे पौधे भी हैं कि अगर काटा लग जाए, तो जहर हो जाए खून में। लेकिन उसकी भी चिंता नहीं है। पौधा इतना सुंदर है यह कि मौत भी झेली जा सकती है।

कोई सोच नहीं सकता था सौ साल पहले कि ये कैक्टस के पौधे सुंदर होते हैं। अभी हो गए है। ज्यादा दिन चलेंगे नहीं। सब फैशन है। अभी गुलाब के सौंदर्य की चर्चा करना बड़ा आर्थोडाक्स, पुराना, दकियानूसी मालूम पड़ता है। कोई कहने लगे, बड़ा सुंदर गुलाब है। तो लोग कहेंगे, क्या फिजूल की बातें कर रहे हो! कितने। लोग कह चुके। सब उधार है। दुनिया हो गई, सारा संसार गुलाब की चर्चा करके थक गया। अब हटाओ गुलाब को। आउट आफ डेट है। बिलकुल तिथिबाह्य है। कैक्टस की कुछ बात हो।

पिकासो ने अपनी एक डायरी में लिखा है कि मैं एक स्त्री के प्रेम में पड़ गया हूं। स्त्री सुंदर नहीं है। लेकिन उस स्त्री में एक धार है। सुंदर तो नहीं है। लेकिन फिर वह लिखता है कि सुंदर की भी क्या बकवास! यह तो बहुत पुरानी धारणा है। धार है, जैसे कि काट दे, जैसे तलवार में धार होती है। उस धार में मुझे रस है।

यह कैक्टस का प्रेम ही होगा, जो स्त्री तक फैल रहा है। धार, काट दे! सौंदर्य भी मुरदा—मुरदा लगता है पुराना। अगर कालिदास का सौंदर्य हो, पिकासो को बिलकुल न जंचेगा। वह जो कालिदास जिस सौंदर्य की चर्चा करता है, कुंदन जैसे सुंदर शरीर की, स्वर्ण—काया की, वह पिकासो को नहीं जंचेगा।

मैंने सुना है, एक गांव में ऐसा हुआ कि एक दलाल जो लोगों की शादी करवाने का काम करता था, एक युवक को बहुत तारीफ करके एक स्त्री दिखाने ले गया। उसने उसकी ऐसी तारीफ की थी कि जमीन पर ऐसी सुंदर स्त्री खोजना ही मुश्किल है।

युवक भी बड़े उत्साह में, बड़ी उत्तेजना में था। और कुछ भी खर्च करने को तैयार था शादी के लिए। दलाल ने इतनी बातें बांध दी थीं, दलाल ने ऐसी चर्चा की थी और इतनी कविताएं उद्धृत की थीं, और इतने शास्त्रों का उल्लेख किया था, और स्त्री के रंग—रूप और एक—एक अंग का ऐसा वर्णन किया था कि युवक बिलकुल उत्तेजित था कि शीघ्रता से मुझे ले चलो, दर्शन करने दो।

लेकिन जब युवक ने दर्शन किया, तो उसके हाथ—पैर ढीले पड़ गए। उसने दलाल के कान में कहा कि क्या इस स्त्री की तुम बातें कर रहे थे! इसको तुम सुंदर कहते हो? इसकी आंखें ऐसी भयावनी हैं, जैसे कि भूत—प्रेत हो। यह इतनी लंबी नाक मैंने कभी देखी नहीं। इसके दात सब अस्तव्यस्त हैं। इसको किसी बच्चे को डराने के काम में लाया जा सकता है। तुम इसको सुंदर कह रहे थे?

उस दलाल ने कहा, तो मालूम होता है, तुम दकियानूसी हो। इफ यू डोंट लाइक ए पिकासो, दैट इज नाट माई फाल्ट—और अगर तुम पिकासो के चित्र पसंद नहीं करते, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। पिकासो ने ऐसे ही चित्र बनाए हैं। उसने कहा, मैं तो पिकासो जैसा—नोबल प्राइज पुरस्कृत व्यक्ति—और अगर तुम उसके चित्र में सौंदर्य नहीं देख सकते, तो मेरा कोई कसूर नहीं है। यह स्त्री उसी का प्रतीक है। यह आधुनिक बोध है। यह तुम कहा का दकियानूसी खयाल रखे हुए हो! कालिदास पढ़ते हो? क्या करते हो?

आदमी के भीतर वह जो चैतन्य है, वह भाव निर्मित करता है। भोक्ता, फिर भाव से भोगता है।

ध्यान रहे, अगर आप भाव से भोगते हैं, तो भाव से दुख भी पाएंगे, सुख भी पाएंगे, दोनों पाएंगे। और मजा यह है कि फूल बाहर है। न सुंदर है, न कुरूप है। और यह भाव आपका है।

तो कृष्ण कहते हैं कि सब कार्य—कारण उत्पन्न करने में प्रकृति है हेतु और पुरुष सुख—दुखों के भोक्तापन में अर्थात भोगने में हेतु कहा जाता है।

सुख—दुख तुम पैदा करते हो, वह प्रकृति पैदा नहीं करती। प्रकृति निष्पक्ष है। कहना चाहिए, प्रकृति को पता ही नहीं है कि तुम नाहक सुख—दुख भोग रहे हो।

एक फूल को पता चलता होगा कि तुम बड़े आनंदित हो रहे हो कि तुम बड़े दुखी हो रहे हो? फूल को कुछ पता नहीं चलता। फूल को कुछ लेना—देना नहीं है। फूल अपने तईं खिल रहा है। तुम्हारे लिए खिल भी नहीं रहा है। तुमसे कोई संबंध ही नहीं है। तुम असंगत हो। लेकिन तुम एक भाव 'पैदा कर रहे हो। उस भाव से तुम डावाडोल हो रहे हो। वह भाव तुम्हारे भीतर है।

मेरे एक मित्र हैं। बैठे थे एक दिन गंगा के किनारे मेरे साथ। अचानक बहुत उत्साह में आ गए। मैंने पूछा, क्या हुआ? इशारा किया, दूर घाट पर एक सुंदर स्त्री की पीठ। बोले कि मैं अब न बैठ सकूंगा। बड़ा अनुपात है शरीर में। और बाल देखते हैं! और झुकाव देखते हैं! मैं जरा जाकर, शक्ल देख आऊं। मैंने कहा, जाओ।

वे गए। मैं उन्हें देखता रहा। बड़े आनंदित जा रहे थे। उनके पैर में नृत्य था। कोई खींचे जा रहा है जैसे चुंबक की तरह। और जब वे इस स्त्री के पास पहुंचे, तो भक्क से जैसे ज्योति चली गई। वे एक साधु महाराज थे, वे स्नान कर रहे थे।

लौट आए, बड़े हताश। सब सुख लुट गया। माथे पर हाथ रखकर बैठ गए। मैंने कहा, क्या मामला है? कहने लगे, अगर यहीं बैठा रहता तो ही अच्छा था। साधु महाराज हैं। वह बाल से ः धोखा हुआ। वहा स्त्री थी नहीं।

लेकिन उतनी देर उन्होंने स्त्री का सुख लिया था, जो वहा नहीं थी। वह सुख उनके अपने भीतर था। और अगर वहीं बैठे—बैठे चले जाते, तो शायद कविताएं लिखते। क्या करते, क्या न करते। शायद जिंदगीभर याद रखते वह अनुपात शरीर का, वह झुकाव, वे गोल बांहें, वे बाल, वह गोरा शरीर, वह जिंदगीभर उन्हें सताता। संयोग से बच गए। देख लिया। छुटकारा हुआ। लेकिन दोनों भाव भीतर थे। साधु महाराज को कुछ पता ही नहीं चला कि क्या हो रहा है उनके आस—पास। वे दोनों उनके अपने ही भीतर उठे थे।

सांख्य की धारणा है, वही कृष्ण कह रहे हैं, कि तुम जो भी भोग रहे हो, वह तुम्हारे भीतर उठ रहा है। बाहर प्रकृति निष्पक्ष है। उसे तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं है। तुम चाहे सुख पाओ, तुम चाहे दुख पाओ, तुम ही जिम्मेवार हो।

और अगर यह बात खयाल में आ जाए कि मैं ही जिम्मेवार हूं, तो मुक्त होना कठिन नहीं है। तो फिर ठीक है, जब मैं ही जिम्मेवार हूं? और प्रकृति न तो सुख पैदा करती है और न दुख, मैं ही आरोपित करता हूं। सुख और दुख मेरा आरोपण है प्रकृति के ऊपर; सुख और दुख मेरे सपने हैं, जिन्हें मैं फैलाता हूं, और फैलाकर फिर भोगता हूं। अपने ही हाथ से फैलाता हूं और खुद ही फंसता हूं और भोगता हूं। अगर यह बात खयाल में आनी शुरू हो जाए, तो बड़ी अदभुत क्रांति घट सकती है।

जब आपके भीतर सुख का भाव उठने लगे, तब जरा चौंककर खड़े हो जाना और देखना कि प्रकृति कुछ भी नहीं कर रही है, मैं ही कुछ भाव पैदा कर रहा हूं। आपके चौंकते ही भाव गिर जाएगा। आपके होश में आते ही भाव गिर जाएगा। प्रकृति वहा रह जाएगी, सुख—दुखरहित, पुरुष भीतर रह जाएगा, सुख—दुखरहित।

पुरुष जब प्रकृति की तरफ दौड़ता है और आरोपित होता है, तो सुख—दुख पैदा होते हैं। और जो उस सुख—दुख में पड़ा है, वह द्वंद्व में और अज्ञान में है।

सुख—दुख के बाहर है आनंद। आनंद है पुरुष का स्वभाव; सुख—दुख है आरोपण प्रकृति पर। सुख—दुख है, पुरुष अपने को देख रहा है प्रकृति में, प्रकृति का उपयोग कर रहा है दर्पण की तरह। अपनी ही छाया को देखकर सुखी या दुखी होता है।

कभी—कभी आप भी अपने बाथरूम में अपने को ही आईने में देखकर सुखी—दुखी होते हैं। कोई भी वहां नहीं होता। आईना ही होता है। अपनी ही शक्ल होती है। उसको ही देखकर कभी बड़े सुखी भी होते हैं, गुनगुनाने लगते हैं गीत। जिनके पास गले जैसी कोई चीज नहीं है, वे भी बाथरूम में गुनगुनाने से नहीं बच पाते। अगर कोई ऐसा आदमी मिल जाए, जो बाथरूम में नहीं गुनगुनाता, तो समझना कि योगी है।

बाथरूम में तो लोग गुनगुनाते ही हैं। वे किसको देखकर गुनगुनाने लगते हैं? कौन—सी छवि उनको ऐसा आनंद देने लगती है? अपनी ही। अपने ही साथ मौज लेने लगते हैं।

करीब—करीब प्रकृति के साथ हम जो भी खेल खेल रहे हैं, वह दर्पण के साथ खेला गया खेल है। फिर कभी दुखी होते हैं, कभी सुखी होते हैं, और वह सब हमारा ही खेल है, हमारा ही नाटक है। इसे थोडा बोध में लेना शुरू करें। घटनाएं प्रकृति में घटती हैं, भावनाएं भीतर घटती हैं। और भावनाओं के कारण हम परेशान हैं, घटनाओं के कारण नहीं। और बड़ा मजा यह है कि अगर हम कभी इस परेशानी से मुक्त भी होना चाहते हैं, तो हम घटनाएं छोड्कर भागते हैं, भावनाओं को नहीं छोड़ते।

एक आदमी दुखी है घर में, गृहस्थी में। वह संन्यास ले लेता है, हिमालय चला जाता है। मगर उसे पता ही नहीं है कि वह दुखी इसलिए नहीं था कि वहा पत्नी है, बच्चा है, दुकान है। उसके कारण कोई दुखी नहीं था। वे तो घटनाएं हैं प्रकृति में। दुखी तो वह अपनी भावनाओं के कारण था। भावनाएं तो साथ चली जाएंगी हिमालय में भी। और वहा भी वह उनका आरोपण कर लेगा।

मैंने सुना है, एक आदमी शांति की तलाश में चला गया जंगल। बड़ा परेशान था कि बाजार में बड़ा शोरगुल है, बड़ा उपद्रव है। जंगल में जाकर वृक्ष के नीचे खड़ा ही हुआ था कि एक कौए ने बीट कर दी। सिर पर बीट गिरी। उसने कहा कि सब व्यर्थ हो गया। जंगल में भी शांति नहीं है!

जंगल में भी कौए तो बीट कर ही रहे हैं। और कौआ कोई आपकी खोपड़ी देखकर बीट नहीं कर रहा है। न बाजार में कोई आपकी खोपड़ी देखकर कुछ कर रहा है। कहीं कोई आपकी फिक्र नहीं कर रहा है। घटनाएं घट रही हैं। आप भावनाग्रस्त होकर घटनाओं को पकड़ लेते हैं और जकड़ जाते हैं।

और यह तो दूर कि असली घटनाएं पकड़ती हैं, लोग सिनेमा में बैठकर रोते रहते हैं। लोगों के रूमाल देखें सिनेमा के बाहर निकलकर, गीले हैं। आंसू पोंछ रहे हैं! वह तो सिनेमा में अंधेरा रहता है, इससे बड़ी सुविधा है। सबकी नजर परदे पर रहती है, तो पड़ोस में कोई नहीं देखता। और लोग झांक लेते हैं कि कोई नहीं देख रहा है, अपना आंसू पोंछ लेते हैं।

क्या हो रहा है परदे पर? वहा तो कुछ भी नहीं हो रहा है। वहा तो केवल धूप—छाया का खेल है। और आप इतने परेशान हो रहे हैं! आप धूप—छाया के खेल से भी परेशान हो रहे हैं! अगर कोई एक डाकू किसी का पीछा कर रहा है पहाड़ की कगार पर, तो आप तक की श्वास रुक जाती है। आप सम्हलकर बैठ जाते हैं। रीढ़ ऊंची हो जाती है। श्वास रुक जाती है। जैसे कोई आपका पीछा कर रहा है या आप किसी का पीछा कर रहे हैं। और आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। आप सिर्फ कुर्सी पर बैठे हुए हैं। थोड़ी देर में प्रकाश हो जाएगा।

साख्य शास्त्र ने इसको उदाहरण की तरह लिया है कि जैसे कोई नर्तकी नाचती हो, तो उसके नाच में जो आप रस ले रहे हैं, वह आपके भीतर है। और आपके भीतर रस है, इसलिए नर्तकी नाच रही है, क्योंकि उसको लोभ है कि आपको रस होगा, तो आप कुछ देंगे। अगर आपके भीतर रस चला जाए, नर्तकी नाच बंद कर देगी और चली जाएगी।

सांख्य शास्त्र कहता है कि जिस दिन पुरुष रस लेना बंद कर देता है, प्रकृति उसके लिए समाप्त हो जाती है। प्रकृति हट जाती है परदे से। उसकी कोई जरूरत न रही।

सुख और दुख मेरे प्रक्षेपण, प्रोजेक्शन हैं। मैंने उन्हें आरोपित किया है निष्कलुष प्रकृति पर। प्रकृति का कुछ भी दोष नहीं है। प्रकृति में तो घटनाएं घटती रहती हैं। वे घटती रहेंगी, मैं नहीं रहूंगा तब भी। और मैं नहीं था तब भी। वे घटती ही रहती हैं। उनसे मेरा कुछ लेना—देना नहीं है। लेकिन मैं, यह जो पुरुष है भीतर.।

इस पुरुष शब्द को भी ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह भी वैसा ही अदभुत शब्द है, जैसा प्रकृति। ये दोनों शब्द सांख्यों के हैं। और सांख्य की पकड़ बड़ी वैज्ञानिक है।

प्रकृति का अर्थ है, जो कृति के पूर्व है। और पुरुष का अर्थ है—वह उसी से बना है, जिससे पुर बनता है; नागपुर या कानपुर में जो पुर लगा है, पुरुष उसी शब्द से बना है—पुरुष का अर्थ है, जिसके चारों तरफ नगर बसा है और जो बीच में है। पुर के बीच में जो है, वह पुरुष।

तो सारी प्रकृति पुर है और उसके बीच में जो बसा है, जो निवासी है, वह पुरुष है। सारी घटनाएं नगर में घट रही हैं। और वह बीच में जो बसा है, अगर होशपूर्वक रहे, तो उसे कुछ भी न छुएगा, स्पर्श भी न करेगा। वह कुंवारा ही आएगा और कुंवारा ही चला जाएगा। वह कुंवारा ही है। जब आप उलझ जाते हैं, तब भी वह कुंवारा है, क्योंकि उसे कुछ छू नहीं सकता। निर्दोषता उसका स्वभाव है।

इसलिए कोई पाप पुरुष को छूता नहीं, सिर्फ आपकी भ्रांति है कि छूता है। कोई पुण्य पुरुष को छूता नहीं; सिर्फ भांति है कि छूता है। कोई सुख—दुख नहीं छूता। पुरुष स्वभावत: निर्दोष है।

लेकिन यह जिस दिन होश आएगा, उसी दिन आप सजग होकर जाग जाएंगे और पाएंगे कि टूट गया वह तारतम्य सुख—दुख का। आप भीतर रहते बाहर हो गए। आप पुरुष हो गए; पुर के बीच पुर से अलग हो गए।

प्रकृति और पुरुष की इस दृष्टि को सिर्फ सिद्धांत की तरह, सिद्धांत की भाति समझने से कोई सार नहीं है। इसे थोड़ा जिंदगी में पहचानना। कहां प्रकृति और कहां पुरुष, इसका बोध रखना। और जब प्रकृति में पुरुष आरोपित होने लगे, तो चौंककर खड़े हो जाना और आरोपित मत होने देना।

थोड़ी— थोड़ी कठिनाई होगी; शुरू—शुरू में अड़चन पड़ेगी। पुरानी आदत है। जन्मों—जन्मों की आदत है। पता ही नहीं चलता और आरोपण हो जाता है। फूल देखा नहीं और पहले ही कह देते हैं, सुंदर है; बड़ा आनंद आया। अभी ठीक से देखा भी नहीं था। अभी ठीक से पहचाना भी नहीं था कि सुंदर है या नहीं। कह दिया। रुके थोड़ा। और पुरुष को आरोपित न होने दें। आरोपण है बंधन, और आरोपण से मुक्त हो जाना है मुक्ति।

गीता दर्शन–भाग–6
गीता में समस्त मार्ग है—(प्रवचन—आठवां)
अध्याय—13

सूत्र—

पुरूष प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजानुाणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्यसु।।21।।
उपदृष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता म्हेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेउस्मिन्पुरूषः यरः।।22।।

य एवं वेत्ति पुरूष प्रकृति च गुणै सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।23।।
परंतु प्रकृति में स्थित हुआ ही पुरूष प्रकृति मे उत्पन्न हुए त्रिगुणत्मक सब पदाथों की भोगता है। और इन गुणों का संग ही ड़सके अच्छी— बुरी योनियों में जन्म लेने में कारण है। वास्तव में तो यह पुरूष इस देह में स्थित हुआ भी पर ही है,

केवल साक्षी होने से उपदृष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने मे अनुमंता एवं सबको धारण करने वाला होने से भर्ता? जीवरूय से भोक्ता तथा बह्मादिकों का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानंदघन होने से परमत्मा, ऐसा कहा गया है।

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित कृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नही जन्मता है अर्थात पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि पूरी गीता अर्जुन को उसका स्वधर्म और मार्ग समझाने के लिए कही गई मालूम होती है। क्या कृष्ण और अर्जुन के बीच गुरु—शिष्य का संबंध है? यदि ही, तो श्रीकृष्ण अर्जुन से उन अनेक मार्गों की अनावश्यक बातें क्यों करते हैं, जिन पर अर्जुन को चलना ही नहीं है
इस संबंध में पहली तो यह बात जान लेनी जरूरी है कि जिन मार्गों पर आपको नहीं चलना है, उन पर भी चलने का झुकाव आपके भीतर हो सकता है। और वह झुकाव खतरनाक है। और वह झुकाव आपके जीवन, आपकी शक्ति को, अवसर को खराब कर सकता है।

तो कृष्ण उन सभी मार्गों की बात कर रहे हैं अर्जुन से, जिन पर चलने के लिए किसी भी मनुष्य के मन में झुकाव हो सकता है। मनुष्य मात्र जिन मार्गों पर चलने के लिए उत्सुक हो सकता है, उन सभी की बात कर रहे हैं।

इस बात के करने का फायदा है। इन सारे मार्गों को अर्जुन समझ ले, तो उसे खयाल में आना कठिन न रह जाएगा कि कौन—सा मार्ग उसके सर्वाधिक अनुकूल है। और जिसे आप नहीं जानते, उससे खतरा है; और जिसे आप जान लेते हैं, उससे खतरा समाप्त हो जाता है।

सभी रास्तों के संबंध में जान लेने के बाद जो निर्णय होगा, वह ज्यादा सम्यक होगा। इसलिए कृष्ण सभी रास्तों की बात कर रहे हैं। इस अर्थ में, कृष्ण का वक्तव्य, उनका उपदेश बुद्ध, महावीर, मोहम्मद और जीसस के वक्तव्य से बहुत भिन्न है।

जीसस एक ही मार्ग की बात कर रहे हैं। महावीर एक ही मार्ग की बात कर रहे हैं। बुद्ध एक ही मार्ग की बात कर रहे हैं। कृष्ण सभी मार्गों की बात कर रहे हैं। और यह सभी मार्गों की बात जान लेने के बाद जब कोई चुनाव करता है, तो चुनाव ज्यादा सार्थक, ज्यादा अभिप्रायपूर्ण होगा। और उस मार्ग पर सफलता भी ज्यादा आसान होगी।

बहुत बार तो कोई मार्ग शुरू में आकर्षक मालूम होता है, लेकिन पूरे मार्ग के संबंध में जान लेने पर उसका आकर्षण खो जाता है। बहुत बार कोई मार्ग शुरू में बहुत कंटकाकीर्ण और कठिन मालूम पड़ता है, लेकिन मार्ग के संबंध में पूरी बात समझ लेने पर सुगम हो जाता है।

इसलिए कृष्ण सारी बात खोलकर रखे दे रहे हैं। अर्जुन के माध्यम से जैसे वे पूरी मनुष्यता से ही बात कह रहे हैं।

मनुष्य जिस—जिस मार्ग से परमात्मा तक पहुंच सकता है, वे सभी मार्ग अर्जुन के सामने कृष्ण खोलकर रख रहे हैं। इन सभी मार्गों पर अर्जुन चलेगा नहीं। चलने की कोई जरूरत भी नहीं है। लेकिन सभी को जानकर जो मार्ग वह चुनेगा, वह मार्ग उसके लिए सर्वाधिक अनुकूल होगा।

दूसरी बात, कृष्ण और अर्जुन के बीच जो संबंध है, वह गुरु और शिष्य का नहीं, दो मित्रों का है। दो मित्रों का संबंध और गुरु—शिष्य के संबंध में बड़े फर्क हैं। और इसीलिए कृष्ण गुरु की भाषा में नहीं बोल रहे हैं, एक मित्र की भाषा में बोल रहे हैं। वे सभी बातें अर्जुन को कह रहे हैं, जैसे वे अर्जुन को परसुएड कर रहे हैं, फुसला रहे हैं, राजी कर रहे हैं। उसमें आदेश नहीं है, उसमें आज्ञा नहीं है। एक मित्र एक दूसरे मित्र को राजी कर रहा है, समझा रहा है। उसमें कृष्ण ऊपर खड़े होकर अर्जुन को आज्ञा नहीं दे रहे हैं; साथ खड़े होकर अर्जुन से चर्चा कर रहे हैं। यह दो गहरे मित्रों के बीच संवाद है।

निश्चित ही, कृष्ण गुरु हैं और अर्जुन शिष्य है, लेकिन उनके बीच संबंध दो मित्रों का है। इस मित्रता के संबंध के कारण गीता में जो वार्तालाप है, जो डायलाग है, वह न कुरान में है, न बाइबिल में है, वह न धम्मपद में है, न जेन्दअवेस्ता में है।

डायलाग, वार्तालाप, दो मित्र निकट से बातें कर रहे हैं। न अर्जुन को भयभीत होने की जरूरत है कि वह गुरु से बोल रहा है, न गुरु को जल्दी है कि वह मार्ग पर लगा दे अर्जुन को। दो मित्रों की चर्चा है। इस मित्रता की चर्चा से जो नवनीत निकलेगा, उसका बड़ा मूल्य है।

गहरे में तो अर्जुन शिष्य है, उसे इसका कोई पता नहीं। वह पूछ रहा है, प्रश्न कर रहा है, जिज्ञासा कर रहा है, वे शिष्य के लक्षण हैं। लेकिन वे लक्षण अचेतन हैं।

अर्जुन ऐसे ही पूछ रहा है, जैसे एक मित्र से मुसीबत में सलाह ले रहा है। उसे पता नहीं है कि वह शिष्य होने के रास्ते पर चल पड़ा। सच तो यह है कि जो उसने पूछा था, उसने कभी सोचा भी न होगा कि उसके परिणाम में जो कृष्ण ने कहा, वह कहा जाएगा। अर्जुन ने तो इतना ही पूछा था कि मेरे प्रियजन हैं, संबंधी हैं, मित्र हैं, नाते —रिश्तेदार हैं, सभी

मेरे परिवार के लोग हैं, इस तरफ भी, उस तरफ भी। हम सब बंटकर खड़े हैं, एक बड़ा कुटुंब। उस तरफ मेरे गुरु हैं, पूज्य भीष्म हैं। यह सब संघर्ष पारिवारिक है; यह हत्या अकारण मालूम पड़ती है। ऐसे राज्य को पाकर भी मैं क्या करूंगा, जिसमें मेरे सभी संबंधी और मित्र नष्ट हो जाएं? तो ऐसा राज्य तो त्याग देने योग्य लगता है।

अर्जुन के मन में एक वैराग्य का उदय हुआ है। वह उदय भी मोह के कारण ही हुआ है। अगर वह वैराग्य मोह के कारण न होता, तो कृष्ण को गीता कहने की कोई जरूरत न होती, अर्जुन विरागी हो गया होता। जो वैराग्य मोह के कारण पैदा होता है, वह वैराग्य है ही नहीं। वह केवल वैराग्य की भाषा बोल रहा है। इस दुविधा के कारण गीता का जन्म हुआ।

अर्जुन कहता तो यह है कि मेरे मन में वैराग्य आ रहा है, यह सब छोड़ दूं; यह सब असार है। लेकिन कारण जो बता रहा है, कारण यह कि मेरे प्रियजन, मेरे मित्र, मेरे संबंधी, मेरे गुरु, ये सब मरेंगे, कटेंगे। वैराग्य का जो कारण है, वह मोह है।

यह असंभव है। कोई भी वैराग्य मोह से पैदा नहीं हो सकता। वैराग्य तो पैदा होता है मोह की मुक्ति से। अर्जुन की यह जो कठिनाई है, इस दुविधा के कारण पूरी गीता का जन्म हुआ।

अर्जुन को यह पता भी नहीं है कि उसका जो वैराग्य है, वह झूठा है। उसकी जड़ में मोह है। और जहां मोह की जड़ हो, वहा वैराग्य के फूल नहीं लग सकते। मोह की जड़ में कैसे वैराग्य के फूल लग सकते हैं? अर्जुन परेशान तो मोह से है।

समझें, अगर उसके रिश्तेदार न कटते होते, कोई और कट रहा होता, तो अर्जुन बिलकुल फिक्र न करता। वह घास—पत्तियों की तरह तलवार से काट देता। इसके पहले भी उसने बहुत बार लोगों को काटा है, लड़ा है, झगड़ा है, लेकिन कभी उसके मन में वैराग्य नहीं उठा। क्योंकि जिनको काट रहा था, उनसे कोई संबंध न था। वह पुराना धनुर्धर है, शिकार उसे सहज है, युद्ध उसके लिए खेल है।

आज जो तकलीफ खड़ी हो रही है, वह तकलीफ लोग कट जाएंगे, इससे नहीं हो रही है। अपने लोग कट जाएंगे! वह अपनत्व, ममत्व के कारण तकलीफ हो रही है। देखता है अपने ही परिवार को दोनों तरफ बंटा हुआ, जिनके साथ बडा हुआ, मित्र की तरह खेला, जो अपने ही भाई है, अपने ही गुरु है, जिन्होंने सिखाया! उस तरफ द्रोण खड़े हैं, जिनसे सारी कला सीखी। आज उन्हीं की हत्या करने को उन्हीं की कला का उपयोग करना पड़ेगा। आज उनको ही काटना होगा, जिनके चरणों पर कल सिर रखा था। इससे अड़चन आ रही है। अगर इनकी जगह कोई भी होते अ ब स, अर्जुन ऐसे काट देता, जैसे घास काट रहा है।

उसे कोई अहिंसा का भाव पैदा नहीं हो रहा है, वह किसी वैराग्य को उपलब्ध नहीं हो रहा है, सिर्फ मोह दुख दे रहा है। अपनों को ही काटना कष्ट दे रहा है। इसलिए गीता का जन्म हुआ। अर्जुन का वैराग्य वास्तविक नहीं है। अगर अर्जुन का वैराग्य वास्तविक हो, तो वह कृष्ण से पूछेगा भी नहीं।

यह भी थोड़ा समझ लेना चाहिए। जब हमारे भीतर झूठी चीजें होती हैं, तो हम किसी से पूछते हैं।

एक युवक मेरे पास आया और वह कहने लगा कि मैं आपसे पूछने आया हूं क्या मैं संन्यास ले लूं? मैंने उस युवक से कहा कि अगर मैं कहूं कि मत लो, तो तुम क्या करोगे? वह बोला कि मैं नहीं लूंगा। तो मैंने कहा कि जो संन्यास किसी के पूछने पर निर्भर करता हो—कि कोई कह दे कि ले लो, कोई कह दे कि न ले लो, और तुम उसकी मान लोगे—वह संन्यास तुम्हारे भीतर कहीं गहरे में उठ नहीं रहा है।

बुद्ध किसी से पूछने नहीं जाते हैं। महावीर किसी से पूछने नहीं जाते हैं। जीसस किसी से पूछने नहीं जाते हैं कि मैं ऐसा कर लूं? यह वैराग्य का उदय हो रहा है, तो अब मैं क्या करूं?

अर्जुन पूछता है। अर्जुन के भीतर कोई वैराग्य नहीं है, सिर्फ मोह—ममता है। उसका वैराग्य झूठा है। नहीं तो वह कृष्ण से कहता कि मैं जाता हूं बात खतम हो गई। मुझे दिखाई पड गया कि यह सब व्यर्थ है और असार है। फिर कृष्ण भी न समझाने की कोशिश करते, न समझाने का कोई अर्थ था।

अर्जुन दुविधा में है, कहें कि सीजोफ्रेनिक है, बंटा हुआ है। आधा मन तो लड़ने के लिए आतुर है, धन के लिए आतुर है; राज्य के लिए आतुर है। वह भी मोह है। और आधा मन इस हत्या से भी भयभीत हो रहा है अपनों को ही मारने की। वह भी मोह है। और इन दोनों से मिलकर वैराग्य की वह बातें कर रहा है, जो कि बिलकुल झूठी हैं, क्योंकि इन दोनों से वैराग्य का कोई भी संबंध नहीं है।

इसे थोड़ा आप ठीक से समझ लेना। बहुत बार आप भी वैराग्य की बातें करते हैं। लेकिन ध्यान रखना कि आपका वैराग्य मोह से तो पैदा नहीं हो रहा है।

किसी आदमी की पत्नी मर जाती है और वह विरागी हो जाता है। और कल तक उसको वैराग्य का कोई खयाल नहीं था। किसी आदमी का दिवाला निकल जाता है और वह संन्यास के लिए उत्सुक हो जाता है। कल तक उसे संन्यास का क्षणभर भी खयाल नहीं था। अब दिवाले से निकलने वाले संन्यास की कितनी कीमत हो सकती है, थोड़ा समझ लेना। और पत्नी के मरने से जो वैराग्य निकलता है, वह किस मूल्य का होगा? जुए में हार जाने से कोई संन्यासी हो जाएगा, तो उस संन्यास में गंध तो जुए की ही होगी। वह संन्यास जुए का ही रूप होगा, क्योंकि बीज में तो जुआ था। अगर यही आदमी जुए में जीत गया होता, तो? यह पत्नी न मरी होती, तो? यह दिवाला न निकला होता, तो? तो इस आदमी का वैराग्य से कोई लेना—देना न था।

तो जब आपके मन में ऐसा कोई वैराग्य उठता हो, जिसकी जड़ में मोह हो, तो आप समझना कि यह वैराग्य झूठा है और इस वैराग्य के आधार पर आप परमात्मा तक नहीं पहुंच सकेंगे।

पर अर्जुन को पता नहीं है कि वह क्या पूछ रहा है।

ध्यान रहे, जब आप किसी गुरु से पूछते हैं कुछ, तो जरूरी नहीं है कि जो आप पूछते हैं, वही आपकी मौलिक जिज्ञासा हो। आपका प्रश्न तो बहुत ऊपरी होता है। क्योंकि भीतरी प्रश्न भी खोजना अति कठिन है। लेकिन गुरु आपके ऊपरी प्रश्न से आपके भीतरी प्रश्नों को उठाना शुरू करता है। वह तो सिर्फ उसको एक खूंटी बना लेता है; और फिर आपके भीतर प्रवेश करने लगता है; और जो छिपा है, उसे बाहर लाने लगता है।

अर्जुन ने कुछ पूछा है, कृष्ण कुछ कह रहे हैं। और अर्जुन धीरे— धीरे उत्सुक हो गया उनकी बात सुनने में। वह भूल ही गया युद्ध, अपने—जन, वैराग्य, वह बात भूल गया। वह कुछ और ही बातें पूछने लगा। कृष्ण ने उस मौके का बहाना, लाभ उठाकर, अर्जुन के मन को खोल दिया उसकी भीतर की सारी संभावनाओं के प्रति। अर्जुन अनजाना शिष्य है। जान में तो वह मित्र है। कृष्ण जानकर गुरु हैं। और अर्जुन के प्रति मित्रता का जो भाव है, वह केवल अर्जुन की मित्रता के उत्तर में है।

अर्जुन अनजाना शिष्य है और कृष्ण जानकर गुरु हैं। लेकिन वे यह भी जानते हैं कि अगर वे गुरु की भाषा में बोलें, तो अर्जुन को पीड़ा होगी, उसके अहंकार को चोट लगेगी। वह तो मित्र ही मानकर जीया है। अगर मित्र न माना होता, तो उनको सारथी बनने के लिए राजी भी नहीं करता। बात ही बेहूदी है कि उनसे कहता कि तुम मेरे घोड़ों को सम्हाली और मेरे रथ के सारथी हो जाओ! वे बचपन के साथी हैं, दोस्त हैं। गहरी उनकी मित्रता है।

अर्जुन के मन को चोट न पहुंचे, इसलिए कृष्ण बात करते हैं मित्र की भाषा में ही। और धीरे— धीरे उस मित्र की भाषा में ही गुरु का। संदेश भी डालते जाते हैं। और जैसे—जैसे अर्जुन राजी होता जाता है, वैसे—वैसे वे गुरु होते जाते हैं। जैसे ही अर्जुन बंद होता है और डरता है, वैसे ही वे मित्र हो जाते हैं। जैसे ही अर्जुन राजी होता है, खुलता है, ग्राहक होता है, वे बहुत ऊंचाई पर उठ जाते हैं। उस ऊंचाई पर जहां कि वे परमात्मा हैं; वहां से बोलने लगते हैं।

इसलिए कृष्ण के इन वचनों में कई तलों के वचन हैं। कभी वे ठीक मित्र की तरह बोल रहे हैं। कभी वे गुरु की तरह बोल रहे हैं। कभी वे ठीक परमात्मा की तरह बोल रहे हैं। आखिरी ऊंचाई से लेकर साधारण जीवन के तल तक कृष्ण बोल रहे हैं। इसलिए गीता बहुत तलों पर है। और अर्जुन पर निर्भर है; अर्जुन जब जिस ऊंचाई पर उठ सकता है, उस ऊंचाई की वे बात करते हैं।

सभी मार्गों की उन्होंने अर्जुन के सामने बात रख दी है, ताकि अर्जुन सहज ही चुनाव कर ले। और अर्जुन यह नहीं पूछ रहा है कि आप मुझे मार्ग दे दो। तो कृष्ण एक ही मार्ग दे सकते थे। अर्जुन तलाश में है। अभी उसे यह भी पक्का पता नहीं है कि वह क्या खोज रहा है। अभी उसे यह भी मालूम नहीं है कि वह क्या चाहता है। तो कृष्ण सारे मार्ग खोलकर रखे दे रहे हैं। शायद इन मार्गों के संबंध में बात करते—करते ही कोई मार्ग अर्जुन के लिए आकृष्ट कर ले, चुंबक बन जाए और अर्जुन खिंच जाए।

और फिर इस बहाने, अर्जुन के बहाने, पूरी मनुष्यता के लिए यह संदेश हो जाता है। क्योंकि ऐसा कोई भी मार्ग नहीं है, जिस पर कृष्ण ने गीता में मूल बात न कर ली हो। तो सभी मार्गों के लोग अपने योग्य बात गीता में पा सकते हैं।

इसका फायदा भी है, इसका नुकसान भी है। इसका फायदा कम हुआ, नुकसान ज्यादा हुआ। क्योंकि आदमी कुछ ऐसा है कि फायदा लेना जानता ही नहीं, सिर्फ नुकसान लेना ही जानता है।

कृष्ण ने सारे मार्ग गीता में कह दिए हैं। और जब वे एक मार्ग के संबंध में बोलते हैं, तो बाकी के संबंध में भूल जाते हैं। और उस मार्ग को उसकी पूरी ऊंचाई पर उठा देते हैं। इसलिए उन्होंने सभी मार्गों की प्रशंसा की है। कभी उन्होंने भक्ति को कहा श्रेष्ठ, कभी उन्होंने ज्ञान को कहा श्रेष्ठ, कभी उन्होंने कर्म को कहा श्रेष्ठ।

अब यह बड़ी उलझन वाली बात है। क्योंकि अगर भक्ति श्रेष्ठ है, तो साधारण बुद्धि का आदमी कहेगा, फिर कर्म को श्रेष्ठ नहीं कहना चाहिए; फिर ज्ञान को श्रेष्ठ नहीं कहना चाहिए। और अगर ज्ञान श्रेष्ठ है, तो फिर भक्ति को श्रेष्ठ नहीं कहना चाहिए। और कृष्ण इसकी फिक्र ही नहीं करते। वे जिस मार्ग की बात करते हैं, उसको उसकी श्रेष्ठता तक पहुंचा देते हैं। उसकी ऊंचाई, उसकी आखिरी गरिमा, उसका आखिरी गौरीशंकर का शिखर खोल देते हैं। और जब दूसरे मार्ग की बात करते हैं, तो उसका गौरीशंकर खोलते हैं। तब वे भूल ही जाते हैं कि एक क्षण पहले उन्होंने ज्ञान को श्रेष्ठ कहा था, अब वे भक्ति को श्रेष्ठ कह रहे हैं।

यह इस कारण, यह किया तो कृष्ण ने इसलिए ताकि अर्जुन को प्रत्येक मार्ग का जो श्रेष्ठतम है, प्रत्येक मार्ग में जो गहनतम गहराई है, उसका उसे खयाल दिला दें, फिर चुनाव उसके हाथ में है।

यह वक्तव्य कि ज्ञान श्रेष्ठ है, यह वक्तव्य कि भक्ति श्रेष्ठ है, तुलनात्मक नहीं है। यह ऐसा ही है, जैसे आपने गुलाब का फूल देखा और आपने कहा किं अदभुत! इससे सुंदर मैंने कुछ भी नहीं देखा। फिर आपने रात आकाश में तारे देखे और आपने कहा, अदभुत! इससे सुंदर मैंने कुछ भी नहीं देखा। और फिर एक दिन सुबह आपने सप्तार का गर्जन सुना और सागर की लहरें चट्टानों से टकराती देखीं और आपने कहा, इससे सुंदर मैंने कभी कुछ नहीं देखा।

ये कोई तुलनात्मक वक्तव्य नहीं हैं। यह उस क्षण में आपकी भाव—दशा को पूरा पकड़ लिया फूल ने और फूल इस जगत का सर्वाधिक श्रेष्ठतम सौंदर्य हो गया। और दूसरे क्षण में इसी भांति चांद ने पकड़ लिया। और तीसरे क्षण में सागर ने पकड़ लिया। ये तीनों बातों में कोई विरोध नहीं है और कोई तुलना नहीं है। ये सिर्फ इस बात की खबर देते हैं कि एक ऐसी भी भाव—दशा है, जब फूल से जीवन का श्रेष्ठतम अनुभव होता है। उसी भाव—दशा में कभी चांद—तारों से भी जीवन के श्रेष्ठतम सौंदर्य की प्रतीति हो जाती है। और कभी उसी भाव—दशा का रस, संगीत, सागर की लहरों से भी बंध जाता है।

कबीर एक ढंग से उसी शिखर पर पहुंच जाते हैं। बुद्ध दूसरे ढंग से उसी शिखर पर पहुंच जाते हैं। महावीर तीसरे ढंग से उसी शिखर पर पहुंच जाते हैं। वह शिखर एक है। वह भाव—दशा एक है। कृष्ण इस तरह बात कर रहे हैं कि उसमें कोई तुलना नहीं है। एक—दूसरे को नीचा दिखाने का भाव नहीं है।

एक मित्र ने मुझसे प्रश्न पूछा है कि जब आप कृष्ण पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता है कि जैसे कृष्ण श्रेष्ठतम हैं। और जब आप लाओत्से पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता है, लाओत्से का कोई मुकाबला नहीं। जब आप महावीर पर बोलते हैं, तो ऐसा लगता है कि बाकी सब फीके हैं, महावीर ही सब कुछ हैं।

वह बिलकुल आपको ठीक लगता है। लेकिन उस लगने का आप साफ मतलब समझ लेना, नहीं तो नुकसान होगा; आप कनफ्यूजन में पड़ेंगे।

जब मैं लाओत्से पर बोल रहा हूं तो लाओत्से के अतिरिक्त मेरे लिए कोई भी नहीं है। तो जब मैं कहता हूं कि लाओत्से अद्वितीय है, तो उसका यह मतलब नहीं है कि वह महावीर से श्रेष्ठ है या बुद्ध से श्रेष्ठ है। उसका कुल मतलब यह है कि वह अपने आप में एक गौरीशंकर है। उसकी कोई तुलना नहीं। और न ही महावीर की कोई तुलना है, और न बुद्ध की, और न कृष्ण की। लेकिन आम आदमी तुलना करता है, कंपेरिजन करता है, और उससे तकलीफ में पडता है।

गीता के साथ बड़ा अन्याय हुआ है। शंकर एक व्याख्या लिखते हैं। वह व्याख्या भी अन्यायपूर्ण है, क्योंकि शंकर ज्ञान को श्रेष्ठतम मानते हैं। वह उनकी मान्यता है। उस मान्यता में कोई भूल नहीं है। ज्ञान श्रेष्ठ है। किसी और से श्रेष्ठ नहीं है तुलनात्मक अर्थों में, अपने आप में श्रेष्ठ है। दूसरे से कोई संबंध नहीं है। शंकर की मान्यता है कि ज्ञान श्रेष्ठ है। यह मान्यता बिलकुल ठीक है और सही है। फिर वे इसी मान्यता को पूरी गीता पर थोप देते हैं।

तो कुछ तो वचन ठीक हैं, जिन में कृष्ण ज्ञान को श्रेष्ठ कहते हैं। वहां तो शंकर को कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन जहां कृष्ण भक्ति को श्रेष्ठ कहते हैं और कर्म को श्रेष्ठ कहते हैं, वहां शंकर को अड़चन आती है। पर शंकर बहुत कुशल तार्किक हैं। वे रास्ता निकाल लेते हैं। वे शब्दों में से भूलभुलैया खड़ी कर लेते हैं। वे शब्दों के नए अर्थ कर लेते हैं। वे शब्दों की ऐसी व्याख्या जमा देते हैं कि पूरी गीता शंकर की व्याख्या में ज्ञान की गीता हो जाती है। वह अन्याय है।

रामानुज भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। बिलकुल ठीक है। कुछ गलती नहीं है। लेकिन वे भक्ति के सूत्रों के आधार पर सारी गीता पर भक्ति को आरोपित कर देते हैं। वह अन्याय है।

तिलक कर्म को श्रेष्ठ मानते हैं, तो पूरी गीता पर कर्म को आरोपित कर देते हैं। वह अन्याय है। अपने आप में बात बिलकुल ठीक है।

कर्म श्रेष्ठ है, किसी और से नहीं, श्रेष्ठ है इसलिए कि उससे भी परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है। भक्ति श्रेष्ठ है, किसी और से नहीं, श्रेष्ठ है इसलिए कि वह भी परमात्मा का द्वार है। ज्ञान श्रेष्ठ है, किसी और से नहीं; वह भी वहीं पहुंचा देता है, जहां भक्ति और कर्म पहुंचाते हैं।

और जो व्यक्ति जिस मार्ग से चलता है, स्वभावत: उसे वह श्रेष्ठ लगेगा। क्योंकि उससे वह चलता है, उससे वह पाता है, उससे उसे अनुभव होता है। और दूसरे मार्ग से जो चलता है, उसका उसे कोई भी पता नहीं है।

कृष्ण ने सभी मार्गों की बात कही है।

एक मित्र ने मुझसे यह भी पूछा है कि शंकर ने एक व्याख्या की, रामानुज ने दूसरी व्याख्या की, वल्लभ ने तीसरी व्याख्या की, निम्बार्क ने चौथी व्याख्या की,

तिलक ने पांचवीं की, गांधी ने की, विनोबा ने की; कोई एक हजार व्याख्याकार गीता के हुए जाने—माने, गैर जाने—माने तो और भी बहुत हैं। मुझसे पूछा है कि आप जो व्याख्या कर रहे हैं, इसमें और उनकी व्याख्या में क्या फर्क है?

इसमें बहुत फर्क है। मेरा कोई संप्रदाय नहीं है। मुझे गीता पर कुछ भी आरोपित नहीं करना है। न मुझे आरोपित करना है ज्ञान, न मुझे आरोपित करनी है भक्ति, न मुझे आरोपित करना है कर्म। मुझे पूरी गीता पर कोई चीज

आरोपित नहीं करनी है। पूरी गीता पर जो भी कुछ आरोपित करने की कोशिश करेगा, वह कृष्ण के साथ अन्याय कर रहा है।

मुझे तो इंच—इंच गीता जो कहती है, उसको ही प्रकट कर देना है, इसकी बिना फिक्र किए कि आगे—पीछे उसके विपरीत, उसके विरोध में भी कुछ कहा गया है। मुझे कोई सिस्टम, कोई व्यवस्था नहीं बिठानी है। लेकिन कनफ्जूजिंग होगी, मेरी बात में बड़ा भ्रम पैदा होगा। वह वैसा ही भ्रम होगा, जैसा कृष्ण की बात में है। क्योंकि कभी मैं कहूंगा, ज्ञान श्रेष्ठ है। जब गीता ज्ञान को श्रेष्ठ कहेगी, तो मैं भी कहूंगा। और जब गीता भक्ति को श्रेष्ठ कहेगी, तो मैं भी कहूंगा। मैं गीता के साथ बहा।। मैं अपने साथ गीता को नहीं बहाऊंगा।

मेरी कोई धारणा नहीं है, जो मुझे गीता पर आरोपित करनी है। अगर मेरी कोई धारणा हो, जो गीता पर मुझे आरोपित करनी है, तो इसको मैं व्यभिचार मानता हूं। यह उचित नहीं है।

और इसीलिए मुझे सुविधा है कि मैं गीता पर बोलूं तो मुझे तकलीफ नहीं है। मैं कुरान पर बोलूं तो मुझे तकलीफ नहीं है। मैं बाइबिल पर बोलूं तो मुझे तकलीफ नहीं है। क्योंकि मुझे किसी चीज पर कुछ आरोपित नहीं करना है।

मैं मानता हूं बाइबिल अपने में इतना अदभुत फूल है कि मैं उसको आपके सामने खोल सकूं तो काफी, उसकी सुगंध आपको मिल जाए, बहुत है। उस पर कुछ थोपने की जरूरत नहीं है।

इसलिए जो लोग मेरे बहुत—से वक्तव्य पढ़ते हैं, उनको लगता है, उनमें मैं बड़ा कंट्राडिक्यान है। लगेगा, विरोध लगेगा। कभी मैं यह कहा हूं और कभी मैं यह कहा हूं और कभी मैं यह कहा हूं। निश्चित ही, कभी मैं गुलाब की तारीफ कर रहा था। और कभी मैं चांद—तारों की तारीफ कर रहा था। और कभी मैं सागर की लहरों की तारीफ कर रहा था। उन तारीफों में फर्क होगा। क्योंकि गुलाब गुलाब है। चांद—तारे चांद—तारे हैं। लहरें लहरें हैं। और जगत विराट है।

जो व्यक्ति इन सब के बीच तालमेल बिठालने की कोशिश करेगा, वह मुश्किल में पड़ जाएगा, अड़चन में पड़ जाएगा। तालमेल बिठालने की जरूरत ही नहीं है। आपको इस सब में जो ठीक लग जाए, उस पर चलने की जरूरत है। फिर बाकी बातों को आप छोड़ दें। गीता ज्ञान को भी कहेगी, कर्म को भी कहेगी, भक्ति को भी कहेगी। आप फिक्र छोड़े कि तीनों में कौन श्रेष्ठ है। जो आपको श्रेष्ठ लग जाए, आप उस पर चल पड़े।

लेकिन कुछ लोग हैं, जो चलते नहीं हैं, जो बैठकर इस चर्चा में जीवन व्यतीत करते हैं कि क्या श्रेष्ठ है। ज्ञान श्रेष्ठ है? भक्ति श्रेष्ठ है? कर्म श्रेष्ठ है? पूरी जिंदगी लगा देते हैं। इनके मस्तिष्क विक्षिप्त हैं। ये होश में नहीं हैं कि ये क्या कर रहे हैं।

अर्जुन के सामने कृष्ण ने सब मार्ग खोलकर रख दिए हैं। और हर मार्ग को उन्होंने इस तरह से प्रस्तावित किया है, जैसा उस मार्ग को मानने वाला प्रस्तावित करेगा, पूरी उसकी शुद्धता में। उस मार्ग को प्रस्तावित करते समय वे उसी मार्ग के साथ एक हो गए हैं।

कृष्ण तो जानकर गुरु हैं। और बहुत बार ऐसा होता है कि आप जानकर शिष्य नहीं होते। हो भी नहीं सकते। क्योंकि शिष्य को इतना भी होश कहां है कि वह क्या है, इसका पता लगा ले।

इजिप्त के पुराने शास्त्रों में कहा गया है कि शिष्य कभी गुरु को नहीं खोज सकता। शिष्य खोजेगा कैसे? उसके पास मापदंड कहां है? वह कैसे परखेगा कि यही है गुरु? और कैसे परखेगा कि यही गुरु मेरे लिए है? कैसे जानेगा कि यह आदमी ठीक है या गलत है? क्या है उसके पास मार्ग, दिशासूचक यंत्र जिससे पहचानेगा कि इस आदमी के पीछे चलकर मैं पहुंच जाऊंगा? शिष्य कैसे गुरु को खोजेगा?

इजिप्त की पुरानी किताबें कहती हैं कि शिष्य कभी गुरु को नहीं खोजता। इसका यह मतलब नहीं है कि शिष्य को खोज छोड़कर घर बैठ जाना चाहिए। खोजना तो उसे चाहिए, हालांकि वह खोज न सकेगा। लेकिन खोजने के उपक्रम में गुरुओं के लिए उपलब्ध हो जाएगा। कोई गुरु उसको खोज लेगा।

हमेशा गुरु ही शिष्य को खोजता है। और गुरु खोजने नहीं निकलता, शिष्य खोजने निकलता है। लेकिन अनेक गुरुओं के पास से गुजरते—गुजरते कोई गुरु उसे पकड़ लेता है। लेकिन तब भी गुरु को ऐसी ही व्यवस्था करनी पड़ती है कि शिष्य को लगे कि उसने ही चुना है। ये जरा जटिलताएं हैं।

गुरु को ऐसा इंतजाम करना पड़ता है कि जैसे शिष्य ने ही उसे चुना है। क्योंकि शिष्य के अहंकार को यह बात बरदाश्त के बाहर होगी कि गुरु ने उसे चुन लिया। वह भाग खड़ा होगा। यह पता चलते ही कि गुरु ने उसे चुना है, वह भाग जाएगा। तो गुरु उसे इस ढंग से व्यवस्था देगा कि उसे लगे कि उसने ही गुरु को चुना है। और अगर कभी किसी दिन गुरु को उसे अलग भी करना होगा, तो गुरु ऐसी ही व्यवस्था देगा कि शिष्य समझेगा, मैंने ही गुरु को छोड़ दिया है।

गुरु का काम जटिल है, और गहन है, और गुह्य है। लेकिन हमेशा गुरु ही आपको चुनता है, क्योंकि उसके पास दृष्टि है। वह जानता है। वह आपके भीतर झांक सकता है। वह आपका आगा—पीछा देख सकता है। आप क्या कर सकते हैं, क्या हो सकते हैं, इसकी उसके पास देखने की दूरी, क्षमता, निरीक्षण है। शिष्य कैसे खोजेगा?

मेरे पास लोग आते हैं। पश्चिम में बहुत दौड़ है; और पश्चिम से युवक निकलते हैं गुरु की तलाश में; सारी जमीन को खोज डालते हैं। कभी इस मुल्क में ऐसी दौड़ थी। वह खो गई। यह मुल्क बहुत दिन पहले अध्यात्म की दिशा में मर चुका है। जब बुद्ध जिंदा थे, तब इस मुल्क में भी ऐसी दौड़ थी। लोग एक कोने से दूसरे कोने तक घूमते थे गुरु की तलाश में, कि कोई चुंबक मिल जाए, जो खींच ले। सारी दुनिया से हिंदुस्तान उस समय भी लोग आते थे।

अब फिर पश्चिम में एक दौड़ शुरू हुई है। पश्चिम के युवक और युवतियां खोजते निकल रहे हैं, गुरु कहां है!

मेरे पास बहुत लोग आते हैं। मैं उनसे कहता हूं कि तुम खोज न पाओगे गुरु को, लेकिन खोज मत बंद करो। खोज जारी रखो, ताकि तुम अवेलेबल, उपलब्ध रहो। घूमते रहो। कोई गुरु तुम्हें चुन लेगा। और तुम्हारी अगर इतनी ही तैयारी हुई कि तुम किसी गुरु से चुने जाने के लिए राजी हो गए, और किसी गुरु की धारा में बहने को राजी हो गए, इतनी तुम्हारी तैयारी रही, तो तुम्हारे जीवन में रूपांतरण आसान है।

अर्जुन के सामने कृष्ण सारे मार्ग रखे दे रहे हैं। यह सिर्फ मार्ग रखना ही नहीं है; मार्ग समझा रहे हैं और यहां ऊपर से कृष्ण की चेतना अर्जुन में झांककर भी देखती जा रही है। कौन—सा मार्ग उसे जमता है! कौन—से मार्ग में वह ज्यादा रस लेता है! कौन—से मार्ग

में ज्यादा सवाल उठाता है! कौन—से मार्ग में उसके भीतर तरंगें उठने लगती हैं! कौन—से मार्ग में वह समाधिस्थ होकर सुनने लगता है! कौन—से मार्ग में ऊब जाता है, जम्हाई लेता है! कौन—से मार्ग से उसका तालमेल बैठता है; कौन—से मार्ग से कोई तालमेल नहीं बैठता! यह सब वे देखते जा रहे हैं। इस सारी चर्चा के साथ—साथ अर्जुन का निरीक्षण चल रहा है। एक अर्थ में यह अर्जुन का मनोविश्लेषण है।

फ्रायड ने इस सदी में मनोविश्लेषण की कला खोजी।

यह थोड़ा खयाल में ले लेना जरूरी होगा। और जो लोग मनसशास्त्र में उत्सुक हैं और जो लोग साधना के लिए जरा भी जिज्ञासा रखते हैं, उनके बहुत काम का होगा।

फ्रायड ने एक मार्ग खोजा। वह मार्ग बिलकुल उलटा है। जैसा मार्ग गुरु हमेशा उपयोग करते रहे थे, उससे उलटा है। फ्रायड अपने मरीज को लिटा देता है कोच पर, पीछे बैठ जाता है परदे की ओट में। और मरीज से कहता है, जो भी

तुझे कहना हो, कह। तू बिलकुल फिक्र मत कर कि क्या कह रहा है। जो भी तेरे भीतर आता हो, उसको तू कहता जा। सहज एसोसिएशन से, जो भी तेरे भीतर आ जाए साहचर्य से, तू कहता जा।

मरीज कहना शुरू कर देता है। अनर्गल बातें भी कहता है। कभी सार्थक बातें भी कहता है। कभी अचानक कुछ भी आ जाता है असंगत, वह भी कहता है। पर उसको इसी का सहारा देता है फ्रायड कि तू सिर्फ कहता जा, जो भी तेरे भीतर है। और फ्रायड परदे के पीछे बैठकर सुनता है।

वह इस मनुष्य के मन में प्रवेश कर रहा है। इसके भीतर जो चलती रहती हैं बातें, जो विचार, जो शब्द, वह उनकी जांच कर रहा है। इन शब्दों के माध्यम से वह उसके भीतर खोज रहा है, कितनी असंगति है, कितना उपद्रव है, कितनी विक्षिप्तता है। इन शब्दों के बीच—बीच में से कहीं—कहीं उसे संध मिल जाती है जिससे कोई कुंजी मिल जाती है; जिससे पता चलता है।

जैसे किसी आदमी को लिटाया और वह एकदम गंदी गालियां बकने लगा, अश्लील बातें बोलने लगा, तो खयाल में आता है कि उसके भीतर क्या चल रहा है। और ऐसे वह भला आदमी था। अच्छा आदमी था। चर्च जाता था। सभी तरह नैतिक था। और भीतर उसके यह चल रहा है!

तो फ्रायड वर्षों मेहनत करता है एक मरीज के साथ। ताकि धीरे— धीरे, धीरे— धीरे, वह कितना छिपाए, छिपा न पाए, और भीतर जो निकल रहा है कचरा—कूड़ा, उसमें से वह पकड़ ले कि इसकी आत्मा की तरफ स्वास्थ्य का क्या मार्ग होगा।

लेकिन यह बड़ी लंबी बात है। इसमें कभी तीन साल लग जाते हैं और कभी तीस साल भी लग जाते हैं, पूरा मनोविश्लेषण होते हुए। अगर इस तरह मनोविश्लेषण किया जाए, तो कितने लोगों का मनोविश्लेषण होगा? और तीस साल के बाद भी फ्रायड यह नहीं कह सकता कि मनोविश्लेषण सच में ही पूरा हो गया। क्योंकि यह निकलता ही जाता है। यह कचरा अंतहीन है।

यह आपकी खोपड़ी इतनी विस्तीर्ण है! इतनी छोटी नहीं है, जितनी दिखाई पड़ती है। इसमें लाखों शब्द भरे हुए हैं; और लाखों तथ्य भरे हुए हैं। अगर इनको खोलते ही चले जाएं, तो वे खुलते ही चले जाते हैं। तो यह तो बहुत लंबा हो गया मार्ग।

और अब पश्चिम में भी मनोवैज्ञानिक कहने लगे हैं कि साइकोएनालिसिस से कुछ हल नहीं हो सकता। अगर एक पागल को ठीक करने में तीस साल लग जाएं या दस साल लगें, तो कितने पागल तुम ठीक कर पाओगे? और यह पूरी जमीन पागल मालूम होती है। यहां कौन किसका मनोविश्लेषण करेगा!

और बड़े मजे की तो बात यह है कि मनोविश्लेषक भी अपना मनोविश्लेषण दूसरे से करवाता है। करवाना पड़ता है। क्योंकि फ्रायड की शर्त यह है कि जब तक तुम्हारा खुद का मनोविश्लेषण न हो गया हो, तब तक तुम दूसरे का कैसे करोगे? तो पहले मनोविश्लेषक अपना मनोविश्लेषण करवाता है वर्षों तक। फिर वह दूसरों का करने लगता है। मगर कितने भी मनोविश्लेषक हों, तो भी क्या होगा इस जमीन पर?

भारत की परंपरा कुछ और थी। हमने भी तरकीब खोजी थी। इसमें शिष्य नहीं बोलता था, इसमें गुरु बोलता था। यह जरा फर्क समझ लेना। यह कृष्ण और अर्जुन की बात में खयाल आ जाएगा। यहां शिष्य नहीं बोलता था। और हम शिष्य को मरीज नहीं कहते, वह शब्द ठीक नहीं है। हालांकि सभी शिष्य मरीज हैं। लेकिन वह शब्द ही ठीक नहीं है, वह बेहूदा है। और अब पश्चिम में भी मनोवैज्ञानिक कहने लगे कि मरीज शब्द उपयोग करना ठीक नहीं है, क्योंकि उससे हम दूसरे को मरीज कहकर मरीज बनाने में सहयोगी होते हैं। क्योंकि जो भी शब्द हम देते हैं, उसका परिणाम होता है। किसी आदमी से कहो कि तुम बड़े सुंदर हो, वह फौरन खिल जाता है। इतना सुंदर था नहीं कहने के पहले, कहते से ही खिल जाता है। किसी आदमी को कह दो कि तुम जैसी शक्ल! पता नहीं

परमात्मा क्या कर रहा था, उस वक्त तुम्हें बनाया। कहीं भूल—चूक कर गया; क्या हो गया! वह आदमी तत्क्षण कुम्हला जाता है। वह इतना कुरूप था नहीं, जितना कहते से ही हो जाता है।

एक आदमी को मरीज कहना भी खतरनाक है। क्योंकि आप एक वक्तव्य दे रहे हैं, जो उसके भीतर चला जाएगा। वह मरीज न भी हो, तो भी मरीज हो जाएगा।

हम मरीज नहीं कहते, हम तो शिष्य कहते हैं। हम तो कहते हैं, सीखने वाला। और बीमार भी इसीलिए बीमार है कि उसके सीखने में कमी रह गई है। और कोई बीमारी नहीं है। उसका ज्ञान क्षीण है, कम है, उसका अज्ञान ज्यादा है।

शिष्य सुनता, गुरु बोलता था। '

पश्चिम मेँ अब गुरु सुन रहा है, जो चिकित्सक है; और शिष्य, जो कि मरीज है, वह बोल रहा है। शिष्य बोल रहा है, गुरु सुन रहा है!

गुरु बोलता था और बोलते समय वह शिष्य को जांचता चला जाता था, कहां कौन—सी बात में रस आता है! उससे आपके बाबत खबर मिलती थी।

एक मित्र ने मुझे सवाल पूछा है कि यह जो यहां कीर्तन होता है, यह बहुत खतरनाक चीज है। और यह तो ऐसा मालूम पड़ता है कि कीर्तन करने वाले साधु, संन्यासी, संन्यासिनिया कामवासना निकाल रहे हैं अपनी! और उन्हीं मित्र ने आगे पूछा है कि यह भी मुझे पूछना है कि जब मैं लोगों को कीर्तन करते देखता हूं? तो अगर स्त्रियां कीर्तन कर रही हैं, तो मेरा ध्यान उनके स्तन पर ही जाता है!

अब कीर्तन करते समय जिसका ध्यान स्तन पर जा रहा हो, वह यह कह रहा है कि उसे लगता है कि सब संन्यासी अपनी कामवासना निकाल रहे हैं! उसे यह खयाल नहीं आता कि उसे जो दिखाई पड रहा है, वह उसके संबंध में खबर है, किसी और के सबंध में खबर नहीं है। और वह खुद ही नीचे लिख रहा है कि मुझे उनके स्तन पर ध्यान जाता है।

निश्चित ही, इस व्यक्ति को मां के स्तन से दूध पीने का पूरा मौका नहीं मिला होगा। इसको स्तन में अभी भी अटकाव रह गया है। इसको एक काम करना चाहिए। बच्चों के लिए जो दूध पीने की बोतल आती है, वह खरीद लेनी चाहिए। उसमें दूध भरकर रात उसको चूसना चाहिए, दस—पंद्रह मिनट सोने के पहले। तीन महीने के भीतर इसको स्तन दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे।

स्तन दिखाई पड़ने का मतलब ही यह है कि बच्चे का जो रस था स्तन में, वह कायम रह गया है। स्तन पूरा नहीं पीया जा सका। इसलिए आदिवासियों में जाएं, जहां बच्चे पूरी तरह अपनी मां का स्तन पीते हैं, वहा किसी की उत्सुकता स्तन में नहीं है। अगर आप आदिवासी स्त्री को, हाथ रखकर भी उसके स्तन पर, पूछें कि यह क्या है? तो वह कहेगी कि दूध पिलाने का थन है। आप अपने इस समाज की स्त्री के स्तन की तरफ आंख भी उठाएं, वह भी बेचैन, आप भी बेचैन। आप भी आंख बचाते हैं, तब भी बेचैन, वह भी स्तन को छिपा रही है और बेचैन है। और छिपाकर भी प्रकट करने की पूरी कोशिश कर रही है, उसमें भी बेचैन है।

और सबकी नजर वहीं लगी हुई है। चाहे फिल्म देखने जाएं, चाहे उपन्यास पढ़ें, चाहे कविता करें, चाहे कहानी लिखें, स्तन बिलकुल जरूरी हैं! अगर कभी कोई दूसरे ग्रह की सभ्यता के लोग इस जमीन पर आए, तो वे हमें कहेंगे कि ये लोग स्तनों से बीमार समाज है। क्योंकि मूर्ति बनाओ तो, चित्र बनाओ तो, स्तन पहली चीज है; स्त्री गौण है।

मगर यह बच्चे का दृष्टिकोण है। असल में बच्चा जब पहली दफा मां से संबंधित होता है—और वह उसका पहला संबंध है, उसके पहले उसका कोई संबंध किसी से नहीं है, वह उसका पहला समाज में पदार्पण है, वह उसका पहला अनुभव है दूसरे का—तो वह पूरी मां से संबंधित नहीं होता; सिर्फ उसके स्तन से संबंधित होता है। पहला अनुभव स्तन

का है। और पहले वह स्तन को ही पहचानता है; मां पीछे आती है। स्तन प्रमुख है, मां गौण है। और अगर आपको बाद की उम्र में भी स्तन प्रमुख है, स्त्री गौण लगती है, तो आप बचकाने हैं और आपकी बुद्धि परिपक्व नहीं हो पाई। आपको फिर से स्तन नकली खरीदकर बाजार से, पीना शुरू कर देना चाहिए। उससे राहत मिलेगी।

गुरु बोलता था, शिष्य सुनता था। लेकिन शिष्य के सुनने में भी गुरु देखता था, उसका रस कहां है! उसकी आंख कहा चमकने लगती है और कहा फीकी हो जाती है! कहा उसकी आंख की पुतली खुल जाती है और फैल जाती है, और कहा सिकुड़ जाती है! कहां उसकी रीढ़ सीधी हो जाती है, और कहां वह शिथिल होकर बैठ जाता है! वह देख रहा है। बाहर और भीतर उसकी चेतना में क्या हो रहा है, वह देख रहा है। और इस माध्यम से वह भी चुन रहा है कि इस शिष्य के लिए क्या जरूरी होगा, क्या उपयोगी होगा।

इसलिए कृष्ण ने सारे मार्गों की बात कही है। उन सारे मार्गों पर अर्जुन को चलना नहीं है। अर्जुन को चलना तो होगा एक ही मार्ग पर। लेकिन इन सारो को चलने के पहले जान लेना जरूरी है।

एक और प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि रामकृष्ण परमहंस ने अनेक— अनेक मार्गो से चलकर एक ही मंजिल और एक ही सत्य की पुष्टि की। लेकिन एक साधना से सिद्ध होने के बाद भी उन्होंने वापस दूसरी साधना को अ ब स से कैसे शुरू किया होगा? क्या वे ज्ञान को उपलब्ध होकर फिर से अज्ञानी हो जाते थे और फिर नए मार्ग से शुरू करते थे?

थोडा समझने जैसा है। परम ज्ञान के बाद तो कोई वापस नहीं लौट सकता। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि मंजिल और यात्री एक हो जाते हैं। जब मंजिल और यात्री एक हो जाते हों, तो फिर लौटेगा कौन और कैसे?

लेकिन परम ज्ञान के पहले, ठीक मंजिल पर पहुंचने के पहले एक आखिरी कदम जब रह जाता है, उसे हम ज्ञान कहते हैं। परम ज्ञान कहते हैं, जब मंजिल और यात्री एक हो जाते हैं। नदी सप्तार में गिर गई; अब नहीं लौट सकेगी। लेकिन नदी किनारे तक पहुंची है और ठहरी है। सागर में गिर सकती है, लौट भी सकती है। ज्ञान का क्षण है, जब साधक सिद्ध होने के द्वार पर पहुंच जाता है। वहां से सब कुछ दिखाई पड़ता है, सागर का पूरा विस्तार। लेकिन अभी भी फासला कायम है। साधक अभी भी सिद्ध नहीं हो गया है। सिद्ध होने के करीब आ गया है, बिलकुल करीब आ गया है। सिद्ध होने के बराबर हो गया है। एक क्षण, और लीन हो जाएगा।

लेकिन अभी चाहे तो लौट सकता है। जब तक दो का अनुभव होता है, तब तक लौटना हो सकता है। जब तक मैं देखता हूं कि वह रहा परमात्मा और यह रहा मैं, तब तक लौट सकता हूं। जब तक मैं देखता हूं, यह रहा मैं और यह रहा आनंद, मैं जानता हूं आनंद को, जब तक ऐसा लगता है, लौट सकता हूं। द्वैत कायम है, अभी वापसी कर सकती है। लेकिन जब मुझे पता ही नहीं चलता कि कौन परमात्मा और कौन मैं, दोनों एक हो गए, तब लौटना नहीं हो सकता।

रामकृष्ण परमहंस ज्ञान की स्थिति से लौटे। सागर के ठीक किनारे पहुंच गई नदी, तब उन्होंने कहा कि अब मैं जरा दूसरी नदी के रास्ते पर भी चलकर देखूं कि वह नदी भी सागर तक पहुंचती है या नहीं! तब वे दूसरी नदी के रास्ते पर चले। फिर किनारे पर पहुंचे और उन्होंने कहा कि अब मैं तीसरी नदी के रास्ते पर चलकर देखूं? वह भी सागर तक पहुंचती है या नहीं! इस तरह उन्होंने अनेक मार्गों की साधना की।

जब अनेक मार्गों से चलकर उन्होंने देख लिया कि सभी नदियां सागर पहुंच जाती हैं। जो पूर्व की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो पश्चिम की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो उत्तर की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो दक्षिण की तरफ बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जिनका रास्ता बिलकुल सीधा है, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो बहुत इरछी—तिरछी बहती हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। जो बड़ी शात हैं, गंभीर हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं। और जो बिलकुल तूफानी हैं और विक्षिप्त हैं, वे भी सागर पहुंच जाती हैं।

जब रामकृष्ण ने यह सब देख लिया, तब वे सागर में गिर गए। उसके बाद नहीं लौटा जा सकता। परम ज्ञान.।

तो बुद्ध ने भी दो शब्दों का उपयोग किया है, निर्वाण और परम निर्वाण। निर्वाण का अर्थ है, आखिरी क्षण, जहां से आदमी चाहे, तो वापस लौट सकता है। और जहां से चाहे, तो गिर सकता है उस अवस्था में, जहां से कोई वापसी नहीं है। उसको निर्वाण कहा है। और जो गिर गया, उसको परम निर्वाण कहा है।

तो रामकृष्ण लौटे निर्वाण की दशा से, ज्ञान की दशा से। परम ज्ञान की दशा से कोई भी नहीं लौट सकता है।

अब हम सूत्र को लें।

परंतु प्रकृति में स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए त्रिगुणात्मक सब पदार्थों को भोगता है और इन गुणों का संग ही इसके अच्छी—बुरी योनियों में जन्म लेने में कारण है। वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ भी पर ही है, केवल साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमंता एवं सबको धारण करने वाला होने से भर्ता र जीव रूप से भोक्ता तथा ब्रह्मादिकों

का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानंदघन होने से परमात्मा, ऐसा कहा गया है।

परंतु प्रकृति में स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए सब पदार्थों को भोगता है.।

वह जो भीतर चैतन्य है, वह जो पुरुष है, उसके बाहर चारों तरफ जो प्रकृति का त्रिगुण विस्तार है, यह पुरुष ही सभी स्थितियों में प्रकृति से संबंधित होता है। प्रकृति किसी भी स्थिति में पुरुष से संबंधित नहीं होती। पहली तो बात यह खयाल में ले लें।

आप अपने मकान में हैं। आप कहते हैं, मेरा मकान। मकान कभी नहीं कहता कि आप मेरे हैं। और आप कल चले जाएंगे, तो मकान रोएगा नहीं। मकान गिर जाएगा, तो आप रोएंगे। बहुत मजे की बात है। मकान धेला भर भी आपकी चिंता नहीं करता, आप बड़ी चिंता करते हैं।

आपकी कार बिगड़ जाए, तो आंसू निकल आते हैं। जिस जमीन पर आप खून—खराबा कर सकते हैं, जान दे सकते हैं, वह जमीन आपकी रत्तीभर भी चिंता नहीं करती। बहुत पहले आप जैसे पागल और भी उस पर जान दे चुके हैं। जिस जमीन को आप अपना कहते हैं, आप नहीं थे, तब भी वह थी। कोई और उसको अपना कह रहा था। न मालूम कितने लोग दावा कर चुके। और दावेदार समाप्त हो जाते हैं और जिस पर दावा किया जाता है, वह बना है।

प्रकृति आपसे कोई संबंध स्थापित नहीं करती। आप ही प्रकृति से संबंध स्थापित करते हैं। आप ही संबंध बनाते हैं, आप ही तोड़ते हैं। संबंध बनाकर आप ही सुख पाते हैं, आप ही दुख पाते हैं। यह निपट आप पर ही निर्भर है। कुछ भी प्रकृति की उत्सुकता नहीं है कि आपको दुख दे कि सुख दे। आप अपना सुख—दुख अपने हाथ से निर्मित करते हैं।

और इसलिए एक मजे कीं घटना घटती है। जिस चीज से आपको सुख मिलता है, आपकी दृष्टि बदल जाए उसी से दुख मिलने लगता है। चीज वही है। जिस चीज से आपको दुख मिलता है, दृष्टि बदल जाए, उसी से सुख मिलने लगता है। चीज वही है। पर आपकी दृष्टि बदली कि सारा अर्थ बदल जाता है। आपका खयाल बदला कि सारा संसार बदल जाता है।

आप वस्तुओं के संसार में नहीं रहते, आप भावों और विचारों के संसार में रहते हैं। वस्तुएं तो बहुत दूर हैं, उनसे आपका कोई संबंध नहीं है। आप अपने भावों को फैलाकर सेतु बनाते हैं, वस्तुओं से संबंधित हो जाते हैं। किसी को पत्नी कहते हैं, किसी को पति कहते हैं, किसी को मित्र कहते हैं। वे सब संबंध हैं, जो आपने निर्मित कर लिए हैं। वैसे संबंध कहीं है नहीं; सिर्फ भावों में है।

कृष्ण कह रहे हैं कि यह जो प्रकृति है चारों तरफ, उससे उत्पन्न हुए ये जो सारे पदार्थ— हैं, इनको आप भोगते हैं अपने ही भाव से। और इन भावों के कारण ही अच्छी—बुरी योनियों में जन्म लेते हैं। आप जैसा भाव करते हैं, वैसे ही

हो जाते हैं। भाव जन्मदाता है। आप जैसा भाव करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। आप जो मांगते हैं, बड़े दुख की बात यही है कि वही मिल जाता है। जो कुछ भी आप हैं, वह आपकी ही वासनाओं का परिणाम है।

थोड़ा खयाल करें, कितनी वासनाएं आप करते हैं! और जिन वासनाओं को आप करते हैं, धीरे— धीरे— धीरे उन वासनाओं को पूरा करने के योग्य आप हो जाते हैं। वैज्ञानिक भी कहते हैं, डार्विन ने प्रस्तावित किया है कि मनुष्य के पास जो—जो इंद्रियां हैं, वे इंद्रियां भी मनुष्य की वासनाओं से ही जन्मी हैं।

आपके पास आंख है, इसलिए आप देखते हैं, यह बात ठीक नहीं है। आप देखना चाहते थे, इसलिए आंख पैदा हुई। जिराफ है, उसकी लंबी गर्दन है। तो डार्विन कहता है कि जिराफ की इतनी लंबी गर्दन क्यों है? ऊंट की इतनी लंबी गर्दन क्यों है?

हम तो ऊपर से यही देखते हैं कि ऊंट की इतनी लंबी गर्दन है, इसलिए झाड़ू पर कितने ही ऊंचे पत्ते हों, उनको तोड़कर खा लेता है। लेकिन विकासवादी कहते हैं कि झाड़ू के ऊंचे पत्ते पाने के लिए ही जो वासना है उसकी, वही उसकी गर्दन को लंबा कर देती है; नहीं तो उसकी गर्दन लंबी नहीं हो जाएगी। और जंगल में बड़ा संघर्ष है। क्योंकि नीचे के पत्ते तो कोई भी जानवर खा जाते। जिसकी गर्दन जितनी ऊंची होगी, वह उतनी देर तक सरवाइव कर सकता है; उसका बचाव उतनी देर तक हो सकता है।

तो डार्विन और उनके अनुयायी कहते हैं कि यह ऊंट है, जिराफ है, यह सरवाइवल आफ दि फिटेस्ट, वह जो बचाव करने में सक्षम है अपने को, वह वही इंद्रिया पैदा कर लेता है, जिनकी उसकी वासना है। लंबी गर्दन के कारण ऊंट बड़े वृक्षों के पत्ते नहीं खाता है, बड़े वृक्षों के पत्ते खाना चाहता है, इसलिए उसके पास लंबी गर्दन है। आप जो देखते हैं, वह आंख के कारण नहीं देखते हैं; देखने की वासना है भीतर, इसलिए आंख है। और इसकी बड़ी अदभुत कभी— कभी घटनाएं घटी हैं।

रूस में एक महिला अंधी हो गई। उसे देखने का रस तो लग गया था। देखा था उसने बहुत दिनों तक, फिर अंधी हो गई। और देखने की वासना उसमें प्रगाढ़ थी। और देखना है, क्योंकि देखे बिना जिंदगी एकदम बे—रौनक हो गई।

आप सोच नहीं सकते कि जिसके पास आंख रही हों और आंखें चली जाएं, उसकी जिंदगी एकदम अस्सी प्रतिशत समाप्त हो गई। क्योंकि सब रंग खो गए; जिंदगी से सारी रंगीनी खो गई; सब चेहरे

खो गए; सब रूप खो गए। ध्वनियों का एक उबाने वाला मोनोटोनस जगत रह गया, जहां कोई रंग नहीं, जहां कोई रूप नहीं। तो उसकी देखने की प्रगाढ़ आकांक्षा उसमें पैदा हुई। और उसने हाथ से चीजों को टटोलना शुरू किया। और धीरे— धीरे उसकी अंगुलियां आंखों जैसा काम करने लगीं। अब तो उस पर बड़े वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं। वह आपके चेहरे के पास अंगुलियों को लाकर, बिना छुए, हाथ घुमाकर कह सकती है कि चेहरा सुंदर है या कुरूप है— बिना छुए!

तो वैतानिक कहते हैं कि उसके हाथ आपके चेहरे से निकलती किरणों के स्पर्श को अनुभव करने लगे। और सच तो बात यही है कि आंख भी चमडी ही है। हाथ भी चमड़ी है। आंख की चमड़ी ने एक स्पेशिएलिटी, एक विशेष गुण पैदा कर लिया है देखने का। तो कोई वजह नहीं है कि हाथ की चमड़ी वैसा गुण क्यों पैदा न कर ले! कुछ पशु हैं, जो पूरे शरीर से सुनते हैं। उनके पास कोई कान नहीं है। पूरा शरीर ही कान का काम करता है। आप रात को चमगादड़ देखते हैं। चमगादड़ कभी दिन में भी घर में घुस आता है। उसे दिन में दिखाई नहीं पडता। उसकी आंखें खुल नहीं सकतीं। लेकिन आपने कभी खयाल किया हो, न किया हो, ठीक चमगादड़ दीवाल के बिलकुल किनारे आकर चार— छः अंगुल की दूरी से लौट जाता है, टकराता नहीं। टकराने को होता है और लौट जाता है। और आंख उसकी देखती नहीं।

तो वैज्ञानिक उस पर बहुत काम करते हैं। तो उसका पूरा शरीर दीवाल की मौजूदगी को छः इंच की दूरी से अनुभव करता है। इसलिए वह करीब आ जाता है टकराने के, लेकिन टकराता नहीं। ही, आप उसको घबड़ा दें और परेशान कर दें, तो टकरा जाएगा। लेकिन अपने आप वह टकराता नहीं। बिलकुल पास आकर हट जाता है। राडार है उसके

पास, जो छः इंच की दूरी से उसको स्पर्श का बोध दे देता है। दिन में उसके पास आंख नहीं है, लेकिन बचाव की सुविधा तो जरूरी है। उसका पूरा शरीर अनुभव करने लगा है। उसका पूरा शरीर संवेदनशील हो गया है।

हमारे भीतर वह जो छिपा हुआ पुरुष है, वह जो भी चाहता है, उसके योग्य इंद्रिय पैदा हो जाती है। उसकी चाह की छाया है। यह जरा कठिन होगा। क्योंकि अक्सर हम कहते हैं कि इंद्रियों के कारण वासना है। गलत है बात। वासनाओं के कारण इंद्रियां हैं। इसीलिए तो ज्ञानी कहते हैं कि जब वासनाएं समाप्त हो जाएंगी, तो तुम जन्म न ले सकोगे। जन्म न ले सकने का मतलब यह है कि तुम फिर इंद्रियां और शरीर को ग्रहण न कर सकोगे। क्योंकि इंद्रियां और शरीर मूल नहीं हैं, मूल वासना है। तुम जिस घर में पैदा हुए हो, वह भी तुम्हारी वासना है। तुम जिस योनि में पैदा हुए हो, वह भी तुम्हारी वासना है।

इधर मैं एक बहुत अनूठे अनुभव पर आया। कुछ लोगों के पिछले जन्मों के संबंध में मैं काम करता रहा हूं, कि उनके पिछले जीवन की स्मृतियों में उन्हें उतारने का प्रयोग करता रहा हूं। एक चकित करने वाला अनुभव हुआ। वह अनुभव यह हुआ कि पुरुष तो अक्सर पिछले जन्मों में भी पुरुष होते हैं, लेकिन अक्सर स्त्रियां जन्म में बदलती हैं। जैसे अगर कोई पिछले जन्म में स्त्री थी, तो इस जन्म में पुरुष हो जाती है।

शायद स्त्रियों के मन में गहरी वासना पुरुष होने की होगी। स्त्रियों की परतंत्रता, शोषण के कारण स्त्रियों के मन में वासना होती है कि पुरुष होतीं तो अच्छा था। प्रगाढ़। और जीवनभर का अनुभव उनको कहता है कि पुरुष होतीं तो अच्छा था।

लेकिन पश्चिम में स्त्रियों की स्वतंत्रता बढ रही है। पचास—सौ वर्ष के बाद यह बात मिट जाएगी। स्त्रियां स्त्री योनि में जन्म ले सकेगी, वह वासना क्षीण हो जाएगी।

अक्सर ऐसा होता है कि जो ब्राह्मण घर में है, वह दूसरे जन्म में भी ब्राह्मण घर में है, उसके पीछे भी ब्राह्मण घर में है। क्योंकि ब्राह्मण घर का बेटा एक दफा ब्राह्मण घर का अहंकार और दर्प अनुभव किया हो, तो किसी और घर में पैदा नहीं होना चाहेगा। वह उसकी वासना नहीं है। लेकिन शूद्र अक्सर बदल लेंगे। एक जन्म में शूद्र है, तो दूसरे जन्म में वह दूसरे वर्ण में प्रवेश कर जाएगा। उसकी गहरी वासना उस शूद्र के वर्ण से हट जाने की है। वह भारी है, कष्टपूर्ण है, वह बोझ है, उसमें होना सुखद नहीं है।

तो हम जो वासना करते हैं, उस तरफ हम सरकने लगते हैं। हमारी वासना हमारे आगे— आगे चलती है और हमारे जीवन को पीछे—पीछे खींचती है।

कृष्ण कहते हैं, यह जो प्रकृति से फैला हुआ संसार हैं, हमारे भीतर छिपा हुआ पुरुष ही इसे भोगता है और गुणों का संग ही इसकी अच्छी—बुरी योनियों में जन्म लेने के कारण होते हैं। और फिर जिन चीजों से यह रस का संबंध बना लेता है, संग बना लेता है, जिनसे यह रस से जुड़ जाता है, उन्हीं योनियों में प्रवेश करने लगता है।

अगर कोई इस तरह की वासनाएं करता है कि कुत्ता होकर उनको ज्यादा अच्छी तरह से पूरी कर सकेगा, तो प्रकृति उसके लिए कुत्ते का शरीर दे देगी। प्रकृति सिर्फ खुला निमंत्रण है। कोई आग्रह नहीं है प्रकृति का। आप जो होना चाहते हैं, वे हो जाते हैं। आप अपने गर्भ को चुनते हैं, जाने या अनजाने। आप अपनी योनि भी चुनते हैं, जाने या अनजाने।

आप जो मांगते हैं, वह घटित हो जाता है। जैसे पानी नीचे बहता है और गड्ढे में भर जाता है, ऐसे ही आप भी बहते हैं और अपनी योनि में भर जाते हैं। आपकी जो वासनाएं हैं, वे आपको ले जाती हैं एक विशेष दिशा की तरफ। अच्छी और बुरी योनियों में जन्म हमारी ही आकांक्षाओं का फल है।

लेकिन हमारी तकलीफ यह है कि हम भूल ही जाते हैं कि हमारी आकांक्षाए क्या हैं। हम भूल ही जाते हैं कि हमने क्या मांगा था। जब तक हमें उपलब्धि होती है, तब तक हम अपनी मांग ही भूल जाते हैं। अगर हम अपनी माग याद

रख सकें, तो हमें पता चल जाएगा कि फासला चाहे कितना ही हो माग और प्राप्ति का, जो हमने मांगा था, वह हमें मिल गया है।

इधर मैं देखता हूं, लोग अपनी ही मांगों से दुखी हैं।

एक युवती मेरे पास आई और उसने मुझे कहा कि मुझे एक ऐसा पति चाहिए जो सुंदर हो, स्वस्थ हो, शक्तिशाली हो, किसी से दबे नहीं, दबंग हो। ठीक है, खोज कर, मिल जाएगा। पर उसने कहा, एक बात और। वह सदा मेरी बात माने।

तो मैंने उसको कहा कि तू दोनों में तय कर ले। जो दबंग होगा, वह तुझसे नहीं दबेगा। और अगर तू उसको दबाना चाहती है, तो जो तुझसे दबेगा, वह किसी से भी दबेगा। तो तू पक्का कर ले, दो में से चुन ले। क्योंकि दबंग तो उपद्रव रहेगा तेरे लिए भी। तू भी उसे दबा नहीं पाएगी। और अगर तेरी वासना यह है कि तू उसे दबा पाए तो फिर वह दबंग नहीं रहेगा। वह तेरे पीछे डरकर चलेगा। जो तुझसे डरेगा, वह फिर किसी से भी डरेगा। तो दो में से तू तय कर ले। कुछ दिन बाद आकर उसने मुझसे कहा कि तो ठीक है, वह मुझसे दबना चाहिए, चाहे फिर कुछ और भी हो।

अब इसको पता नहीं है इस वासना का। यह पूरी हो जाएगी। क्योंकि जो यह वासना करेगी, उसको पूरा कर लेगी, खोज लेगी। अपने योग्य सब मिल जाता है। अयोग्य तो मिलता ही नहीं, बस अपने योग्य ही मिलता है। चाहें आप पहचान पाएं या न पहचान पाएं।

जब इससे दबने वाला व्यक्ति इसको मिल जाएगा, उससे इसे तृप्ति नहीं होगी। किसी स्त्री को दबने वाले व्यक्ति से तृप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि दबने वाला व्यक्ति स्त्रैण हो जाता है। स्त्री तो उसी पुरुष से प्रसन्न हो सकती है, जो दबाता हो। क्योंकि जो दबाता हो, उसी के प्रति समर्पण हो सकता है।

स्त्री चाहती है, कोई दबाए। हालांकि दबाने का ढंग बहुत संस्कारित होना चाहिए। कोई सिर पर लट्ठ मारे, ऐसा नहीं। लेकिन व्यक्तित्व ऐसा हो कि दबा दे, अभिभूत कर दे, और स्त्री समर्पित हो जाए। स्त्री सिर्फ उसी में रस ले पाती है, जो उसे दबा दे, बिना दबाए; दबाने का कोई आयोजन न करे, उसका होना, उसका व्यक्तित्व ही दबा दे और स्त्री समर्पित हो जाए। उससे तो तृप्ति मिल सकती है।

लेकिन अब यह स्त्री कहती है कि वह मुझसे दबे। तो यह स्त्री को खोज रही है, पुरुष को नहीं खोज रही है। वह इसे मिल जाएगा, क्योंकि बहुत पुरुष स्त्रियों जैसे हैं। वे इसे मिल जाएंगे, और उनसे यह परेशान होगी। और परेशान होकर यह भाग्य को और भगवान को, न मालूम किस—किस को दोष देगी। और कभी फिक्र न करेगी कि जो इसने मांगा था, वह इसे मिल गया।

आप थोड़े अपने दुखों की छानबीन करना। जो आपने मांगा था, वह आपको मिल गया है।

कुछ लोग कहते हैं कि हमारा दुख इसलिए है कि हमने जो मांगा था, वह नहीं मिला। वे गलत कहते हैं। उनको ठीक पता नहीं है कि उन्होंने क्या मांगा था। असलियत में जो आप मांगते हैं, वह मिल जाता है। मांग पूरी हो जाती है। और तब आप दुख पाते हैं। दुख पाकर आप समझते हैं कि मेरी माग पूरी नहीं हुई, इसलिए दुख पा रहा हूं। नहीं; आप थोड़ा समझना, खोजना। आप फौरन पा जाएंगे कि मेरी मांगें पूरी हो गईं, तो मैं दुख पा रहा हूं।

हमें पता नहीं है कि हम क्या मांगते हैं, हमारी क्या वासना है; क्या परिणाम होगा। हम कभी हिसाब भी नहीं रखते। अंधे की तरह चले जाते हैं। लेकिन समस्त धर्मों का सार है कि आप जिन वासनाओं से डूबते हैं, भरते हैं, उन योनियों में, उन व्यक्तित्व में, उन ढांचों में, उन जीवन में आपका प्रवेश हो जाता है।

वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ भी पर ही है...। अब इस पुरुष की बहुत—सी स्थितियां हैं। क्योंकि पुरुष तो शरीर से भिन्न है, लेकिन जब भिन्न समझता है, तभी भिन्न है। और चाहे तो समझ ले कि मैं शरीर हूं, तो भ्रांति में पड़ जाएगा।

पुरुष शरीर में रहते हुए भी भिन्न है। यह उसका स्वभाव है। लेकिन इस स्वभाव में एक क्षमता है, तादात्म्य की। यह अगर समझ ले कि मैं शरीर हूं तो शरीर ही हो जाएगा। आप अगर समझ लें कि आपके हाथ की लकड़ी आप हैं, तो आप लकड़ी ही हो जाएंगे। आप जो भी मान लें, वह घटित हो जाता है। मानना सत्य बन जाता है। पुरुष की यह भीतरी क्षमता है। वह जो मान लेता है, वह सत्य हो जाता है।

वास्तव में तो यह पुरुष इस देह में स्थित हुआ पर ही है। लेकिन साक्षी होने से उपद्रष्टा...।

फिर इसकी अलग—अलग स्थितियां हैं। अगर यह साक्षी होकर देखे अपने को भीतर, तो यह उपद्रष्टा या द्रष्टा हो जाता है।

यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमत। हो जाता है..।

अगर इसकी आप सम्मति मांगें, तो यह आपके लिए अनुसंता हो जाएगा। लेकिन आप इससे कभी सम्मति भी नहीं मांगते। कभी आप शात और मौन होकर अपने भीतर के पुरुष का सुझाव भी नहीं मांगते। आप वासनाओं का सुझाव मानकर ही चलते हैं। इंद्रियों का सुझाव मानकर चलते हैं। या परिस्थिति में, कोई भी घड़ी उपस्थित हो जाए, तो उसकी प्रतिक्रिया से चलते हैं।

एक आदमी गाली दे दें, तो वह आपको चला देता है। फिर आप उसकी गाली के आधार पर कुछ करने में लग जाते हैं। बिना इसकी फिक्र किए कि यह आदमी कौन है, जो मुझे गुलाम बना रहा है! मैं इसकी गाली को मानकर क्यों चलूं? यह तो मुझे चला रहा है!

आप यह मत सोचना कि आप गाली न दें, तो बात खतम हो गई। तो आप भीतर इसकी गाली से कुछ सोचेंगे। शायद यह सोचेंगे कि क्षमा कर दो, नासमझ है। लेकिन यह भी आप चल पड़े। वही चला रहा है आपको। आप सोचें कि यह नासमझ है, पागल है, शराब पीए हुए है। इसलिए क्यों गाली का जवाब देना! तो भी इसने आपको चला दिया। आप मालिक न रहे, यह बटन दबाने वाला हो गया। इसने गाली दी और आपके भीतर कुछ चलने लगा। आप गुलाम हो गए।

अगर आप रुककर क्षणभर साक्षी हो जाएं और भीतर की सलाह लें—परिस्थिति की सलाह न लें, प्रतिक्रिया न करें, इंद्रियों की मानकर न पागल बनें— भीतर के साक्षी की सलाह लें, तो वह साक्षी अनुमंता हो जाता है।

सबको धारण करने वाला होने से भर्ता, जीव रूप से भोक्ता, ब्रह्मादिकों का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानंदघन होने से परमात्मा, ऐसा कहा गया है।

यह जो भीतर पुरुष है, यह बहुत रूपों में प्रकट होता है। अगर आप इस पुरुष को शरीर के साथ जोड़ लें, तो लगने लगता है, मैं शरीर हूं। और आप संसार हो जाते हैं। इसको आप तोड़ लें ध्यान से और साक्षी हो जाएं, तो आप समाधि बन जाते हैं। इसकी आप सलाह मांगने लगें, तो आप स्वयं गुरु हो जाते हैं। इसके और भीतर प्रवेश करें, तो यह समस्त सृष्टि का स्रष्टा है, तो आप परमात्मा हो जाते हैं। और इसके अंतिम गहनतम बिंदु पर आप प्रवेश कर जाएं, जिसके आगे कुछ भी नहीं है, तो आप सच्चिदानंदघन परम ब्रह्म हो जाते हैं।

यह पुरुष ही आपका सब कुछ है। आपका दुख, आपका सुख; आपकी अशांति, आपका संसार, आपका स्वर्ग, आपका नरक; आपका ब्रह्म, आपका मोक्ष, आपका निर्वाण, यह पुरुष ही सब कुछ है।

ध्यान रहे, घटनाएं बाहर हैं और भावनाएं भीतर हैं। भावना का जो अंतिम स्रोत है, वह है परम ब्रह्म सच्चिदानंदघन रूप। वह भी आप हैं।

इसलिए इस मुल्क ने जरा भी कठिनाई अनुभव नहीं की यह कहने में कि प्रत्येक व्यक्ति परमेश्वर है। आपको पता नहीं है, यह बात दूसरी है। लेकिन परमेश्वर आपके भीतर मौजूद है। और आपको पता नहीं है, इसमें भी आपकी ही तरकीब और कुशलता है। आप पता लगाना चाहें, तो अभी पता लगा लें। शायद आप पता लगाना ही नहीं चाहते हैं।

मुझसे सवाल लोग पूछते हैं। आज ही कुछ सवाल पूछे हैं कि अगर हम ध्यान में गहरे चले गए, तो हमारी गृहस्थी और संसार का क्या होगा? शायद इसीलिए ध्यान में जाने से डर रहे हैं कि गृहस्थी और संसार का क्या होगा। और फिर भी पूछते हैं। पूछा है उन्होंने भी कि फिर. भी ध्यान का कोई रास्ता बताइए!

क्या करिएगा ध्यान का रास्ता जानकर? डर लगा हुआ है। क्योंकि हम जो वासनाओं का खेल बनाए हुए हैं, उसके टूट जाने का डर है। तो भूलकर रहना ठीक है।

शायद हम ध्यान में जाना नहीं चाहते, इसीलिए हम ध्यान में नहीं गए हैं। और जिस दिन हम जाना चाहें, दुनिया की कोई ताकत हमें रोक नहीं सकती।

लोग मुझसे आकर कहते हैं कि हम बड़ी कोशिश करते हैं, ध्यान में जा नहीं पाते! उनसे मैं कहता हूं तुम कोशिश वगैरह नहीं करते हो; और न तुम जाना चाहते हो। तुम्हारा रस ध्यान में नहीं है। तुम्हारा रस कहीं और होगा। तुम मुझे बताओ, क्या चाहते हो ध्यान से? एक आदमी ने कहा कि मैं लाटरी का नंबर चाहता हूं। आपके पास इसीलिए आया हूं कि ध्यान, ध्यान, ध्यान सुनते—सुनते मुझे लगा कि ध्यान करके एक दफा सिर्फ नंबर मिल जाए बात खतम हो गई।

अब यह ध्यान से लाटरी का नंबर चाहता है! पहले उसने मुझे यह नहीं बताया। सोचा कि पता नहीं, मैं उसे ध्यान समझाऊं कि न समझाऊं! लाटरी में मेरी उत्सुकता हो या न हो! तो उसने कहा कि ध्यान की बड़ी इच्छा है। बड़ी अशांति रहती है। अशांति है लाटरी न मिलने की; ध्यान की नहीं है। मगर वह कह भी नहीं रहा है। वह भीतर सोच रहा है कि ध्यान लग जाए; चित्त शांत हो जाए; नंबर दिखाई पड़ जाए; बात खतम हो गई।

आप ध्यान से भी कुछ और चाहते हैं। और जब तक कोई ध्यान को ही नहीं चाहता ध्यान के लिए तब तक ध्यान नहीं हो सकता। आप परमात्मा से भी कुछ और चाहते हैं। वह भी साधन है, साध्य नहीं है।

सोचें, अगर आपको परमात्मा मिल जाए; यहां से आप घर पहुंचें और पाएं कि परमात्मा बैठा हुआ है आपके बैठकखाने में। आप क्या मांगिएगा उससे? जरा सोचें। फौरन मन फेहरिस्त बनाने लगेगा। नंबर एक, नंबर दो.। और जो चीजें आप मांगेंगे, सभी क्षुद्र होंगी। परमात्मा से मांगने योग्य एक भी न होगी।

तो परमात्मा भी मिल जाए, तो आप संसार ही मांगेंगे। आप संसार मांगते हैं, इसलिए परमात्मा नहीं मिलता है। आप जो मांगते हैं, वह मिलता है। और अभी आप संसार से इतने दुखी नहीं हो गए हैं कि परमात्मा को सीधा मांगने लगें। इसलिए रुकावट है। अन्यथा वह आपके भीतर छिपा है। रत्तीभर का भी फासला नहीं है। आप ही वह हैं।

इस प्रकार पुरुष को और उसके गुणों को, गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नहीं जन्मता है अर्थात पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

यह सूत्र खयाल में ले लेने जैसा है।

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्व से जानता है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी फिर नहीं जन्मता है अर्थात पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता है।

जिस व्यक्ति को यह खयाल में आ जाता है कि प्रकृति अलग है और मैं अलग हूं और जो इस अलगपन को सदा ही बिना किसी चेष्टा के स्मरण रख पाता है, फिर वह सब तरह से बर्तता हुआ भी..। वह वेश्यागृह में भी ठहर जाए, तो भी उसके भीतर की पवित्रता नष्ट नहीं होती। और आप मंदिर में भी बैठ जाएं, तो सिर्फ मंदिर को अपवित्र करके घर वापस लौट आते हैं। आप कहा हैं, इससे संबंध नहीं है। आप क्या हैं, इससे संबंध है।

अगर यह खयाल में आ जाए कि मैं अलग हूं, पृथक हूं तो फिर जीवन नाटक से ज्यादा नहीं है। फिर उस नाटक में कोई बंधन नहीं है, फिर उस नाटक में कोई वासना नहीं है, फिर खेल है और अभिनय है। और जो अभिनय की तरह देख पाता है, कृष्ण कहते हैं, वह फिर नहीं जन्मता। क्योंकि कोई वासना उसकी नहीं है। फिर जैसे एक काम पूरा कर रहा है। जैसे काम पूरा करने में कोई रस नहीं है। जैसे एक जिम्मेवारी है, वह निभाई जा रही है।

ऐसे जैसे कि एक आदमी रामलीला में राम बन गया है। जब उसकी सीता खो जाती है, तब वह भी रोता है, और वह भी वृक्षों से पूछता है कि हे वृक्ष, बताओ मेरी सीता कहां है! लेकिन उसके आंसू अभिनय हैं। उसके भीतर कुछ भी नहीं हो रहा है। न सीता खो गई है, न वृक्षों से वह पूछ रहा है, न उसे कुछ प्रयोजन है। वह अभिनय कर रहा है। वह वृक्षों से पूछेगा; आंसू बहाएगा; जार—जार रोका, सीता को खोजेगा। और परदे के पीछे जाकर बैठकर चाय पीएगा। उसको कोई लेना—देना नहीं है। गपशप करेगा। बात ही खतम हो गई। उससे कुछ लेना—देना नहीं है।

अगर असली राम भी परदे के पीछे ऐसे ही हटकर चाय पी लेते हों, तो वे परमात्मा हो गए। अगर आप भी अपनी जिंदगी के सारे उपद्रव को एक नाटक की तरह जी लेते हों, और परदे के पीछे हटने की कला जानते हों..। जिसको मैं कहता हूं, ध्यान, प्रार्थना, पूजा, वह परदे के पीछे हटने की कला है। दुकान से आप घर लौट आए। परदे के पीछे हट गए, ध्यान में चले गए। ध्यान में जाने का मतलब है कि आपने कहा कि ठीक, वह नाटक बंद।

अगर आप सच में ही भीतर के पुरुष को याद रख सकें, तो बंद कर सकेंगे। लेकिन अभी आप नहीं कर सकते। आप कितने ही परदे लटकाएं, दरवाजा बंद करें; वह दुकान आपके साथ चली आएगी

भीतर। वह नाटक नहीं है। उसको आप बहुत जोर से पकड़े हुए हैं।

तो आप बैठकर राम—राम कर रहे हैं और भीतर नोट गिन रहे हैं। इधर राम—राम कर रहे हैं, वहा भीतर कुछ और चला रहे हैं। वहा कोई हिसाब लगा रहे हैं कि वह नंबर दो के खाते में लिखना भूल गए हैं। या कल कैसे इनकम टैक्स वालों को धोखा देना है। वह भीतर चल रहा है। यहां राम—राम चल रहा है।

आप ध्यान रखिए कि राम—राम झूठा है, जो ऊपर चल रहा है। और असली भीतर चल रहा है। उससे आपका काफी तादात्म्य है। आप दुकानदार ही हो गए हैं। आपके पास कोई भीतर पृथक नहीं बचा है, जो दुकानदार न हो।

जैसे ही कोई व्यक्ति प्रकृति और पुरुष के फासले को थोड़ा—सा स्मरण करने लगता है कि यह मैं नहीं हूं.। इतना ही स्मरण कि यह मैं नहीं हूं। दुकान पर बैठे हुए, कि दुकान कर रहा हूं; जरूरी है, दायित्व है, काम है, उसे निपटा रहा हूं। लेकिन घर पहुंचकर, स्नान करके अपने मंदिर के कमरे में आदमी प्रविष्ट हो गया। वह परदे के पीछे चला गया, नाटक के मंच से हट आया, सब छोड़ आया बाहर। और घंटेभर शांति से बैठ गया बाहर दुनिया के।

इसका अभ्यास जितना गहन होता चला जाए, उतना ही योग्य है, उतना ही उचित है। तो धीरे—धीरे— धीरे कोई भी चीज आपको बांधेगी नहीं। कोई भी चीज बांधेगी नहीं। हो सकता है, जंजीरें भी आपको बांध दी जाएं और कारागृह में आपको डाल दिया जाए, तो भी आप स्वतंत्र ही होंगे। क्योंकि वह कारागृह में जो जंजीरें बांधेंगे जिसको, वह प्रकृति होगी। और आप बाहर ही होंगे।

अपने भीतर एक ऐसे तत्व की तलाश ही अध्यात्म है, जिसको बांधा न जा सके, जो परतंत्र न किया जा सके, जो सदा स्वतंत्र है, जो स्वतंत्रता है। यह पुरुष ऐसी स्वतंत्रता का ही नाम है। और सारे आध्यात्मिक यात्रा का एक ही लक्ष्य है कि आपके भीतर उस तत्व की तलाश हो जाए जिसको दुनिया में कोई सीमा न दे सके, कोई जंजीर न दे सके, कोई कारागृह में न डाल सके। जिसका मुक्त होना स्वभाव है।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप कृष्ण को जंजीरें नहीं डाल सकते। इसका यह मतलब नहीं है कि बुद्ध को कारागृह में नहीं डाला जा सकता। जीसस को हमने सूली दी ही है। लेकिन फिर भी आप जीसस को सूली नहीं दे सकते। जिसको आप सूली दे रहे हैं, वह प्रकृति ही है। और जब आप जीसस के हाथ में खीलें ठोक रहे हैं, तो आप प्रकृति के हाथ में खीलें ठोक रहे हैं, जीसस के हाथों में नहीं।

जीसस के हाथों में खीलें ठोकने का कोई उपाय नहीं है। जीसस को सूली देने का कोई उपाय नहीं है। जीसस जिंदा ही हैं। आप शरीर को ही काट रहे हैं और मार रहे हैं। अगर जीसस भी शरीर से जुड़े हों, तो उनको भी पीड़ा होगी। तो वे भी रोके, चिल्लाएंगे। वे भी छाती पीटेंगे कि बचाओ; कोई मुझे बचा लो। यह क्या कर रहे हो! क्षमा करो, मुझसे भूल हो गई। वे कुछ उपाय करेंगे। लेकिन वे कोई उपाय नहीं कर रहे हैं। उलटे वे प्रार्थना करते हैं परमात्मा से कि इन सब को माफ कर देना, क्योंकि इनको पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं।

किस चीज के लिए जीसस ने कहा है कि इनको पता नहीं है, ये क्या कर रहे हैं? इस चीज के लिए जीसस ने कहा है कि जिसको ये सूली पर लटका रहे हैं, वह तो लटकाया नहीं जा सकता; और जिसको ये लटका रहे हैं, वह मैं नहीं हूं। इनको कुछ पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं। ये मेरी भांति में किसी और को सूली पर लटका रहे हैं! यह मतलब है। इनको खयाल तो यही है कि मुझे मार रहे हैं, लेकिन मुझे ये कैसे मारेंगे? जिसको ये मार रहे हैं, वह मैं नहीं हूं। और वह तो इनके बिना मारे भी मर जाता, उसके लिए इतना आयोजन करने की कोई जरूरत न थी। और मैं इनके आयोजन से भी न मरूंगा।

इस भीतर के पुरुष का बोध जैसे—जैसे साफ होने लगेगा, वैसे—वैसे कृष्ण कहते हैं, फिर सब प्रकार से बर्तता हुआ.।

इसलिए कृष्ण का जीवन जटिल है। कृष्ण का जीवन बहुत जटिल है। और जो तर्कशास्त्री हैं, नीतिशास्त्री हैं, और जो नियम से जीते और चलते और सोचते हैं, उन्हें कृष्ण का जीवन बहुत असंगत मालूम पड़ता है।

एक मित्र ने सवाल पूछा है कि कृष्ण अगर भगवान हैं, तो वे छल—कपट कैसे कर सके?

स्वभावत:, छल—कपट हम सोच ही नहीं सकते, नैतिक आदमी कैसे छल—कपट कर सकता है! और छल—कपट करके वह कैसे भगवान हो सकता है! और वचन दिया था कि शस्त्र हाथ में नहीं लूंगा और अपना ही वचन झूठला दिया। ऐसे आदमी का क्या भरोसा जो अपना ही आश्वासन पूरा न कर सका और खुद ही अपने आश्वासन को झूठा कर दिया!

हमें तकलीफ होती है। हमें बड़ी अड़चन होती है। कृष्ण बेबूझ मालूम पड़ते हैं। कृष्ण को समझना कठिन मालूम पड़ता है। महावीर को समझना सरल है। एक संगति है। बुद्ध को समझना सरल है। जिंदगी एक गणित की तरह है। उसमें आप भूल—चूक नहीं निकाल सकते।

अगर महावीर कहते हैं अहिंसा, तो फिर वैसा ही जीते हैं। फिर पांव भी फूंककर रखते हैं। फिर पानी भी छानकर पीते हैं। फिर श्वास भी भयभीत होकर लेते हैं कि कोई कीटाणु न मर जाए। फिर महावीर का पूरा जीवन एक संगत गणित है। उस गणित में भूल—चूक नहीं निकाली जा सकती।

लेकिन कृष्ण का जीवन बड़ा बेबूझ है। जितनी भूल—चूक चाहिए वे सब मिल जाएंगी। ऐसी भूल—चूक आप नहीं खोज सकते, जो उसके जीवन में न मिले। सब तरह की बातें भुल जाएंगी।

उसका कारण है। क्योंकि कृष्ण की दृष्टि जो है, उनका जो मौलिक आधार है सोचने का, वह यह है कि जैसे ही यह पता चल जाए कि प्रकृति अलग और मैं अलग, फिर किसी भी भांति बर्तता हुआ कोई बंधन नहीं है। फिर कोई जन्म नहीं है।

इसलिए कृष्ण छल—कपट करते हैं, ऐसा हमें लगता है। ऐसा हमें लगता है कि वे आश्वासन देते हैं और फिर मुकर जाते हैं। लेकिन कृष्ण क्षण— क्षण जीते हैं। जब आश्वासन दिया था, तब पूरी तरह आश्वासन दिया था। उस क्षण का सत्य था वह, थ आफ दि मोमेंट, उस क्षण का सत्य था। उस वक्त कोई न थी मन में, कहीं सोच भी न था कि इस आश्वासन को तोड़ेंगे। ऐसा कोई सवाल नहीं था। आश्वासन पूरी तरह दिया था। लेकिन दूसरे क्षण में सारी परिस्थिति बदल गई। और कृष्ण के लिए यह सब अभिनय से ज्यादा नहीं है। अगर यह अभिनय न हो, तो कृष्ण भी सोचेंगे कि जो आश्वासन दिया था, उसको पूरा करो।

अगर जिंदगी बहुत असली हो, तो आश्वासन को पूरा करने का खयाल आएगा। लेकिन कृष्ण के लिए जिंदगी एक सपने की तरह है, जिसमें आश्वासन का भी कोई मूल्य नहीं है। वह भी क्षण—सत्य था। उस क्षण में वैसा बर्तने का सहज भाव था। आज सारी स्थिति बदल गई। बर्तने का दूसरा भाव है। तो इस दूसरे भाव में कृष्ण दूसरा काम करते हैं। इन दोनों के बीच कोई विरोध नहीं है। हमें विरोध दिखाई पड़ता है, क्योंकि हम जिंदगी को असली मानते हैं। आप इसे ऐसा समझें, आपको सपने का खयाल है। सपने का एक गुण है। सपने में आप कुछ से कुछ हो जाते हैं, लेकिन आपके भीतर कोई चिंता पैदा नहीं होती। आप जा रहे हैं। आप देखते हैं कि एक मित्र चला आ रहा है। और मित्र जब सामने आकर खड़ा हो जाता है, तो अचानक घोड़ा हो जाता है, मित्र नहीं है। पर आपके भीतर यह संदेह नहीं उठता कि यह क्या गडबड़ हो रही है! मित्र था, अब घोड़ा कैसे हो गया? कोई संदेह नहीं उठता। असल में भीतर कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि यह क्या गड़बड़ है! जागकर भला आपको थोड़ी—सी चिंता हो, लेकिन तब आप कहते हैं, सपना है, सपने का क्या!

सपने में मित्र घोड़ा हो जाए, तो कोई चिंता पैदा नहीं होती। असलियत में आप चले जा रहे हों सड़क पर और उधर से मित्र आ रहा हो और अचानक घोड़ा हो जाए, फिर आपकी बेचैनी का अंत नहीं है। आपको पागलखाने जाना पड़ेगा कि यह क्या हो गया। क्यों? क्योंकि इसको आप असलियत मानते हैं। कृष्ण इसको भी स्वप्न से ज्यादा नहीं मानते। इसलिए जिंदगी में कृष्ण के लिए कोई संगति नहीं है। सब खेल है। और सब संगतिया क्षणिक हैं और क्षण के पार उनका कोई मूल्य नहीं है।

कृष्ण की कोई प्रतिबद्धता, कोई कमिटमेंट नहीं है। किसी क्षण के लिए उनका कोई बंधन नहीं है। उस क्षण में जो है, जो सहज हो रहा है, वे कर रहे हैं। दूसरे क्षण में जो सहज होगा, वह करेंगे। वे नदी की धार की तरह हैं। उसमें कोई बंधन, कोई रेखा, कोई रेल की पटरियों की तरह वे नहीं हैं कि रेलगाड़ी एक ही पटरी पर चली जा रही है। वे नदी की तरह हैं। जैसा होता है! पत्थर आ जाता है, तो बचकर निकल जाते हैं। रेत आ जाती है, तो बिना बचे निकल जाते हैं।

आप यह नहीं कह सकते कि वहा पिछली दफा बचकर निकले थे और अब? अब रेत आ गई, तो सीधे निकले जा रहे हो बिना बचे, असंगति है!

नहीं, आप नदी से कुछ भी नहीं कहते। जब पहाड़ होता है, नदी बचकर निकल जाती है। तो आप यह नहीं कहते कि पहाड़ को काटकर क्यों नहीं निकलती! और जब रेत होती है, नदी बीच में से काटकर निकल जाती है। तब आप यह नहीं कहते कि बड़ी बेईमान है! पहाड़ के साथ कोई व्यवहार, रेत के साथ कोई व्यवहार!

कृष्ण नदी की तरह हैं। जैसी परिस्थिति होती है, उसमें जो उनके लिए सहज आविर्भूत होता है अभिनय, वह कर लेते हैं। और जिंदगी असलियत नहीं है। जिंदगी एक कहानी है, एक नाटक है, एक साइको ड्रामा। इसलिए उसमें उनको कोई चिंता नहीं है, कोई अड़चन नहीं है।

इस बात को जब तक आप ठीक से न समझ लेंगे, तब तक कृष्ण के जीवन को समझना बहुत कठिन है। क्योंकि कृष्ण बहुत रूप में हैं। और उस सब के पीछे कारण यही है कि कृष्ण का मौलिक खयाल है कि जैसे ही पुरुष का भेद स्पष्ट हो गया, फिर सभी भांति बर्तता हुआ भी व्यक्ति बंधन को उपलब्ध नहीं होता; जन्मों को उपलब्ध नहीं होता। वह सभी भांति बर्तता हुआ भी मुक्त होता है। उसके वर्तन में आचरण और अनाचरण का भी कोई सवाल नहीं है। आचरण और अनाचरण का सवाल भी तभी तक है, जब तक जिंदगी सत्य मालूम होती है। और जब जिंदगी एक स्वप्न हो जाती है, तो आचरण और अनाचरण दोनों समान हो जाते हैं।

लेकिन एक सवाल उठेगा। तो क्या बुद्ध को और महावीर को यह पता नहीं चला? क्या उनको यह पता नहीं चला कि हम अलग हैं? और जब उन्हें पता चल गया कि हम अलग हैं, तो फिर उन्होंने क्यों चिंता ली? फिर क्यों वे पंक्तिबद्ध, रेखाबद्ध, एक व्यवस्थित और संगत, गणित की तरह जीवन को उन्होंने चलाया?

कुछ कारण हैं। वह भी व्यक्तियों की अपनी—अपनी भिन्नता, अद्वितीयता का कारण है।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़ा संत नारोपा अपने शिष्य को समझा रहा था कि जीवन तो अभिनय है। और जीवन में न कुछ गलत है और न कुछ सही है। नारोपा ने कहा है कि सही और गलत का खयाल ही संसार है। कोई कहता है, यह सही है और यह गलत है; इतना ही भेद अज्ञानी बना देता है। न कुछ सही है, न कुछ गलत है। यह ज्ञान है।

तो उसके शिष्य ने कहा, आप तो बड़ी खतरनाक बात कह रहे हैं! इसका मतलब हुआ कि हम जैसा चाहें वैसा आचरण करें? तो नारोपा ने कहा, तू समझा नहीं। जब तक तू कहता है, जैसा चाहें वैसा आचरण करें, जब तक चाह है, तब तक तो तुझे यह पता ही नहीं चल सकता जो मैं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि जब अनुभव होता है स्वयं का, तो पता चलता है, न कुछ गलत है, न कुछ सही है। क्योंकि यह सब खेल है।

लेकिन उसके शिष्य ने फिर कहा कि इसका तो मतलब यह हुआ कि जो हम चाहें वह करें। नारोपा ने फिर कहा कि तू गलती कर रहा है। जब तक तू चाहता है, तब तक मेरी बात तो तेरी समझ में ही नहीं आ सकती। जब सब चाह छोड़ देगा, तब तुझे यह खयाल आएगा। और तूने अगर मेरी बात का यह मतलब लिया कि जैसा चाहें हम करें, तो उसका तो अर्थ हुआ कि तू मेरी बात समझा ही नहीं। चाह जिसके भीतर है, वासना जिसके भीतर है, वह तो कितना ही धोखा देना चाहे, सही और गलत कायम रहेगा। वासना के साथ जुड़ा है सही और गलत का बोध।

समझें इसे। आपको मैंने कह दिया कि न कुछ गलत है, न कुछ सही है। जैसा चाहो, वैसा बरतो। आप फौरन गए और चोरी कर लाए। न कुछ गलत, न कुछ सही। लेकिन आपको चोरी का ही खयाल क्यों आया सबसे पहले? फिर भी ठीक है। कुछ भी वर्तन करें। आप ज्ञानी हो गए हैं, तो अब कोई आपको बाधा नहीं है। लेकिन कोई आपकी चोरी कर ले गया, तब आप पुलिस में रिपोर्ट करने चले। और रो रहे हैं और कह रहे हैं, यह बहुत बुरा हुआ। मैंने तो सुना है, एक आदमी पर अदालत में मुकदमा चला। नौवीं बार मुकदमा चला। जज ने उससे पूछा कि तू आठ बार सजा भुगत चुका। तू बार—बार पकड़ जाता है। कारण क्या है तेरे पकड़े जाने का? उसने कहा, कारण साफ है कि मुझे अकेले ही चोरी करनी पड़ती है। मेरा कोई साझीदार नहीं है। अकेले ही सब काम करना पड़ता है। तोड़ो दीवार, दरवाजे तोड़ो, तिजोरी तोड़ो, सामान निकालो, बांधो, ले जाओ। कोई सहयोगी, पार्टनर न होने से सब तकलीफ है।

तो उस जज ने पूछा कि तो तू सहयोगी क्यों नहीं खोज लेता, जब आठ बार पकड़ा चुका! तो उसने कहा कि अब आप देखिए जमाना इतना खराब है कि किसी पार्टनर का भरोसा नहीं किया जा सकता। चोर भी भरोसा रखने वाला पार्टनर खोजता है। और दुकानदारी में तो चल भी जाए थोड़ी धोखाधड़ी, चोरी में नहीं चल सकती। चोरी में बिलकुल ईमानदार आदमी चाहिए। इसलिए चोरों में जैसे ईमानदार आपको मिलेंगे, वैसे दुकानदारों में नहीं मिल सकते। डाकुओं में, हत्यारों में जिस तरह की निष्ठा, भ्रातृत्व, भाईचारा मिलेगा, वैसा अच्छे आदमियों में मिलना मुश्किल है। क्योंकि वहां इतनी बुराई है कि उस बुराई को टिकने के लिए इतना भाईचारा न हो, तो बुराई चल नहीं सकती।

नारोपा ने कहा कि अगर तेरे भीतर चाह है, तो तू रुक। पहले चाह को छोड़। और जब तेरे भीतर कोई चाह न रहे, तब के लिए मैं कह रहा हूं कि फिर तू जैसा भी चाहे, वैसा बर्त। फिर कोई पाप नहीं है, फिर कोई पुण्य नहीं है।

इस तरह का विचार पश्चिम के नीति शास्त्रियों को बहुत अजीब लगता है। और वे सोचते हैं कि भारत में जो नीति पैदा हुई, वह इम्मारल है; .वह नैतिक नहीं है।

हमारे पास टेन कमांडमेंट्स जैसी चीजें नहीं हैं। पूरी गीता में बाइबिल जैसी टेन कमांडमेंट्स नहीं हैं, कि चोरी मत करो, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। बल्कि उलटा यह कहा है कृष्ण ने कि अगर तुमको पता चल जाए कि यह पुरुष और प्रकृति अलग है, तो तुम जो हो, होने दो। फिर कोई बर्ताव हो, तुम्हारे लिए कोई बंधन नहीं है, कोई पाप नहीं है।

ईसाई बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है यह सोचकर, मुसलमान बड़ी दिक्कत में पड़ जाता है यह सोचकर, कि गीता कैसा धर्म—ग्रंथ है! यह तो खतरनाक है।

अभी टर्की ने गीता पर नियंत्रण लगा दिया है, बंध लगा दिया है कि टर्की में गीता प्रवेश नहीं कर सकती। मेरे पास कुछ मित्रों ने पत्र लिखे हैं कि इसका आप भी विरोध करिए। गीता जैसी महान किताब पर टर्की ने क्यों प्रतिबंध लगाया?

मैंने कहा, तुम्हें खुश होना चाहिए। कृष्ण को मरे पाच हजार साल हो गए होंगे और अभी भी गीता इतनी जिंदा है कि कोई मुल्क डरता है। खुश होना चाहिए। इसका मतलब है, गीता में अभी भी जान है, अभी भी खतरा और आग है। पर आग क्या है?

इधर मुल्क में सब जगह विरोध हो गए। आर्यसमाजी हैं, फलां हैं, ढिका हैं, जिनको विरोध करने का ही रस है, उन्होंने सबने विरोध कर दिया, प्रस्ताव कर दिए। और हमारे मुल्क में तो प्रस्ताव करने वालों की तो कोई कमी नहीं है। कि ऐसा नहीं होना चाहिए; बहुत बुरा हो गया, बड़ा अन्याय हो गया। लेकिन किसी ने खयाल न किया कि टर्की ने यह नियम लगाया क्यों है!

इस नियम के पीछे इस तरह के सूत्र हैं। क्योंकि यह भय मालूम पड़ता है कि अगर इस तरह की बात प्रचारित हो जाए, तो लोग अनैतिक हो जाएंगे। यह भय थोड़ी दूर तक सच है। क्योंकि सामान्य आदमी अपने मतलब की बात निकाल लेता है।

गीता कहती है, जब पुरुष और प्रकृति का भेद स्पष्ट हो जाए, तो फिर कुछ भी बरतो, कोई पाप नहीं, कोई पुण्य नहीं, कोई बंधन नहीं; फिर कोई जन्म नहीं है। लेकिन पहली शर्त खयाल में रहे। अगर शर्त हटा दें हम, तो निश्चित ही एक अराजकता और अनैतिकता फैल सकती है। और तब टर्की अगर नियंत्रण लगाता हो कि गीता को मुल्क में नहीं आने देंगे, तो सामान्य आदमी को जो खतरा हो सकता है, उस खतरे की दृष्टि से ठीक ही है।

पर मैं तो खुश हुआ। मैं खुश हुआ, क्योंकि इतनी पुरानी किताबों पर कभी भी नियंत्रण नहीं लगते। क्योंकि जिंदा किताबें मर जाती हैं दो —चार—दस साल में। फिर उनसे कोई क्रांति—व्रांति नहीं होती। पांच हजार साल! उसके बाद भी कोई मुल्क चिंतित हो सकता है। तो उसका अर्थ है कि कोई चिंगारी, कोई बहुत विस्फोटक तत्व गीता में है।

वह यही तत्व है, अनैतिक मालूम होता है।

अतिनैतिक है गीता का संदेश। सुपर इथिकल है। इथिकल तो बिलकुल नहीं है; नैतिक नहीं है। अतिनैतिक है। और उस अतिनैतिकता को समझने में खतरा है। और जितनी ऊंचाई पर कोई चले, उतना ही डर है, गिर जाए, तो गड्ढे हैं बहुत बड़े।

इस सूत्र को ठीक से समझ लेना।

आपके मन में अगर कोई चाह बसी हो; मैं आपसे कहूं कि जो भी करना हो करो, कोई पाप नहीं है; और फौरन आपको खयाल आ जाए कि क्या करना है, तो आप समझ लेना कि आपके लिए अभी यह नियम नहीं है। यह सूत्र सुनकर, कि कुछ भी करो, कोई हर्ज नहीं है, आपके भीतर करने का कोई भी खयाल न उठे। यह सुनकर, कि कोई भी बरताव हो, कोई जन्म नहीं होगा; कोई दुख, कोई नरक नहीं होगा, और आपके भीतर कोई बरताव करने का खयाल न आए, तो यह सूत्र आपकी समझ में सकता है।

और तत्क्षण आपको लगे, कि ऐसा? कुछ भी करो! ले भागों पड़ोसी की पत्नी को!

क्योंकि मैंने सुना है, एक दफ्तर में ऐसा हो गया। दफ्तर के नौकर—चाकर ठीक से काम नहीं कर रहे थे, तो एक मनोवैज्ञानिक से सलाह ली मालिक ने। तो उसने कहा कि आप ऐसा करें, वहां एक तख्ती लगा दें। तख्ती में लिख दें

कि जो भी कल करना है, वह आज करो, जो आज करना है, वह अभी करो। क्योंकि क्षणभर में प्रलय हो जाएगी, फिर कब करोगे! काल करै सो आजकर, आज करै सो अब; पल में परलै होएगी, बहुरि करोगे कब। तख्ती लगा दी बड़ी।

दूसरे दिन मनोवैज्ञानिक पूछने आया कि क्या परिणाम हुआ। मालिक के सिर पर पट्टी बंधी थी। बिस्तर पर पड़े थे। उसने कहा, परिणाम? बरबाद हो गए! क्योंकि टाइपिस्ट लड़की को लेकर भाग गया मुनीम। चिट्ठी लिख गया कि बहुत दिन से सोच रहा था कि कब भाग। देखा कि काल करै सो आज कर, आज करै सो अब; पल में परलै होएगी, बहुरि करेगा कब। तो मैंने सोचा कि अब भागो। पल में परलै हो जाए, फिर कब करोगे!

और वह जो आफिस बॉय था, उसने आकर जूते मार दिए सिर पर। क्योंकि वह कहता है, कई दिन से सोच रहे थे कि मारो। आफिस बॉय सोचता ही रहता है, कैसे मारें। उसको तो मालिक रोज ही मार रहा है। वह भी सोचता रहता है। उसने कहा कि जब लिखा ही है कि आज ही कर लो जो करना है, कल का कुछ भरोसा नहीं। तो उसने लगा दिए जूते।

जो कैशियर था, वह सब लेकर भाग गया। दफ्तर बंद पड़ा है। खूब कृपा की, उस मालिक ने कहा मनोवैज्ञानिक को, अच्छी तरकीब बताई। बरबाद कर डाला।

यह सूत्र आपके लिए नहीं है। यह सूत्र तभी है, जब पुरुष और प्रकृति का स्पष्ट बोध, भेद हो जाए तो नीति का कोई बंधन नहीं है। पांच मिनट रुके। कीर्तन में सम्मिलित हों, और फिर जाएं।

गीता दर्शन–(भाग–6)
पुरूष में थिरता के चार मार्ग—(प्रवचन—नौवां)
अध्याय—13

सूत्र—

ध्यानेनात्मनि पश्यान्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।24।।
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तउपि चातितरन्त्येव मृत्यु श्रुतिपरायणाः।।25।।

यावत्संजायते किंचित्सत्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षत्रज्ञसंयोत्तद्विद्धि भरतर्षभ।।26।।
और है अर्जुन उस परम पुरुष को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं तथा अन्य कितने ही ज्ञान— योग के द्वारा देखते हैं तथा अन्य कितने ही निष्काम कर्म— योग के द्वारा देखते हैं।

परंतु इनसे दूसरे अर्थात जो मंद बुद्धि वाले पुरूष है, वे स्वयं इस प्रकार न जानते न दूसरों से अर्थात तत्व के जानने वाले पुरूषों से सुनकर ही उपासना करते हैं और वे सुनने के यरायण हुए पुरुष भी मृत्युरूय संसार— सागर को निस्संदेह तर जाते हैं।

हे अर्जुन यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर— जंगम वस्तु उत्पन्न होती है, उस संपूर्ण को तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न हुई जान।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि भगवान बुद्ध ने सत्य, अहिंसा, झूठ न बोलना, चोरी न करना, बुरा न करना, यह सिखाया है।

परंतु कृष्ण की गीता में हिंसा का मार्ग बतलाया गया है। कृष्ण चोरी करना, झठ बोलना, संभोग से समाधि की ओर जाना सिखाते है। तो आप यह कहिए कि जो हिंसा का मार्ग बताता है, क्या वह भगवान माना जा सकता है?
बुद्ध, महावीर की शिक्षाएं नैतिक हैं और बहुत साधारण आदमी को ध्यान में रखकर दी गई हैं। कृष्ण की शिक्षाएं धार्मिक हैं और बहुत असाधारण आदमी को ध्यान में रखकर दी गई हैं।

बुद्ध, महावीर की शिक्षाएं अत्यंत साधारण बुद्धि के आदमी की भी समझ में आ जाएंगी; उनमें जरा भी अड़चन नहीं है। उसमें थर्ड रेट, जो आखिरी बुद्धि का आदमी है, उसको ध्यान में रखा गया है।

कृष्ण की शिक्षाएं प्रथम कोटि के मनुष्य की ही समझ में आ सकती हैं। वे अति जटिल हैं। और महावीर और बुद्ध की शिक्षाओं से बहुत ऊंची हैं। थोड़ा कठिन होगा समझना।

हम सबको समझ में आ जाता है कि चोरी करना पाप है। चोर को भी समझ में आता है। आपको ही समझ में आता है, ऐसा नहीं; चोर को भी समझ में आता है कि चोरी करना बुरा है। लेकिन चोरी करना बुरा क्यों है?

चोरी करना बुरा तभी हो सकता है, जब संपत्ति सत्य हो; पहली बात। धन बहुत मूल्यवान हो और धन पर किसी का कब्जा माना जाए व्यक्तिगत अधिकार माना जाए तब चोरी करना बुरा हो सकता है।

धन किसका है? एक तो यह माना जाए कि व्यक्ति का अधिकार है धन पर, इसलिए उससे जो धन छीनता है, वह नुकसान करता है। दूसरा यह माना जाए कि धन बहुत मूल्यवान है। अगर धन में कोई मूल्य ही न हो, तो चोरी में कितना मूल्य रह जाएगा? इसे थोड़ा समझें।

जितना मूल्य धन में होगा, उतना ही मूल्य चोरी में हो सकता है। अगर धन का बहुत मूल्य है, तो चोरी का मूल्य है। लेकिन कृष्ण जिस तल से बोल रहे हैं, वहां धन मिट्टी है।

यह बड़े मजे की बात है कि महावीर को मानने वाले जैन साधु भी कहते हैं, धन मिट्टी है। और फिर भी कहते हैं, चोरी पाप है। मिट्टी को चुराना क्या पाप होगा? धन कचरा है। और फिर भी कहते हैं, चोरी पाप है! अगर धन कचरा है, तो चोरी पाप कैसे हो सकती है? कचरे को चुराने को कोई पाप नहीं कहता। वह धन लगता तो मूल्यवान ही है।

असल में जो समझाते हैं कि कचरा है, वे भी इसीलिए अपने को समझा रहे हैं, बाकी लगता तो उनको भी धन मूल्यवान है। इसलिए धन की चोरी भी मूल्यवान मालूम पड़ती है।

मैं एक जैन मुनि के पास था, उन्होंने अपनी एक कविता मुझे सुनाई। उस कविता में उन्होंने बड़े अच्छे शब्द संजोए थे। और जो भी उनके आस—पास लोग बैठे थे, वे सब सिर हिलाने लगे। गीत अच्छा था; लय थी। लेकिन अर्थ? अर्थ बिलकुल ही व्यर्थ था। अर्थ यह था उस गीत का कि हे सम्राटो, तुम अपने स्वर्ण—सिंहासनों पर बैठे रहो; मैं अपनी धूल में ही पड़ा हुआ मस्त हूं। मुझे तुम्हारे स्वर्ण—सिंहासन की कोई भी चाह नहीं। मेरे लिए तुम्हारा स्वर्ण—सिंहासन मिट्टी जैसा है। मैं तुम्हारे स्वर्ण—सिंहासन को लात मारता हूं। मैं अपनी धूल में पड़ा हुआ फकीर मस्त हूं। मुझे तुम्हारे स्वर्ण—सिंहासनों की कोई भी जरूरत नहीं है। बार—बार यही ध्वनि थी।

गीत पूरा हो जाने पर मैंने उनसे पूछा कि अगर स्वर्ण—सिंहासनों की सच में ही तुम्हें कोई फिक्र नहीं, तो यह गीत किसलिए लिखा है? मैंने किसी सम्राट को इससे उलटा गीत लिखते आज तक नहीं देखा, कि फकीरो, पड़े रहो अपनी मिट्टी में, हमें तुमसे कोई भी ईर्ष्या नहीं। हम तुम्हारी फकीरी को लात मारते हैं। हम तुम्हारी फकीरी को दो कौड़ी का समझते हैं। हम अपने स्वर्ण—सिंहासन पर मजे में हैं। हमें तुमसे कोई ईर्ष्या नहीं है।

मनुष्य जाति के हजारों साल के इतिहास में एक भी सम्राट ने ऐसा नहीं लिखा है। लेकिन फकीरों ने इस गीत जैसे बहुत गीत लिखे हैं। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है, फकीरों को ईर्ष्या है। यह ईर्ष्या नहीं है, यह कहना भी ईर्ष्या से ही जन्म रहा है। और फकीर कितना ही कह रहा हो, अपनी धूल में मस्त हैं, वह अपने को समझा रहा है कि

हम धूल में मस्त हैं। जान तो वह भी रहा है कि सम्राट सिंहासन पर मजा ले रहा है। नहीं तो सम्राट को बीच में लाने का प्रयोजन क्या है? और स्वर्ण—सिंहासन अगर मिट्टी ही है, तो बार—बार दोहराने की जरूरत क्या है?

कोई भी तो नहीं कहता कि मिट्टी मिट्टी है। लोग स्वर्ण मिट्टी है, ऐसा क्यों कहते हैं? स्वर्ण तो स्वर्ण ही दिखाई पड़ता है, लेकिन वासना को दबाने के लिए आदमी अपने को समझाता है कि मिट्टी है, क्या चाहना उसको! लेकिन चाह भीतर खड़ी है, उस चाह को काटता है। मिट्टी है, क्या चाहना उसको!

यह स्त्री की देह है, इसमें कोई भी सौंदर्य नहीं है; हड्डी, मांस—मज्जा भरा है, ऐसा अपने को समझाता है। सौंदर्य उसको दिखाई पड़ता है। उसकी वासना मांग करती है। उसकी वासना दौड़ती है। वह वासना को काटने के उपाय कर रहा है। वह यह समझा रहा है कि नहीं, इसमें हड्डी, मांस—मज्जा है; कुछ भी नहीं है। सब गंदी चीजें भीतर भरी हैं; यह मल का ढेर है।

लेकिन यह समझाने की जरूरत क्या है? मल के ढेर को देखकर कोई भी नहीं कहता कि यह मल का ढेर है, इसकी चाह नहीं करनी चाहिए। अगर स्त्री में मल ही दिखाई पड़ता है, तो बात ही खतम हो गई; चाह का सवाल क्या है! और चाह नहीं करनी चाहिए, ऐसी धारणा का क्या सवाल है!

कृष्ण बहुत ऊंची जगह से बोल रहे हैं। महावीर और बुद्ध भी उसी ऊंची जगह पर खड़े हैं, लेकिन वे बोल बहुत नीची जगह से रहे हैं, वहां जहां आप खड़े हैं।

सदगुरु अपने हिसाब से चुनते हैं। वे किसको कहना चाहते हैं, इस पर निर्भर करता है।

महावीर आपको समझते हैं। वे जानते हैं कि आप चोर हो। और आपको यह कहना कि चोरी और गैर—चोरी में कोई फर्क नहीं है, आप चोरी में ही लगे रहोगे। तो आपको समझा रहें हैं कि चोरी पाप है। हालांकि महावीर भी जानते हैं कि चोरी तभी पाप हो सकती है, जब धन में मूल्य हो। और जब धन में कोई मूल्य नहीं है, चोरी में कोई मूल्य नहीं रह गया।

इसे हम ऐसा समझें। महावीर और बुद्ध समझा रहे हैं कि हिंसा पाप है; और साथ ही यह भी समझा रहे हैं कि आत्मा अमर है, उसे काटा नहीं जा सकता। इन दोनों बातों में विरोध है। अगर मैं किसी को काट ही नहीं सकता, तो हिंसा हो कैसे सकती है? इसे थोड़ा समझें।

महावीर और बुद्ध कह रहे हैं कि हिंसा पाप है; किसी को मारो मत। और पूरी जिंदगी समझा रहे हैं कि मारा तो जा ही नहीं सकता, क्योंकि आत्मा अमर है; और शरीर मरा ही हुआ है, उसको मारने का कोई उपाय नहीं है।

आपके भीतर दो चीजें हैं, शरीर है और आत्मा है। महावीर और बुद्ध भी कहते हैं कि आत्मा अमर है, उसको मारा नहीं जा सकता, और शरीर मरा ही हुआ है, उसको मारने का कोई उपाय नहीं है। तो फिर हिंसा का क्या मतलब है? फिर हिंसा में पाप कहां है? आत्मा मर नहीं सकती, शरीर मरा ही हुआ है, तो हिंसा में पाप कैसे हो सकता है? और जब आप किसी को मार ही नहीं सकते, तो बचा कैसे, सकते हैं? यह भी थोड़ा समझ लें।

अहिंसा की कितनी कीमत रह जाएगी! अगर हिंसा में कोई मूल्य नहीं है, तो अहिंसा का सारा मूल्य चला गया। अगर आत्मा काटी ही नहीं जा सकती, तो अहिंसा का क्या मतलब है? आप हिंसा कर ही नहीं सकते, अहिंसा कैसे करिएगा! इसे थोड़ा ठीक से समझें। हिंसा कर सकते हों, तो अहिंसा भी हो सकती है। जब हिंसा हो ही नहीं सकती, तो अहिंसा कैसे करिएगा?

लेकिन महावीर और बुद्ध आपकी तरफ देखकर बोल रहे हैं। वे जानते हैं कि आपको न तो आत्मा का पता है, जो अमर है; न आपको इस बात का पता है कि शरीर जो कि मरणधर्मा है। आप तो शरीर को ही अपना होना मान रहे हैं, जो मरणधर्मा है। इसलिए जरा ही क्रोध आता है, तो लगता है, दूसरे आदमी को तलवार से काटकर दो टुकड़े कर दो।

आप जब दूसरे आदमी को काटने की सोचते हैं, तो आप दूसरे आदमी को भी शरीर मानकर चल रहे हैं। इसलिए हिंसा का भाव पैदा होता है।

इस हिंसा के भाव के पैदा होने में आपकी भूल है, आपका अज्ञान है। यह अज्ञान टूटे, इसकी महावीर और बुद्ध चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन कृष्ण का संदेश अंतिम है, आत्यंतिक है; वह अल्टिमेट है। वह पहली क्लास के बच्चों के लिए दिया गया नहीं है। वह आखिरी कक्षा में बैठे हुए लोगों के लिए दिया गया है।

इसलिए कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू पागलपन की बात मत कर कि तू लोगों को काट सकता है। आज तक दुनिया में कोई भी नहीं काट सका। काटना असंभव है। क्योंकि वह जो भीतर है, शरीर को काटे जाने से कटता नहीं। वह जो भीतर है, शरीर को जलाने से जलता नहीं। वह जो भीतर है, शरीर को छेद सकते हैं शस्त्र, वह छिदता नहीं। तो इसलिए तू पहली तो भ्रांति छोड दे कि तू काट सकता है। इसलिए तू हिंसक हो सकता है, यह बात ही भूल। और जब तू हिंसक ही नहीं हो सकता, तो अहिंसक होने का कोई सवाल नहीं है।

यह परम उपदेश है। और इसलिए जिनके पास छोटी बुद्धि है, सांसारिक बुद्धि है, उनकी समझ में नहीं आ सकेगा। पर कुछ हर्जा नहीं, वे महावीर और बुद्ध को समझकर चलें। जैसे—जैसे उनकी समझ बढ़ेगी, वैसे—वैसे उनको दिखाई पड़ने लगेगा कि महावीर और बुद्ध भी कहते तो यही हैं।

समझ बढ़ेगी, तब उनके खयाल में आएगा कि वे भी कहते हैं, आत्मा अमर है। वे भी कहते हैं कि आत्मा को मारने का कोई उपाय नहीं है। और वे भी कहते हैं कि धन केवल मान्यता है, उसमें कोई मूल्य है नहीं; मान्यता का मूल्य है। लेकिन जो माने हुए बैठे हैं, उनको छीनकर अकारण दुख देने की कोई जरूरत नहीं है। हालांकि दुख वे आपके द्वारा धन छीनने के कारण नहीं पाते हैं। वे धन में मूल्य मानते हैं, इसलिए पाते हैं।

थोड़ा समझ लें। अगर मेरा कोई धन चुरा ले जाता है, तो मैं जो दुख पाता हूं वह उसकी चोरी के कारण नहीं पाता हूं; वह दुख मैं इसलिए पाता हूं कि मैंने अपने धन में बड़ा मूल्य माना हुआ था। वह मेरे ही अज्ञान के कारण मैं पाता हूं, चोर के कारण नहीं पाता। मैं तो पाता हूं इसलिए कि मैं सोचता था, धन बड़ा मूल्यवान है और कोई मुझसे छीन ले गया।

कृष्ण कह रहे हैं, धन का कोई मूल्य ही नहीं है। इसलिए न चोरी का कोई मूल्य है और न दान का कोई मूल्य है।

ध्यान रखें, धन में मूल्य हो, तो चोरी और दान दोनों में मूल्य है। फिर चोरी पाप है और दान पुण्य है। लेकिन अगर धन ही निर्मूल्य है, तो चोरी और दान, सब निर्मूल्य हो गए। यह आखिरी संदेश है। इसका मतलब यह नहीं है कि आप चोरी करने चले जाएं।

इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप दान न करें। इसका कुल मतलब इतना है कि आप जान लें कि धन में कोई भी मूल्य नहीं है।

कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि तू हिंसा करने में लग जा। क्योंकि कृष्ण तो मानते ही नहीं कि हिंसा हो सकती है। इसलिए कैसे कहेंगे कि हिंसा करने में लग जा! कृष्ण तो यह कह रहे हैं कि हिंसा—अहिंसा भ्रांतियां हैं। तू कर नहीं सकता। लेकिन करने की अगर तू चेष्टा करे, तो तू अकारण दुख में पड़ेगा।

इसे हम और तरह से भी समझें। क्योंकि यह बहुत गहरा है, और जैनों, बौद्धों और हिंदुओं के बीच जो बुनियादी फासला है, वह यह है।

इसलिए गीता को जैन और बौद्ध स्वीकार नहीं करते। कृष्ण को उन्होंने नरक में डाला हुआ है। अपने शास्त्रों में उन्होंने लिखा है कि कृष्ण नरक में पड़े हैं। और नरक से उनका छुटकारा आसान नहीं है, क्योंकि इतनी खतरनाक बात

समझाने वाला आदमी नरक में होना ही चाहिए। जो यह समझा रहा है कि अर्जुन, तू बेफिक्री से काट, क्योंकि कोई कटता ही नहीं है। इससे ज्यादा खतरनाक और क्या संदेश होगा!

और जो कह रहा है, किसी भी तरह का वर्तन करो, वर्तन का कोई मूल्य नहीं है; सिर्फ पुरुष के भाव में प्रतिष्ठा चाहिए। तुम्हारे आचरण की कोई भी कीमत नहीं है। तुम्हारा अंतस कहां है, यही सवाल है। तुम्हारा आचरण कुछ भी हो, उसका कोई भी मूल्य नहीं है, न निषेधात्मक, न विधायक। तुम्हारे आचरण की कोई संगति ही नहीं है। तुम्हारी आत्मा बस, काफी है। ऐसी समाज विरोधी, आचरण विरोधी, नीति विरोधी, अहिंसा विरोधी बात!

तो जैनों ने उन्हें नरक में डाल दिया है। और तब तक वे न छूटेंगे, जब तक इस सृष्टि का अंत न हो जाए। दूसरी सृष्टि जब जन्मेगी, तब वे छूटेंगे।

ठीक है। जैनों की मान्यता के हिसाब से कृष्ण खतरनाक हैं, नरक में डालना चाहिए। लेकिन कृष्ण को समझने की कोशिश करें, तो कृष्ण ने इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम बात कही जा सकती है, वह कही है। लेकिन कहने का ढंग भी उनका उतना ही श्रेष्ठ है, जितनी बात श्रेष्ठ है। उन्होंने उसे छोटे लोगों के लिए साधारण बुद्धि के लोगों के लिए मिश्रित नहीं किया, समझौता नहीं किया है। उन्होंने आपसे कोई समझौता नहीं किया है। सत्य जैसा है, उसे वैसा ही कह दिया है। उसके क्या परिणाम होंगे, इसकी भी फिक्र नहीं की। और निश्चित ही कुछ लोग तो चाहिए जो सत्य को वैसा ही कह दें जैसा है, बिना परिणामों की फिक्र किए। अन्यथा कोई भी सत्य कहा नहीं जा सकता।

महावीर, बुद्ध समझाते हैं, दूसरे को दुख मत दो। और महावीर, बुद्ध यह भी समझाते हैं कि तुम्हें जब दुख होता है, तो तुम्हारे अपने कारण होता है, दूसरा तुम्हें दुख नहीं देता। इन दोनों बातों का मतलब क्या हुआ?

एक तरफ कहते हैं, दूसरे को दुख मत दो; दुख देना पाप है। दूसरी तरफ कहते हैं कि तुम्हें जब कोई दुख देता है, तो तुम अपने ही कारण दुख पाते हो, दूसरा तुम्हें दुख नहीं दे रहा है। दूसरा तुम को दुख दे नहीं सकता।

ये दोनों बातें तो विरोधी हो गईं। इसमें पहली बात साधारण बुद्धि के लोगों के लिए कही गई है; दूसरी बात परम सत्य है। और अगर दूसरी सत्य है, तो पहली झूठ हो गई।

जब मैं दुख पाता हूं तो महावीर कहते हैं कि तुम अपने कारण दुख पा रहे हो, कोई तुम्हें दुख नहीं देता। एक आदमी मुझे' पत्थर मार देता है। महावीर कहते हैं, तुम अपने कारण दुख पा रहे हो। क्योंकि तुमने शरीर को मान लिया है अपना होना, इसलिए पत्थर लगने से शरीर की पीड़ा को तुम अपनी पीड़ा मान रहे हो। ठीक! मैं किसी के सिर में पत्थर मार देता हूं तो महावीर कहते हैं, दूसरे को दुख मत पहुंचाओ।

यह बात कंट्राडिक्टरी हो गई। जब मुझे कोई पत्थर मारता है, तो दुख का कारण मैं हूं! और जब मैं किसी को पत्थर मारता हूं तब भी दुख का कारण मैं हूं!

यह दो तल पर है बात। दूसरे को दुख मत पहुंचाओ, यह क्षुद्र आदमी के लिए कहा गया है। क्योंकि क्षुद्र आदमी दूसरे को दुख पहुंचाने में बड़ा उत्सुक है; उसके जीवनभर का एक ही सुख है कि दूसरे को कैसे दुख पहुंचाएं। वह मरते दम तक एक ही बस काम करता रहता है कि दूसरों को कैसे दुख पहुंचाएं। जब वह सोचता भी है कि मेरा सुख क्या हो, तब भी दूसरे के दुख पर ही उसका सुख निर्भर होता है।

आप अपने सुखों को खोजें, तो आप पता लगा लेंगे कि जब तक आपका सुख दूसरे को दुख न देता हो, तब तक सुख नहीं मालूम पड़ता। आप एक बड़ा मकान बना लें, लेकिन जब तक दूसरों के मकान छोटे न पड़ जाएं, तब तक सुख नहीं मालूम पड़ता। आप जो भी कर रहे हैं, आपके सुख में दूसरे के सुख को मिटाने की चेष्टा है।

इस तरह के आदमी के लिए महावीर ' और बुद्ध कह रहे हैं कि दूसरे को दुख पहुंचाओ मत। लेकिन यह बात ऐसे झूठ है, क्योंकि दूसरे को कोई दुख पहुंचा नहीं सकता, जब तक कि दूसरा दुख पाने को राजी न हो। यह दूसरे की सहमति पर निर्भर है। आप पहुंचा नहीं सकते।

फिर ऐसा क्यों कहा जा रहा है? ऐसा इसलिए कहा जा रहा है कि दूसरे को दुख पहुंचाने की चेष्टा में दूसरे को तो दुख नहीं पहुंचाया जा सकता, तुम अपने को ही दुख पहुंचाओगे। वह तो हो ही नहीं सकता दूसरे को दुख पहुंचाना, लेकिन तुम अपने को दुख पहुचाओगे। क्योंकि तुम दुख के बीज बो रहे हो। और जो तुम दूसरे के लिए करते हो, वह तुम्हारे लिए होता जाता है।

और जब तुम्हारे लिए कोई दुख पहुंचाए तब तुम समझना कि कोई दूसरा तुम्हें दुख नहीं पहुंचा रहा है। यह हो सकता है कि तुम्हारे अपने ही दूसरों को पहुंचाए गए दुखों के बीज दूसरे की सहायता से, संयोग से, निमित्त से अब तुम्हारे लिए फल बन रहे हों। लेकिन दुख का मूल कारण तुम स्वयं ही हो।

यह दूसरी बात ऊंचे तल से कही गई है। और पहली बात को जो पूरा कर लेगा, उसको दूसरी बात समझ में आ सकेगी। जो दूसरे को दुख पहुंचाना बंद कर देगा, उसे यह भी खयाल में आ जाएगा कि कोई दूसरा मुझे दुख नहीं पहुंचा सकता। यह दो तल की, दो कक्षाओं की बात है।

कृष्ण एक तल की सीधी बात कह रहे हैं, वे आखिरी बात कह रहे हैं। उनके सामने जो व्यक्ति खड़ा था, वह साधारण नहीं है। जिस अर्जुन से वे बात कर रहे थे, उसकी प्रतिभा कृष्ण से जरा भी कम नहीं है। संभावना उतनी ही है, जितनी कृष्ण की है। वह कोई मंद बुद्धि व्यक्ति नहीं है। वह धनी है प्रतिभा का। उसके पास वैसा ही निखरा हुआ चैतन्य है, वैसी ही बुद्धि है, वैसा ही प्रगाढ़ तर्क है। वे जिससे बात कर रहे हैं; वह शिखर की बात है।

और इसीलिए गीता लोग कंठस्थ तो कर लेते हैं, लेकिन गीता को समझ नहीं पाते। और बहुत—से लोग जो गीता को मानते हैं, वे भी गीता में अड़चन पाते हैं। मान लेते हैं, तो भी गीता उनको दिक्कत देती है। कठिनाई मालूम पड़ती है।

महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति को भी, जो गीता को माता कहते हैं, उनको भी गीता में तकलीफ है। क्योंकि यह हिंसा—अहिंसा उनको भी सताती है। वे भी रास्ता निकालते हैं कोई। क्योंकि उनका मन भी यह मानने की हिम्मत नहीं कर पाता कि कृष्ण जो कहते हैं, वह ठीक ही कहते हैं कि काटो, कोई कटता नहीं। मारो, कोई मरता नहीं। भयभीत मत होओ, डरो मत, तुम दूसरे को दुख पहुंचा नहीं सकते। इसलिए दूसरे को दुख न पहुंचाऊं, ऐसी चेष्टा भी व्यर्थ है। और मैंने दूसरे को दुख नहीं पहुंचाया, ऐसा अहंकार पागलपन है।

गांधी तक को तकलीफ होती है कि क्या करें। एक तरफ अहिंसा है। गांधी बुद्धि से जैन हैं, नब्बे प्रतिशत। जन्म से हिंदू हैं, दस प्रतिशत। तो गीता के साथ मोह भी है, लगाव भी है; कृष्ण को छोड़ भी नहीं सकते। और वह जो नब्बे प्रतिशत जैन होना है, क्योंकि गुजरात की हवा जैनियों की हवा है। वहां हिंदू भी जैन ही हैं। उसके सोचने के तरीके के ढंग, वह सब जैन की आधारशिला पर निर्मित हो गए हैं।

तो गांधी गीता को भ्रष्ट कर देते हैं। वे फिर तरकीबें निकाल लेते हैं समझाने की। वे कहते हैं, यह युद्ध वास्तविक नहीं है। यह युद्ध तो मनुष्य के भीतर जो बुराई और अच्छाई है, उसका युद्ध है। यह कोई युद्ध वास्तविक नहीं है। और कृष्ण जो समझा रहे हैं काटने—पीटने को, यह बुराई को काटने—पीटने को समझा रहे हैं, मनुष्यों को नहीं। ये कौरव बुराई के प्रतीक हैं; और ये पांडव भलाई के प्रतीक हैं। यह मनुष्य की अंतरात्मा में चलता शुभ और अशुभ का द्वंद्व है। बस, इस प्रतीक को पकड़कर फिर गीता में दिक्कत नहीं रह जाती, फिर अड़चन नहीं रह जाती।

मगर यह बात सरासर गलत है। यह प्रतीक अच्छा है, लेकिन यह बात गलत है। कृष्ण तो वही कह रहे हैं, जो वे कह रहे हैं। वे तो यह कह रहे हैं कि मारने की घटना घटती ही नहीं, इसलिए मार सकते नहीं हो, तो मारने की सोचो भी मत। पहली बात। और बचाने का तो कोई सवाल ही नहीं है। बचाओगे कैसे?

तुम दूसरे के साथ कुछ कर ही नहीं सकते हो, तुम जो भी कर सकते हो, अपने ही साथ कर सकते हो! और जब तुम दूसरे को. भी मारते हो, तो तुम अपने को ही मार रहे हो। जब तुम दूसरे को बचाते हो, तो तुम अपने को ही बचा रहे हो। कृष्ण यह कह रहे हैं कि तुम अपने से बाहर जा ही नहीं सकते। तुम अपने पुरुष में ही ठहरे हुए हो। तुम सिर्फ भावनाओं में जा सकते हो।

एक आदमी सोच रहा है कि दूसरे को मार डालूं चोट पहुंचाऊं। वह सब भावनाएं कर रहा है। वह जाकर शरीर को तोड़ भी सकता है। शरीर तक उसकी पहुंच हो जाएगी, क्योंकि शरीर टूटा ही हुआ है। लेकिन वह जो भीतर चैतन्य था, उसको छू भी नहीं पाएगा। और अगर आपको लगता है कि आप छू पाए तो अपने कारण नहीं, वह जो चैतन्य था भीतर, उसके भाव के कारण। अगर उसने मान लिया कि तुम मुझे मारने आए हो, तुम मुझे मार रहे हो, तुम मुझे दुख दे रहे हो, तो यह उसका अपना भाव है। इस कारण तुम्हें लगता है कि तुम उसको दुख दे पाए।

इसे हम ऐसा समझें। अगर आप महावीर को मारने जाएं, तो आप महावीर को दुख नहीं पहुंचा पाएंगे। बहुत लोगों ने मारा है और दुख नहीं पहुंचा पाए। महावीर के कानों में किसी ने खीले छेद दिए, लेकिन दुख नहीं पहुंचा पाए। क्यों? क्योंकि महावीर अब भावना नहीं करते। तुम उन्हें दुख पहुंचाने की कोशिश करते हो, लेकिन वे दुख को लेते नहीं हैं। और जब तक वे न लें, दुख घटित नहीं हो सकता। तुम पहुंचाने की कामना कर सकते हो; लेने का काम उन्हीं का है कि वे लें भी। जब तक वे न लें, तुम नहीं पहुंचा सकते। इसलिए महावीर को हम दुख नहीं पहुंचा सकते, क्योंकि महावीर दुख लेने को अपने भीतर राजी नहीं हैं।

आप उस व्यक्ति को दुख पहुंचा सकते हैं, जो दुख लेने को राजी है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह आपके कारण दुख नहीं लेता; वह दुख लेने को राजी है, इसलिए लेता है। और अगर आप न पहुंचाते, तो कोई और पहुंचाता। और अगर कोई भी पहुंचाने वाला न मिलता, तो भी वह आदमी कल्पित करके दुख पाता। वह दुख लेने को राजी था। वह कोई भी उपाय खोज लेता और दुखी होता।

आप थोड़े दिन, सात दिन के लिए एक कमरे में बंद हो जाएं, जहां कोई दुख पहुंचाने नहीं आता, कोई गाली नहीं देता, कोई क्रोध नहीं करवाता। आप चकित हो जाएंगे कि सात दिन में अचानक आप किसी क्षण में दुखी हो जाते हैं, जब कि कोई दुख पहुंचाने वाला नहीं है। और किसी क्षण में अचानक क्रोध से भर जाते हैं, जब कि किसी ने कोई गाली नहीं दी, किसी ने कोई अपमान नहीं किया। और किसी समय आप बड़े आनंदित हो जाते हैं, जब कि कोई प्रेम करने वाला नहीं है।

अगर सात दिन आप मौन में, स्वात में बैठें, तो आप चकित हो जाएंगे कि आपके भीतर भावों का वर्तन चलता ही रहता है। और बिना किसी के आप सुखी—दुखी भी होते रहते हैं।

एक दफा यह आपको दिखाई पड़ जाए कि मैं बिना किसी के सुखी—दुखी हो रहा हूं तो आपको खयाल आ जाएगा कि दूसरे ज्यादा से ज्यादा आपको अपनी भावनाएं टांगने के लिए खूंटी का काम करते हैं, इससे ज्यादा नहीं। वे निमित्त से ज्यादा नहीं हैं।

यही कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि तू निमित्त से ज्यादा नहीं है। तू यह खयाल ही छोड़ दे कि तू कर्ता है। उस कर्ता में ही कृष्ण के लिए एकमात्र अज्ञान है।

हमें समझ में आता है कि हिंसा करना बुरा है। हमें यह समझ में नहीं आता कि अहिंसा करना भी बुरा है। हिंसा करना बुरा है, क्योंकि दूसरे को दुख पहुंचता है, हमारा खयाल है। लेकिन कृष्ण के हिसाब से हिंसा करना इसलिए बुरा है कि कर्ता का भाव बुरा है, कि मैं कर रहा हूं। इससे अहंकार घना होता है।

अगर हिंसा करना बुरा है कर्ता के कारण, तो अहिंसा करना भी उतना ही बुरा है कर्ता के कारण। और कृष्ण कहते हैं, जड़ को ही काट दो; तुम कर्ता मत बनो। न तो तुम हिंसा कर सकते हो, न तुम अहिंसा कर सकते हो। तुम कुछ कर नहीं सकते। तुम केवल हो सकते हो। तुम अपने इस होने में राजी हो जाओ। फिर जो कुछ हो रहा हो, उसे होने दो।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि अगर यह बात सच है कि मैं कुछ न करने में ठहर जाऊं, पुरुष में ठहर जाऊं, अपने चैतन्य में साक्षी— भाव से रुक जाऊं, तो कृष्ण कहते हैं, फिर जो भी बर्तन हो, उस बर्तन से कुछ भी हानि—लाभ नहीं है, कोई पाप—पुण्य नहीं है। उन मित्र ने पूछा है कि जब मेरी सब चाह मिट गई, वासना मिट गई, और जब मैंने अपने पुरुष को जान लिया, तो बर्तन होगा ही कैसे? जब मैं अपने आत्मा में ठहर गया, तो बर्तन होगा ही कैसे?

यह बात सोचने जैसी है यह सवाल उठेगा, क्योंकि हम जितना भी वर्तन जानते? हैं, वह चाह के कारण है। आप चलते हैं, क्योंकि कहीं पहुंचना है। कोई कहे कि कहीं पहुंचने की जरूरत नहीं है, फिर चलना हो जितना, चलो। तो आप कहेंगे, हम चलेंगे किसलिए? चलने का कोई अर्थ ही न रहा, कोई प्रयोजन न रहा, कोई कारण न रहा, तो चलेंगे किसलिए? कोई पागल तो नहीं हैं कि अकारण चलते रहें, जब कि कहीं पहुंचने को नहीं है, कोई वासना नहीं है, कोई चाह नहीं है, कोई मंजिल नहीं है।

हम कर्म करते हैं किसी वासना से। तो उन मित्र का पूछना बिलकुल ठीक है कि जब वासना ही मिट गई और कर्म अभिनय है. यह समझ में आ गया : और कुछ पाने योग्य नहीं है, कुछ पहुंचने योग्य नहीं है, यह दृष्टि स्पष्ट हो गई; तो कृष्ण का यह कहना कि फिर जो भी वर्तन हो, होने दें, फिर न कोई जन्म होगा, न वर्तन का कोई कर्म परिणाम होगा—इसका क्या अर्थ है? फिर वर्तन होगा ही क्यों?

यह थोड़ा जटिल और टेक्निकल है सवाल। इसे समझने की कोशिश करें।

करीब—करीब बात ऐसी है कि आप एक साइकिल पर चल रहे हैं, पैडल चला रहे हैं। फिर आपने पैडल रोक दिए। पैडल रुकते से ही साइकिल नहीं रुक जाएगी। हालांकि रुक जाना चाहिए, क्योंकि पैडल से चलती थी। पैडल चलाने से चलती थी, बिना पैडल चलाए साइकिल नहीं चल सकती थी। पैडल से चलती थी।

लेकिन आपने पैडल रोक दिए, तो भी साइकिल थोड़ी दूर जाएगी। और थोड़ी दूर जाना बहुत चीजों पर निर्भर होगा। थोड़ी दूर बहुत दूर भी हो सकती है, अगर साइकिल उतार पर हो। अगर चढ़ाव पर हो, तो थोड़ी दूर बहुत कम दूर होगी। अगर समतल पर हो, तो भी काफी दूर होगी। अगर बिलकुल उतार हो, तो मीलों भी जा सकती है। साइकिल का पैडल बंद करते से साइकिल नहीं रुकेगी, क्योंकि पैडल जो पीछे आपने चलाए थे अतीत में, उनसे मोमेंटम पैदा होता है, उनसे गति पैदा होती है और चाको में गति भर जाती है। वह गति काम करेगी।

जिस दिन कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है और पुरुष में ठहर जाता है, तब भी शरीर में मोमेंटम रहता है। शरीर चाक की तरह गति इकट्ठी कर लेता है अनेक जन्मों में। अगर उतार पर यात्रा हो, तो शरीर बहुत लंबा चल जाएगा।

इसलिए जिन लोगों को पैंतीस साल के पहले ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, उनको शरीर को लंबा चलाना बहुत कठिन है। क्योंकि पैंतीस साल पीक है, पैंतीस साल के बाद शरीर में उतार शुरू होता है। इसलिए विवेकानंद, शंकर या क्राइस्ट, जो बहुत जल्दी ज्ञान को उपलब्ध हो गए, पैंतीस साल के पहले मर जाते हैं। शरीर में मोमेंटम है, लेकिन अब यह यात्रा शरीर की ऊपर की तरफ थी।

पैंतीस साल तक शरीर ऊपर की तरफ जाता है। सत्तर साल में मौत होने वाली है, तो पैंतीस साल में पीक होती है। अस्सी साल में मौत होने वाली है, तो चालीस साल में पीक होती है। सौ साल में मौत होने वाली है, तो पचास साल में पीक होती है। पैंतीस मैं औसत ले रहा हूं।

लेकिन जो लोग पैंतीस साल के बाद ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, उनका शरीर काफी लंबा चल जाता है, क्योंकि शरीर तब उतार पर होता है और पुराना मोमेंटम काफी गति देता है। इसलिए बहुत—से ज्ञानी जो पैंतीस साल के पहले निर्वाण को उपलब्ध होते हैं, जिंदा नहीं रह पाते, ज्यादा देर जिंदा नहीं रह पाते। कठिन है जिंदा रहना। या फिर जिंदा रहने के लिए उन्हें उपाय करने पड़ते हैं; कोई व्यवस्था जुटानी पड़ती है।

अगर उनके पास कोई संदेश हो जिसे उन्हें हस्तांतरित करना है, और वह व्यक्ति मौजूद न हो जिसको संदेश हस्तांतरित करना है, या उन व्यक्तियों के बनने में, निर्मित होने में समय हो, तो फिर उन व्यक्तियों को इंतजाम करना पड़ता है। लेकिन भीतर जो चाह का पैडल था, वह बंद होते से ही कठिनाई शुरू हो जाती है।

इसलिए अगर आपको बहुत ज्ञानी बहुत खतरनाक बीमारियों से मरते मालूम पड़ते हैं, तो उसका कारण है। उसका कारण है कि शरीर को जो गति होनी चाहिए, वह देने वाली चाह तो समाप्त हो गई। अब तो शरीर पुरानी अर्जित शक्ति से ही चलता है, वह शक्ति बहुत कम होती है। कोई भी बीमारी तीव्रता से पकड़ ले सकती है। क्योंकि रेसिस्टेंस कम हो जाता है।

ऐसा समझिए कि आप पैडल चला रहे थे साइकिल पर। और कोई अगर आपको धक्का मार देता है, तो हो सकता था, आप न भी गिरते। अगर गति तेज होती, तो आप धक्के को सम्हाल जाते। और आप बिना पैडल चलाए साइकिल पर थिरे हुए थे, जैसे चील आकाश में बिना पंख चलाए थिरी हो। बस, धीमे— धीमे साइकिल चल रही थी मंद गति से; और कोई जरा—सा धक्का दे दे, आप फौरन गिर पड़ेंगे। रेसिस्टेंस कम होगा। जितनी तेज गति होगी, रेसिस्टेंस ज्यादा होगा, जितनी कम गति होगी, उतनी प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है।

तो रामकृष्ण और रमण अगर कैंसर से मरते हैं, तो उसका कारण है। बहुत लोगों को चिंता होती है कि इतने परम ज्ञानी और इन्हें तो कम से कम कैंसर नहीं होना चाहिए! क्योंकि हम सोचते हैं, पापियों को कैंसर होता है। तो इतने परम ज्ञानी को कैंसर हो जाए!

बहुत कारणों में एक कारण यह भी है कि जिनका भी भीतर शरीर के साथ गति का संबंध टूट गया। वह संबंध ही वासना का है, चाह का है। कहीं पहुंचना है, इसलिए पैडल चलाते थे। अब कहीं भी नहीं पहुंचना है; पैडल चलना बंद हो गया। लेकिन पुरानी शक्ति और अर्जित ऊर्जा के कारण शरीर चलेगा।

कृष्ण का यह जो कहना है कि जब कोई पुरुष में थिर हो जाता है, फिर जो भी वर्तन होता है, उससे कोई कर्म—बंध नहीं होता। क्योंकि कर्म—बंध वर्तन के कारण नहीं होता; कर्म—बंध चाह के कारण होता है।

और वर्तन थोड़ी देर जारी रहेगा। वर्तन पुराने लीक पर जारी रहेगा। थोड़े दिन तक जीवन की धारा और बहेगी। लेकिन यह एक ही शरीर तक हो सकती है।

इसलिए ज्ञानी का दूसरा जन्म नहीं होगा। क्योंकि बिना मोमेंटम के, बिना पैडल चलाए नई साइकिल नहीं चलेगी। अगर आप अभी सवार हों सीधा साइकिल पर, और बिलकुल बिना पैडल चलाए उस पर सवार हो जाएं, तो न तो सवार हो सकते हैं, सवार हो भी जाएं तो फौरन गिर जाएंगे। नया शरीर नहीं चलेगा; पुराना शरीर थोड़े दिन चल सकता है। उस थोड़े दिन में जो भी होगा, उसका कोई कर्म—बंध नहीं होगा। और यह बात उचित है, क्योंकि कुछ वर्तन तो होगा ही।

महावीर को चालीस साल में ज्ञान हुआ, फिर वे अस्सी साल तक जिंदा रहे। तो चालीस साल जो जिंदा रहे ज्ञान के बाद, उन्होंने कुछ तो किया ही। दुकान नहीं चलाई, राज्य नहीं किया। किसी की हत्या नहीं की, लेकिन फिर भी कुछ तो किया ही। श्वास तो ली; श्वास में भी कीटाणु मरे। पानी तो पीया, पानी में भी कीटाणु मरे। रास्ते पर चले, पैदल चलने से भी कीटाणु मरे। रात सोए जमीन पर लेटे, उससे भी कीटाणु मरे। भोजन किया, उसमें भी हिंसा हुई। बोले, उसमें भी हिंसा हुई। आंख की पलकें झपकी, उसमें भी हिंसा हुई। जीवित होना ही हिंसा है। बिना हिंसा के तो क्षणभर जीवित भी नहीं रहा जा सकता। एक श्वास आप लेते हैं, कम से कम एक लाख कीटाणु मर जाते हैं। तो कैसे बचिएगा? महावीर भी नहीं बच सकते। श्वास तो लेंगे। भोजन कम कर देंगे, लेकिन भोजन लेंगे तो। हिंसा कम हो जाएगी, लेकिन होगी तो।

तो अगर चालीस साल, ज्ञान के बाद, हिंसा जारी रही, तो मुक्ति कैसे होगी? फिर कर्म—बंध हो जाएगा। इतनी हिंसा के लिए फिर से जन्म लेना पड़ेगा। अब यह बड़ा जटिल विशियस सर्किल है। अगर इस हिंसा के लिए फिर से जन्म

लेना पड़े, तो जन्म लेते से ही नई हिंसा शुरू हो जाएगी। तो फिर छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। मुक्ति होगी कैसे? जन्म—मरण से छुटकारा कैसे होगा?

महावीर भी मानते हैं कि जैसे ही परम ज्ञान हो जाता है, फिर जो भी हो रहा है, उस होने से कोई बंध नहीं होता, उस होने से फिर कोई बंधन पैदा नहीं होता। तो ही मुक्ति संभव है, नहीं तो मुक्ति असंभव है। क्योंकि कुछ भी बाकी रहा, तो मुक्ति असंभव है।

ज्ञान के बाद जो भी हो, उसका बंधन नहीं होगा। नहीं होगा इसलिए कि हम उसे कर नहीं रहे हैं। वह पुरानी क्रियाओं की इकट्ठी शक्ति के द्वारा हो रहा है। सच पूछें तो वह वर्तमान में हो ही नहीं रहा है। वह अतीत का ही हिस्सा है, जो आगे लुढ़का जा रहा है। जिस दिन आपका शरीर और आपका कर्म बिना पैडल चलाए साइकिल की तरह लुढ़कने लगते हैं और आप सिर्फ द्रष्टा रह जाते हैं, उस दिन आपके लिए फिर कोई भविष्य, कोई जन्म, कोई जीवन नहीं है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि व्यक्ति जैसा भाव करता ई, वैसा ही बन जाता है। तो क्या मुक्त होने के भाव को गहन करने से वह मुक्त भी हो सकता है?

कभी भी नहीं। क्योंकि मुक्त होने का अर्थ ही है, भाव से मुक्त हो जाना। इसलिए संसार में सब कुछ हो सकता है भाव से, मुक्ति नहीं हो सकती। मुक्ति संसार का हिस्सा नहीं है।

भाव है संसार का विस्तार या संसार है भाव का विस्तार। तो आप जो भी भाव से चाहें, वही हो जाएंगे। स्त्री होना चाहें, स्त्री; पुरुष होना चाहें, पुरुष; पशु होना चाहें, पशु; पक्षी होना चाहें, पक्षी; स्वर्ग में देवता होना चाहें तो, नरक में भूत—प्रेत होना चाहें तो, जो भी आप होना चाहे—प्ल मुक्ति को छोड़कर—आप अपने भाव से होते हैं और हो सकते हैं।

मुक्ति का अर्थ ही उलटा है। मुक्ति का अर्थ है कि अब हम कुछ भी नहीं होना चाहते। अब जो हम हैं, हम उससे ही राजी हैं। अब हम कुछ होना नहीं चाहते हैं।

जब तक आप कुछ होना चाहते हैं, तब तक आप जो हैं, उससे आप राजी नहीं हैं। कुछ होना चाहते हैं। गरीब अमीर होना चाहता है; स्त्री पुरुष होना चाहती है; दीन धनी होना चाहता है। कुछ होना चाहते हैं। पशु पुरुष होना चाहता है, पुरुष स्वर्ग में देवता होना चाहता है। लेकिन कुछ होना चाहते हैं, कुछ होना चाहते हैं।

होना चाहने का अर्थ है कि जो मैं हूं उससे मैं राजी नहीं हूं; मैं कुछ और होना चाहता हूं। और जो आप हैं, वही आपका सत्य है। और जो भी आप होना चाहते हैं, वह झूठ है।

भाव से झूठ पैदा हो सकते हैं, सत्य पैदा नहीं होता। सत्य तो है ही। इसलिए सभी भाव असत्य को जन्माते हैं। सारा संसार इसीलिए माया है, क्योंकि वह भाव से निर्मित है।

आप जो होना चाहते हैं, वह हो जाते हैं। जो आप हैं, वह तो आप हैं ही। वह इस होने के पीछे दबा पड़ा रहता है। जैसे राख में अंगारा दबा हो, ऐसे आपके होने में, बिकमिंग में आपका बीइंग,

आपका अस्तित्व दबा रहता है।

जिस दिन आप थक जाते हैं होने से, और आप कहते हैं, अब कुछ भी मुझे होना नहीं है, अब तो जो मैं हूं राजी हूं। अब मुझे कुछ भी नहीं होना है। अब तो जो मेरा होना है, वही ठीक है। मेरा अस्तित्व ही अब मेरे लिए काफी है। अब मेरी कोई वासना, कोई दौड़ नहीं है। जिस दिन आपकी भाव की यात्रा बंद हो जाती है, आप मुक्त हो जाते हैं।

इसलिए भावना से आप मुक्त न हो सकेंगे। भावना संसार का स्रोत है। भावना रुक जाएगी, तो आप मुक्त हो जाएंगे। यह कहना भी ठीक नहीं कि मुक्त हो जाएंगे; क्योंकि मुक्त आप हैं। भावना के कारण आप बंधे हैं। आपकी मुक्ति भावना के जाल में बंधी है। जिस दिन भावना का जाल गिर जाएगा, आप मुक्त हैं।

आप सदा मुक्त थे। मोक्ष कोई भविष्य नहीं है। और मोक्ष कोई स्थान नहीं है। ध्यान रहे, मोक्ष आपका स्वभाव है। आप जो हैं अभी, इसी वक्त, इसी क्षण, वही आपका मोक्ष है।

लेकिन वह आप होना नहीं चाहते। आप कुछ और होना चाहते हैं। कोई भी स्वयं होने से राजी नहीं है। कोई कुछ और होना चाहता है, कोई कुछ और होना चाहता है।

राजनीतिज्ञ मेरे पास आते हैं, वे साधु होना चाहते हैं। साधु मेरे पास आते हैं, उनकी बातें सुनकर लगता है कि वे राजनीतिज्ञ होना चाहते हैं। गरीब अमीर होना चाहता है। अमीर मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि बुरे उलझ गए हैं, बड़ी मुसीबत में हैं। इससे तो गरीबी बेहतर।

हमने जाना भी है, बुद्ध और महावीर अमीर घरों में पैदा हुए और गरीब हो गए। छोड्कर सड़क पर खड़े हो गए।

अमीर गरीब होना चाहता है। आज अमेरिका में गरीब होने की दौड़ खड़ी हो रही है, क्योंकि अमेरिका खूब अमीर हो गया है। तो नए बच्चे, लड़के, लड़कियां हिप्पी हो रहे हैं; वे छोड़ रहे हैं। वे कहते हैं, भाड़ में जाए तुम्हारा धन, तुम्हारे महल, तुम्हारी कारें कुछ भी नहीं चाहिए। हमें जिंदगी चाहिए सीधी, सरल।

अमीर गरीब होना चाहते हैं; गरीब अमीर होना चाहते हैं। कोई कुछ होना चाहता है, कोई कुछ होना चाहता है। एक बात पक्की है कि कोई भी स्वयं नहीं होना चाहता।

आप भी अपने भीतर न मालूम क्या—क्या सोचते रहते हैं। कोई को गांधी बनना है, किसी को विवेकानंद बनना है, किसी को क्राइस्ट बनना है। बस, एक बात भर नहीं, जो आप हैं, वह भर नहीं बनना है; बाकी सब बनना है।

संसार का अर्थ है, कुछ और होने की दौड़। मोक्ष का अर्थ है, स्वयं होने के लिए राजी हो जाना। उसके लिए किसी भावना की जरूरत नहीं है। इसलिए अगर आप भावना करके मुक्त होंगे, तो वह मुक्ति झूठी होगी। वह भी चेष्टित और मन का ही फैलाव होगी। कई लोग भावना करके मुक्त होने की चेष्टा करते रहते हैं। ऐसा समझाते रहते हैं कि हम तो आत्मा हैं, मुक्त हैं। यह शरीर मैं नहीं हूं यह संसार मैं नहीं हूं। ऐसा समझा—समझाकर, कोशिश कर—करके, चेष्टा से अपने को मुक्त मान लेते हैं। उनकी मुक्ति भी चेष्टित है।

चेष्टित कोई मुक्ति हो सकती है? जिसके लिए चेष्टा करना पड़े, वह मुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि चेष्टा तो बंधन बन जाती है। और जिसको सम्हालना पड़े रोज—रोज, वह मुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि मुक्ति तो वही है जिसे सम्हालना न पड़े, जो है ही।

नदी को नदी होने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। बादलों को आकाश में बादल होने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। आपके भीतर भी जो स्वभाव है, वह नदी और बादलों की तरह है। उसे होने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी है। और आप चेष्टा में लगे हैं।

इसलिए एक बहुत कीमती बात समझ लें।

जो दुनिया में परम ज्ञान के संदेशवाहक हुए हैं, उन्होंने कहा है कि वह जो परम ज्ञान है, चेष्टारहित है, एफर्टलेस है। उसमें कोई प्रयत्न नहीं है। उसमें कुछ भी किया कि गलती हो जाएगी। उसमें कुछ करना भर मत। करना बंद कर देना और कुछ मत करना। यह जो करने का जाल है, इसे छोड़ देना, और तुम न—करने में ठहर जाना।

यह कृष्ण यही कह रहे हैं कि वह जो पुरुष है, वह न तो कुछ करता है, न कुछ भोगता है। वह सिर्फ है। शुद्ध स्वभाव है।

उस पुरुष को ऐसे शुद्ध स्वभाव में जान लेना और समझना कि सब कुछ प्रकृति करती है और सब कुछ प्रकृति में होता है और मुझमें कुछ भी नहीं होता। मैं हूं निष्क्रिय, प्रकृति है सक्रिय। कर्म मात्र प्रकृति में हैं और मैं अकर्म हूं—ऐसी प्रतीति, ऐसा बोध, ऐसा इलहाम, ऐसा एहसास—फिर कोई बंधन नहीं है, फिर कोई संसार नहीं है।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, उस परम पुरुष को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं तथा अन्य कितने ही ज्ञान—योग के द्वारा देखते हैं। और अन्य कितने ही निष्काम कर्म—योग के द्वारा देखते हैं।

कृष्ण कहते हैं, वह जो परम पुरुष की स्थिति है, उस स्थिति को देखने के बहुत द्वार हैं। कुछ लोग शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा उसे हृदय में देखते हैं। शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा......।

बुद्धि को सूक्ष्म और शुद्ध करने की प्रक्रियाएं हैं। बुद्धि साधारणतया स्थूल है। और स्थूल होने का कारण यह है कि स्थूल विषयों से बंधी है।

आप क्या सोचते हैं बुद्धि से? अगर आप अपने मन का विश्लेषण करें, तो आप पाएंगे कि आपके सोचने—विचारने में कोई पचास प्रतिशत से लेकर नब्बे प्रतिशत तो कामवासना का प्रभाव होता है। उसका अर्थ है, आप शरीरों के संबंध में सोचते हैं। पुरुष स्त्रियों के शरीर के संबंध में सोचता रहता है।

तो जब आप शरीर के संबंध में सोचते हैं, तो बुद्धि भी शरीर जैसी ही स्थूल हो जाती है। बुद्धि जो भी सोचती है, उसके साथ तत्सम हो जाती है।

अगर आप शरीरों के संबंध में कम सोचते हैं, कामवासना से कम ग्रसित हैं, तो धन के संबंध में सोचते हैं। मकानों, कारों के संबंध में सोचते हैं, जमीन—जायदाद के संबंध में सोचते हैं। वह भी सब स्थूल है। और उसमें भी बुद्धि वैसी ही हो जाती है, जो आप सोचते हैं। जो आप सोचते हैं _ बुद्धि उसी का रूप ग्रहण कर लेती है। सोचते—सोचते, सोचते—सोचते बुद्धि वैसी ही हो जाती है।

खयाल करें आप, आप जो भी सोचते हैं, क्या आपकी बुद्धि उसी तरह की नहीं हो गई है? एक चोर की बुद्धि चोर हो जाती है। एक कंजूस की बुद्धि कंजूस हो जाती है। एक हत्यारे की बुद्धि हत्या से भर जाती है। जो भी वह कर रहा है, सोच रहा है, चिंतन कर रहा है, मनन कर रहा है, वह धीरे— धीरे उसकी बुद्धि का रूप हो जाता है।

बुद्धि को सूक्ष्म करने का अर्थ है कि धीरे— धीरे स्थूल पदार्थों से बुद्धि को मुक्त करना है और उसे सूक्ष्म आब्जेक्ट, सूक्ष्म विषय देना है। जैसे कि आप सूरज को देखें, तो यह स्थूल है। फिर आप आंख बंद कर लें और सूरज का जो बिंब भीतर आंख में रह गया, निगेटिव, उस बिंब पर ध्यान करें। वह बिंब ज्यादा सूक्ष्म है। फिर आप बिंब पर ध्यान करते जाएं, ध्यान करते जाएं। आप पाएंगे कि बिंब थोड़ी देर में खो जाता है।

लेकिन अगर आप रोज ध्यान करेंगे, तो बिंब ज्यादा देर टिकने लगेगा। बिंब ज्यादा देर नहीं टिकता, आपकी बुद्धि सूक्ष्म हो जाती है, इसलिए आप ज्यादा देर तक उसे देख पाते हैं। रोज—रोज आप करेंगे, तो आप पाएंगे कि सूरज को देखने की जरूरत ही न रही, आप आंख बंद करते हैं और सूक्ष्म बिंब उपस्थित हो जाता है। अब आप इस बिंब को देखते रहते हैं, देखते रहते हैं।

पहले तो जब बुद्धि स्थूल रहेगी, तो बिंब फीका पड़ता जाएगा। और जब बुद्धि सूक्ष्म होने लगेगी, तो आप चकित होंगे। जैसे—जैसे आप भीतर देखेंगे, बिंब उतना ही तेजस्वी होने लगेगा।

जब बिंब पहले देखने में तो फीका लगे और फिर उसकी तेजस्विता बढ़ती जाए, तो समझना कि आपकी बुद्धि सूक्ष्म हो रही है। जब बिंब पहले तो तेजस्वी लगे और फिर धीरे— धीरे उसमें फीकापन आता जाए, तो समझना कि आपकी बुद्धि स्थूल है, सूक्ष्म को नहीं पकड़ पाती, इसलिए बिंब फीका होता जा रहा है।

कान से आवाज सुनते हैं आप। जितने जोर की आवाज हो, उतनी आसानी से सुनाई पड़ती है; जितनी धीमी आवाज हो, उतनी मुश्किल से सुनाई पड़ती है। जोर की आवाजें सुनते—सुनते आपकी सुनने की जो बुद्धि है, वह स्थूल हो गई है। कान कभी बंद कर लें और कभी भीतर की सूक्ष्म आवाजें सुनें। धीरे— धीरे भीतर आवाजों का एक नया जगत प्रकट होगा। एक ध्वनियों का जाल प्रकट हो जाएगा। और—और सुनते जाएं, और एक ही ध्यान रहे कि मैं सूक्ष्म से सूक्ष्म को सुनूं।

ऐसा करें कि बाजार में आप खड़े हैं। आंख बंद कर लें। जो तेज आवाज है, वह तो अपने आप सुनाई पड़ती है। बीच बाजार में सड़क पर खड़े होकर आंख बंद करके इन सारी आवाजों में जो सबसे सूक्ष्म आवाज है, उसे पकड़ने की कोशिश करें।

आप बहुत चकित होंगे कि जैसे ही आप सूक्ष्म को पकड़ने की कोशिश करेंगे, जो बड़ी आवाजें हैं, वे आपके ध्यान से अलग हो जाएंगी, फौरन हट जाएंगी; और सूक्ष्म आवाजें प्रकट होने लगेंगी। और आप कभी चकित भी हो सकते हैं कि एक पक्षी वृक्ष पर बोल रहा था, वह सड़क के ट्रैफिक और उपद्रव में अचानक आपको सुनाई पड़ने लगा। सारा ट्रैफिक जैसे दूर हो गया और पक्षी की धीमी आवाज प्रकट हो गई।

स्थूल आवाजों को छोड़कर सूक्ष्म को सुनने की कोशिश करें। उस मात्रा में आपकी बुद्धि सूक्ष्म होगी। फिर धीरे से कान को बंद करके भीतर की आवाजें सुनें। जब ऐसे—ऐसे कोई उतरता जाता है, तो आखिरी जो सूक्ष्मतम आवाज है, नाद है भीतर, ओंकार की ध्वनि, वह सुनाई पड़नी शुरू होती है। जिस दिन वह सुनाई पड़ने लगे, समझना आपके पास शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि पैदा हो गई। नाद सुनाई पड़ने लगे, तो वह पहचान है कि आपके भीतर शुद्ध बुद्धि पैदा हो गई।

इसलिए हम अपने विद्यालयों में इस मुल्क में पहला काम यह करते थे.....। अभी हम उलटे काम में लगे हैं। अभी हम सारी दुनिया में शिक्षा देते हैं, वे सभी स्थूल हैं। इस देश में हम इस बात की फिक्र किए थे कि विद्यार्थी जब गुरुकुल में मौजूद हो, तो पहला काम उसकी बुद्धि को सूक्ष्म करने का। जब तक उसके पास सूक्ष्म बुद्धि नहीं है, तब तक क्या होगा? उसके पास स्थूल बुद्धि है, हम स्थूल शिक्षा उसे दे सकते हैं। वह शिक्षित भी हो जाएगा, पंडित भी हो जाएगा, लेकिन ज्ञानी कभी भी नहीं हो पाएगा। पहले उसकी इस बुद्धि को स्थूल से सूक्ष्म करना है; पहले उसके उपकरण को निखार लेना है।

अभी हम विद्यार्थियों को भेज देते हैं विद्यालय में। और विद्यालय में शिक्षक उन पर हमला बोल देते हैं, सिखाना शुरू कर देते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि सीखने का जो उपकरण है, वह अभी सूक्ष्म भी हुआ था या नहीं; अभी उसमें धार भी आई थी या नहीं। अभी वह स्थूल ही है; उस स्थूल पर हम फेंकना शुरू कर देते हैं चीजें, और भी स्थूल हो जाता है।

इसलिए विश्वविद्यालय से निकलते—निकलते बुद्धि करीब—करीब कुंठित हो जाती है। बुद्धि लेकर नहीं लौटते हैं विद्यार्थी विश्वविद्यालय से, खोकर लौटते हैं। ही, कुछ तथ्य याद करके, स्मृति भरकर लौट आते हैं। परीक्षा दे सकते हैं। लेकिन बुद्धिमत्ता नाम—मात्र को भी नहीं दिखाई पड़ती।

तो आज अगर सारे विश्वविद्यालयों में उपद्रव हैं सारी दुनिया में, तो उसका कारण, बुनियादी कारण यह है कि आप उनसे बुद्धिमत्ता तो छीन लिए हैं और केवल स्मृति उनको दे दिए हैं। स्मृति का उपद्रव है। बुद्धिमत्ता बिलकुल, विजडम बिलकुल भी नहीं है।

और बुद्धिमत्ता पैदा होती है बुद्धि की सूक्ष्मता से। कितना आप जानते हैं, इससे नहीं। क्या आप जानते हैं, इससे भी नहीं। कितनी परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं, इससे भी नहीं। कितनी पीएच डी. और डी. लिट. आपके पास हैं, इससे भी नहीं। बुद्धिमत्ता उपलब्ध होती है, कितनी सूक्ष्म बुद्धि आपके पास है, उससे।

इसलिए यह भी हो सकता है कि कभी कोई बिलकुल अपढ़ आदमी भी बुद्धि की सूक्ष्मता को उपलब्ध हो जाए। और यह तो अक्सर होता है कि बहुत पढ़े—लिखे आदमी बुद्धि की सूक्ष्मता को उपलब्ध होते दिखाई नहीं पड़ते हैं। पंडित में और बुद्धि की सूक्ष्मता पानी जरा मुश्किल है। बहुत कठिन है। जरा मुश्किल संयोग है। कभी—कभी गांव के ग्रामीण में, चरवाहे में भी कभी—कभी बुद्धिमत्ता की झलक दिखाई पड़ती है। उसके पास बुद्धि का संग्रह नहीं है। लेकिन एक सूक्ष्म बुद्धि हो सकती है।

इसलिए कबीर जैसा गैर पढ़ा—लिखा आदमी भी परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है।

परम ज्ञान का संबंध, आपके पास कितनी संपदा है स्मृति की, इससे नहीं है। परम ज्ञान का संबंध इससे है, आपके पास कितने सूक्ष्मतम को पकड़ने की क्षमता है। आप कितने ग्राहक, कितने रिसेप्टिव हैं। कितनी बारीक ध्वनि आप पकड़ सकते हैं, और कितना बारीक स्पर्श, कितना बारीक स्वाद, कितनी बारीक गंध..। क्योंकि भीतर सब बारीक है। बाहर सब स्थूल है, भीतर सब सूक्ष्म है। जब भीतर के जगत को अनुभव करना हो, तो सूक्ष्मता और शुद्धि की जरूरत है।

कृष्ण कहते हैं, शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं..।

जब किसी के पास भीतर सूक्ष्म बुद्धि होती है, तो हृदय की तरफ उसे मोड़ दिया जाता है। वह बहुत कठिन नहीं है। पर सूक्ष्म बुद्धि का होना पहले जरूरी है।

करीब—करीब जैसे आपके पास एक दूरवीक्षण यंत्र हो, आप उसे लगाकर आंख में और किसी भी तारे की तरफ मोड़ दे सकते हैं। फिर जिस तरफ आप मोड़ेंगे, वही तारा प्रगाढ़ होकर प्रकट हो जाएगा। ठीक वैसे ही जब सूक्ष्म बुद्धि भीतर होती है, तो एक रास्ता है उसे हृदय की तरफ मोड़ देना, उस सूक्ष्म बुद्धि को हृदय पर लगा देना ध्यानपूर्वक, तो उस हृदय के मंदिर में परमात्मा का आविष्कार कर लेते हैं।

कितने ही अन्य उसे ज्ञान—योग के द्वारा देखते हैं..।

यह हृदय की तरफ लगा देना भक्ति—योग है। हृदय भक्ति का केंद्र है, प्रेम का। तो जब सूक्ष्म हुई बुद्धि को कोई प्रेम के केंद्र हृदय की तरफ लगा देता है, तो मीरा का, चैतन्य का जन्म हो जाता है। कृष्ण कहते हैं, कितने ही उसे ज्ञान—योग के द्वारा.....।

वही सूक्ष्म बुद्धि है, लेकिन उसे हृदय की तरफ न लगाकर मस्तिष्क का जो आखिरी केंद्र है, सहस्रार, उसकी तरफ मोड़ देना। तो सहस्रार में जो परमात्मा का दर्शन करते हैं, वह ज्ञान—योग है। और कितने ही निष्काम कर्म—योग के द्वारा देखते हैं...।

कितने ही अपनी उस सूक्ष्म हुई बुद्धि को अपने कर्म— धारा की तरफ लगा देते हैं। वे जो करते हैं, उस करने में उस सूक्ष्म बुद्धि को समाविष्ट कर देते हैं। तो करने से मुक्त हो जाते हैं, कर्ता नहीं रह जाते।

ये तीन मार्ग हैं, भक्ति, ज्ञान, कर्म। भक्ति उत्पन्न होती है हृदय से। जो बुद्धि है, वह तो एक ही है; जो उपकरण है, वह तो एक ही है। उसी एक उपकरण को हृदय की तरफ बहा देने से भक्त जन्म जाता है। उसी उपकरण को सहस्रार की तरफ बहा देने से ज्ञानी का जन्म हो जाता है, बुद्ध पैदा होते हैं, महावीर पैदा होते हैं। और उसी को कर्म की तरफ लगा देने से क्राइस्ट पैदा होते हैं, मोहम्मद पैदा होते हैं।

मोहम्मद और क्राइस्ट न तो भक्त हैं और न ज्ञानी हैं, शुद्ध कर्म—योगी हैं। इसलिए हम सोच भी नहीं सकते, जो लोग ज्ञान—योग की धारा में बहते हैं, वे सोच ही नहीं सकते कि मोहम्मद को तलवार लेकर और युद्धों में जाने की क्या जरूरत! हम सोच भी नहीं सकते कि क्राइस्ट को सूली पर लटकने की क्या जरूरत! उपद्रव में पड़ने की क्या जरूरत!

क्रांति इत्यादि तो सब उपद्रव हैं। ये तो उपद्रवियों के लिए हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध कोई बगावत कर रहे हैं और सूली पर लटकाए जा रहे हैं। क्योंकि बुद्ध ज्ञान—योगी हैं। वे अपने सहस्रार की तरफ शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि को मोड़ रहे हैं। क्राइस्ट अपने कर्म की धारा की तरफ।

इसलिए ईसाइयत की सारी धारा कर्म की तरफ हो गई है। इसलिए सेवा धर्म बन गया। इसलिए ईसाई मिशनरी जैसी सेवा कर सकता है, दुनिया के किसी धर्म का कोई मिशनरी वैसी सेवा नहीं कर सकता। उसके कारण बहुत गहरे हैं। उसमें कोई कितनी ही नकल करे।

यहां हिंदुओं के बहुत—से समूह हैं, जो नकल करने की कोशिश करते हैं। पर वह नकल ही साबित होती है। क्योंकि वह उनकी मूल धारा नहीं है। क्राइस्ट की पूरी साधना सूक्ष्म हुई बुद्धि को कर्म की तरफ लगाने की है। फिर कर्म ही सब कुछ है। फिर वही पूजा है, वही प्रार्थना है।

इसलिए एक ईसाई फकीर कोढ़ी के पास जिस प्रेम से बैठकर सेवा कर सकता है, कोई हिंदू संन्यासी नहीं कर सकता। कोई जैन संन्यासी तो पास ही नहीं आ सकता, करने की तो बात बहुत दूर। कोढ़ी के पास! वह सोच ही नहीं सकता। वह अपने मन में सोचेगा, ऐसे हमने कोई पाप कर्म ही नहीं किए, जो कोढ़ी की सेवा करें। कोढ़ी की सेवा तो वह करे, जिसने कोई पाप कर्म किए हों। हमने ऐसे कोई पाप कर्म नहीं किए हैं।

हिंदू संन्यासी सोच ही नहीं सकता सेवा की बात, क्योंकि हिंदू संन्यासी को खयाल ही यह है कि संन्यासी की सेवा दूसरे लोग करते हैं। संन्यासी किसी की सेवा करता है! यह क्या पागलपन की बात है कि संन्यासी किसी के पैर दबाए। संन्यासी के सब लोग पैर दबाते हैं।

उसकी भी गलती नहीं है, क्योंकि वह जिस धारा से निष्पन्न हुआ है, वह ज्ञान—योग की धारा है। उसका कर्म से कोई लेना नहीं है; उसका सहस्रार से संबंध है। वह अपनी सारी चेतना को सहस्रार की तरफ मोड़ लेता है। और जब कोई अपनी सारी चेतना को सहस्रार की तरफ मोड़ लेता है, तो स्वभावत: दूसरों को उसकी सेवा करनी पड़ती है, क्योंकि वह बिलकुल ही बेहाल हो जाता है। न उसे भोजन की फिक्र है, न उसे शरीर की फिक्र है। दूसरे उसकी सेवा करते हैं। इसलिए हमने संन्यासियों की सेवा की, क्योंकि वे समाधि में जा रहे थे।

रामकृष्ण मूर्च्छित पड़े रहते थे छ:—छ: दिन तक। दूसरे उनकी सेवा करते थे। छ: दिन तक उनको दूध पिलाना पड़ता, पानी पिलाना पड़ता। वे मूर्च्छित ही पड़े हैं। वे डूब गए हैं अपने केंद्र में, वहा से लौटने के लिए शरीर को सम्हालना पड़ेगा। नहीं तो वे खतम ही हो जाएंगे, शरीर सड़ जाएगा।

तो संन्यासी की हमने सेवा की, क्योंकि संन्यासी या तो ज्ञान या भक्ति की तरफ मुड़ा हुआ था। क्राइस्ट ने धारा मोड़ दी कर्म की तरफ।

कृष्ण कहते हैं, कोई कर्म की तरफ, निष्काम कर्म—योग के द्वारा परमात्मा को देख लेते हैं।

निष्काम कर्म—योग के द्वारा परमात्मा दूसरों में दिखाई पड़ेगा। निष्काम कर्म—योग के द्वारा परमात्मा चारों तरफ दिखाई पड़ने लगेगा। जिसकी भी आप सेवा करेंगे, वहीं परमात्मा दिखाई पड़ने लगेगा। क्योंकि वह सूक्ष्म यंत्र जो बुद्धि का है, अब उस पर लग गया।

एक बात सार की है कि शुद्ध हुई बुद्धि को जहां भी लगा दें, वहा परमात्मा दिखाई पड़ेगा। और अशुद्ध बुद्धि को जहां भी लगा दें, वहा सिवाय पदार्थ के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ सकता है। परंतु इससे दूसरे अर्थात जो मंद बुद्धि वाले पुरुष हैं, वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से अर्थात तत्व को जानने वाले पुरुषों से सुनकर ही उपासना करते हैं और वे सुनने के परायण हुए भी मृत्युरूप संसार—सागर को निस्संदेह तर जाते हैं।

लेकिन ये तीन बड़ी प्रखर यात्राएं हैं; ज्ञान की, भक्ति की, कर्म की, ये बड़ी प्रखर यात्राएं हैं। और कोई बहुत ही जीवट के पुरुष इन पर चल पाते हैं। सभी लोग इतनी प्रगाढ़ता से, इतनी प्रखरता से, इतनी त्वरा और तीव्रता से, इतनी बेचैनी, इतनी अभीप्सा से नहीं चल पाते हैं। उनके लिए क्या मार्ग है?

तो कृष्ण कहते हैं, अर्थात वे दूसरे भी इस प्रकार न जानते हुए, दूसरों से, जिन्होंने जाना है, उनसे सुनकर भी उपासना करते हैं और सुनने में परायण हुए मृत्युरूप संसार—सागर को निस्संदेह तर जाते हैं।

इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। क्योंकि हममें से अधिक लोग उन तीन कोटियों में नहीं आएंगे। हममें से अधिक लोग इस चौथी कोटि में आएंगे, जो तीनों में से किसी पर भी जा नहीं सकते, जो तीनों में से किसी पर जाने की अभी अभीप्सा भी अनुभव नहीं करते हैं। लेकिन वे भी, जिन्होंने जाना है, अगर उनकी बात सुन लें—वह भी आसान नहीं है—जिन्होंने जाना है, उनकी बात सुन लें; और उनकी बात सुनकर उसमें परायण हुए, उसमें डूब जाएं, लीन हो जाएं, उससे उनकी उपासना का जन्म हो जाए तो वे भी मृत्यु के सागर को तर जाते हैं, अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं।

मगर कई शर्तें हैं। पहली शर्त, जिन्होंने जाना है, उनसे सुनें, फर्स्ट हैंड। जिन्होंने जाना है! अगर आप खुद जान लें मौलिक रूप से स्वयं, तब तो ठीक है, वे तीन रास्ते हैं। अगर यह संभव न हो, तो जिन्होंने जाना है, उनसे सीधा सुनें। शास्त्र काम न देंगे, कोई गुरु उपयोगी होगा। जिसने जाना हो, उससे सीधा सुनें। क्योंकि अभी उससे जो शब्द निकलेंगे, उसका जो स्पर्श होगा, उसकी जो वाणी होगी, उसमें ताजी हवा होगी उसके अपने अनुभव की। इसलिए शास्त्र पर कम जोर और गुरु पर ज्यादा जोर है।

अधिक लोगों के लिए, चौथा मार्ग जिनका होगा, उनके लिए गुरु रास्ता है। और शास्त्र का अर्थ भी गुरु के द्वारा ही खुलेगा। क्योंकि शास्त्र तो कोई हजार साल, दस हजार साल पहले लिखा गया है। दस हजार साल पहले जो कहा गया है, उसमें बहुत कुछ जोड़ा गया, घटाया गया; दस हजार साल की यात्रा में बहुत कचरा भी इकट्ठा हो गया, धूल भी जम गई। वह जो अनुभव था दस हजार साल पहले का शुद्ध, वह अब शुद्ध नहीं है, वह बहुत बासा हो गया है।

फिर किसी व्यक्ति के पास जाएं, जिसमें अभी आग जल रही हो, जो अभी जिंदा हो, अपने अनुभव से दीप्त हो, जिसके रोएं—रोएं में अभी खबर हो; जिसने अभी—अभी जाना और जीया हो सत्य को, जो अभी—अभी परमात्मा से मिला हो; जिसके भीतर पुरुष ठहर गया हो और जिसका शरीर और जिसका संसार अब केवल एक अभिनय रह गया हो; अब उसके पास बैठकर सुनें। उपासना का अर्थ है, पास बैठना।

उपासना शब्द का अर्थ है, पास बैठना। उपनिषद शब्द का अर्थ है, पास बैठकर सुनना। ये शब्द बड़े कीमती हैं, उपासना, उपदेश, उपनिषद। पास बैठकर। किसके पास? कोई जीवंत अनुभव जहां हो—सुनना। सुनना भी बहुत कठिन है, क्योंकि पास बैठने में पात्रता बनानी पड़ेगी। अगर जरा—सा भी अहंकार है, तो आप पास बैठकर भी बहुत दूर हो जाएंगे।

गुरु के पास बैठना हो तो अहंकार बिलकुल नहीं चाहिए, क्योंकि वही फासला है। स्थान का कोई फासला नहीं है गुरु के और तुम्हारे बीच, फासला तुम्हारे अहंकार का है। लोग सीखने भी आते हैं, तो बड़ी अकड़ से आते हैं। लोग सीखने भी आते हैं, तो भी आते नहीं हैं। उनको खयाल होता है कि आते हैं।

यहां ऐसा हुआ। एक बहुत बड़े करोड़पति परिवार में, भारत के सबसे बड़े करोड़पति परिवार में किसी की मृत्यु हुई। तो मुझे उन्होंने खबर भेजी कि आप हमारे यहां आएं; हमारे घर में मृत्यु घटित हो गई है, तो आप कुछ अमृत के संबंध में हमें समझाएं। तो मैंने उन्हें कहा, समझना तुम्हें हो, तो तुम्हें मेरे पास आना होगा। उन्होंने मुझे खबर भेजी, लेकिन आप ऐसा क्यों कहते हैं! क्योंकि और सब गुरु तो आ रहे हैं। और हम हजार रुपया प्रत्येक को भेंट भी करते हैं।

तो वे अमृत को हजार रुपए में खरीदने का इरादा रखते हैं। या अमृत के संबंध में हजार रुपए में उनको कोई बता देगा, ऐसा खयाल रखते हैं। और जो उन्हें वहां बताने जा रहा है, उसे भी अमृत से कोई मतलब नहीं है; उसे भी हजार रुपए से ही मतलब होगा। असल में गुरु आपके पास नहीं आ सकता। इसलिए नहीं कि इसमें कोई अड़चन है, बल्कि

इसलिए कि आने में बात ही व्यर्थ हो गई। कोई अर्थ ही न रहा। आपको ही उसके पास जाना पड़ेगा। क्योंकि जाना केवल कोई भौतिक प्रक्रिया नहीं है; जाना भीतर के अहंकार का सवाल है।

वे हैं करोड़पति, अरबपति, तो कैसे वे किसी के पास जा सकते हैं! अगर कैसे किसी के पास जा सकते हैं और सभी उनके पास आते हैं, तो एक बात पक्की है कि वे गुरु के पास कभी नहीं पहुंच सकते हैं। और जो तथाकथित गुरु उनके पास पहुंचते हैं, वे गुरु नहीं हो सकते। क्योंकि पहुंचने का जो संबंध है, वह शिष्य को ही शुरू करना पड़ेगा; उसे ही निकटता लानी पड़ेगी, उसे ही पात्र बनना पड़ेगा।

नदी घड़े के पास नहीं आती, घड़े को ही नदी के पास जाना पड़ेगा। और घड़े को ही झुकना पड़ेगा नदी में, तो ही नदी घड़े को भर सकेगी। नदी तैयार है भरने को। लेकिन घड़ा कहे कि मैं अकड़कर अपनी जगह बैठा हूं मैं झुकूंगा नहीं; नदी आए और मुझे भर दे और मैं हजार रुपए भेंट करूंगा! तो नदी नहीं आ सकती। ही, कोई नल की टोंटी आ सकती है। पर नल की टोंटियों में और नदियों में बड़ा फर्क है। कोई पंडित आ सकता है, कोई गुरु नहीं आ सकता।

तो पास पहुंचना एक कला है। विनम्रता, निरअहंकार भाव, सीखने की तैयारी, सीखने की उत्सुकता, सीखने में बाधा न डालना। फिर सुने। क्योंकि सुनना भी बहुत कठिन है। क्योंकि जब आप सुनते भी हैं, तब भी सुनते कम हैं, सोचते ज्यादा हैं।

सोचेंगे आप क्या? जब आप सुन रहे हैं, तब भी आप सोच रहे हैं कि अच्छा, यह अपने मतलब की बात है? यह अपने संप्रदाय की है? अपने शास्त्र में ऐसा लिखा है कि नहीं?

अब जिन मित्र ने यह सवाल पूछा है कि महावीर और बुद्ध ने अहिंसा की बात की और कृष्ण तो हिंसा की बात कर रहे हैं, इनको कैसे भगवान मानें, वे यहां बैठे हैं। वे बिलकुल नहीं सुन पा रहे होंगे। उनके प्राण बड़े बेचैन होंगे कि बड़ी मुसीबत हो गई। वे सुन ही नहीं सकते। क्योंकि सुनते समय उनके भीतर तौल चल रही है, कौन भगवान है? कृष्ण भगवान हैं कि नहीं? क्योंकि वे हिंसा की बात कह रहे हैं। कैसे भगवान हो सकते हैं!

तुमसे पूछ कौन रहा है? तुम्हारा मत मांगा भी नहीं गया है। और कृष्ण कोई तुम्हारे वोट के कारण भगवान होने को नहीं हैं। तुम चिंता क्यों कर रहे हो? तुम वोट नहीं दोगे, तो वे भगवान नहीं रह जाएंगे, ऐसा कुछ नहीं है। दुनिया में सब लोग इनकार कर दें, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। और सब लोग स्वीकार कर लें, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण के होने में कोई अंतर नहीं आता इसके कि कौन क्या मानता है। वह तुम्हारी अपनी झंझट है। उससे उनका कोई लेना—देना नहीं है। लेकिन तुम परेशान हो।

अब उन्होंने अहिंसा की बात नहीं कही, हिंसा की बात कही, तुम अपने अहिंसा के सिद्धांत को पकड़े बैठे हो। वह सिद्धांत तुम्हें सुनने न देगा। वह सिद्धांत बीच में दीवाल बन जाएगा। उस सिद्धांत की वजह से, जो कहा जा रहा है, उसके तुम कुछ और मतलब निकालोगे, जो कहे ही नहीं गए हैं। तुम सब विकृत कर लोगे। तुम अपनी बुद्धि को बीच में डाल दोगे और गुरु ने जो कहा है, उस सब को नष्ट कर दोगे।

पास बैठना चुप होकर, मौन होकर! इसलिए बहुत बार पुरानी परंपरा तो यही थी कि शिष्य गुरु के पास जाए, तो साल दो साल कुछ पूछे न, सिर्फ चुप बैठे, सिर्फ बैठना सीखे। बैठना सीखे।

सूफियों में कहा जाता है कि पहले बैठना सीखो। गुरु के पास आओ, बैठना सीखो, आना सीखो। अभी जल्दी कुछ ज्ञान की नहीं है। ज्ञान कोई इतनी आसान बात भी नहीं है कि लिया—दिया और घर की तरफ भागे। कोई इंसटैंट एनलाइटेनमेंट नहीं है। काफी हो सकती है, बनाई एक क्षण में और पी ली! कोई समाधि, कोई ज्ञान क्षण में नहीं होता। सीखना होगा।

सूफी अक्सर सालों बिता देते हैं, सिर्फ गुरु के पास झुककर बैठे रहते हैं। प्रतीक्षा करते हैं कि गुरु पहले पूछे कि कैसे आए? क्या चाहते हो? कभी—कभी वर्षों बीत जाते हैं। वर्षों कोई साधक रोज आता है नियम से, अपनी जगह आंख

बंद करके शात बैठ जाता है। गुरु को कभी लगता है, तो कुछ कहता है। नहीं लगता, तो नहीं कहता। दूसरे आने—जाने वाले लोगों से बात करता रहता है, शिष्य बैठा रहता है।

वर्षों सिर्फ बैठना होता है। जिस दिन गुरु देखता है कि बैठक जम गई। सच में शिष्य आ गया और बैठ गया। अब उसके भीतर कुछ भी नहीं है। उपासना हो गई।

अब वह बैठा है। सिर्फ पास है, जस्ट नियर। अब कुछ दूरी नहीं है, न अहंकार की, न विचारों की, न मत—मतांतर की, न वाद—विवाद की, न कोई शास्त्र की। अब कुछ नहीं है। बस, सिर्फ बैठा है। जैसे एक मूर्ति रह गई, जिसके भीतर अब कुछ नहीं है, बाहर कुछ नहीं है। अब खाली घड़े की तरह बैठा है। उस दिन गुरु डाल देता है जो उसे डालना है, जो कहना है। उस दिन उंडेल देता है अपने को। उस दिन नदी उतर जाती है घड़े में।

चौथे मार्ग पर बैठना सीखना होगा, मौन होना सीखना होगा, प्रतीक्षा सीखनी होगी, धैर्य सीखना होगा; और किसी जीवित गुरु की तलाश करनी होगी।

ऐसे सुनने के परायण हुए भी मृत्युरूप संसार—सागर को निस्संदेह तर जाते हैं। हे अर्जुन, यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर— जंगम वस्तु उत्पन्न होती है, उस संपूर्ण को तू क्षेत्र— क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न जान।

सभी विचार के पीछे क्या बार—बार दोहरा देते हैं, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। वह जानने वाला और जो जाना जाता है वह। इन दो को वे बार—बार दोहरा देते हैं। कि जो भी पैदा होता है, वह सब क्षेत्र है। बनता है, मिटता है, वह सब क्षेत्र है। और वह जो न बनता है, न मिटता है, न पैदा होता है, जो सिर्फ देखता है, जो सिर्फ दर्शन मात्र की शुद्ध क्षमता है, जो केवल ज्ञान है, जो मात्र बोध है, जो प्योर कांशसनेस है, जो शुद्ध चित्त है—वही पुरुष है, वही परम मुक्ति है।

एक मित्र ने पूछा है कि कृष्ण बहुत बार पुनरुक्ति करते मालूम होते हैं गीता में। फिर वही बात, फिर वही बात, फिर वही बात। ऐसा क्यों है? क्या लिपिबद्ध करने वाले आदमी ने भूल की है? या कि कृष्ण जानकर ही पुनरुक्ति करते हैं? या कि अर्जुन बहुत मंद बुद्धि है कि बार—बार कहो, तभी उसकी समझ में आता है? या कृष्ण भूल जाते हैं बार —बार, फिर वही बात कहने लगते हैं?

विचारणीय है। ऐसा क्या के साथ ही नहीं है। बुद्ध भी ऐसा ही बार—बार दोहराते हैं। क्राइस्ट भी ऐसा ही बार—बार दोहराते हैं। मोहम्मद भी ऐसा ही बार—बार दोहराते हैं। इस दोहराने में जरूर कुछ बात है।

यह सिर्फ पुनरुक्ति नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को समझ लेना चाहिए, नहीं तो पुनरुक्ति समझकर आदमी सोचता है कि क्या जरूरत! गीता को छांटकर एक पन्ने में छापा जा सकता है। मतलब की बातें उतने में आ जाएंगी, क्योंकि उन्हीं—उन्हीं बातों को वे बार—बार दोहराए चले जा रहे हैं।

मतलब की बातें तो उसमें आ जाएंगी, लेकिन वे मुर्दा होंगी और उनका कोई परिणाम न होगा। कई बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

एक, जब कृष्ण उन्हीं बातों को दुबारा दोहराते हैं, तब आपको पता नहीं कि शब्द भला वह। हों, प्रयोजन भिन्न हैं। और प्रयोजन इसलिए भिन्न हैं कि इतना समझ लेने के बाद अर्जुन भिन्न हो गया है। जो बात उन्होंने शुरू में कही थी अर्जुन से, वही जब वे बहुत देर समझाने के बाद फिर से कहते हैं, तो अर्जुन अब वही नहीं है। इस बीच उसकी समझ बढ़ी है, उसकी प्रज्ञा निखरी है। अब यही शब्द दूसरा अर्थ ले आएंगे।

आप अगर इसकी परीक्षा करना चाहें, तो ऐसा करें, कोई एक किताब चुन लें जो आपको पसंद हो। उसको इस वर्ष पढें और अंडरलाइन कर दें। जो—जो आपको अच्छा लगे उसमें, उसको लाल स्याही से निशान लगा दें। और जो—जो आपको बुरा लगे, उसको नीली स्याही से निशान लगा दें। और जो—जो आपको उपेक्षा योग्य लगे, उसको काली स्याही से निशान लगा दें।

सालभर किताब को बंद करके रख दें। सालभर बाद फिर खोलें, फिर से पढ़ें। अब जो पसंद आए उसको लाल स्याही से निशान लगाएं। आप हैरान हो जाएंगे। जो बात पिछले साल इसी किताब में आपको पसंद नहीं पड़ी थीं, वे अब पसंद पड़ती हैं। और जो बात पसंद पड़ी थी, वह अब पसंद नहीं पड़ती। जिसकी आपने उपेक्षा की थी पिछले साल, इस बार बहुत महत्वपूर्ण मालूम हो रही है। और जिसको आपने असाधारण समझा था, वह साधारण हो गई है। जिसको आपने नापसंद किया था, उसमें से भी कुछ पसंद आया है। और जिसको आपने पसंद किया था, उसमें से बहुत कुछ नापसंदगी में डाल देने योग्य है। किताब वही है, आप बदल गए।

और अगर सालभर बाद आपको सब वैसा ही लगे, जैसा सालभर पहले लगा था, तो समझना कि आपकी बुद्धि सालभर पहले ही कुंठित हो गई है, बदल नहीं रही है, मर गई है। उसमें कोई बहाव नहीं रहा है।

सालभर बाद फिर उसी किताब को पढ़ना, आप चकित होंगे, नए शब्द अर्थपूर्ण हो जाते हैं; नए वाक्य उभरकर सामने, आ जाते हैं; पुराने खो जाते हैं। किताब का पूरा प्रयोजन बदल जाता है। किताब का पूरा अर्थ बदल जाता है।

इसलिए हमने इस मुल्क में पाठ पर बहुत जोर दिया, पढ़ने पर कम। पढ़ने का मतलब एक दफा एक किताब पढ ली, खतम हो गया। पाठ का मतलब है, एक किताब को पढ़ते ही जाना है जीवनभर। रोज नियमित पढ़ते जाना है।

लेकिन आप अगर मुर्दे की तरह पढ़ें, तो कोई सार नहीं है। पढ़ने में इतना बोध होना चाहिए कि आप में जो फर्क हुआ है, उस फर्क के कारण जो आप पढ़ रहे हैं, उसमें फर्क पड़ रहा है कि नहीं! तो पाठ है।

गीता कल भी पढ़ी थी, आज भी पढ़ी, कल भी पढ़ेंगे, अगले वर्ष भी पढ़ेंगे, पढ़ते जाएंगे। जब बच्चे थे, तब पढ़ी थी, जब बूढ़े होंगे, तब पड़ेंगे। लेकिन का अगर सच में ही विकसित हुआ हो, प्रौढ हुआ हो, सिर्फ शरीर की उम्र न बढ़ी हो, भीतर चेतना ने भी अनुभव का रस लिया हो, जागृति आई हो, पुरुष स्थापित हुआ हो, तो गीता जो बुढ़ापे में पढ़ी जाएगी, उसके अर्थ बड़े और हो जाएंगे। तो कृष्ण जब बार—बार दोहराते हैं, तो वह अर्जुन जितना बदलता है, उस हिसाब से दोहराते हैं। वे उन्हीं शब्दों को दोहरा रहे हैं, जो उन्होंने पहले भी कहे थे। लेकिन उनका अर्थ अर्जुन के लिए अब दूसरा है।

दूसरी बात। जो भी महत्वपूर्ण है, उसे बार—बार चोट करना जरूरी है। क्योंकि आपका मन इतना मुश्किल में पड़ा है, सुनता ही नहीं; उसमें कुछ प्रवेश नहीं करता। उसमें बार—बार चोट की जरूरत है। उसमें हथौड़ी की तरह हैमरिंग की जरूरत है। तो जो मूल्यवान है, जैसे कोई गीत की कड़ी दोहरती है, ऐसा जो मूल्यवान है, कृष्ण उसको फिर से दोहराते हैं। वे यह कह रहे हैं कि फिर से एक चोट करते हैं। और कोई नहीं जानता, किस कोमल क्षण में वह चोट काम कर जाएगी और कील भीतर सरक जाएगी। इसलिए बहुत बार दोहराते हैं, बहुत बार चोट करते हैं।

इसलिए भी बार—बार दोहराते हैं कि जीवन का जो सत्य है, वह तो एक ही है। उसको कहने के ढंग कितने ही हों, जो कहना चाहते हैं, वह तो एक बहुत छोटी—सी बात है। उसे तो एक शब्द में भी कहा जा सकता है। लेकिन एक शब्द में आप न समझ सकेंगे। इसलिए बहुत शब्दों में कहते हैं। बहुत फैलाव करते हैं। शायद इस बहाने समझ जाएं। इस बहाने न समझें, तो दूसरे बहाने समझ जाएं। दूसरे बहाने न समझें, तो तीसरा सही। बहुत रास्ते खोजते हैं, बहुत मार्ग खोजते हैं।

घटना तो एक ही घटानी है। और वह घटना सिर्फ इतनी ही है कि आप साक्षी हो जाएं। आप जागकर देख लें जगत को। मूर्च्छा टूट जाए। आपको यह खयाल में आ जाए कि मैं जानने वाला हूं। और जो भी मैं जान रहा हूं वह मैं नहीं हूं।

यह इतनी—सी घटना घट जाए, इसके लिए सारा आयोजन है। इसके लिए इतने उपनिषद हैं, इतने वेद हैं, इतनी बाइबिल, कुरान, गीता, और सब है। बुद्ध हैं, महावीर, जरथुस्त्र और मोहम्मद, और सारे लोग हैं। लेकिन वे कह सभी एक बात रहे हैं, बहुत—बहुत ढंगों से, बहुत—बहुत व्यवस्थाओं से।

वह एक बात मूल्यवान है। लेकिन आपको अगर वह बात सीधी कह दी जाए, तो आपको सुनाई ही नहीं पड़ेगी। और मूल्य तो बिलकुल पता नहीं चलेगा।

आपको बहुत तरह से प्रलोभित करना होता है। जैसे मां छोटे बच्चे को प्रलोभित करती है, भोजन के लिए राजी करती है। राजी करना है भोजन के लिए, प्रलोभन बहुत तरह के देती है। बहुत तरह की बातें, बहुत तरह की कहानियां गढ़ती है। और तब बच्चे को राजी कर लेती है। कल वह दूसरे तरह की कहानियां गढेगी, परसों तीसरे तरह की कहानियां गढेगी। लेकिन प्रयोजन एक है कि वह बच्चा राजी हो जाए भोजन के लिए।

कृष्ण का प्रयोजन एक है। वे अर्जुन को राजी करना चाहते हैं उस परम क्रांति के लिए। इसलिए सब तरह की बातें करते हैं और फिर मूल स्वर पर लौट आते हैं। और फिर वे वही दोहराते हैं। इसके अंत में भी उन्होंने वही दोहराया है।

हे अर्जुन, जो कुछ भी स्थावर—जंगम वस्तु उत्पन्न होती है, उस संपूर्ण को तू क्षेत्र— क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न हुई जान।

वह जो भीतर क्षेत्रज्ञ बैठा है और बाहर क्षेत्र फैला है, उन दोनों के संयोग से ही सारे मन का जगत है। सारे सुख, सारे दुख; प्रीति— अप्रीति, सौंदर्य—कुरूपता, अच्छा—बुरा, सफलता—असफलता, यश—अपयश, वे सब इन दो के जोड़ हैं। और इन दो के जोड़ में वह पुरुष ही अपनी भावना से जुड़ता है। प्रकृति के पास कोई भावना नहीं है। तू अपनी भावना खींच ले, जोड़ टूट जाएगा। तू भावना करना बंद कर दे, परम मुक्ति तेरी है।

गीता दर्शन–भाग–6 –160
कौन है आँख वाला—(प्रवचन—दसवां)
अध्याय—13

सूत्र—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।27।।
समं पश्यीन्ह सर्वत्र अमवीस्थतमीश्वरम्।
न हिनस्मात्मनात्मानं ततो याति पंरा गतिम् ।।28।।

प्रकृत्यैव च कर्मीणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं ग़ पश्यति।।29।।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनयश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।30।।
हम प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हु। सब बराबर भूतों में नाशरीहत परमेश्वर को समभाव मे स्थित देखता है, वही देखता है।

क्योंकि वह पुरुष सब में समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ, अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

और जो पुरुष संपूर्ण क्रमों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किए हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है वही देखता है।

और यह पुरूष जिस काल में भूतों के न्यारे— न्यारे भाव को एक परमात्मा के संकल्प के आधार स्थित देखता है तथा उस परमात्मा के संकल्प से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार देखता है? उस कम में सच्चिदानंदधन ब्रह्म को प्राप्त होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है कि प्राय: लोग ऐसा सोचते हैं कि योग या अध्यात्म की ओर वे ही झुकते हैं, जो मस्तिष्क के विकार से ग्रस्त हैं, भावुक हैं या जीवन की कठिनाइयों से संत्रस्त हैं। प्राय: पागलपन या उन्माद को साधना का प्रस्थान बिंदु मान लिया जाता है!
जो ऐसा सोचते हैं, वे थोड़ी दूर तक ठीक ही सोचते हैं। भूल उनकी यह नहीं है कि जो लोग मन से पीड़ित और परेशान हैं, वे ही लोग ध्यान, योग और अध्यात्म की ओर झुकते हैं; यह तो ठीक है। लेकिन जो अपने को सोचते हैं कि मानसिक रूप से पीड़ित नहीं हैं, वे भी उतने ही पीडित हैं और उन्हें भी झुक जाना चाहिए।

मनुष्य का होना ही संत्रस्त है। मनुष्य जिस ढंग का है, उसमें ही पीड़ा है। मनुष्य का अस्तित्व ही दुखपूर्ण है। इसलिए असली तो नासमझ वह है, जो सोचता है कि बिना अध्यात्म की ओर झुके हुए आनंद को उपलब्ध हो जाएगा। आनंद पाने का कोई उपाय और है ही नहीं। और जो जितनी जल्दी झुक जाए, उतना हितकर है।

यह बात सच है कि जो लोग अध्यात्म की ओर झुकते हैं, वे मानसिक रूप से पीड़ित और परेशान हैं। लेकिन दूसरी बात भी खयाल में ले लेना, झुकते ही उनकी मानसिक पीड़ा समाप्त होनी शुरू हो जाती है। झुकते ही मानसिक उन्माद समाप्त हो जाता है। और अध्यात्म की प्रक्रिया से गुजरकर वे स्वस्थ, शांत और आनंदित हो जाते हैं।

देखें बुद्ध की तरफ, देखें महावीर की तरफ, देखें कृष्ण की तरफ। उस आग से गुजरकर सोना निखर आता है। लेकिन जो झुकते ही नहीं, वे पागल ही बने रह जाते हैं।

आप ऐसा मत सोचना कि अध्यात्म की तरफ नहीं झुक रहे हैं, तो आप स्वस्थ हैं। अध्यात्म से गुजरे बिना तो कोई स्वस्थ हो ही नहीं सकता। स्वास्थ्य का अर्थ ही होता है, स्वयं में ?? हो जाना। स्वयं में स्थित हुए बिना तो कोई स्वस्थ हो ही नहीं सकता। तब तक तो दौड़ और परेशानी और चिंता और तनाव बना ही रहेगा।

तो जो झुकते हैं, वे तो पागल हैं। जो नहीं झुकते हैं, वे और भी ज्यादा पागल हैं। क्योंकि झुके बिना पागलपन से छूटने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए यह मत सोचना कि आप बहुत समझदार हैं। क्योंकि आपकी समझदारी का कोई मूल्य नहीं है। अगर भीतर चिंता है, पीड़ा है, दुख है, तो आप कितना ही जानते हों, कितनी ही समझदारी हो, वह कुछ काम न आएगी। आपके भीतर पागलपन तो इकट्ठा हो ही रहा है।

और मैंने कहा कि आदमी का होना ही पागलपन है। उसके कारण हैं। क्योंकि आदमी सिर्फ बीज है, सिर्फ एक संभावना है कुछ होने की। और जब तक वह हो न जाए तब तक परेशानी रहेगी। जब तक उसके भीतर का फूल पूरा खिल न जाए, तब तक बीज के प्राण तनाव से भरे रहेंगे। बीज टूटे, अंकुरित हो और फूल बन जाए, तो ही आनंद होगा।

दुख का एक ही अर्थ है आध्यात्मिक भाषा में, कि आप जो हैं, वह नहीं हो पा रहे हैं। और आनंद का एक ही अर्थ है कि आप जो हो सकते हैं, वह हो गए हैं। आनंद का अर्थ है कि अब आपके

भीतर कोई संभावना नहीं बची आप सत्य हो गए हैं। आप जो भी हो सकते थे, वह आपने आखिरी शिखर छू लिया है। आप अपनी पूर्णता पर पहुंच गए हैं। और जब तक पूर्णता उपलब्ध नहीं होती, तब तक बेचैनी रहेगी।

जैसे नदी दौड़ती है सागर की तरफ, बेचैन, परेशान, तलाश में, वैसा आदमी दौड़ता है। सागर से मिलकर शांति हो जाती है। लेकिन कोई नदी ऐसा भी सोच सकती है कि ये पागल नदियां हैं, जो सागर की तरफ दौड़ रही हैं। और जो नदी सागर की तरफ दौड़ना बंद कर देगी, वह सरोवर बन जाएगी। नदी तो सागर में दौड़कर मिल जाती है, विराट हो जाती है। लेकिन सरोवर सडता है केवल, कहीं पहुंचता नहीं।

अध्यात्म गति है, मनुष्य के पार, मनुष्य के ऊपर, वह जो आत्यंतिक है, अंतिम है, उस दिशा में। लेकिन आप अपने को यह मत समझा लेना कि सिर्फ पागल इस ओर झुकते हैं। मैं तो बुद्धिमान आदमी हूं। मैं क्यों झुकूं!

आपकी बुद्धिमानी का सवाल नहीं है। अगर आप आनंद को उपलब्ध हो गए हैं, तब कोई सवाल नहीं है झुकने का। लेकिन अगर आपको आनंद की कोई खबर नहीं मिली है, और आपका हृदय नाच नहीं रहा है, और आप समाधि के, शांत होने के परम गुह्य रहस्य को उपलब्ध नहीं हुए हैं, तो इस डर से कि कहीं कोई पागल न कहे, अध्यात्म से बच मत जाना। नहीं तो जीवन की जो परम खोज है, उससे ही बच जाएंगे।

पागल झुकते हैं अध्यात्म की ओर, यह सच है। लेकिन वे पागल सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि उन्हें कम से कम इतना होश तो है कि झुक जाएं इलाज की तरफ। उन पागलों के लिए क्या कहा जाए, जो पागल भी हैं और झुकते भी नहीं हैं, जो बीमार भी हैं और चिकित्सक की तलाश भी नहीं करते और चिकित्सा की खोज भी नहीं करते। उनकी बीमारी दोहरी है। वे अपनी बीमारी को स्वास्थ्य समझे बैठे हैं।

मेरे पास रोज ऐसे लोग आ जाते हैं, जिनके पास बड़े—बड़े सिद्धांत हैं, जिन्होंने बड़े शास्त्र अध्ययन किए हैं। और जिन्होंने बड़ी उधार बुद्धि की बातें इकट्ठी कर ली हैं। मैं उनसे कहता हूं कि मुझे इसमें कोई उत्सुकता नहीं है कि आप क्या जानते हैं। मेरी उत्सुकता इसमें है कि आप क्या हैं। अगर आपको आनंद मिल गया हो, तो आपकी बातों का कोई मूल्य है मेरे लिए, अन्यथा यह सारी की सारी बातचीत सिर्फ दुख को छिपाने का उपाय है।

तो बुनियादी बात मुझे बता दें, आपको आनंद मिल गया है? तो फिर आप जो भी कहें, उसे मैं सही मान लूंगा। और आनंद न मिला हो, तो आप जो भी कहें, उस सबको मैं गलत मानूंगा, चाहे वह कितना ही सही दिखाई पड़ता हो। क्योंकि जिससे जीवन का फूल न खिलता हो, उसके सत्य होने का कोई आधार नहीं है। और जिससे जीवन का फूल तो बंद का बंद रह जाता हो, बल्कि और ज्ञान का कचरा उसे दबा देता हो और खुलना मुश्किल हो जाता हो, उसका सत्य से कोई भी संबंध नहीं है।

मेरे हिसाब में आनंद की तरफ जो ले जाए, वह सत्य है; और दुख की तरफ जो ले जाए, वह असत्य है। अगर आप आनंद की तरफ जा रहे हैं, तो आप जो भी कर रहे हैं, वह ठीक है। और अगर आप आनंद की तरफ नहीं जा रहे हैं, तो आप कुछ भी कर रहे हों, वह सब गलत है। क्योंकि अंतिम कसौटी तो एक ही बात की है कि आपने जीवन के परम आनंद को अनुभव किया या नहीं।

तो ये मित्र ठीक कहते हैं, विक्षिप्त लोग झुके हुए मालूम पड़ते हैं। लेकिन सभी विक्षिप्त हैं।

मनसविद से पूछें, कौन स्वस्थ है? जिसको आप नार्मल, सामान्य आदमी कहते हैं, उसे आप यह मत समझ लेना कि वह स्वस्थ है। वह केवल नार्मल ढंग से पागल है। और कोई खास बात नहीं है। और पागलों जैसा ही पागल है। पूरी भीड़ उसके जैसे ही पागल है। इसलिए वह पागल नहीं मालूम पड़ता। जरा ही ज्यादा आगे बढ़ जाता है, तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।

पागल में और आप में जो अंतर है, वह मात्रा का है, गुण का नहीं है। थोड़ा डिग्रीज का फर्क है। आप निन्यानबे डिग्री पर हैं और पागल सौ डिग्री पर उबलकर पागल हो गया है। एक डिग्री आप में कभी भी जुड़ सकती है, किसी भी क्षण। जरा—सी कोई घटना, और आप पागल हो सकते हैं।

बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी को जरा—सी गाली दे दो और वह पागल हो जाता है। वह तैयार ही खड़ा था; एक छोटी—सी गाली ऊंट पर आखिरी तिनके का काम करती है और ऊंट बैठ जाता है। आपकी बुद्धिमानी जरा में सरकाई जा सकती है; उसका कोई मूल्य नहीं है। आप किसी तरह अपने को सम्हाले खड़े हैं।

इस सम्हाले खड़े रहने से कोई सार नहीं है। यह विक्षिप्तता से मुक्त होना जरूरी है। और योग विक्षिप्तता से मुक्ति का उपाय है। अच्छा है कि आप अपनी विक्षिप्तता को पहचान लें।

ध्यान रहे, बीमारी को पहचान लेना अच्छा है, क्योंकि पहचाने से उपाय हो सकता है, इलाज हो सकता है। बीमारी को झुठलाना — खतरनाक है। क्योंकि बीमारी झुठलाने से मिटती नहीं, भीतर बढ़ती चली जाती है।

लेकिन अनेक बीमार ऐसे हैं, जो इस डर से कि कहीं यह पता न चल जाए कि हम बीमार हैं, अपनी बीमारी को छिपाए रखते हैं। अपने घावों' को ढांक लेते हैं फूलों से, सुंदर वस्त्रों से, सुंदर शब्दों से और अपने को भुलाए रखते हैं। लेकिन धोखा वे किसी और को नहीं दे रहे हैं। धोखा वे अपने को ही दे रहे हैं। घाव भीतर बढ़ते ही चले जाएंगे। पागलपन ऐसे मिटेगा नहीं, गहन हो जाएगा। और आज नहीं कल उसका विस्फोट हो जाएगा।

अध्यात्म की तरफ उत्सुकता चिकित्सा की उत्सुकता है। और उचित है कि आप पहचान लें कि अगर दुखी हैं, तो दुखी होने का कारण है। उस कारण को मिटाया जा सकता है। उस कारण को मिटाने के लिए उपाय हैं। उन उपायों का प्रयोग किया जाए, तो चित्त स्वस्थ हो जाता है।

आप अपनी फिक्र करें; दूसरे क्या कहते हैं, इसकी बहुत चिंता न करें। आप अपनी चिंता करें कि आपके भीतर बेचैनी है, संताप है, संत्रस्तता है, दुख है, विषाद है, और आप भीतर उबल रहे हैं आग से और कहीं कोई छाया नहीं जीवन में, कहीं कोई विश्राम का स्थल नहीं है! तो फिर भय न करें। अध्यात्म आपके जीवन में छाया बन सकता है, और योग आपके जीवन में शांति की वर्षा कर सकता है।

अगर प्यासे हैं, तो उस तरफ सरोवर है। और प्यासे हैं, तो सरोवर की तरफ जाएं। सिर्फ बुद्ध या कृष्ण जैसे व्यक्तियों को योग की तरफ जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि योग से वे गुजर चुके हैं। आपको तो जरूरत है ही। आपको तो जाना ही होगा। एक जन्म आप झुठला सकते हैं, दूसरे जन्म में जाना होगा। आप अनेक जन्मों तक झुठला सकते हैं, लेकिन बिना जाए कोई उपाय नहीं है। और जब तक कोई अपने भीतर के आत्यंतिक केंद्र को अनुभव न कर ले, और जीवन के परम स्रोत में न डूब जाए, तब तक विक्षिप्तता बनी ही रहती है।

दो शब्द हैं। एक है विक्षिप्तता और एक है, विमुक्तता। मन का होना ही विक्षिप्तता है। ऐसा नहीं है कि कोई—कोई मन पागल होते हैं; मन का स्वभाव ही पागलपन है। मन का अर्थ है, मैडनेस। वह पागलपन है। और जब कोई मन से मुक्त होता है, तो स्वस्थ होता है, तो विमुक्त होता है।

आमतौर से हम सोचते हैं कि किसी का मन खराब है और किसी का मन अच्छा है। यह जानकर आपको हैरानी होगी, योग की दृष्टि से मन का होना ही खराब है। कोई अच्छा मन नहीं होता। मन होता ही रोग है। कोई अच्छा रोग नहीं होता; रोग बुरा ही होता है।

जैसे हम अगर कहें, अभी तूफान था सागर में और अब तूफान शांत हो गया है। तो आप मुझसे पूछ सकते हैं कि शांत तूफान कहां है? तो मैं कहूंगा, शांत तूफान का अर्थ ही यह होता है कि अब तूफान नहीं है। शांत तूफान जैसी कोई चीज नहीं होती। शांत तूफान का अर्थ ही होता है कि तूफान अब नहीं है। तूफान तो जब भी होता है, तो अशांत ही होता है।

ठीक ऐसे ही अगर आप पूछें कि शांत मन क्या है, तो मैं आपसे कहूंगा कि शांत मन जैसी कोई चीज होती ही नहीं। मन तो जब भी होता है, तो अशांत ही होता है।

शांत मन का अर्थ है कि मन रहा ही नहीं। मन और अशांति पर्यायवाची हैं। उन दोनों का एक ही मतलब है। भाषाकोश में नहीं; भाषाकोश में तो मन का अलग अर्थ है और अशांति का अलग अर्थ है। लेकिन जीवन के कोश में मन और अशांति एक ही चीज के दो नाम हैं। और शांति और अमन एक ही चीज के दो नाम हैं। नो—माइंड, अमन।

जब तक आपके पास मन है, आप विक्षिप्त रहेंगे ही। मन भीतर पागल की तरह चलता ही रहेगा। और अगर आपको भरोसा न हो, तो एक छोटा—सा प्रयोग करना शुरू करें।

अपने परिवार को या अपने मित्रों को लेकर बैठ जाएं। एक घंटे दरवाजा बंद कर लें। अपने निकटतम दस—पांच मित्रों को लेकर बैठ जाएं, और एक छोटा—सा प्रयोग करें। आपके भीतर जो चलता हो, उसको जोर से बोलें। जो भी भीतर चलता हो, जिसको आप मन कहते हैं, उसे जोर से बोलते जाएं—ईमानदारी से, उसमें बदलाहट न करें। इसकी फिक्र न करें कि लोग सुनकर क्या कहेंगे। एक छोटा—सा खेल है। इसका उपयोग करें।

आपको बड़ा डर लगेगा कि यह जो भीतर धीमे— धीमे चल रहा है, इसको जोर से कहूं? पत्नी क्या सोचेगी! बेटा क्या सोचेगा! मित्र क्या सोचेंगे! लेकिन अगर सच में हिम्मत हो, तो यह प्रयोग करने जैसा है।

फिर एक—एक व्यक्ति करे; पंद्रह—पंद्रह मिनट एक—एक व्यक्ति बोले। जो भी उसके भीतर हो, उसको जोर से बोलता जाए। आप एक घंटेभर के प्रयोग के बाद पूरा कमरा अनुभव करेगा कि हम सब पागल हैं।

आप कोशिश करके देखें। अगर आपको डर लगता हो दूसरों का, तो किसी दिन अकेले में ही पहले करके देख लें। आपको पता चल जाएगा कि पागल कौन है। लेकिन राहत भी बहुत मिलेगी। अगर इतनी हिम्मत कर सकें मित्रों के साथ, तो यह खेल बड़े ध्यान का है; बहुत राहत मिलेगी। क्योंकि भीतर का बहुत—सा कचरा बाहर निकल जाएगा, और एक हल्कापन आ जाएगा और पहली दफा यह अनुभव होगा कि मेरी असली हालत क्या है। मैं अपने को बुद्धिमान समझ रहा हूं; बड़ा सफल समझ रहा हूं; बड़े पदों पर पहुंच गया हूं; धन कमा लिया है; बड़ा नाम है; इज्जत है; और भीतर यह पागल बैठा है! और इस पागल से छुटकारा पाने का नाम अध्यात्म है।

मेहरबाबा उन्नीस सौ छत्तीस में अमेरिका में थे। और एक व्यक्ति को उनके पास लाया गया। उस व्यक्ति को दूसरों के विचार पढ़ने की कुशलता उपलब्ध थी। उसने अनेक लोगों के विचार पढे थे। वह किसी भी व्यक्ति के सामने आंख बंद करके बैठ जाता था; और वह व्यक्ति जो भीतर सोच रहा होता, उसे बोलना शुरू कर देता। मेहरबाबा वर्षों से मौन थे। तो उनके भक्तों को, मित्रों को जिज्ञासा और कुतूहल हुआ कि वह जो आदमी वर्षों से मौन है, वह भी भीतर तो कुछ सोचता होगा! तो इस आदमी को लाया जाए क्योंकि वे तो कुछ बोलते नहीं।

तो उस आदमी को लाया गया। वह मेहरबाबा के सामने आंख बंद करके, बड़ी उसने मेहनत की। पसीना—पसीना हो गया। फिर उसने कहा कि लेकिन बड़ी मुसीबत है। यह आदमी कुछ सोचता ही नहीं। मैं बताऊं भी तो क्या बताऊं! मैं बोलूं तो भी क्या बोलूं! मैं आंख बंद करता हूं और जैसे मैं एक दीवाल के सामने हूं जहां कोई विचार नहीं है।

इस निर्विचार अवस्था का नाम विमुक्तता है। जब तक भीतर विचार चल रहा है, वह पागल है, वह पागलपन है। यह ऐसा ही समझिए कि आप बैठे—बैठे दोनों टल चलाते रहें यहां। तो आपको पड़ोसी आदमी कहेगा, बंद करिए टांग चलाना! आपका दिमाग ठीक है? आप टांगें क्यों चला रहे हैं? टांग को चलाने की जरूरत है, जब कोई चल रहा हो रास्ते पर। बैठकर टांग क्यों चला रहे हैं?

मन की भी तब जरूरत है, जब कोई सवाल सामने हो, उसको हल करना हो, तो मन चलाएं। लेकिन न कोई सवाल है, न कोई बात सामने है। बैठे हैं, और मन की टांगें चल रही हैं। यह विक्षिप्तता है, यह पागलपन है।

आपका मन चलता ही रहता है। आप चाहें भी रोकना, तो रुकता नहीं। कोशिश करके देखें। रोकना चाहेंगे, तो और भी नहीं रुकेगा। और जोर से चलेगा। और सिद्ध करके बता देगा कि तुम मालिक नहीं हो, मालिक मैं हूं। छोटी—सी कोई बात रोकने की कोशिश करें। और वही—वही बात बार—बार मन में आनी शुरू हो जाएगी। लोग बैठकर राम का स्मरण करते हैं। राम का स्मरण करते हैं, नहीं आता। कुछ और—और आता है, कुछ दूसरी बातें आती हैं। एक महिला मेरे पास आई, वह कहने लगी कि मैं राम की भक्त हूं। बहुत स्मरण करती हूं लेकिन वह नाम छूट—छूट जाता है और दूसरी चीजें आ जाती हैं!

मैंने कहा कि तू एक काम कर। कसम खा ले कि राम का नाम कभी न लूंगी। फिर देख। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं! मैंने कहा, तू कसम खाकर देख। और हर तरह से कोशिश करना कि राम का नाम भर भीतर न आने पाए।

वह तीसरे दिन मेरे पास आई। उसने कहा कि आप मेरा दिमाग खराब करवा दोगे। चौबीस घंटे सिवाय राम के और कुछ आ ही नहीं रहा है। और मैं कोशिश में लगी हूं कि राम का नाम न आए, और राम का नाम आ रहा है!

मन सिद्ध करता है हमेशा कि आप मालिक नहीं हैं, वह मालिक है। और जब तक मन मालिक है, आप पागल हैं। जिस दिन आप मालिक हों, उस दिन स्वस्थ हुए स्वयं में स्थित हुए।

अध्यात्म से गुजरे बिना कोई भी स्वस्थ नहीं होता है।

एक मित्र ने पूछा है कि ऐसा कहा जाता है कि भगवान की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। यदि यह बात सच है, तो हमारा सारा जीवन उनकी इच्छा के अनुसार ही चलता है। तो फिर हमें जो भले—बुरे विचार आते हैं, अच्छे—बुरे काम बनते हैं, वह भी उनकी ही इच्छा के अनुसार होता है! फिर तो साधना का भी क्या प्रयोजन है? फिर तो स्वयं को बदलने का भी क्या अर्थ है?

गर यह बात समझ में आ गई, तो साधना का फिर कोई प्रयोजन नहीं है। साधना शुरू हो गई। अगर इतनी ही बात खयाल में आ जाए कि जो भी कर रहा है, वह भगवान कर रहा है, तो मेरा कर्तापन समाप्त हो गया।

सारी साधना इतनी ही है कि मेरा अहंकार समाप्त हो जाए। फिर अच्छा भी वही कर रहा है, बुरा भी वही कर रहा है। फिर अच्छे—बुरे का कोई सवाल ही नहीं रहा। वही कर रहा है, दोनों वही कर रहा है। दुख वही दे रहा है, सुख वही दे रहा है। जन्म उसका, मृत्यु उसकी। बंधन उसका, मुक्ति उसकी। फिर मेरा कोई सवाल न रहा। मुझे बीच में आने की कोई जरूरत न रही। फिर साधना की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि साधना हो गई। शुरू हो गई।

यह विचार ही परम साधना बन जाएगा। यह खयाल ही इस जीवन से सारे रोग को काट डालेगा। क्योंकि सारा रोग ही अहंकार, इस बात में है कि मैं कर रहा हूं। यह समर्पण का परम सूत्र है।

लोग इसे समझ लेते हैं, यह भाग्यवाद है। यह भाग्यवाद नहीं है। भारत के इस विचार को बहुत कठिनाई से कुछ थोड़े लोग ही समझ पाए हैं। यह कोई वाद नहीं है। यह एक प्रक्रिया है साधना की। यह साधना का एक सूत्र है। यह कोई सिद्धांत नहीं है कि भगवान सब कर रहा है। यह एक विधान, एक प्रक्रिया, एक विधि है।

ऐसा अगर कोई अपने को स्वीकार कर ले कि जो भी कर रहा है, परमात्मा कर रहा है, तो वह मिट जाता है, उसी क्षण शून्य हो जाता है। और जैसे ही आप शून्य होते हैं, बुरा होना बंद हो जाएगा। आपको बुरा बंद करना नहीं पड़ेगा।

यह जरा जटिल है। बुरा होना बंद हो जाएगा। दुख मिलना समाप्त हो जाएगा, क्योंकि बुरा होता है सिर्फ अहंकार के दबाव के कारण। और दुख मिलना बंद हो जाएगा, क्योंकि दुख मिलता है केवल अहंकार को। जिसका अहंकार का घाव मिट गया, उस पर चोट नहीं पड़ती फिर। फिर उसे कोई दुख नहीं दे सकता।

इसका मतलब हुआ कि अगर कोई स्वीकार कर ले कि परमात्मा सब कुछ कर रहा है, फिर कुछ करने की जरूरत न रही। और बुरा अपने आप बंद होता चला जाएगा, और दुख अपने आप शून्य हो जाएंगे। जिस मात्रा में यह विचार गहरा होगा, उसी मात्रा में बुराई विसर्जित हो जाएगी। क्योंकि बुराई के लिए आपका होना जरूरी है। आपके बिना बुराई नहीं हो सकती।

भलाई आपके बिना भी हो सकती है। भलाई के लिए आपके होने की कोई भी जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि भलाई के लिए आपका होना बाधा है। आप जब तक हैं, भलाई हो ही नहीं सकती। चाहे भलाई का ऊपरी ढंग दिखाई भी पड़ता हो भले जैसा, भीतर बुराई ही होगी। वह जो आप भीतर बैठे हैं, वह बुरा ही कर सकता है। और जैसे ही आप विदा हो गए, मूल आधार खो गया बुराई का। फिर आपसे जो भी होगा, वह भला है; आपको भला करना नहीं पड़ेगा।

लेकिन इसको, इस विचार को पूरी तरह से अपने में डुबा लेना और इस विचार में पूरी तरह से डूब जाना बड़ा कठिन है। क्योंकि अक्सर हम इसको बड़ी होशियारी से काम में लाते हैं। जब तक हमसे कुछ बन सकता है, तब तक तो हम सोचते हैं, हम कर रहे हैं। जब हमसे कुछ नहीं बन सकता, हम असफल होते हैं, तब अपनी असफलता छिपाने को हम कहते हैं कि परमात्मा कर रहा है।

हम बहुत धोखेबाज हैं। और हम परमात्मा के साथ भी धोखा करने में जरा भी कृपणता नहीं करते।

जब भी आप सफल होते हैं, तब तो आप समझते हैं, आप ही कर रहे हैं। और जब आप असफल होते हैं, तब आप कहते हैं, भाग्य है; उसकी बिना इच्छा के तो पत्ता भी नहीं हिलता।

नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने पत्र में लिखा है अपनी पत्नी को। बहुत कीमती बात लिखी है। उसने लिखा है कि मैं भाग्यवाद का भरोसा नहीं करता हूं। मैं पुरुषार्थी हूं। लेकिन भाग्यवाद को बिना माने भी नहीं चलता। क्योंकि अगर भाग्यवाद को न मानो, तो अपने दुश्मन की सफलता को फिर कैसे समझाओ! उसकी क्या व्याख्या हो! फिर मन को बड़ी चोट बनी रहती है।

अपनी सफलता पुरुषार्थ से समझा लेते हैं। अपने दुश्मन की सफलता भाग्य से, कि भाग्य की बात है, इसलिए जीत गया, अन्यथा जीत कैसे सकता था! पड़ोसियों को जो सफलता मिलती है, वह परमात्मा की वजह से मिल रही है। और आपको जो सफलता मिलती है, वह आपकी वजह से मिल रही है। नहीं तो मन में बड़ी तकलीफ होगी।

अपनी हार स्वीकार करने का मन नहीं है। अपनी सफलता स्वीकार करने का जरूर मन है। हारे हुए मन से जो इस तरह के सिद्धांत को स्वीकार करता है कि उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, वह आदमी कुछ भी नहीं पा सकेगा। उसके लिए सिद्धांत व्यर्थ है।

यह किसी हारे हुए मन की बात नहीं है। यह तो एक साधना का सूत्र है। यह तो जीवन को देखने का एक ढंग है, जहां से कर्ता को हटा दिया जाता है। और सारा कर्तृत्व परमात्मा पर छोड़ दिया जाता है।

एक और मित्र ने सवाल पूछा है। वे दो—तीन दिन से पूछ रहे हैं इसी संबंध में। उन्होंने पूछा है कि आप बहुत जोर देते हैं भाग्यवाद पर......।

मैं जरा भी जोर नहीं देता भाग्यवाद पर। भाग्यवाद हजारों विधियों में से एक विधि है जीवन को रूपांतरित करने की, अहंकार को गला डालने की।

उन मित्र ने कहा है कि अगर भाग्यवाद ही सच है, तो आप बोलते क्यों हैं?

वे समझे नहीं अपनी ही बात। अगर भाग्यवाद ही सच है, तो क्यों का कोई सवाल ही नहीं; परमात्मा ही मुझसे बोलता है। बोलते क्यों हैं, यह कोई सवाल नहीं है।

उन मित्र ने पूछा है, अगर भाग्यवाद ही सच है, तो आप लोगों से क्यों कहते हैं कि साधना करो?

यह मेरा भाग्य है कि मैं उनसे कहूं कि साधना करो। इसमें मैं कुछ कर नहीं रहा हूं। यह मेरी नियति है। और यह आपकी नियति है कि आप सुनो, और बिलकुल करो मत।

भाग्य कोई वाद नहीं है। भाग्य जीवन को देखने का एक ढंग और जीवन को बदलने की एक कीमिया है। यह कोई कमजोरों की बात नहीं है, कि बैठ गए हाथ पर हाथ रखकर, सिर झुकाकर कि क्या करें, भाग्य में नहीं है। यह बहुत हिम्मत की बात है और बहुत ताकतवर लोगों की बात है, कि जो कह सकें कि सभी कुछ उस परमात्मा से हो रहा है, सभी कुछ, बेशर्त। अच्छा या बुरा, सफलता या असफलता, मैं अपने को हटाता हूं। मैं बीच में नहीं हूं।

अपने को हटाना बहुत शक्तिशाली लोगों के हाथ की बात है। कमजोर अपने को हटाने की ताकत ही नहीं रखते।

जैसे ही आप यह समझ पाएंगे कि भाग्य एक विधि है, एक टेक्नीक! हजारों टेक्नीक हैं। मगर भाग्य बहुत गजब की टेक्नीक है। अगर इसका उपयोग कर सकें, तो आप चौबीस घंटे के लिए उपयोग कर के देखें।

तय कर लें कि कल सुबह से परसों सुबह तक जो कुछ भी होगा, परमात्मा कर रहा है, मैं बीच में नहीं खड़ा होऊंगा।

चौबीस घंटे में आप ऐसे संतोष और ऐसी शांति और ऐसी आनंद की झलक को उपलब्ध—होंगे, जो आपने जीवन में कभी नहीं जानी। और ये चौबीस घंटे फिर खतम नहीं होंगे, क्योंकि एक बार रस आ जाए स्वाद आ जाए ये बढ़ जाएंगे। यह आपकी पूरी जिंदगी बन जाएगी।

एक दिन के लिए आप भाग्य की विधि का प्रयोग कर लें, फिर कोई तनाव नहीं है। सारा तनाव इस बात से पैदा होता है कि मैं कर रहा हूं। स्वभावत: इसलिए पश्चिम में ज्यादा तनाव है, ज्यादा टेंशन है, ज्यादा मानसिक बेचैनी है। पूरब में इतनी बेचैनी नहीं थी। अब बढ़ रही है। वह पश्चिम की शिक्षा से बढ़ेगी, क्योंकि पश्चिम की शिक्षा का सारा आधार पुरुषार्थ है। और पूरब की शिक्षा का सारा आधार भाग्य है। दोनों विपरीत हैं।

पूरब मानता है कि सब परमात्मा कर रहा है। और पश्चिम मानता है, सब मनुष्य कर रहा है। निश्चित ही, जब सब मनुष्य कर रहा है, तो फिर मनुष्य को उत्तरदायी होना पड़ेगा। फिर चिंता पकड़ती है। धोंडू। फर्क देखें।

बर्ट्रेंड रसेल परेशान है कि तीसरा महायुद्ध न हो जाए। उसकी नींद हराम होगी। आइंस्टीन मरते वक्त तक बेचैन है कि मैंने एटम बम बनने में सहायता दी है; कहीं दुनिया बरबाद न हो जाए। मरने के थोड़े दिन पहले उसने कहा कि अगर मैं दुबारा पैदा होऊं, तो मैं वैज्ञानिक होने की बजाय एक प्लंबर होना पसंद करूंगा। मुझसे भूल हो गई। क्योंकि दुनिया नष्ट हो जाएगी।

लेकिन एक बात मजे की है कि आइंस्टीन समझ रहा है कि मेरे कारण नष्ट हो जाएगी। बर्ट्रेंड रसेल सोच रहे हैं कि अगर शांति का उपाय मैंने न किया, हमने न किया, तो दुनिया नष्ट हो जाएगी। इधर कृष्ण की दृष्टि बिलकुल उलटी है।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिनको तू सोचता है कि तू मारेगा, उन्हें मैं पहले ही मार चुका हूं। वे मर चुके हैं। नियति सब तय कर चुकी है। बात सब हो चुकी है। कहानी का सब लिखा जा चुका है। तू तो सिर्फ निमित्त है।

इन दोनों में फर्क देखें। इन दोनों में फर्क यह है कि पश्चिम में सोचा जाता है कि आदमी जिम्मेवार है। अगर आदमी जिम्मेवार है हर चीज के लिए, तो चिंता पकड़ेगी, एंग्जायटी पैदा होगी। फिर जो भी मैं करूंगा, मैं जिम्मेवार हूं। फिर हाथ मेरे कंपेंगे, हृदय मेरा कपेगा। आदमी कमजोर है। और जगत बहुत बड़ा है। और सारी जिम्मेवारी आदमी पर, तो बहुत घबड़ाहट पैदा हो जाती है। इसलिए

पश्चिम इतना विक्षिप्त मालूम हो रहा है। इस विक्षिप्तता के पीछे पुरुषार्थ का आग्रह है।

पूरब बड़ा शांत था। यहां जो भी हो रहा था, कोई जिम्मेवारी व्यक्ति की न थी, उस परम नियंता की थी। यह सच है या झूठ, यह सवाल नहीं है। पुरुषार्थ ठीक है कि भाग्य, यह सवाल नहीं है। मेरे लिए तो पुरुषार्थ चिंता पैदा करने का उपाय है। अगर किसी को चिंता पैदा करनी है, तो पुरुषार्थ सुगम उपाय है। अगर आपको चिंता में रस है, तो आप सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें। और अगर आपको चिंता में रस नहीं है और समाधि में रस है, तो सारी जिम्मेवारी परमात्मा पर छोड़ दें। परमात्मा न भी हो, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके छोड़ने से फर्क पड़ता है।

समझ लें। परमात्मा न भी हो, कहीं कोई परमात्मा न हो, लेकिन आप परमात्मा पर छोड़ दें, आपसे उतर जाए आपके खयाल से हट जाए; आप जिम्मेवार नहीं हैं, कोई और जिम्मेवार है, बात समाप्त हो गई। आपकी चिंता विलीन हो गई। चिंता के मूल आधार में अस्मिता, अहंकार, मैं है।

इसे एक विधि की तरह समझें और प्रयोग करें, तो आप चकित हो जाएंगे। आपकी जिंदगी को बदलने में भाग्य की धारणा इतना अदभुत काम कर सकती है, जिसका कोई हिसाब नहीं है।

लेकिन बहुत सजग होकर उसका प्रयोग करना पड़े। कोई आदमी आपको गाली देता है, तो आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी है। आपके भीतर क्रोध आ जाता है, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी। मार—पीट हो जाती है, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी। वह आपकी छाती पर बैठ जाता है, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी; या आप उसकी छाती पर बैठ जाते हैं, तो भी आप स्वीकार करते हैं कि परमात्मा की मर्जी है।

ध्यान रहे, जब वह आपकी छाती पर बैठा हो, तब स्वीकार करना बहुत आसान है कि परमात्मा की मर्जी है; जब आप उसकी छाती पर बैठे हों, तब स्वीकार करना बहुत मुश्किल है कि परमात्मा की मर्जी है। क्योंकि आप काफी कोशिश करके उसकी छाती पर बैठ पाए हैं। उस वक्त मन में यही होता है कि अपने पुरुषार्थ का ही फल है कि इसकी छाती पर बैठे हैं।

सुख के क्षण में परमात्मा की मर्जी साधना है। सफलता के क्षण में परमात्मा की मर्जी साधना है। विजय के क्षण में परमात्मा की मर्जी का स्मरण साधना है।

तो आपकी जिंदगी बदल जाती है। अनिवार्यरूपेण आप बिलकुल नए हो जाते हैं। चिंता का केंद्र टूट जाता है।

अब हम सूत्र को लें।

इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है ' कौन देखता है? कौन जानता है? किसके पास दर्शन है, दृष्टि है? उसकी व्याख्या है। किसका जानना सही जानना है? और किसके पास असली आंख है? कौन देखता है?

इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है। यह संसार हम सब देखते हैं। इसमें सभी नाश होता दिखाई पड़ता है। सभी परिवर्तित होता दिखाई पड़ता है। सभी लहरों की तरह दिखाई पड़ता है, क्षणभंगुर। इसे देखने के लिए कोई बड़ी गहरी आंखों की जरूरत नहीं है। जो आंखें हमें मिली हैं, वे काफी हैं। इन आंखों से ही दिखाई पड़ जाता है।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। इन आंखों से ही दिखाई पड़ जाता है कि यहां सब क्षणभंगुर है। लेकिन हममें बहुत—से लोग आंखें होते हुए बिलकुल अंधे हैं। यह भी दिखाई नहीं पड़ता कि यहां सब क्षणभंगुर है। यह भी दिखाई नहीं पड़ता। हम क्षणभंगुर वस्तुओं को भी इतने जोर से पकड़ते हैं, उससे पता चलता है कि हमें भरोसा है कि चीजें पकड़ी जा सकती हैं और रोकी जा सकती हैं।

एक युवक मेरे पास आया और उसने कहा कि एक युवती से मेरा प्रेम है। लेकिन कभी प्रेमपूर्ण लगता है मन, और कभी घृणा से भर जाता है। और कभी मैं चाहता हूं इसके बिना न जी सकूंगा। और कभी मैं सोचने लगता हूं इसके साथ जीना मुश्किल है। मैं क्या करूं?

मैंने उससे पूछा, तू चाहता क्या है? तो उसने कहा, चाहता तो मैं यही हूं कि सतत मेरा प्रेम इसके प्रति बना रहे। फिर मैंने उससे कहा कि तू दिक्कत में पड़ेगा। क्योंकि इस जगत में सभी क्षणभंगुर है, प्रेम भी। यह तो तेरी आकांक्षा ऐसी है, जैसे कोई आदमी कहे कि मुझे भूख कभी न लगे; पेट मेरा भरा ही रहे। भूख लगती है, इसीलिए पेट भरने का खयाल पैदा होता है। भूख लगनी जरूरी है, तो ही पेट भरने का प्रयास होगा। और पेट भरते ही भूख मिट जाएगी। लेकिन पेट भरते ही नई भूख पैदा होनी शुरू हो जाएगी। एक वर्तुल है।

रात है, दिन है। ऐसे ही प्रेम है और घृणा है। आकर्षण है और विकर्षण है। आदर है और अनादर है।

हमारी सारी तकलीफ यह होती है कि अगर किसी व्यक्ति के प्रति हमारा आदर है, तो हम कोशिश करते हैं, सतत बना रहे। वह बना रह नहीं सकता। क्योंकि आदर के साथ वैसे ही रात भी जुड़ी है अनादर की। और प्रेम के साथ घृणा की रात जुड़ी है।

और सभी चीजें बहती हुई हैं, प्रवाह है। यहां कोई चीज थिर नहीं है। इसलिए जब भी आप किसी चीज को थिर करने की कोशिश करते हैं, तभी आप मुसीबत में पड़ जाते हैं। लेकिन कोशिश आप इसीलिए करते हैं कि आपको भरोसा है कि शायद चीजें थिर हो जाएं।

जवान आदमी जवान बने रहने की कोशिश करता है। सुंदर आदमी सुंदर बने रहने की कोशिश करता है। जो किसी पद पर है, वह पद पर बने रहने की कोशिश करता है। जिसके पास धन है, वह धनी बने रहने की कोशिश करता है। हम सब कोशिश में लगे हैं।

हमारे अगर जीवन के प्रयास को एक शब्द में कहा जाए, तो वह यह है कि जीवन है परिवर्तनशील और हम कोशिश में लगे हैं कि यहां कुछ शाश्वत मिल जाए। कुछ शाश्वत। इस परिवर्तनशील प्रवाह में हम कहीं पैर रखने को कोई भूमि पा जाएं, जो बदलती नहीं है। क्योंकि बदलाहट से बड़ा डर लगता है। कल का कोई भरोसा नहीं है। क्या होगा, क्या नहीं होगा, सब अनजान मालूम होता है। और अंधेरे में बहे चले जाते हैं। इसलिए हम सब चाहते हैं कोई ठोस भूमि, कोई आधार, जिस पर हम खड़े हो जाएं, सुरक्षित। सिक्योरिटी मिल जाए यह हमारी चेष्टा है। यह चेष्टा बताती है कि हमें क्षणभंगुरता दिखाई नहीं पड़ती।

यहां सभी कुछ क्षणभर के लिए है। हमें यही दिखाई नहीं पड़ता। कृष्ण तो कहते हैं, और वही देखता है, जो क्षणभंगुर के भीतर शाश्वत को देख लेता है।

हमें तो क्षणभंगुर ही नहीं दिखाई पड़ता। पहली बात। क्षणभंगुर न दिखाई पड़ने से हम अपने ही मन के शाश्वत निर्मित करने की कोशिश करते हैं। वे झूठे सिद्ध होते हैं। वे सब गिर जाते हैं।

हमारा प्रेम, हमारी श्रद्धा, हमारा आदर, हमारे सब भाव मिट जाते हैं, धूल—धूसरित हो जाते हैं। हमारे सब भवन गिर जाते हैं। हम कितने ही मजबूत पत्थर लगाएं, हमारे सब भवन खंडहर हो जाते हैं। हम जो भी बनाते हैं इस जिंदगी में, वह सब जिंदगी मिटा देती है। कुछ बचता नहीं। सब राख हो जाता है। लेकिन फिर भी हम स्थिर को बनाने की कोशिश करते रहते हैं, और असफल होते रहते हैं। हमारे जीवन का विषाद यही है।

संबंध चाहते हैं स्थिर बना लें। वे नहीं बन पाते। हमने कितनी कोशिश की है कि पति—पत्नी का प्रेम स्थिर हो जाए, वह नहीं हो पाता। बड़ा विषाद है, बड़ा दुख है, बड़ी पीड़ा है। कुछ स्थिर नहीं हो पाता। मित्रता स्थिर हो जाए शाश्वत हो जाए। कहानियों में होती है। जिंदगी में नहीं हो पाती।

कहानियां भी हमारी मनोवांछनाए हैं। जैसा हम चाहते हैं जिंदगी में हो, वैसा हम कहानियों में लिखते हैं। वैसा होता नहीं। इसलिए हर कहानी, दो प्रेमियों का विवाह हो जाता है—या कोई फिल्म या कोई कथा—और खत्म होती है कि इसके बाद दोनों आनंद से रहने लगे। यहां खत्म होती है। यहां कोई जिंदगी खत्म नहीं होती।

कहानी चलती है, जब तक विवाह नहीं हो जाता और शहनाई नहीं बजने लगती। और शहनाई बजते ही दोनों प्रेमी फिर सदा सुख—शांति से रहने लगे, यहां खत्म हो जाती है। और आदमी की जिंदगी में जाकर देखें।

शहनाई जब बजती है, उसके बाद ही असली उपद्रव शुरू होता है। उसके पहले थोड़ी—बहुत सुख—शांति रही भी हो। उसके बाद बिलकुल नहीं रह जाती। लेकिन उसे हम ढांक देते हैं। वहां से परदा गिरा देते हैं। वहां कहानी खत्म हो जाती है। वह हमारी मनोवांछा है, ऐसा होना चाहिए था। ऐसा होत नहीं है।

हम अपनी कहानियों में जो—जो लिखते हैं, वह अक्सर वही है, जो जिंदगी में नहीं होता। हम अपनी कहानियों में उन चरित्रों को बहुत ऊपर उठाते हैं आसमान पर, जो जिंदगी में हो नहीं सकते। जिंदगी तो बिलकुल क्षणभंगुर है। वहा कोई चीज थिर होती नहीं; टिक नहीं सकती। टिकना वहां होता ही नहीं।

इसे ठीक से समझ लें। क्षणभंगुर है जगत चारों तरफ। हम इस जगत से डरकर अपना एक शाश्वत मन का जगत बनाने की कोशिश करते हैं। वह नहीं टिक सकता। हमारा क्या टिकेगा, हम खुद क्षणभंगुर हैं। बनाने वाला यह मन क्षणभंगुर है। इससे कुछ भी बन नहीं सकता। और जिस सामग्री से यह बनाता है, वह भी क्षणभंगुर है।

लेकिन अगर हम क्षणभंगुरता में गहरे देखने में सफल हो जाएं, हम क्षणभंगुरता के विपरीत कोई शाश्वत जगत बनाने की कोशिश न करें, बल्कि क्षणभंगुरता में ही आंखों को पैना गड़ा दें, तो क्षणभंगुरता के पीछे ही, प्रवाह के पीछे ही, वह जो अविनश्वर है, वह जो परमात्मा है शाश्वत, वह दिखाई पड़ जाएगा।

दो तरह के लोग हैं जगत में। एक वे, जो क्षणभंगुर को देखकर अपने ही गृह—उद्योग खोल लेते हैं शाश्वत को बनाने के। और दूसरे वे, जो क्षणभंगुर को देखकर अपना गृह—उद्योग नहीं खोलते शाश्वत को बनाने का, बल्कि क्षणभंगुर में ही गहरा प्रवेश करते हैं। अपनी दृष्टि को एकाग्र करते हैं। और क्षणभंगुर की परतों को पार करते हैं। क्षणभंगुर लहरों के नीचे वे शाश्वत के सागर को उपलब्ध कर लेते हैं।

कृष्ण कहते हैं, इस प्रकार जानकर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाशरहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है।

उसके पास ही आंख है, वही आंख वाला है, वही प्रज्ञावान है, जो इस सारी क्षणभंगुरता की धारा के पीछे समभाव से स्थित शाश्वत को देख लेता है।

एक बच्चा पैदा हुआ। आप देखते हैं, जीवन आया। फिर वह बच्चा जवान हुआ, फिर का हुआ और फिर मरघट पर आप उसे विदा कर आए। और आप देखते हैं, मौत आ गई।

कभी इस जन्म और मौत दोनों के पीछे समभाव से स्थित कोई चीज आपको दिखाई पड़ी? जन्म दिख जाता है, मृत्यु दिख जाती है। लेकिन जन्म और मृत्यु के भीतर जो छिपा हुआ जीवन है, वह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि जन्म के पहले भी जीवन था, और मृत्यु के बाद भी जीवन होगा।

मृत्यु और जन्म जीवन की विराट व्यवस्था में केवल दो घटनाएं हैं। जन्म एक लहर है और मृत्यु लहर का गिर जाना है। लेकिन जिससे लहर बनी थी, वह जो सागर था, वह जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी होगा। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।

तो जन्म के समय हम बैंड—बाजे बजा लेते हैं कि जीवन आया, उत्सव हुआ। फिर मृत्यु के समय हम रो— धो लेते हैं कि जीवन गया, उत्सव समाप्त हुआ, मौत घट गई। लेकिन दोनों स्थितियों में हम चूक गए उसे देखने से, जो न कभी पैदा होता है और न कभी नष्ट होता है। पर हमारी आंखें उसको नहीं देख पातीं।

अगर हम जन्म और जीवन के भीतर परम जीवन को देख पाएं, तो कृष्ण कहते हैं, तो तुम्हारे पास आंख है।

तो आंख की एक परिभाषा हुई कि परिवर्तनशील में जो शाश्वत को देख ले। जहां सब बदल रहा हो, वहा उसे देख ले, जो कभी नहीं बदलता है। वह आंख वाला है।

इसलिए हमने इस मुल्क में फिलासफी को दर्शन कहा है। फिलासफी को हमने दर्शन कहा है। दर्शन का अर्थ है यह, जो देख ले शाश्वत को परिवर्तनशील में। बनाने की जरूरत नहीं है; हमारे बनाए वह न बनेगा। वह मौजूद है। वह जो

परिवर्तन है, वह केवल ऊपर की पर्त है, परदा है। उसके भीतर वह छिपा है, चिरंतन। हम सिर्फ परदे को हटाकर देखने में सफल हो जाएं।

हम कब तक सफल न हो पाएंगे? जब तक हम अपने गृह—उद्योग जारी रखेंगे और शाश्वत को बनाने की कोशिश करते रहेंगे। जब तक हम परिवर्तन के विपरीत अपना ही सनातन बनाने की कोशिश करेंगे, तब तक हम परिवर्तन में छिपे शाश्वत को न देख पाएंगे।

गृहस्थ का आध्यात्मिक अर्थ होता है, जो अपना शाश्वत बनाने में लगा है। संन्यस्थ का आध्यात्मिक अर्थ होता है, जो अपना शाश्वत नहीं बनाता, जो परिवर्तन में शाश्वत की खोज में लगा है।

गृहस्थ का अर्थ है, घर बनाने वाला। संन्यस्थ का अर्थ है, घर खोजने वाला। संन्यासी उस घर को खोज रहा है, जो शाश्वत है ही, जिसको किसी ने बनाया नहीं। वही परमात्मा है, वही असली घर है। और जब तक उसको नहीं पा लिया, तब तक हम घरविहीन, होमलेस, भटकते ही रहेंगे।

गृहस्थ वह है, जो परमात्मा की फिक्र नहीं करता। यह चारों तरफ परिवर्तन है, इसके बीच में पत्थर की मजबूत दीवालें बनाकर अपना घर बना लेता है खुद। और उस घर को सोचता है, मेरा घर है, मेरा आवास है।

गृहस्थ का अर्थ है, जिसका घर अपना ही बनाया हुआ है। संन्यस्थ का अर्थ है, जो उस घर की तलाश में है जो अपना बनाया हुआ नहीं है, जो है ही।

दो तरह के शाश्वत हैं, एक शाश्वत जो हम बनाते हैं, वे झूठे ही होने वाले हैं। हमसे क्या शाश्वत निर्मित होगा! शाश्वत तो वह है, जिससे हम निर्मित हुए हैं। आदमी जो भी बनाएगा, वह टूट जाएगा, बिखर जाएगा। आदमी जिससे बना है, जब तक उसको न खोज ले, तब तक सनातन, शाश्वत, अनादि, अनंत का कोई अनुभव नहीं होता।

और जब तक उसका अनुभव न हो जाए, तब तक हमारे जीवन में चिंता, पीड़ा, परेशानी रहेगी। क्योंकि जहां सब कुछ बदल रहा है, वह। निश्चित कैसे हुआ जा सकता है? जहां पैर के नीचे से जमीन खिसकी जा रही हो, वहा कैसे निश्चित रहा जा सकता है? जहां हाथ से जीवन की रेत खिसकती जाती हो, और जहां एक—एक पल जीवन रिक्त होता जाता हो और मौत करीब आती हो, वहां कैसे

शांत रहा जा सकता है? वहां कोई कैसे आनंदित हो सकता है? जहां चारों तरफ घर में आग लगी हो, वहां कैसे उत्सव और कैसे नृत्य चल सकता है?

असंभव है। तब एक ही उपाय है कि इस आग लगे हुए घर के भीतर हम छोटा और घर बना लें, उसमें छिप जाएं अपने उत्सव को बचाने के लिए। लेकिन वह बच नहीं सकता। परिवर्तन की धारा, जो भी हम बनाएंगे, उसे तोड़ देगी।

बुद्ध का वचन बहुत कीमती है। बुद्ध ने कहा है, ध्यान रखना, जो बनाया जा सकता है, वह मिटेगा। बनाना एक छोर है, मिटना दूसरा छोर है। और जैसे एक डंडे का एक छोर नहीं हो सकता, दूसरा भी होगा ही। चाहे आप कितना ही छिपाओ, भुलाओ, डंडे का दूसरा छोर भी होगा ही। या कि आप सोचते हैं कोई ऐसा डंडा हो सकता है, जिसमें एक ही छोर हो? वह असंभव है।

तो बुद्ध कहते हैं, जो बनता है, वह मिटेगा। जो निर्मित होता है, वह बिखरेगा। दूसरे छोर को भुलाओ मत। वह दूसरा छोर है ही, उससे बचा नहीं जा सकता। लेकिन हमारी आंखें अंधी हैं। और हम ऐसे अंधे हैं, हमारी आंखों पर ऐसी परतें हैं कि जिसका हिसाब नहीं। मैं एक उजड़े हुए नगर में मेहमान था। वह नगर कभी बहुत बड़ा था। लोग कहते हैं कि कोई सात लाख उसकी आबादी थी। रही होगी, क्योंकि खंडहर गवाही देते हैं। केवल सात सौ वर्ष पहले ही वह नगर आबाद था। सात लाख उसकी आबादी थी। और अब मुश्किल से नौ सौ आदमी उस नगर में रहते हैं। नौ सौ कुछ की संख्या तख्ती पर लगी हुई है।

उस नगर में इतनी—इतनी बड़ी मस्जिदें हैं कि जिनमें दस हजार लोग एक साथ नमाज पढ़ सकते थे। इतनी—इतनी बड़ी धर्मशालाएं हैं, जिनमें अगर गाव में एक लाख लोग भी मेहमान हो जाएं अचानक, तो भी कोई अड़चन न होगी। आज वहां केवल नौ सौ कुछ आदमी रहते हैं। सारा नगर खंडहर हो गया है।

जिन मित्र के साथ मैं ठहरा था, वे अपना नया मकान बनाने की योजना कर रहे थे। वे इतने भावों से भरे थे नए मकान के; मुझे नक्शे दिखाए माडल दिखाए कि ऐसा बनाना है, ऐसा बनाना है। और उनके चारों तरफ खंडहर फैले हुए हैं! उनकी भी उम्र उस समय कोई साठ के करीब थी। अब तो वे हैं ही नहीं। चल बसे। मकान बनाने की योजना कर रहे थे।

उनकी सारी योजनाएं सुनकर मैंने कहा, लेकिन एक बार तुम घर के बाहर जाकर ये खंडहर भी तो देखो। उन्हें मेरी बात सुनकर ऐसा लगा, जैसे मैं भी कहां खुशी की बात में एक दुख की बात बीच में ले आया। वे बड़े उदास हो गए। उन्होंने मेरी बात टालने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि नहीं, मैंने खंडहर तो देखे हैं। फिर लेकिन वही माडल, वही चर्चा।

मैंने कहा, आपने नहीं देखे। क्योंकि जिन्होंने ये बनाए थे, उन्होंने आपसे भी बहुत ज्यादा सोचा होगा। इतने बड़े महल आप नहीं बना सकोगे। आज न बनाने वाले हैं, न उनके महल बचे। सब मिट्टी हो गया है। आप जो बनाओगे वह मिट्टी हो जाएगा, इसको ध्यान में रखकर बनाना। वे कहने लगे कि आप कुछ ऐसी बातें करते हो कि मन उदास हो जाता है। अकारण आप उदास कर देते हैं।

मैं आपको उदास नहीं कर रहा हूं। दूसरा छोर देखना जरूरी है। दूसरे छोर को देखकर बनाओ। दूसरे छोर को जानते हुए बनाओ। जो भी बनाएंगे, वह मिट जाएगा।

हमारा बनाया हुआ शाश्वत नहीं हो सकता। हम शाश्वत नहीं हैं। लेकिन हमारे भीतर और इस परिवर्तन के भीतर कुछ है, जो शाश्वत है। अगर हम उसे देख लें.।

उसे देखा जा सकता है। परिवर्तन को जो साक्षीभाव से देखने लगे, थोडे दिन में परिवर्तन की पर्त हट जाती है और शाश्वत के दर्शन होने शुरू हो जाते हैं। परिवर्तन से जो लड़े नहीं, परिवर्तन को जो देखने लगे; परिवर्तन के विपरीत कोई उपाय न करे, परिवर्तन के साथ जीने लगे, परिवर्तन से भागे नहीं, परिवर्तन में बहने लगे; न कोई लड़ाई, न कोई झगड़ा, न विपरीत में कोई आयोजन, जो परिवर्तन को राजी हो जाए सिर्फ जागा हुआ देखता रहे। धीरे— धीरे.। परिवर्तन की पर्त बहुत पतली है। होगी ही। परिवर्तन की पर्त बहुत मोटी नहीं हो सकती, बहुत पतली है, तभी तो क्षण में बदल जाती है। धीरे—धीरे परिवर्तन की पर्त मखमल की पर्त मालूम होने लगती है। उसे आप हटा लेते हैं। उसके पार शाश्वत दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, नाशरहित परमेश्वर को जो समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है। क्योंकि वह पुरुष समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

क्योंकि वह पुरुष समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता है। इसे समझ लें। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

हम अपने ही द्वारा अपने आपको नष्ट करने में लगे हैं। हम जो भी कर रहे हैं, उसमें हम अपने को नष्ट कर रहे हैं। लोग, अगर मैं उनसे कहता हूं कि ध्यान करो, प्रार्थना करो, पूजा में उतरो, तो वे कहते हैं, समय कहां! और वे ही लोग ताश खेल रहे हैं। उनसे मैं पूछता हूं क्या कर रहे हो? वे कहते हैं, समय काट रहे हैं। उनसे मैं कहूं ध्यान करो। वे कहते हैं, समय कहां! होटल में घंटों बैठकर वे सिगरेट फूंक रहे हैं, चाय पी रहे हैं, व्यर्थ की बातें कर रहे हैं। उनसे मैं पूछता हूं क्या कर रहे हो? वे कहते हैं, समय नहीं कटता, समय काट रहे हैं।

बड़े मजे की बात है। जब भी कोई काम की बात हो, तो समय नहीं है। और जब कोई बे—काम बात हो, तो हमें इतना समय है कि उसे काटना पड़ता है। ज्यादा है हमारे पास समय!

कितनी जिंदगी है आपके पास? ऐसा लगता है, बहुत ज्यादा है; जरूरत से ज्यादा है। आप कुछ खोज नहीं पा रहे, क्या करें इस जिंदगी का। तो ताश खेलकर काट रहे हैं। सिगरेट पीकर काट रहे हैं। शराब पीकर काट रहे हैं। सिनेमा में बैठकर काट रहे हैं। फिर भी नहीं कटती, तो सुबह जिस अखबार को पढ़ा, उसे दोपहर को फिर पढकर काट रहे हैं। शाम को फिर उसी को पढ़ रहे हैं।

कटती नहीं जिंदगी; ज्यादा मालूम पड़ती है आपके पास। समय बहुत मालूम पड़ता है और आप काटने के उपाय खोज रहे हैं।

पश्चिम में विचारक बहुत परेशान हैं। क्योंकि काम के घंटे कम होते जा रहे हैं। और आदमी के पास समय बढ़ता जा रहा है। और काटने के उपाय कम पड़ते जा रहे हैं। बहुत मनोरंजन के साधन खोजे जा रहे हैं, फिर भी समय नहीं कट रहा है।

तो पश्चिम के विचारक घबडाए हुए हैं कि अगर पचास साल ऐसा ही चला, तो पचास साल में मुश्किल से एक घंटे का दिन हो जाएगा काम का। वह भी मुश्किल से। वह भी सभी लोगों के लिए काम नहीं मिल सकेगा। क्योंकि टेक्नालाजी, यंत्र सब सम्हाल लेंगे। आदमी खाली हो जाएगा।

बड़े से बड़ा जो खतरा पश्चिम में आ रहा है, वह यह कि जब आदमी खाली हो जाएगा और समय काटने को कुछ भी न होगा, तब आदमी क्या करेगा? आदमी बहुत उपद्रव मचा देगा। वह कुछ भी काटने लगेगा समय काटने के लिए। वह कुछ भी करेगा; समय काटेगा। क्योंकि बिना समय काटे वह नहीं रह सकता।

आपको पता नहीं चलता। आप कहते रहते हैं कि कब जिंदगी के उपद्रव से छुटकारा हो! कब दफ्तर से छूटूं! कब नौकरी से मुक्ति मिले! कब रिटायर हो जाऊं! लेकिन जो रिटायर होते हैं, उनकी हालत देखें। रिटायर होते ही से जिंदगी बेकार हो जाती है। समय नहीं कटता।

मनसविद कहते हैं कि रिटायर होते ही आदमी की दस साल उम्र कम हो जाती है। अगर वह काम करता रहता, दस साल और जिंदा रहता। क्योंकि अब कहां काटे? तो अपने को ही काट लेता है। अपने को ही नष्ट कर लेता है।

यह सूत्र कहता है कि जो व्यक्ति परिवर्तन के भीतर छिपे हुए शाश्वत को समभाव से देख लेता है, वह फिर अपने आपको नष्ट नहीं करता।

नहीं तो हम नष्ट करेंगे। हम करेंगे क्या? इस क्षणभंगुर के प्रवाह में हम भी क्षणभंगुर का एक प्रवाह हो जाएंगे। और हम क्या करेंगे? इस क्षणभंगुर के प्रवाह में, इससे लड़ने में हम कुछ इंतजाम करने में, सुरक्षा बनाने में, मकान बनाने में, धन इकट्ठा करने में, अपने को बचाने में सारी शक्ति लगा देंगे और यह सब बह जाएगा। हम बचेंगे नहीं। वह सब जो हमने किया, व्यर्थ चला जाएगा।

थोड़ा सोचें, आपने जो भी जिंदगी में किया है, जिस दिन आप मरेंगे, उसमें से कितना सार्थक रह जाएगा? अगर आज ही आपकी मौत आ जाए, तो आपने बहुत काम किए हैं—अखबार में नाम छपता है, फोटो छपती है, बड़ा मकान है, बड़ी गाड़ी है, धन है, तिजोरी है, बैंक बैलेंस है, प्रतिष्ठा है, लोग नमस्कार करते हैं, लोग मानते हैं, डरते हैं, भयभीत होते हैं, जहां जाएं, लोग उठकर खड़े होकर स्वागत करते हैं—लेकिन मौत आ गई आज। इसमें से तब कौन—सा सार्थक मालूम पड़ेगा? मौत आते ही यह सब व्यर्थ हो जाएगा। और आप खाली हाथ विदा होंगे।

आपने जिंदगी में कुछ भी कमाया नहीं; सिर्फ गंवाया। आपने जिंदगी गंवाई। आपने अपने को काटा और नष्ट किया। आपने अपने को बेचा और व्यर्थ की चीजें खरीद लाए। आपने आत्मा गंवाई और सामान इकट्ठा कर लिया।

जीसस ने बार—बार कहा है कि क्या होगा फायदा, अगर तुमने पूरी दुनिया भी जीत ली और अपने को गंवा दिया? क्या पाओगे तुम, अगर तुम सारे संसार के मालिक भी हो गए और अपने ही मालिक न रहे?

महावीर ने बहुत बार कहा है कि जो अपने को पा लेता है, वह सब पा लेता है। जो अपने को गंवा देता है, वह सब गंवा देता है। हम सब अपने को गंवा रहे हैं। कोई फर्नीचर खरीद ला रहा है आत्मा बेचकर। लेकिन हमें पता नहीं चलता कि आत्मा बेची, क्योंकि आत्मा का हमें पता ही नहीं है। हमें पता ही नहीं, हम कब उसको बेच देते हैं; कब हम उसको खो आते हैं। जिसका हमें पता ही नहीं, वह संपदा कब रिक्त होती चली जाती है।

चार पैसे के लिए आदमी बेईमानी कर सकता है, झूठ बोल सकता है, धोखा दे सकता है। पर उसे पता नहीं कि धोखा, बेईमानी, झूठ बोलने में वह कुछ गंवा भी रहा है, वह कुछ खो भी रहा है। वह जो खो रहा है, उसे पता नहीं है। वह जो कमा रहा है चार पैसे, वह उसे पता है। इसलिए कौड़िया हम इकट्ठी कर लेते हैं और हीरे खो देते हैं।

कृष्ण कहते हैं, वही आदमी अपने को नष्ट करने से बचा सकता है, जिसको सनातन शाश्वत का थोड़ा—सा बोध आ जाए। उसके बोध आते ही अपने भीतर भी शाश्वत का बोध आ जाता है।

जो हम बाहर देखते हैं, वही हमें भीतर दिखाई पड़ता है। जो हम भीतर देखते हैं, वही हमें बाहर दिखाई पड़ता है। बाहर और भीतर दो नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

अगर मुझे सागर की लहरों में सागर दिखाई पड़ जाए, तो मुझे मेरे मन की लहरों में मेरी आत्मा भी दिखाई पड़ जाएगी। अगर एक बच्चे के जन्म और एक के की मृत्यु में लहरें मालूम पड़े और भीतर छिपे हुए जीवन की झलक मुझे आ जाए तो मुझे अपने बुढ़ापे, अपनी जवानी, अपने जन्म, अपनी मौत में भी जीवन की शाश्वतता का पता हो जाएगा। इस बोध का नाम ही दृष्टि है। और इस बोध से ही कोई परम गति को प्राप्त होता है।

और जो पुरुष संपूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किए हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है, वही देखता है।

वही जो मैं आपसे कह रहा था। चाहे आप ऐसा समझें कि सब परमात्मा कर रहा है, तब भी आप अकर्ता हो जाते हैं। सांख्य कहता है, सभी कुछ प्रकृति कर रही है, तब भी आप अकर्ता हो जाते हैं।

मूल बिंदु है, अकर्ता हो जाना। नान—डुअर, आप करने वाले नहीं हैं। किसी को भी मान लें कि कौन कर रहा है, इससे फर्क नहीं पड़ता। सांख्य की दृष्टि को कृष्ण यहां प्रस्तावित कर रहे हैं।

वे कह रहे हैं, जो पुरुष संपूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किए हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है, वही देखता है। और यह पुरुष जिस काल में भूतों के न्यारे—न्यारे भाव को एक परमात्मा के संकल्प के आधार पर स्थित देखता है तथा उस परमात्मा के संकल्प से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उस काल में सच्चिदानंदघन को प्राप्त होता है।

जो कुछ हो रहा है, जो भी कर्म हो रहे हैं, वे प्रकृति से हो रहे हैं। और जो भी भाव हो रहे हैं, वह परमात्मा से हो रहे हैं, वह पुरुष से हो रहे हैं।

पुरुष और प्रकृति दो तत्व हैं। सारे कर्म प्रकृति से हो रहे हैं और सारे भाव पुरुष से हो रहे हैं। इन दोनों को इस भांति देखते ही आपके भीतर का जो आत्यंतिक बिंदु है, वह दोनों के बाहर हो जाता है। न तो वह भोक्ता रह जाता है और न कर्ता रह जाता है, वह देखने वाला ही हो जाता है। एक तरफ देखता है प्रकृति की लीला और एक तरफ देखता है भाव की, पुरुष की लीला। और दोनों के पीछे सरक जाता है। वह तीसरा बिंदु हो जाता है, असली पुरुष हो जाता है। तो कृष्ण कहते हैं, वह सच्चिदानंदघन को प्राप्त हो जाता है।

ऐसा जो देखता है, वही देखता है। बाकी सब अंधे हैं।

जीसस बहुत बार कहते हैं कि अगर तुम्हारे पास आंखें हों, तो देख लो। अगर तुम्हारे पास कान हों, तो सुन लो।

जिनसे वे बोल रहे थे, उनके पास ऐसी ही आंखें थीं, जैसी आपके पास आंखें हैं। जिनसे वे बोल रहे थे, वे कोई बहरे—लोग नहीं थे। कोई ग्ते—बहरों की भीड़ में नहीं बोल रहे थे। लेकिन वे निरंतर कहते हैं कि आंखें हों, तो देख लो। कान हों, तो सुन लो। क्या मतलब है उनका?

मतलब यह है कि हमारे पास आंखें तो जरूर हैं, लेकिन अब तक हमने उनसे देखा नहीं। या जो हमने देखा है, वह देखने योग्य नहीं है। हमारे पास कान तो जरूर हैं, लेकिन हमने उनसे कुछ सुना नहीं; और जो हमने सुना है, न सुनते तो कोई हर्ज न था। चूक जाते, तो कुछ भी न चूकते। न देख पाते, न सुन पाते जो हमने सुना और देखा है, तो कोई हानि नहीं थी।

थोड़ा हिसाब लगाया करें कभी—कभी, कि जिंदगी में जो भी आपने देखा है, अगर न देखते, क्या चूक जाता? भला ताजमहल देखे हों। न देखते, तो क्या चूक जाता? और जो भी आपने सुना है, अगर न सुनते, तो क्या चूक जाता?

अगर आपके पास ऐसी कोई चीज देखने में आई हो, जो आप कहें कि उसे अगर न देखते, तो जरूर कुछ चूक जाता, और जीवन अधूरा रह जाता। और ऐसा कुछ सुना हो, कि उसे न सुना होता, तो कानों का होना व्यर्थ हो जाता। अगर कुछ ऐसा देखा और ऐसा सुना हो कि मौत भी उसे छीन न सके और मौत के क्षण में भी वह आपकी संपदा बनी रहे, तो आपने आंख का उपयोग किया, तो आपने कान का उपयोग किया, तो आपका जीवन सार्थक हुआ है।

कृष्ण कहते हैं, वही देखता है, जो इतनी बातें कर लेता है—परिवर्तन में शाश्वत को पकड़ लेता है, प्रवाह में नित्य को देख लेता है, बदलते हुए में न बदलते हुए की झलक पकड़ लेता है। वही देखता है।

कर्तृत्व प्रकृति का है। भोक्तृत्व पुरुष का है। और जो दोनों के बीच साक्षी हो जाता है। जो दोनों से अलग कर लेता है, कहता है, न मैं भोक्ता हूं और न मैं कर्ता हूं...।

सांख्य की यह दृष्टि बड़ी गहन दृष्टि है। कभी—कभी वर्ष में तीन सप्ताह के लिए छुट्टी निकाल लेनी जरूरी है।

छुट्टियां हम निकालते हैं, लेकिन हमारी छुट्टियां, जो हम रोज करते हैं, उससे भी बदतर होती हैं। हम छुट्टियों से थके—मादे लौटते हैं। और घर आकर बड़े प्रसन्न अनुभव करते हैं कि चलो, छुट्टी खत्म हुई; अपने घर लौट आए। छुट्टी है ही नहीं। हमारा जो हॉली—डे है, जो अवकाश का समय है, वह भी हमारे बाजार की दुनिया की ही दूसरी झलक है। उसमें कोई फर्क नहीं है।

लोग पहाड़ पर जाते हैं। और वहां भी रेडियो लेकर पहुंच जाते हैं। रेडियो तो घर पर ही उपलब्ध था। वह पहाड़ पर जो सूक्ष्म संगीत चल रहा है, उसे सुनने का उन्हें पता ही नहीं चलता। वहां भी जाकर रेडियो वे उसी तेज आवाज से चला देते हैं। उससे उनको तो कोई शांति नहीं मिलती, पहाड़ की शांति जरूर थोड़ी खंडित होती है। सारा उपद्रव लेकर आदमी अवकाश के दिनों में भी पहुंच जाता है जंगलों में। सारा उपद्रव लेकर! अगर उस उपद्रव में जरा भी कमी हो, तो उसको अच्छा नहीं लगता। वह सारा उपद्रव वहां जमा लेता है।

इसलिए सभी सुंदर स्थान खराब हो गए हैं। क्योंकि वहां भी होटल खड़ी करनी पड़ती है। वहां भी सारा उपद्रव वही लाना पड़ता है, जो जहां से आप छोड्कर आ रहे हैं, वही सारा उपद्रव वहा भी ले आना पड़ता है जहां आप जा रहे हैं।

अगर यह कृष्ण का सूत्र समझ में आए, तो इसका उपयोग, आप वर्ष में तीन सप्ताह के लिए अवकाश ले लें। अवकाश का मतलब है, एकांत जगह में चले जाएं। और इस भाव को गहन करें कि जो भी कर्म हो रहा है, वह प्रकृति में हो रहा है। और जो भी भाव हो रहा है, वह मन में हो रहा है। और मैं दोनों का द्रष्टा हूं मैं सिर्फ देख रहा हूं। जस्ट ए वाचर

ऑन दि हिल्स, पहाड़ पर बैठा हुआ मैं सिर्फ एक साक्षी हूं। सारा कर्म और भाव का जगत नीचे रह गया। सारा भाव और कर्म मेरे चारों तरफ चल रहा है और मैं बीच में खडा

हुआ देख रहा हूं। और मैं तीन सप्ताह सिर्फ देखूंगा। मैं देखने को नहीं भूलूंगा। मैं स्मरण रखूंगा उठते—बैठते, चाहे कितनी ही बार चूक जाऊं; बार—बार अपने को लौटा लूंगा और खयाल रखूंगा कि मैं सिर्फ देख रहा हूं मैं सिर्फ साक्षी हूं। मुझे कोई निर्णय नहीं लेना है, क्या बुरा, क्या भला; क्या करना, क्या नहीं करना। मैं कोई निर्णय न लूंगा। मैं सिर्फ देखता रहूंगा।

तीन सप्ताह इस पर आप प्रयोग करें, तो कृष्ण का सूत्र समझ में आएगा। तो शायद आपकी आंख से थोड़ी धूल हट जाए और आपको पहली दफा जिंदगी दिखाई पड़े। आंख से थोड़ी धूल हट जाए और आंख ताजी हो जाए। और आपको बढ़ते हुए वृक्ष में वह भी दिखाई पड़ जाए, जो भीतर छिपा है। बहती हुई नदी में वह दिखाई पड़ जाए, जो कभी नहीं बहा। चलती, सनसनाती हवाओं में वह सुनाई पड़ जाए, जो बिलकुल मौन है। सब तरफ आपको परिवर्तन के पीछे थोड़ी—सी झलक उसकी मिल सकती है, जो शाश्वत है।

लेकिन आपकी आंख पर जमी हुई धूल थोड़ी हटनी जरूरी है। उस धूल को हटाने का उपाय है, साक्षी के भाव में प्रतिष्ठा। अगर आप तीन सप्ताह अवकाश ले लें, बाजार से नहीं, कर्म से, कर्ता से; भोग से नहीं, भोक्ता से..।

भोग से भाग जाने में कोई कठिनाई नहीं है। आप अपनी पत्नी को छोड़कर भाग सकते हैं जंगल में। पत्नी भाग सकती है मंदिर में पति को छोड़कर। भोग से भागने में कोई अड़चन नहीं है, क्योंकि भोग तो बाहर है। लेकिन भोक्ता भीतर बैठा हुआ छिपा है, वह हमारा मन है। वह वहां भी भोगेगा। वह वहा भी मन में ही भोग के संसार निर्मित कर लेगा। वही रस लेने लगेगा।

वहां भीतर से मैं भोक्ता नहीं हूं भीतर से मैं कर्ता नहीं हूं ऐसी दोनों धाराओं के पीछे साक्षी छिपा है। उस साक्षी को खोदना है। उसको अगर आप खोद लें, तो आपको आंख उपलब्ध हो जाएगी। और आंख हो, तो दर्शन हो सकता है।

शास्त्र पढ़ने से नहीं होगा दर्शन, दृष्टि हो, तो दर्शन हो सकता है। शब्द सुन लेने से नहीं होगा सत्य का अनुभव; आंख हो, तो सत्य दिखाई पड़ सकता है। क्योंकि सत्य प्रकाश जैसा है। अंधे को हम कितना ही समझाएं कि प्रकाश कैसा है, हम न समझा पाएंगे। अंधे की तो आंख की चिकित्सा होनी जरूरी है।

ऐसा हुआ कि एक गांव में बुद्ध ठहरे, और एक अंधे आदमी को लोग उनके पास लाए। और उन .लोगों ने कहा कि यह अंधा मित्र है हमारा, बहुत घनिष्ठ मित्र है। लेकिन यह बड़ा तार्किक है। और हम पांच आंख वाले भी इसको समझा नहीं पाते कि प्रकाश है। और यह हंसता है और हमारे तर्क सब तोड़ देता है। और कहता है कि तुम मुझे अंधा सिद्ध करने के लिए प्रकाश का सिद्धांत गढ़ लिए हो।

यह अंधा आदमी कहता है कि प्रकाश वगैरह है नहीं। तुम सिर्फ मुझे अंधा सिद्ध करना चाहते हो, इसलिए प्रकाश का सिद्धांत गढ़ लिए हो, तुम सिद्ध करो। अगर प्रकाश है, तो मैं उसे छूकर देखना चाहता हूं। क्योंकि जो भी चीज है, वह छूकर देखी जा सकती है। अगर तुम कहते हो, छूने में संभव नहीं है, तो मैं चखकर देख सकता हूं। अगर तुम कहते हो, उसमें स्वाद नहीं है, तो मैं सुन सकता हूं। तुम प्रकाश को बजाओ। मेरे कान सुनने में समर्थ हैं। अगर तुम कहते हो, वह सुना भी नहीं जा सकता, तो तुम मुझे प्रकाश की गंध दो, तो मैं सूंघ लूं।

मेरे पास चार इंद्रियां हैं। तुम इन चारों में से किसी से प्रकाश से मेरा मिलन करवा दो। और अगर तुम चारों से मिलन करवाने में असमर्थ हो, तो तुम झूठी बातें मत करो। न तो तुम्हारे पास आंख है और न मेरे पास आंख है। लेकिन तुम चालाक हो और मैं सीधा—सादा आदमी हूं। और तुमने मुझे अंधा सिद्ध करने के लिए प्रकाश का सिद्धांत गढ़ लिया है।

उन पाचों मित्रों ने कहा कि इस अंधे को हम कैसे समझाएं? न हम चखा सकते, न स्पर्श करा सकते, न कान में ध्वनि आ सकती। प्रकाश को कैसे बजाओ? तो हम आपके पास ले आए हैं। और आप हैं बुद्ध पुरुष, आप हैं परम ज्ञान को उपलब्ध। इतना ही काफी होगा कि हमारे अंधे मित्र को आप प्रकाश के संबंध में कुछ समझा दें।

बुद्ध ने कहा, तुम गलत आदमी के पास आ गए। मैं तो समझाने में भरोसा ही नहीं करता। तुम किसी वैद्य के पास ले जाओ इस अंधे आदमी को। इसकी आंख का इलाज करवाओ। समझाने से क्या होगा? तुम पागल हो? अंधे को समझाने बैठे हो। इसमें तुम्हारा पागलपन सिद्ध होता है। तुम इसकी चिकित्सा करवाओ। तुम इसे वैद्य के पास ले जाओ। इसकी आंख अगर ठीक हो जाए, तो तुम्हारे बिना तर्क के भी, तुम्हारे बिना समझाए यह प्रकाश को जानेगा। और तुम अगर इनकार करोगे कि प्रकाश नहीं है, तो यह सिद्ध करेगा कि प्रकाश है। आंख के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है।

संयोग की बात थी कि वे उसे वैद्य के पास ले गए। उन्हें यह कभी खयाल ही नहीं आया था। वे सभी पंडित थे, सभी ब्राह्मण थे, सभी ज्ञानी थे। सब तरह से तर्क लगाकर समझाने की कोशिश कर ली थी। यह उन्हें खयाल ही चूक गया था कि आंख न हो तो प्रकाश को समझाया कैसे जाए! प्रकाश कोई समझाने की बात नहीं, अनुभव की बात है।

चिकित्सक ने कहा कि पहले क्यों न ले आए? इस आदमी की आंख अंधी नहीं है, केवल जाली है। और छः महीने की दवा के इलाज से ही जाली कट जाएगी। यह आदमी देख सकेगा। तुम इतने दिन तक कहां थे?

उन्होंने कहा, हम तो तर्क में उलझे थे। हमें न इस अंधे आदमी की आंख से कोई प्रयोजन था। हमें तो अपने सिद्धांत समझाने में रस था। वह तो बुद्ध की कृपा कि उन्होंने कहा कि चिकित्सक के पास ले जाओ।

छः महीने बाद उस आदमी की आंख ठीक हो गई। तब तक बुद्ध तो बहुत दूर जा चुके थे। लेकिन वह आदमी बुद्ध को खोजता हुआ उनके गांव तक पहुंचा। उनके चरणों पर गिर पड़ा। बुद्ध को तो खयाल भी नहीं रहा था कि वह कौन है। बुद्ध ने पूछा, तू इतना क्यों आनंदित हो रहा है? तेरी क्या खुशी? इतना उत्सव किस बात का? तू किस बात का धन्यवाद देने आया है? मेरे चरणों में इतने आनंद के आंसू क्यों बहा रहा है? उसने कहा कि तुम्हारी कृपा। मैं यह कहने आया हूं कि प्रकाश है।

लेकिन प्रकाश तभी है, जब आंखें हैं।

कृष्ण कह रहे हैं, उस आदमी को मैं कहता हूं आंख वाला, जो परिवर्तन में शाश्वत को देख लेता है।

गीता दर्शन–भाग–6
साधना और समझ—(प्रवचन—ग्यारहवां)
अध्याय—13

सूत्र

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करौति न लिप्यते।।31।।
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादास्काशं नोयलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।32।।
है अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ थी वास्तव में न करता है और न लिपायमान होता है।

जिस कार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता है, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा गुणातींत होने के कारण देह के गुणों से लिपायमान नहीं होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है, आप ध्यान या साधना पर इतना जोर क्यों देते हैं? आध्यात्मिक, दार्शनिक ग्रंथों का पठन—पाठन या कृष्णमूर्ति या आप जैसे ज्ञानियों का श्रवण और स्वयं चिंतन—मनन, इनसे जो समझ आती है, क्या वह परिवर्तन के लिए पर्याप्त नहीं है? क्या यही साधना नहीं है? ध्यान को बैठने का फिर क्या प्रयोजन है? ध्यान का अर्थ अगर साक्षी— भाव है, तो दिनभर सब जगह हर काम करते वक्त भी पूरा अवसर है। फिर ध्यान करने की, अलग से बैठने की क्या जरूरत है?
समझ काफी है, लेकिन समझ केवल सुन लेने या पढ़ लेने से उपलब्ध नहीं होती। समझ को भी भूमि देनी पड़ती है। उसके बीज को भी भूमि देनी पड़ती है। बीज में पूरी संभावना है कि वह वृक्ष हो जाए लेकिन बीज को भी जमीन में न डालें, तो वह वृक्ष नहीं होगा।

ध्यान समझ के लिए भूमि है। समझ काफी है, उससे जीवन में क्रांति हो जाएगी। लेकिन समझ का बीज ध्यान के बिना टूटेगा ही नहीं।

और अगर समझ आप में पैदा होती हो बिना ध्यान के, तो कृष्णमूर्ति को या मुझे सुनने का भी क्या प्रयोजन है! और मुझे वर्षों से बहुत लोग सुनते हैं, कृष्णमूर्ति को चालीस वर्षों से बहुत लोग सुनते हैं। अब भी सुनने जाते हैं। समझ अभी भी पैदा नहीं हुई।

चालीस वर्ष से जो आदमी कृष्णमूर्ति को सुन रहा है, अब उसको कृष्णमूर्ति को सुनने जाने की क्या जरूरत है अगर समझ पैदा हो गई हो? अब भी सुनने जाता है। और कृष्णमूर्ति चालीस साल से एक ही बात कह रहे हैं कि समझ पैदा करो। वह अभी चालीस वर्ष तक सुनकर भी पैदा नहीं हुई है। वह चार हजार वर्ष सुनकर भी पैदा नहीं होगी।

न तो सुनने से समझ पैदा हो सकती है, न पढ़ने से समझ पैदा हो सकती है। ध्यान की भूमि में ही समझ पैदा हो सकती है। हा, सुनने से ध्यान की तरफ जाना हो सकता है। पढ़ने से ध्यान की तरफ जाना हो सकता है। और अगर समग्र मन से सुनें, तो सुनना भी ध्यान बन सकता है। और अगर समग्र मन से पढ़ें, तो पढ़ना भी ध्यान बन सकता है। लेकिन ध्यान जरूरी है।

ध्यान का अर्थ समझ लें। ध्यान का अर्थ है, मन की ऐसी अवस्था जहां कोई तरंग नहीं है। निस्तरंग चैतन्य में ही समझ का जन्म होता है।

यह निस्तरंग चैतन्य कई तरह से पैदा हो सकता है। किसी को प्रार्थना से पैदा हो सकता है। किसी को पूजा से पैदा हो सकता है। किसी को नृत्य से, कीर्तन से पैदा हो सकता है। किसी को सुनने से पैदा हो सकता है। किसी को देखने से पैदा हो सकता है। किसी को मात्र बैठने से पैदा हो सकता है। किसी को योग की क्रियाओं से पैदा हो सकता है। किसी को तंत्र की क्रियाओं से पैदा हो सकता है।

निस्तरंग चित्त बहुत तरह से पैदा हो सकता है। और जिस तरह से आपको पैदा होता है, जरूरी नहीं है कि दूसरे को भी उसी तरह से पैदा हो। तो आपको खोजना पड़ेगा कि कैसे निस्तरंग चित्त पैदा हो! निस्तरंग चित्त का नाम ही ध्यान है। तरंगायित चित्त का नाम मन है। वह जो उथल—पुथल से भरा हुआ मन है, उसमें कोई भी समझ पैदा नहीं हो सकती। क्योंकि वहां इतना भूकंप चल रहा है कि कोई बीज थिर नहीं हो सकता। अंकुरित होने के लिए अवसर ही नहीं है। इसलिए ध्यान पर इतना जोर है।

और अगर आप सोचते हों कि कृष्णमूर्ति का ध्यान पर जोर नहीं है, तो आप समझे ही नहीं। ध्यान शब्द का वे उपयोग नहीं करते हैं, क्योंकि उनको ऐसा खयाल है कि ध्यान शब्द बहुत विकृत हो गया है। लेकिन कोई शब्द विकृत नहीं होते। और केवल नए शब्द चुन लेने से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि मुझे सुनते समय सिर्फ सुनो!

वह ध्यान हो गया। कोई भी किया करते वक्त अगर सिर्फ क्रिया की जाए और उसके संबंध में सोचा न जाए, तो ध्यान हो जाएगा। चलते वक्त अगर केवल चला जाए और कुछ भी मन में न करने दिया जाए तो ध्यान हो जाएगा। भोजन करते वक्त अगर भोजन किया जाए और मन में उसके संबंध में कोई चिंतन न किया जाए, तो भोजन करना ध्यान हो जाएगा। अगर आप अपने चौबीस घंटे को ध्यान में बदल लेते हैं, तो बहुत अच्छा है।

लेकिन लोग बहुत बेईमान हैं। एक घंटा न बैठने के लिए वे कहेंगे, चौबीस घंटे ध्यान क्यों नहीं किया जा सकता! और चौबीस घंटे वे ध्यान करने वाले नहीं हैं। और एक घंटा बैठना न पड़े, इसलिए चौबीस घंटे पर टालेंगे।

अगर आप चौबीस घंटे ही ध्यान कर सकते हों, तो कौन आपको कहेगा कि घंटेभर करिए! आप मजे से चौबीस घंटे करिए। लेकिन चौबीस घंटे आप कर नहीं रहे हैं। और कर रहे होते, तो यहां मेरे पास पूछने को नहीं आना पड़ता।

क्या जरूरत है मेरे पास आने की? ध्यान नहीं है, इसलिए कहीं जाना पड़ता है, सुनना पड़ता है, समझना पड़ता है। ध्यान हो तो आपके भीतर ही पौधा खिल जाएगा। आपके पास दूसरे लोग आने लगेंगे। आपको जाने की जरूरत नहीं होगी। अपनी समझ आ जाए, तो फिर किसी से क्या समझना है!

लेकिन आदमी का मन ऐसा है कि अगर कहो कि घंटेभर बैठो, तो वह कहेगा, घंटेभर बैठने की क्या जरूरत है? चौबीस घंटे ध्यान नहीं किया जा सकता!

मजे से करिए, लेकिन कम से कम घंटे से शुरू तो करिए। एक घंटा भी ध्यान करना मुश्किल है। चौबीस घंटा तो बहुत मुश्किल है। जब ध्यान करने बैठेंगे, तब पता चलेगा कि एक क्षण को भी ध्यान हो जाए तो बहुत बड़ी घटना है। क्योंकि मन चलता ही रहता है। तो उचित है कि एक घंटा निकाल लें चौबीस घंटे में से अलग ध्यान के लिए ही, और अनुभव करें। जिस दिन एक घंटे में आपको लगे कि सधने लगी बात, घटने लगी बात, चौबीस घंटे पर फैला दें। फैलाना तो चौबीस घंटे पर ही है। क्योंकि जब तक जीवन पूरा ध्यानमय न हो जाए तब तक कोई क्रांति न होगी। लेकिन शुरुआत कहीं से करनी पड़ेगी।

और फिर एक घंटे ध्यान का परिणाम चौबीस घंटे पर होता है। ठीक वैसे ही जैसे एक घंटा कोई सुबह व्यायाम कर लेता है, तो चौबीस घंटे का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। और आप यह नहीं

कहते कि चौबीस ही घंटे व्यायाम क्यों न किया जाए! करें, तो ठीक है। जो आदमी चौबीस घंटे व्यायाम कर रहा है, उसको एक घंटे व्यायाम करने की कोई जरूरत भी नहीं है। जो चौबीस घंटे श्रम में लगा हुआ है, उसे और व्यायाम की क्या जरूरत है? कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जो व्यायाम नहीं कर रहा है, उसे घंटेभर भी कर लेने से चौबीस घंटे पर परिणाम होगा।

ध्यान के लिए एक घंटा निकाल लेना इसलिए उपयोगी है कि आप उस समय को पूरा का पूरा ही ध्यान में नियोजित कर सकते हैं। एक दफा कला आ जाए तो उस कला का उपयोग आप चौबीस घंटे कर सकते हैं। ध्यान एक कला है। फिर आप जो भी आप करें, वह ध्यानपूर्वक कर सकते हैं। और तब अलग से ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

लेकिन जब तक वैसी घटना न घटी हो, तब तक कृष्णमूर्ति को सुनकर या किसी को भी सुनकर तरकीबें मत निकालें। हम इतने होशियार हैं तरकीबें निकालने में, कि जिससे हमारा मतलब सधता हो, वह बात हम तत्काल निकाल लेते हैं।

कृष्णमूर्ति लोगों को कहते हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं है। उनके पास उसी तरह के लोग इकट्ठे हो जाते हैं, जो किसी भी गुरु के सामने झुकने में अहंकार की तकलीफ पाते हैं। वे इकट्ठे हो जाते हैं। वे बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, जब कृष्णमूर्ति कह रहे हैं, तो ठीक ही कह रहे हैं कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन अगर गुरु की कोई जरूरत नहीं है आपको, तो कृष्णमूर्ति के पास किसलिए जाते हैं? क्या प्रयोजन है? सिर्फ कह देने से कि गुरु की जरूरत नहीं है, कोई फर्क पड़ता है? जब तक आप किसी से सीखने जाते हैं, तब तक आपको गुरु की जरूरत है। और बड़े मजे की बात यह है कि यह बात भी आपकी बुद्धि से पैदा नहीं हुई है कि गुरु की जरूरत नहीं है। यह भी किसी दूसरे ने आपको सिखाई है! यह भी आपने गुरु से ही सीखी है!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं, कृष्णमूर्ति ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं है। यह भी तुम्हारी बुद्धि का मामला नहीं है, यह भी तुम किसी गुरु से सीख आए हो! इसको भी सीखने तुम्हें किसी के पास जाना पड़ा है। इस साधारण—सी बात को सीखने भी किसी के पास जाना पड़ा है कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा को सीखने तुम किसी गुरु के पास नहीं जाना चाहते हो!

अड़चन कहीं और है। गुरु की जरूरत नहीं है, इससे तुम्हारा मन प्रसन्न होता है। प्रसन्न इसलिए होता है कि चलो, अब झुकने की कोई जरूरत नहीं है, अब कहीं झुकने की कोई जरूरत नहीं है। तुमने बड़ी गलत बात निकाली। तुमने अपने मतलब की बात निकाल ली।

मेरे पास लोग आते हैं। मैं जो कहता हूं उसमें से वे वे बातें निकाल लेते हैं, जो उनके मतलब की हैं और जिनसे उनको बदलना नहीं पड़ेगा। वे मेरे पास आते हैं कि आपने बिलकुल ठीक कहा। जंगल में जाने की, पहाड़ पर जाने की क्या जरूरत है! ज्ञान तो यहीं हो सकता है। बिलकुल ठीक कहा है।

तो मैं उनको पूछता हूं यहीं हो सकता है, कब तक होगा, यह मुझे कहो। और यहीं हो सकता है, तो तुम यहीं करने के लिए क्या कर रहे हो?

उन्होंने मतलब की बात निकाल ली कि कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जहां तुम हो, वहां तो तुम पचास वर्ष से हो ही। अगर वहीं ज्ञान होता होता, तो कभी का हो गया होता। लेकिन तुमने अपने हिसाब की बात निकाल ली।

ध्यान कठिन है। न तो चिंतन, न मनन, न सुनना—श्रवण। इनमें कोई कठिनाई नहीं है। ध्यान बहुत कठिन है। ध्यान का अर्थ है कि कुछ घड़ी के लिए बिलकुल शून्य हो जाना। सारी व्यस्तता समाप्त हो जाए। मन कुछ भी न करता हो।

यह न करना बहुत कठिन है। क्योंकि मन कुछ न कुछ करना ही चाहता है। करना मन का स्वभाव है। और अगर आप न—करने पर जोर दें, तो मन सो जाएगा।

मन दो चीजें जानता है, या तो क्रिया और या निद्रा। आप या तो उसे काम करने दो और या फिर वह नींद में चला जाएगा। ध्यान तीसरी दशा है। क्रिया न हो और निद्रा भी न हो, तब ध्यान फलित होगा।

कठिन से कठिन जो घटना मनुष्य के जीवन में घट सकती है, वह ध्यान है। और आप कहते हैं, हम चौबीस घंटे क्यों न करें! आप मजे से करें। लेकिन घडीभर करना मुश्किल है, तो चौबीस घंटे पर आप फैलाइएगा कैसे?

एक उपाय है कि आप साक्षी— भाव रखें, तो चौबीस घंटे पर फैल सकता है। लेकिन साक्षी— भाव आसान नहीं है। और जो आदमी घडीभर ध्यान कर रहा हो, उसके लिए साक्षी— भाव भी आसान हो जाएगा। लेकिन जो आदमी घडीभर ध्यान भी न कर रहा हो, उसके लिए साक्षी— भाव भी बहुत कठिन होगा।

अति कठिन है यह खयाल करना कि मैं देखने वाला हूं। कोशिश करें! घड़ी अपने सामने रख लें। और घड़ी में जो सेकेंड का काटा है, जो चक्कर लगा रहा है, उस सेकेंड के काटे पर ध्यान करें। और इतना खयाल रखें कि मैं देखने वाला हूं सिर्फ देख रहा हूं।

आप हैरान होंगे कि पूरा एक सेकेंड भी आप यह ध्यान नहीं रख सकते। एक सेकेंड में भी कई दफा आप भूल जाएंगे और दूसरी बातें आ जाएंगी। चौबीस घंटा तो बहुत दूर है, एक सेकेंड भी पूरा का पूरा आप यह ध्यान नहीं रख सकते

कि मैं सिर्फ द्रष्टा हूं। इसी बीच आप घड़ी का नाम पढ़ लेंगे। इसी बीच घड़ी में कितना बजा है, यह भी देख लेंगे। घड़ी में कितनी तारीख है, वह भी दिखाई पड़ जाएगी। इसी बीच बाहर कोई आवाज देगा, वह भी सुनाई पड़ जाएगी। टेलिफोन की घंटी बजेगी, वह भी खयाल में आ जाएगी, किसका फोन आ रहा है! अगर कुछ भी बाहर न हो, तो भीतर कुछ स्मरण आ जाएगा, कोई शब्द आ जाएगा। बहुत कुछ हो जाएगा।

एक सेकेंड भी आप सिर्फ साक्षी नहीं रह सकते। तो अपने को धोखा मत दें। घडीभर तो निकाल ही लें चौबीस घंटे में, और उसको सिर्फ ध्यान में नियोजित कर दें। ही, जब घड़ी में सध जाए वह सुगंध, तो उसे चौबीस घंटे पर फैला दें। जब घड़ी में जल जाए वह दीया, तो फिर चौबीस घंटे उसको साथ लेकर चलने लगें। फिर अलग से बैठने की जरूरत न रह जाएगी।

अलग से बैठने की जिस दिन जरूरत समाप्त हो जाती है, उसी दिन जानना कि ध्यान उपलब्ध हुआ। अलग से बैठना तो अभ्यास—काल है। वह तो प्राथमिक चरण है। वह तो सीखने का वक्त है। इसलिए ध्यान के जानकारों ने कहा है कि जब ध्यान करना व्यर्थ हो जाए, तभी समझना कि ध्यान पूरा हुआ।

लेकिन इसको पहले ही मत समझ लेना, कि जब ज्ञानी कहते हैं कि ध्यान करना व्यर्थ हो जाए, तब ध्यान पूरा हुआ, तो हम करें ही क्यों! तो आपके लिए फिर कभी भी कोई यात्रा संभव नहीं हो पाएगी।

अच्छा है अगर चौबीस घंटे पर फैलाएं। लेकिन मैं जानता हूं, वह आप कर नहीं सकते। जो आप कर सकते हैं, वह यह है कि आप थोड़ी घड़ी निकाल लें। एक कोना अलग निकाल लें जीवन का। और उसे ध्यान पर ही समर्पित कर दें। और जब आपको आ जाए कला, और आपको पकड़ आ जाए सूत्र, और आप समझ जाएं कि किस क्वालिटी, किस गुण को ध्यान कहते हैं। और फिर उस गुण को आप चौबीस घंटे याद रखने लगें, स्मरण रखने लगें, उठते—बैठते उसको सम्हालते रहें।

जैसे किसी को कोई कीमती हीरा मिल जाए। वह दिनभर सब काम करे, बार—बार खीसे में हाथ डालकर टटोल ले कि हीरा वहां है? खो तो नहीं गया! कुछ भी करे, बात करे, चीत करे, रास्ते पर चले, लेकिन ध्यान उसका हीरे में लगा रहे।

कबीर ने कहा है कि जैसे स्त्रियां नदी से पानी भरकर घड़े को सिर पर रखकर लौटती हैं, तो गाव की स्त्रियां हाथ भी नहीं लगाती, सिर पर घड़े को सम्हाल लेती हैं। गपशप करती, बात करती, गीत गाती लौट आती हैं। तो कबीर ने कहा है कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से वे कोई भी ध्यान घड़े को नहीं देतीं, लेकिन भीतर ध्यान घड़े पर ही लगा रहता है। गीत भी चलता है। बात भी चलती है। चर्चा भी चलती है। हंसती भी हैं। रास्ता भी पार करती हैं। लेकिन भीतर सूक्ष्म ध्यान घड़े पर लगा रहता है और घड़े को वे सम्हाले रखती हैं।

जिस दिन ऐसी कला का खयाल आ जाए, तो फिर आप कुछ भी करें, ध्यान पर आपका काम भीतर चलता रहेगा। लेकिन यह आपसे आज नहीं हो सकेगा।

कृष्णमूर्ति की बुनियादी भूल यही है कि वे आप पर बहुत भरोसा कर लेते हैं। वे सोचते हैं, आप यह आज ही कर सकेंगे। उनसे भी यह आज ही नहीं हो गया है। यह भी बहुत जन्मों की यात्रा है। और उनसे भी यह बिना गुरु के नहीं हो गया है। सच तो यह है कि इस सदी में जितने बड़े गुरु कृष्णमूर्ति को उपलब्ध हुए, किसी दूसरे व्यक्ति को उपलब्ध नहीं हुए। और गुरुओं ने जितनी मेहनत कृष्णमूर्ति के ऊपर की है, उतसई किसी शिष्य के ऊपर कभी मेहनत नहीं की गई है।

जीवन के उनके पच्चीस साल बहुत अदभुत गुरुओं के साथ, उनके सत्संग में, उनके चरणों में बैठकर बीते हैं। उनसे सब सीखा है। लेकिन यह बड़ी जटिलता की बात है कि जो व्यक्ति गुरुओं से ही सब सीखा है, वह व्यक्ति गुरुओं के इतने खिलाफ कैसे हो गया? और वह क्यों यह कहने लगा कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है? और जिस व्यक्ति ने ध्यान की बहुत—सी प्रक्रियाएं करके ही समझ पाई है, वह क्यों कहने लगा कि ध्यान की कोई जरूरत नहीं है?

इसके पीछे बड़ी मनोवैज्ञानिक उलझन है। और वह उलझन यह है कि अगर गुरु को आपने ही चुना हो, तब तो ठीक है। लेकिन अगर गुरुओं ने आपको चुनकर आपके साथ मेहनत की हो, तो एक अंतर्विरोध पैदा हो जाता है।

कृष्णमूर्ति ने खुद नहीं चुना है। कृष्णमूर्ति को चुना गया है। और कुछ गुरुओं ने अथक मेहनत की है उनके साथ, ताकि वे ज्ञान को उपलब्ध हो जाएं।

यह बड़े मजे की बात है कि अगर आपको जबरदस्ती स्वर्ग में भी ले जाया जाए, तो आप स्वर्ग के भी खिलाफ हो जाएंगे। और अपने मन से आप नरक भी चले जाए, तो गीत गाते, सीटी बजाते जाएंगे। अपने मन से आदमी नरक भी गीत गाता जा सकता है। और जबरदस्ती स्वर्ग में भी ले जाया जाए तो वह स्वर्ग के भी खिलाफ हो जाएगा। और उन लोगों को कभी माफ न कर सकेगा, जिन्होंने जबरदस्ती स्वर्ग में धक्का दिया है।

कृष्णमूर्ति पर यह ज्ञान एक तरह की जबरदस्ती थी। यह किन्हीं और लोगों का निर्णय था। और अगर कृष्णमूर्ति अपने ही ढंग से चलते, तो उन्हें कोई तीन—चार जन्म लगते। लेकिन यह बहुत चेष्टा करके, बहुत त्वरा और तीव्रता से कुछ लोगों ने अथक मेहनत लेकर उन्हें जगाने की कोशिश की।

ठीक जैसे आप गहरी नींद में सोए हों और कोई जबरदस्ती आपको जगाने की कोशिश करे, तो आपके मन में बड़ा क्रोध आता है। और अगर कोई जबरदस्ती जगा ही दे, भला जगाने वाले की बड़ी शुभ आकांक्षा हो, भला यह हो कि मकान में आग लगी हो और आपको जगाना जरूरी हो, लेकिन फिर भी जब आप गहरी नींद में पड़े हों और कोई सुखद सपना देख रहे हों, तो जगाने वाला दुश्मन मालूम पड़ता है।

कृष्णमूर्ति को अधूरी नींद से जगा दिया गया है। और जिन लोगों ने जगाया है, उन्होंने बड़ी मेहनत की हैं। लेकिन कृष्णमूर्ति उनको अभी भी माफ नहीं कर पाए हैं। वह बात अटकी रह गई है। इसलिए चालीस साल हो गए, उनके सब गुरु मर चुके हैं, लेकिन गुरुओं की खिलाफत जारी है।

उनका अपना अनुभव यही है कि गुरुओं से बचना। इसलिए वे कहते हैं कि गुरुओं से बचना। क्योंकि उन पर जो हुआ है, वह जबरदस्ती हुआ है। ध्यान से बचना। क्योंकि कोई भी विधि कहीं कंडीशनिंग, संस्कार न बन जाए। क्योंकि उन पर तो सारी विधियों का प्रयोग किया गया है। इसलिए अब वे कहते हैं, सिर्फ समझो। लेकिन समझना भी एक विधि है। और वे कहते हैं, केवल होश को गहराओ। लेकिन होश को गहराना भी एक विधि है।

अध्यात्म के जगत में आप कुछ भी करो, विधि होगी ही। और गुरु को इनकार करो, तो भी गुरु होगा। क्योंकि अगर आप अपने ही तईं बिना गुरु और बिना विधि के उपलब्ध हो सकते हैं, तो आप हो ही गए होते।

कृष्णमूर्ति की अपनी अड़चन और तकलीफ है। और वह अड़चन और तकलीफ एक अंधेरी छाया की तरह उनको घेरे रही है। वह उनके वक्तव्य में छूटती नहीं है।

कोई पूछेगा कि अगर वे ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं, तो यह बात छूटती क्यों नहीं? यह भी थोड़ी—सी जटिल है बात।

अगर कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, तो वह यह क्यों नहीं देख सकता कि मेरा यह विरोध गुरुओं का, मेरी प्रतिक्रिया है! मेरे साथ गुरुओं ने जो किया है, उनको मैं अब तक माफ नहीं कर पा रहा हूं! ध्यान का और योग का मेरा विरोध मेरे ऊपर ध्यान और योग की जो प्रक्रियाएं लादी गई हैं, उनकी प्रतिक्रिया है! जो आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया, वह यह क्यों नहीं देख पाता?

और मैं मानता हूं कि कृष्णमूर्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। इसलिए और जटिल हो जाती है बात। अगर कोई कह दे कि वे ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए हैं, तो कोई अड़चन नहीं है। मैं मानता हूं वे ज्ञान को उपलब्ध हैं। फिर यह प्रतिक्रिया, यह जीवनभर का विरोध छूटता क्यों नहीं है? इसका .कारण आपसे कहूं। वह समझने जैसा है।

जब भी कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो ज्ञान के उपलब्ध होने का क्षण वही होता है, जहां मन समाप्त होता है, जहां मन छूट जाता है और आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद अगर उसे अपनी बात लोगों से कहनी हो, तो उसे उसी छूटे हुए मन का उपयोग करना पड़ता है। क्योंकि मन के बिना कोई संवाद, कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

आपसे मैं बोल रहा हूं तो मन का मुझे उपयोग करना पड़ेगा। जब मैं चुप बैठा हूं अपने में हूं, तब मुझे मन की कोई जरूरत नहीं है। अपने स्वभाव में मुझे मन की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जब आपसे मुझे बात करनी है, तो मुझे मन का उपयोग करना पड़ेगा।

तो कृष्णमूर्ति का जिस दिन मन छूटा, उस मन की जो आखिरी विरोध की दशा थी, उस मन का जो आखिरी भाव था—गुरुओं के, विधियों के खिलाफ—वह मन के साथ पड़ा है। और जब भी कृष्णमूर्ति मन का उपयोग करके आपसे बोलते हैं, तब वही मन जो चालीस साल पहले काम के बाहर हो गया, वही काम में लाना पड़ता है। और कोई मन उनके पास है नहीं। इसलिए स्वभावत: उसी मन का वे उपयोग करते हैं। इसलिए जो वे नहीं कहना चाहें, जो उन्हें नहीं कहना चाहिए वह भी कहा जाता है। वह उस मन के साथ है।

ऐसा समझिए कि आपके पास एक पुरानी मोटर है, जिसको आपने रख दिया है। अब आप उपयोग नहीं करते हैं। आप पैदल ही चलते हैं। लेकिन चालीस साल से मोटर आपके घर में रखी है। लेकिन कभी आपको तेज चलना पड़ता है और पैदल चलने से काम नहीं आता, आप अपनी पुरानी मोटर निकाल लेते हैं। और खटर—पटर करते मुहल्ले भर के लोगों की नींद हराम करते आप अपनी गाड़ी को लेकर चल पड़ते हैं।

करीब—करीब मन जिस दिन छूटता है, उसकी जो स्थिति रहती है, जब भी उसका उपयोग करना हो, उसी स्थिति में करना पड़ेगा। उसमें फिर कोई ग्रोथ नहीं होती। वह एक पुराने यंत्र की तरफ पड़ा रह जाता है भीतर। व्यक्ति की चेतना उससे अलग हो जाती है, यंत्र की तरह मन पड़ा रह जाता है। उसी मन का उपयोग करना पडता है। वह मन वही भाषा बोलता है, जिस भाषा में समाप्त हुआ था। वह वहीं रुका हुआ है।

कृष्णमूर्ति चालीस साल से दूसरी दुनिया में हैं। लेकिन मन वहीं पड़ा हुआ है, जहां उसे छोड़ा था। वह पुरानी गाड़ी, वह फोर्ड की पुरानी कार वहीं खड़ी है। जब भी उसका उपयोग करते हैं, वह फिर ताजा हो जाता है। उसके लिए वह घटना उतनी ही ताजी है।

गुरुओं ने जबरदस्ती उन्हें धक्के देकर जगा दिया है। वह मन अब भी प्रतिरोध से भरा हुआ है। वे ध्यान के विरोध में हैं, गुरुओं के विरोध में हैं। लेकिन अगर उनकी बात को ठीक से समझें, तो वह विरोध मन का ही है, ऊपरी ही है।

अगर सच में ही कोई व्यक्ति गुरुओं के विरोध में है, तो वह किसी को शिक्षा नहीं देगा। क्योंकि शिक्षा देने का मतलब ही क्या है!

तो कृष्णमूर्ति कितना ही कहें कि मैं कोई शिक्षा नहीं दे रहा हूं लेकिन शिक्षा नहीं दे रहे हैं, तो क्या कर रहे हैं! वे कितना ही कहें कि तुम्हें कोई बात देने की मेरी इच्छा नहीं है, लेकिन चेष्टा बड़ी कर रहे हैं कि कोई बात दे दी जाए। और अगर श्रोता नहीं समझ पाते, तो बड़े नाराज हो जाते हैं। समझाने की बड़ी अथक चेष्टा है। बड़े आग्रहपूर्ण हैं, कि समझो! और कहे चले जाते हैं कि मुझे कुछ समझाना नहीं है; मुझे कुछ बताना नहीं है, मुझे कोई मार्ग नहीं देना है। लेकिन क्या? क्या कर रहे हैं फिर?

हो सकता है कि आप सोचते हों कि यही मार्ग है, कोई मार्ग न देना; यही शिक्षा है, कोई विधि न देना, यही गुरुत्व है, गुरुओं से छुड़ा देना। लेकिन यह भी सब वही का वही है। कोई फर्क नहीं है।

तो कृष्णमूर्ति की एक जटिलता है, मन उनका कुछ विरोधों से भरा पड़ा है। वह पड़ा हुआ है। और जब भी वे उसका उपयोग करते हैं, वे सारे के सारे विरोध सजग हो जाते हैं।

लेकिन आप सावधान रहना। आप अपनी फिक्र करना। आप चौबीस घंटे ध्यान कर सकते हों, तो जरूर करना। और न कर सकते हों, तो कृष्णमूर्ति कहते हैं कि घंटेभर ध्यान करने से कोई फायदा नहीं है, इसलिए घंटेभर करना रोक मत देना।

सागर मिल जाए, तो अच्छा है, ध्यान का। न मिले, तो जो छोटा सरोवर है, उसका भी उपयोग तो करना ही। जब तक सागर न मिल जाए, तब तक सरोवर का ही उपयोग करना, तब तक एक बूंद भी पानी की हाथ में हो, तो वह भी जरूरी है। वह बूंद आपको जिलाए रखेगी और सागर का स्वाद देती रहेगी, और सागर की तरफ बढ़ने में साथ, सहयोग, शक्ति देती रहेगी।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, आत्म—विश्वास और लगन से मनुष्य को किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो सकती है। क्या अध्यात्म के संबंध में भी यही सच है?

अध्यात्म के संबंध में इससे ज्यादा गलत और कोई बात नहीं है। न तो आत्म—विश्वास वहां काम देगा, न लगन वहां काम देगी। इसे हम थोड़ा समझ लें।

आत्म—विश्वास का क्या अर्थ होता है? अपने पर भरोसा। अपने पर भरोसा अहंकार की ही छाया है। अध्यात्म में तो आसानी होगी, अगर आप सारा भरोसा ईश्वर पर छोड़ दें बजाय अपने पर रखने के। अध्यात्म में तो अच्छा होगा कि आप अपने को बिलकुल असहाय, हेल्पलेस समझें। वहां अकड़ काम न देगी कि मुझे अपने पर भरोसा है। वहा तैरने से आप नहीं पहुंच सकेंगे। वहा तो आप नदी की धार में अपने को छोड़ दें और कह दें कि तू ही जान।

जितनी आपके मन में यह अकड़ होगी कि मैं कर लूंगा, मैं कर के दिखा दूंगा, उतनी ही बाधा पड़ेगी अध्यात्म में। और जगह की बात मैं नहीं कहता। अगर धन पाना हो, तो आत्म—विश्वास बिलकुल जरूरी है। वहां अगर आप कहें कि परमात्मा पर छोड़ता हूं तो आप लुट जाएंगे।

संसार में कुछ भी पाना हो, तो अहंकार जरूरी है। ध्यान रखना, संसार अहंकार की यात्रा है। वहा आप भरोसा दूसरे पर मत करना; वहां तो अपने पर करना। वहा तो सभी तरह से अपने को केंद्र मानना, तो ही संसार में आप चल पाएंगे। वह उपद्रव की दुनिया है; वहां अहंकार बिलकुल जरूरी है।

ठीक संसार से विपरीत यात्रा है अध्यात्म की। जो संसार में सहयोगी है, वही अध्यात्म में विरोधी हो जाता है। और जो संसार में सीढ़ी है, वही अध्यात्म में मार्ग का पत्थर, अवरोध हो जाता है। ठीक उलटा हो जाता है। इसलिए संसार में जो लोग सफल होते हैं, वे अहंकारी लोग हैं। जो बिलकुल पागल हैं, जिनको पक्का भरोसा है कि दुनिया की कोई ताकत उनको रोक ही नहीं सकती। वे पागल की तरह लगे रहते हैं और सफल हो जाते हैं।

सफल होने में अड़चन क्या है? अड़चन यही है कि उनसे बड़े पागल उनकी प्रतिस्पर्धा में न हों। और कोई अड़चन नहीं है। अगर उनसे भी बड़े पागल और उनसे भी अहंकारी उनकी प्रतिस्पर्धा में हों, तो वे उनको मात कर देंगे। लेकिन मात करने का और जीतने का एक ही उपाय है वहां, आप कितने अहंकार के पागलपन से जुटते हैं!

अध्यात्म में आपका अहंकार जरा भी सहयोगी नहीं है, बाधा है। वहां तो वही सफल होगा, जो कितनी मात्रा में अहंकार को छोड्कर चलता है।

जीसस ने कहा है, धन्य हैं वे लोग, जो इस संसार में अंतिम खड़े हैं। क्योंकि प्रभु के राज्य में उनके प्रथम होने की संभावना है।

जो यहां अंतिम है, वह प्रभु के राज्य में प्रथम हो सकता है। अंतिम का क्या अर्थ है? अंतिम का अर्थ है, जिसे अहंकार का कोई भी रस नहीं है। प्रथम होने की कोई इच्छा नहीं है।

इसलिए हमारी सारी शिक्षा गैर—आध्यात्मिक है। क्योंकि वह प्रथम होना सिखाती है। हमारे सारे संस्कार अहंकार को जन्माने वाले हैं। हमारी सारी दौड़, प्रत्येक को मजबूत अहंकार चाहिए, इस पर खड़ी है। इसलिए फिर हम अध्यात्म की तरफ जाने में बड़ी अड़चन पाते हैं। क्योंकि वहां यही अवरोध है। वहां तो एक ही चीज सहयोगी है कि आप बिलकुल मिट जाएं।

आत्म—विश्वास का तो सवाल ही नहीं है। वहां आपको यह खयाल भी न रहे कि मैं हूं। मेरा होना भी न रहे। मैं एक खाली शून्य हो जाऊं। वहां मैं ऐसे प्रवेश करूं, जैसे मैं ना—कुछ हूं—असहाय, निरालंब, निराधार। न कुछ कर सकता हूं, न कुछ हो सकता है।

जिस घड़ी कोई व्यक्ति इतना निराधार हो जाता है, इतना निरालंब हो जाता है, इतना असहाय हो जाता है कि लगता है, मैं शून्य जैसा हूं उसी क्षण परमात्मा उसके भीतर घटित हो जाता है। क्योंकि वह खाली हो गई जगह। अहंकार से भरा था भवन, अब खाली हो गया। अब वह बड़ा मेहमान उतर सकता है।

अभी तो आप अपने से इतने भरे हैं कि आपके भीतर परमात्मा को प्रवेश की कोई रंध्र मात्र भी जगह नहीं है। तो वहा कोई आत्म—विश्वास काम नहीं देगा।

इसका मतलब मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आत्म—अविश्वास काम देगा। आप ध्यान रखना, आत्म—विश्वास काम नहीं देगा, इसका यह मतलब नहीं है कि आप अपने पर अविश्वास कर लें, तो काम देगा। नहीं, अविश्वास भी अहंकार है! आप तो .केंद्र रहते ही हैं।

कोई कहता है, मुझे अपने पर विश्वास है। कोई कहता है, मुझे अपने पर विश्वास नहीं है। लेकिन अपना तो दोनों में मौजूद रहता है। एक कहता है कि मैं कमजोर हूं एक कहता है कि मैं ताकतवर हूं। लेकिन दोनों कहते हैं, मैं हूं। जो कमजोर है, वह ताकतवर हो सकता है कल। जो ताकतवर है, वह कल कमजोर हो सकता है। उनमें कोई गुणात्मक फर्क नहीं है। वे एक ही चीज के दो रूप हैं। असहाय का अर्थ है कि मैं हूं ही नहीं। कमजोर भी नहीं हूं। ताकतवर होने का तो सवाल ही नहीं है। मैं कमजोर भी नहीं। क्योंकि कमजोरी भी ताकत का एक रूप है। मैं हूं ही नहीं। इस भांति जो अपने को मिटा लेता है, वह अध्यात्म में गति करता है।

और वहा लगन का सवाल नहीं है। यहां संसार में लगन का सवाल है। यहां तो बिलकुल पागल लगन चाहिए। यहां तो बिलकुल विक्षिप्त की तरह दौड़ने की जिद्द चाहिए। यहां तो ऐसा दाव लगाने की बात चाहिए कि चाहे जिंदगी रहे कि जाए, मगर यह चीज मैं पाकर रहूंगा। जब कोई संसार में इस भांति दौड़ता है, तभी कुछ थोड़ी छीना—झपटी कर पाता है।

अध्यात्म में लगन का कोई सवाल नहीं है। अध्यात्म में तो गति की जरूरत नहीं है, इसलिए लगन की जरूरत नहीं है।

इसे हम ऐसा समझें कि संसार में कुछ पाना हो, तो दौड़ना पड़ता है। और अध्यात्म में कुछ पाना हो, तो खड़े हो जाना पड़ता है। संसार में कुछ पाना हो, तो छीनना—झपटना पड़ता है। अध्यात्म में कुछ पाना हो, तो मुट्ठी खोल देनी पड़ती है, कुछ झपटना नहीं, कुछ पकड़ना नहीं। संसार में कुछ पाना हो, तो दूसरों से झगड़ना पड़ता है। अध्यात्म में कुछ पाना हो, तो वहां कोई दूसरा है ही नहीं, जिससे झगड़ने का सवाल है।

संसार में कुछ पाना हो, तो यहां लगन चाहिए। लगन का मतलब यह है कि बहुत तरफ ध्यान न जाए। जैसे हम तागे में घोड़े को जोत देते हैं, तो उसकी आंखों पर दोनों तरफ चमड़े की पट्टिया बाध देते हैं, ताकि उसको चारों तरफ दिखाई न पड़े, सिर्फ सामने दिखाई पड़े। क्योंकि चारों तरफ दिखाई पड़ेगा, तो घोड़े को चलने में बाधा आएगी। इधर घास दिख जाएगा, तो इधर जाना चाहेगा। उधर पास में कोई जवान घोड़ी दिख जाएगी, तो उस पर आकर्षित हो जाएगा। कहीं कोई सामने ताकतवर घोड़ा हिनहिना देगा, तो लड़ने को तैयार हो जाएगा। पच्चीस चीजें खड़ी हो जाएंगी। ध्यान बंटेगा।

इसलिए घोड़े को हम करीब—करीब अंधा कर देते हैं। निन्यानबे प्रतिशत अंधा कर देते हैं। सिर्फ एक तरफ उसकी आंख खुली रहती है, सामने की तरफ। बस, उसको उतना ही रास्ता दिखाई पड़ता है। लगन का इतना ही मतलब होता है, घोड़े की तरह हो जाना। तांगे में जुते हैं! कुछ दिखाई नहीं पडता। बस, एक ही चीज दिखाई पड़ती है। उसको हम लगन कहते हैं। लगन का मतलब है कि अब कहीं चित्त नहीं जाता, बस एक चीज पर जाता है। इसलिए सब ताकत वहीं लग जाती है।

राजनीतिज्ञ है, वह लगन का आदमी होता है। उसे सिर्फ दिल्ली दिखाई पड़ती है, कुछ नहीं दिखाई पड़ता। उसे पार्लियामेंट का भवन भर दिखाई पड़ता है और उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। बस, उसे दिल्ली...। दिल्ली उसके मन में रहती है। वह तांगे में जुते घोड़े की तरह है। उसको संसार में कुछ दिखाई नहीं पड़ता। बस, दिल्ली! और वह जैसे—जैसे करीब दिल्ली के पहुंचने लगता है, वैसे—वैसे उसकी आंखें और संकीर्ण होने लगती हैं। फिर कैबिनेट दिखाई पड़ता है उसको, मंत्रिमंडल दिखाई पड़ता है। मंत्रिमंडल में पहुंच जाए, तो प्रधानमंत्री की कुर्सी भर दिखाई पड़ती है, फिर कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

यह क्रमश: अंधे हो जाने की तरकीब है। ऐसे वह क्रमश: अंधा होता जाता है। लेकिन जितना वह अंधा होता जाता है, उतनी ही शक्ति संकीर्ण दिशा में प्रवाहित होने लगती है। वह उतना ही सफल हो जाता है। दिल्ली की तरफ जाने के लिए आंख पर अंधापन होना जरूरी है, तो ही सफलता मिल सकती है।

एक आदमी धन की खोज में है। वह सब छोड़ देता है फिक्र। न उसे प्रेम से मतलब, न पत्नी से, न बच्चे से, न धर्म से। उसे किसी चीज से मतलब नहीं है, उसे धन से मतलब है। उसे हर चीज में धन दिखाई पड़ता है। उठते, सोते, जागते उसके सारे सपने धन से भरे होते हैं, तब वह सफल हो पाता है। वह लगन का आदमी है।

पागल आदमियों को हम लगन के आदमी कहते हैं। एक चीज की तरफ जो पागल हैं, वे कुछ उपलब्ध कर लेते हैं। जो बहुत तरफ भागेंगे, निश्चित ही वे कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाएंगे। संसार में जो बहुत तरफ देखता है, वह कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाता है। इसके पहले कि वह तय करे कि क्या मैं पाऊं, जिंदगी हाथ से निकल गई होती है।

लेकिन यही बात अध्यात्म के संबंध में नहीं है। अध्यात्म कोई लगन नहीं है। अध्यात्म तो सब तरह की लगन से छुटकारा है।

इसे हम ऐसा समझें, तीन तरह के आदमी हैं। एक आदमी, जो सब तरफ देखता है। इधर भी चाहता है दौडूं? उधर भी चाहता है दौडूं। सोचता है, डाक्टर भी हो जाऊं, वकील भी हो जाऊं, लेखक भी हो जाऊं, राजनीतिज्ञ भी हो जाऊं। जो भी कुछ हो सकता हूं सब हो जाऊं। इस सब होने की दौड़ में वह कुछ भी नहीं हो पाता। या जो भी होता है, वह सब कचरा हो जाता है। वह एक खिचड़ी हो जाता है। उसके पास कोई व्यक्तित्व नहीं निखरता। वह एक कबाड़खाना हो जाता है, जिसमें सब तरह की चीजें हैं।

दूसरा आदमी है, जो कहता है, बस मुझे एक चीज होना है। सब दाव पर लगाकर एक तरफ चल पड़ता है। एकाग्रता से लग जाता है। वह लगन का आदमी है। वह पागल आदमी है। वह एक चीज को पा लेगा।

एक तीसरी तरह का आदमी है, जो न एक को पाना चाहता है, न सब को पाना चाहता है, जो पाना ही नहीं चाहता। यह तीसरा आदमी आध्यात्मिक है, जो कहता है, सब पाना फिजूल है। एक का पाना भी फिजूल है, सबका पाना भी फिजूल है। बहुत—बहुत जिंदगियों में बहुत चीजें खोजकर देख लीं, कुछ भी न पाया। अब खोजेंगे नहीं। अब बिना खोजे देखेंगे। अब बिना खोज में रुक जाएंगे। अब नहीं खोजेंगे। अब दौडेंगे नहीं। अब कहीं भी न जाएंगे। अब न तो सब तरफ देखेंगे, न एक तरफ देखेंगे। अब आंख को बंद कर लेंगे और वहा देखेंगे, जो भीतर है, जो मैं हूं। अब किसी तरफ न देखेंगे। अब सब दिशाएं व्यर्थ हो गईं।

इस घड़ी में, जब कोई चाह नहीं रहती, कोई लगन नहीं रहती, कुछ पाने का लक्ष्य नहीं रहता, कुछ विषय नहीं रह जाता पाने के लिए, कोई अंत नहीं दिखता बाहर, बाहर कोई मंजिल नहीं रह जाती, जब व्यक्ति की चेतना सब भांति खडी हो जाती है, उसकी सब प्रवाह—यात्रा बंद हो जाती है, तब एक नया द्वार खुलता है, जो भीतर है। जब बाहर

जाना बंद हो जाता है चैतन्य का, तो चैतन्य भीतर जाता है। और जब सब तरफ दौड़ बंद हो जाती है, तो अपनी तरफ आता है, अपने में उतरता है, अपने में घिर होता है।

इसलिए अध्यात्म कोई लगन नहीं है। अध्यात्म कोई सफलता, कोई अहंकार की यात्रा, कोई ईगो ट्रिप नहीं है। इसलिए संसार में जो सूत्र काम देते हैं, उनका उपयोग आप अध्यात्म में मत कर लेना। बहुत लोग उनका उपयोग कर रहे हैं। करते हैं, इसलिए अध्यात्म में असफल होते हैं।

जो संसार में सफलता का सूत्र है, वही अध्यात्म में असफलता का सूत्र है। और जो अध्यात्म में सफलता का सूत्र है, वही संसार में असफलता का सूत्र है। दोनों तरह की भूल करने वाले लोग हैं। और ऐसा नहीं कि थोड़े—बहुत लोग हैं। बहुत बड़ी संख्या में लोग हैं, जो दोनों तरह की भूल करते हैं।

जैसे, इस मुल्क में हमने अध्यात्म में सफलता पाने के कुछ सूत्र खोज निकाले थे। हमने उनका ही उपयोग संसार में करना चाहा। इसलिए पूरब संसार की दुनिया में असफल हो गया। गरीब, दीन, दरिद्र, भुखमरा, भीख मांगता हो गया। हमने, जो सूत्र अध्यात्म में सफल हुए थे, उनका उपयोग संसार में करने की कोशिश की। वह मूढ़ता हो गई। इसलिए हम आज जमीन पर भिखमंगे की तरह खड़े हैं।

पश्चिम में संसार में जिन चीजों से सफलता मिल जाती है, उन्हीं की कोशिश अध्यात्म में भी करनी शुरू की है। उनसे कोई सफलता नहीं मिल सकती। पश्चिम अध्यात्म में असफल हो गया है।

इसलिए एक बड़ी मजेदार घटना घट रही है।

पूरब का मन पश्चिम की तरफ हाथ फैलाए खड़ा है—धन दो, दवा दो, भोजन दो, कपडा दो। और पश्चिम के लोग पूरब की तरफ हाथ फैलाए खड़े हैं—आत्मा दो, ध्यान दो, मंत्र दो, तंत्र दो। यह बड़े मजे की बात है कि दोनों भिखमंगे की हालत में हैं। और इसलिए हमें बड़ी कठिनाई होती है।

अगर पश्चिम से युवक—युवतियां भारत की तरफ आते हैं, खोजते हैं, तो हमें बड़ी हैरानी होती है कि तुम यहां किस लिए आ रहे हो! हम तो यहां भूखे मर रहे हैं। हम तो तुम्हारी तरफ आशा लगाए बैठे हैं। तुम यहां किस लिए आ रहे हो? तुम्हारा दिमाग खराब है?

और जब हमारे मुल्क के युवक—युवतियां पश्चिम की तरफ जाते हैं, टेक्नालाजी सीखने, उनका विज्ञान सीखने, और अभिभूत होते हैं, और समर्पित होते हैं उन दिशाओं में, तो पश्चिम में भी चिंता

होती है कि हम तो तुम्हारी तरफ खोजने आ रहे हैं कि कुछ तुम्हारे पास होगा। तुम यहां चले आ रहे हो! क्या, मामला क्या है?

मामला एक बुनियादी भूल का है। जो अध्यात्म में सफलता की कुंजी है, वही कुंजी संसार के ताले को नहीं खोलती। जो संसार के ताले को खोल देती है, वही कुंजी अध्यात्म के ताले को नहीं खोलती है। और अब तक कोई मास्टर—की नहीं खोजी जा सकी है—और खोजी भी नहीं जा सकती—जो दोनों तालों को एक साथ खोल देती हो।

अगर दोनों ताले खोलने हों एक साथ, तो दो कुंजियों की जरूरत पड़ेगी। उनकी प्रक्रिया अलग है। संसार में अहंकार आधार है, महत्वाकांक्षा, संघर्ष। अध्यात्म में निरअहंकारिता, महत्वाकांक्षा से शून्य हो जाना, एक गहरी विनम्रता, कोई दौड़ नहीं, कोई पागलपन नहीं, कोई यात्रा नहीं। इसे खयाल रखेंगे।

तो जब आप संसार से घबड़ाकर अध्यात्म की तरफ मुड़ने लगें, तो संसार के ढंग अध्यात्म में मत ले जाना। उनको भी संसार के साथ ही छोड़ देना। वे ढंग वहा काम नहीं आएंगे। उस यात्रा में उनकी कोई भी जरूरत नहीं है। उन्हें आप छोड देना। वे बोझ बन जाएंगे।

अध्यात्म की शिक्षा में आपको संसार में सीखा हुआ कुछ भी काम नहीं आएगा। सिर्फ एक बात भर कि संसार व्यर्थ है, अगर इतना आपने सीख लिया हो, तो आप पीछे की तरफ मुड़ सकते हैं। लेकिन इस व्यर्थता में संसार के सारे अनुभव, सारे साधन, सारा ज्ञान, सब व्यर्थ हो जाता है।

संसार का एक ही उपयोग है अध्यात्म के लिए कि यह अनुभव में आ जाए कि वह पूर्णतया व्यर्थ है, तो आप भीतर की दुनिया में प्रवेश कर सकते हैं।

एक आखिरी सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि यदि प्रकृति में घटनाएं होती हैं और पुरुष में भाव, तो क्या जब कोई सिद्धि को प्राप्त हो जाता है और अनुभव कर लेता है अपनी पृथकता को, तो उसके शरीर में दुख और मन में पीड़ा बंद हो जाती है?

इसे थोड़ा समझना पड़े।

पहली तो बात यह समझनी पड़े कि दुःख और कष्ट का फर्क। अगर आपके पैर में कोई कांटा चुभाए, तो दो घटनाएं घटती हैं। एक घटना है, कष्ट। कष्ट का अर्थ है कि आप अनुभव करते हैं कि पैर में पीड़ा हो रही है। मैं जान रहा हूं कि पैर में पीड़ा हो रही है। आप जानने वाले होते हैं। पीड़ा पैर में घटित होती है, आप देखने वाले होते हैं। आप साक्षी होते हैं।

इसका यह मतलब नहीं कि आप साक्षी होंगे, तो कोई आपके पैर में काटा चुभाए तो आपको पीड़ा नहीं होगी। इस भांति में आप मत पड़ना। पीड़ा होगी। कष्ट होगा। क्योंकि काटे का चुभना एक घटना है। लेकिन दुख नहीं होगा। इस फर्क को खयाल में ले लें। दुख तब होता है, जब मैं कष्ट के साथ अपने को एक कर लेता हूं। जब मैं कहता हूं कि मुझे कोई कांटा चुभा रहा है, तब दुख होता है। पैर को कोई कांटा चुभा रहा है, मैं देख रहा हूं, तब कष्ट होता है।

इसलिए जीसस को भी जब सूली लगी, तो उनको कष्ट हुआ है। दुख नहीं हुआ।

कष्ट तो होगा। कष्ट तो घटना है। कष्ट का तो मतलब ही इतना है कि.। इसका तो मतलब हुआ, कोई मेरा पैर काटे, तो मुझे पता नहीं चलेगा कि मेरा पैर किसी ने काटा?

कोई मेरा पैर काटेगा, तो मुझे पता चलेगा कि पैर किसी ने मेरा काटा। वह एक घटना है। और पैर के काटने में जो पैर के तंतुओं में तनाव और परेशानी होगी, वह मुझे अनुभव में आएगी कि परेशानी हो रही है। अगर मैं ऐसा समझ लूं कि मैं कट रहा हूं पैर के कटने में, तो दुख होगा। दुख है कष्ट के साथ तादात्म्य, कष्ट के साथ एक हो जाना।

इसलिए ज्ञानी को दुख नहीं होगा, कष्ट तो होगा। और एक बात मजे की है कि ज्ञानी को आपसे ज्यादा कष्ट होगा। आप तो दुख में इतने लीन हो जाते हैं कि कष्ट का आपको पूरा पता ही नहीं चलता। ज्ञानी को तो कोई दुख होगा नहीं, इसलिए कोई लीनता भी नहीं होगी। वह तो सजग होकर देखता रहेगा। उसकी संवेदनशीलता बहुत गहन होगी, आपसे ज्यादा होगी। क्योंकि उसका तो मन बिलकुल दर्पण है! सब साफ—साफ दिखाई पड़ेगा।

आपको तो कष्ट दिखाई ही नहीं पड़ पाता, उसके पहले ही आप दुख में डूब जाते हैं। तो आपका तो पूरा चैतन्य धुएं से भर जाता है दुख के। इसलिए आपको कष्ट का ठीक—ठीक बोध नहीं हो पाता। आप तो रोना— धोना—चिल्लाना शुरू कर देते हैं। उसमें आप अपने को भुला लेते हैं लेकिन ज्ञानी न तो रो रहा है, न धो रहा है, न चिल्ला रहा है, न कोई धुआ है उसके भीतर। उसका मन तो पूरा, जो हो रहा है, उसे जान रहा है। वह कष्ट को उसकी पूर्णता में जानेगा।

आप कष्ट को पूर्णता में नहीं जान पाते हैं, क्योंकि दुख की छाया कष्ट को ढांक लेती है। शायद हमने इसीलिए दुख में डूब जाना आसान समझा है। वह कष्ट से बचने का एक उपाय है।

समझें, आपके घर में कोई मर गया; पत्नी मर गई। आप रोएं मत, साक्षी— भाव से बैठे रहें, तो आपको कष्ट का पूरा अनुभव होगा। वह आपके रोएं—रोएं में अनुभव होगा। आपके रग—रग में अनुभव होगा। आपके एक—एक कोष्ठ में वह पीड़ा अनुभव होगी। क्योंकि पत्नी का मरना सिर्फ पत्नी का मरना नहीं है, आपका कुछ अनिवार्य हिस्सा भी साथ में मर गया।

पत्नी और आप अगर चालीस साल साथ रहे थे, तो बहुत दूर तक एक हो गए थे। आपके दोनों के शरीर ने बहुत तरह की एकता जानी थी। वह एकता एक—दूसरे के शरीर में व्याप्त हो गई थी। जब पत्नी मर रही है, तो सिर्फ पत्नी का शरीर नहीं मर रहा है, आपके शरीर में भी पत्नी के शरीर का जो अनुदान था, वह बिखरेगा, और विनष्ट होगा। वह जाएगा। बड़ा कष्ट होगा। रोएं—रोएं, रग—रग में पीड़ा होगी।

लेकिन आप छाती पीटकर रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, और कह रहे हैं कि मेरी पत्नी मर गई। और लोग आपको समझा रहे हैं और आपको समझ में नहीं आ रहा है, इस सब में आप कष्ट से बच रहे हैं। यह तरकीब है। इस रोने— धोने में, आपको जो कष्ट अनुभव होता, जो उसकी तीव्रता छिद जाती छाती में भाले की तरह, वह नहीं छिदेगी। आप रो—धोकर वक्त गुजार देंगे, तब तक कष्ट विसर्जित हो जाएगा।

इसलिए बड़े होशियार लोग हैं। जब किसी के घर कोई मर जाता है, तो बाकी लोग आ—आकर उनको बार—बार रुलाते हैं। वह बड़ा कारगर है। वह करना चाहिए। फिर कोई बैठने आ गया। फिर आप रोने लगे। और दो—तीन दिन के बाद तो हालत ऐसी हो जाती है कि आपको अब रोना भी नहीं आ रहा है और कोई बैठने आ गया, तो आप रो रहे हैं!

महीने, पंद्रह दिन में लोग आपको इतना थका देते हैं रुला—रुलाकर, कि अब आपका मन होने लगता है कि अब मरने से इतना कष्ट नहीं हो रहा है किसी के, जितना तुम्हारे आने से हो रहा है। अब तुम बंद करो। जब ऐसी घड़ी आ जाती है, तभी लोग आना बंद करते हैं।

इस बीच महीनेभर में जो कष्ट की महान घटना घटी थी, वह आपको दिखाई नहीं पड़ती। आप इस रोने की मूर्च्छा में सब विसर्जित कर जाते हैं।

अगर आप साक्षी— भाव से बैठें, तो आपको लगेगा, पत्नी ही नहीं मर रही है, आप भी मर रहे हैं। जब भी कोई प्रिय मरता है, तो आप भी मरते हैं। क्योंकि आपका शरीर उससे न मालूम कितने—कितने रूपों में जुड़ गया था। आप एक हो गए थे। आपका कुछ टूट रहा है अंग, हाथ—पैर कट रहे हैं आपके। वह पूरा कष्ट आपको अनुभव होगा।

तब आपको बड़ी चीजें साफ होंगी। तब आपको यह भी पता चलेगा कि पत्नी के मरने से कष्ट नहीं हो रहा है। पत्नी के साथ जो मोह था, उस मोह के टूटने से कष्ट हो रहा है। यह सवाल पत्नी के मरने का नहीं है। चूंकि मैं भी मर रहा हूं! उसके साथ जुड़ा था, अब मेरा एक हिस्सा टूट जाएगा सदा के लिए और खाली हो जाएगा, जिसको शायद भरना संभव नहीं होगा। उससे दुख, उससे कष्ट हो रहा है।

लेकिन कष्ट से बचने के लिए हमने बेहोश होने की बहुत—सी तरकीबें निकाली हैं। उसमें सब से गहरी तरकीब यह है कि हम आच्छादित हो जाते हैं कष्ट से, तादात्म्य कर लेते हैं और विचलित होने लगते हैं भीतर। उस विचलित अवस्था में बाहर का कष्ट गुजर जाता है और हम उसे सह लेते हैं।

ज्ञानी को कष्ट बिलकुल साफ होगा। क्योंकि वह किसी तरह के दुख में नहीं पड़ेगा। उसके मन पर कोई भी कष्ट का बादल घेरकर उसे डुबाका नहीं। उसे कष्ट बिलकुल साफ होगा।

इसे हम ऐसा समझें कि आप बहुत विचारों से भरे बैठे हैं। रास्ते पर किसी के मकान में आग लग जाए और शोरगुल मच जाए, तो भी आपको पता नहीं चलता। लेकिन आप ध्यान में बैठे हैं बिलकुल शांत। एक सुई भी गिर जाए, तो आपको सुनाई पड़ेगी। एक सुई भी गिर जाए, तो आपको सुनाई पड़ेगी।

जैसे ही कोई व्यक्ति गहरे ध्यान को उपलब्ध होता है, तो जरा—सी चीज भी शरीर में हो जाए, तो उसे पता चलेगी। कष्ट उसे होगा। लेकिन दुख नहीं होगा। दुख के होने का अर्थ है कि वह कष्ट से अपने को जोड़े तभी होता है। जब आप कष्ट से अपने को न जोडे, तो दुख नहीं होता।

इसलिए ध्यान रखें, अध्यात्म की यात्रा पर चलने वाले कुछ

लोग इससे उलटा काम करने लगते हैं। वे कोशिश करते हैं कि उनको कष्ट भी न हो। कष्ट न हो, तो उसकी तरकीब दूसरी है। उसकी तरकीब है, शरीर को धीरे— धीरे जड़ बनाना। चैतन्य को सजग नहीं करना, साक्षी को नहीं जगाना, शरीर को जड़ बनाना।

अगर आप काशी जाते हैं, तो वहां आपको कीटों पर सोए हुए लोग मिल जाएंगे। आप बड़े चकित होंगे। आपको लगेगा, बेचारे कितने ज्ञान को उपलब्ध लोग! कैसा परम ज्ञान उपलब्ध हो गया कि कीटों पर पड़े हैं और कोई दुख नहीं हो रहा है!

कोई ज्ञान को उपलब्ध होकर काटो पर पड़ने की जरूरत नहीं है। लेकिन कीटों पर पड़ने का अभ्यास कर लिया जाता है। अभ्यास कर लेने के बाद कोई कष्ट नहीं होता है, क्योंकि शरीर जड़ हो जाता है। मार आप एक ही जगह रोज सुई चुभाते रहें, तो आज जितनी तकलीफ होगी, कल कम होगी, परसों और कम होगी। आप रोज अभ्यास करते रहें। एक दो महीने बाद आप सुई चुभाके और बिलकुल पता नहीं चलेगी। तो आप कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो गए, सिर्फ दो महीने में आपने शरीर को जड़ कर लिया। उस जड़ता के कारण अब आपको कष्ट भी नहीं होता।

ध्यान रहे, दुख न होना तो एक क्रांतिकारी घटना है। कष्ट न होना, शरीर को मुर्दा बना लेने का प्रयोग है।

तो आप चाहें तो शरीर को मुर्दा बना ले सकते हैं। बहुत से उपाय हैं, जिनसे शरीर जड़ हो जाता है। उसकी सेसिटिविटी, संवेदना कम हो जाती है। संवेदना कम हो जाती है, तो कष्ट नहीं होता। कष्ट नहीं होता, तो दुख आपको होने का कोई कारण नहीं रहा। क्योंकि दुख होने के लिए कष्ट का होना जरूरी था। लेकिन आपने कष्ट का दरवाजा बंद कर दिया, तो अब दुख होने का कोई कारण नहीं रहा। लेकिन आप जरा भी नहीं बदले हैं। आप वही के वही हैं। आपकी चेतना नहीं बदली है। अगर आपको कष्ट पहुंचाया जाए नए ढंग से, तो आपको दुख होगा। क्योंकि भीतर कोई साक्षी पैदा नहीं हो गया है।

यह धोखा है अध्यात्म का। शरीर को जड़ बना लेना, धोखा है अध्यात्म का। चैतन्य को और चैतन्य कर लेना असली अध्यात्म है। लेकिन जितना आप चैतन्य को और चैतन्य करेंगे, और साक्षी बनेंगे, उससे आपका कष्ट से छुटकारा नहीं हो जाएगा। सच तो यह है, आपको बहुत—से नए कष्ट पता चलने लगेंगे, जो आपको पहले कभी पता नहीं चले थे। क्योंकि पहले आप जड़ थे। अब आप और संवेदनशील हो रहे हैं। आपको और कष्टों का पता चलेगा।

लेकिन कष्ट आपसे दूर होंगे। आप कष्टों से दूर होंगे। दोनों के बीच एक फासला, एक डिस्टेंस होगा। और आप देखने वाले होंगे। आप भोक्ता नहीं होंगे। बस, साक्षी जग जाए और भोक्ता खो जाए।

तो आप यह मत सोचना कि जब कृष्ण के पैर में किसी ने तीर मार दिया, तो उन्हें कोई कष्ट न हुआ होगा। आपसे बहुत ज्यादा हुआ होगा। क्योंकि कृष्ण जैसा संवेदनशील आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। कृष्ण कोई जड़ व्यक्ति नहीं थे, नहीं तो उनके होंठों से ऐसी बांसुरी और ऐसे गीत पैदा नहीं हो सकते थे। बहुत कोमल, बहुत संवेदनशील, बहुत रसपूर्ण थे।

तो जिसके होंठों से बांसुरी पर ऐसे गीत पैदा हुए और जिसके शरीर की कोमलता और सौंदर्य ने न मालूम कितने लोगों को आकर्षित किया और प्रेम में गिरा लिया, आप यह मत सोचना कि जब उसके पैर में तीर चुभा होगा, तो उसे कष्ट नहीं हुआ होगा। कष्ट तो पूरा होगा। आपसे बहुत ज्यादा होगा। लेकिन दुख बिलकुल नहीं होगा। वह देखता रहेगा, जैसे किसी और के पैर में तीर चुभा हो, ऐसा ही वह इसे भी देखता रहेगा। भीतर कुछ भी हलचल न होगी। भीतर जो

थिर था, वह घिर ही रहेगा। भीतर जो चेतना जैसी थी, वैसी ही रहेगी। इस तीर से शरीर में फर्क पड़ेगा। शरीर खबर देगा, मन के तंतु कंपेंगे। मन तक खबर पहुंचेगी। लेकिन चेतना अलिप्त, असंग, निर्दोष, कुंवारी ही बनी रहेगी।

यह हमारे खयाल में न होने से बड़ा उपद्रव हुआ है। इसलिए हम जड़ हो गए लोगों को आध्यात्मिक समझते हैं। और जड़ता पैदा कर लेने में न तो कोई कुशलता है, न कोई बड़े गुण की बात है। इसलिए अक्सर बहुत बुद्धिहीन लोग भी आध्यात्मिक होने की तरह पूजे जाते हैं। वे कोई भी जड़ता का काम कर लें।

एक गांव से मैं गुजरा। एक आदमी दस वर्षों से खड़े हुए हैं। और कोई गुण नहीं है, बस खड़े हैं। वे खडेश्री बाबा हो गए हैं! बस लोग उनके चरणों पर सिर रख रहे हैं। यह बड़ी भारी बात हो गई कि वे दस साल से खड़े हैं। रात भी वे दोनों हाथों का लकड़ियों से सहारा लेकर सो जाते हैं। उनके पैर हाथीपांव हो गए हैं। सारा खून शरीर का पैरों में उतर गया है। लोग समझ रहे हैं कि कोई अध्यात्म घट गया है।

मैंने उनसे कहा कि खडेश्री बाबा को एक दफा बैठेश्री बाबा बनाकर भी तो देखो! अब वे बैठ भी नहीं सकते। सारा पैर जड़ हो गया है। अब तुम बिठाना भी चाहो, तो बिठाने का कोई उपाय नहीं है। यह शरीर की विकृति और कुरूपता है। इसको अध्यात्म से क्या लेना—देना है! और इस आदमी में और कुछ भी नहीं है।

मैंने उनसे पूछा, और कुछ? खड़े होने की बात मान ली। और कुछ क्या है? बोले कि यही क्या कम है! यह बड़ी भारी घटना है। दस साल से कोई आदमी खड़ा है!

तो पैरों की जड़ता का नाम अध्यात्म नहीं है। पैर जड़ हो सकते हैं, किए जा सकते हैं। इसमें क्या अड़चन है! न तो यह कोई गुण है, और न कोई सम्मान के योग्य। लेकिन हम इस तरह की बातों को सम्मान देते हैं, तो जड़ता बढ़ती है। और जड़ता को हम पूजते हैं। संवेदनशीलता पूजनीय है। लेकिन अकेली संवेदनशीलता पूजनीय नहीं है। अगर संवेदनशीलता के साथ साक्षी— भाव भी जुड़ जाए, तो वही क्रांतिकारी घटना है, जिससे व्यक्ति जीवन के परम तत्व को जानने में समर्थ हो पाता है।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न करता है, न लिपायमान होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा गुणातीत होने के कारण देह के गुणों से लिपायमान नहीं होता है।

जो मैं कह रहा था, यह सूत्र उसी की तरफ इशारा है।

हे अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होता हुआ भी वास्तव में न करता है, न लिपायमान होता है।

यही अत्यधिक कठिन बात समझने की है।

हम देखते हैं आकाश, सबको घेरे हुए है। सब कुछ आकाश में होता है, लेकिन फिर भी आकाश को कुछ भी नहीं होता। एक गंदगी का ढेर लगा है। गंदगी के ढेर को भी आकाश घेरे हुए है। गंदगी का ढेर भी आकाश में ही लगा हुआ है, ठहरा हुआ है, लेकिन आकाश गंदगी के ढेर से गंदा नहीं होता। गंदगी का ढेर हट जाता है, आकाश जैसा था, वैसा ही बना रहता है।

फिर एक फूल खिलता है। चारों तरफ सुगंध फैल जाती है। फूल के इस सौंदर्य को भी आकाश घेरे हुए है। लेकिन आकाश इस फूल के सौंदर्य से भी अप्रभावित रहता है। वह इसके कारण सुंदर नहीं हो जाता। फूल आज है। कल नहीं होगा। आकाश जैसा था, वैसा ही होगा।

आकाश के इस गुण को बहुत गहरे में समझ लेना जरूरी है, क्योंकि यही आत्मा का गुण भी है।

आकाश सदा ही कुंवारा है। उसे कोई भी चीज छू नहीं पाती। ऐसा समझें, हम एक पत्थर पर लकीर खींचते हैं। पत्थर पर खींची लकीर हजारों साल तक बनी रहेगी। पत्थर पकड़ लेता है लकीर को। पत्थर लकीर के साथ तत्सम हो जाता है, तादात्म्य कर लेता है। पत्थर लकीर बन जाता है।

फिर हम लकीर खींचें पानी पर। खिंचती जरूर है, लेकिन खिंच नहीं पाती। हम खींच भी नहीं पाते और लकीर मिट जाती है। हम खींचकर पूरा कर पाते हैं, लौटकर देखते हैं, लकीर नदारद है। पानी पर लकीर खिंचती तो है, लेकिन पानी लकीर को पकड़ता नहीं। खिंचते ही मिट जाती है। खींचते हैं, इसलिए खिंच जाती है। लेकिन टिक नहीं पाती, क्योंकि पानी उसे पकड़ता नहीं। पत्थर पकड़ लेता है, हजारों साल तक टिक जाती है। पानी में क्षणभर नहीं टिकती, बनती जरूर है।

आकाश में लकीर खींचें, वहां बनती भी नहीं। पानी पकड़ता नहीं, लेकिन बनने देता है। पत्थर बनने भी देता है, पकड़ भी लेता है। आकाश न बनने देता है और न पकड़ता है। आकाश में लकीर खींचें, कुछ भी खिंचता नहीं। इतने पक्षी उड़ते हैं, लेकिन आकाश में कोई पद—चिह्न नहीं छूट जाते। इतना सृजन, इतना परिवर्तन, इतना विनाश चलता है और आकाश अछूता बना रहता है, अस्पर्शित, सदा कुंवारा।

आकाश का यह जो गुण है, यही परमात्मा का भी गुण है। या ऐसा कहें कि जो हमें बाहर आकाश की तरह दिखता है, वही भीतरी आकाश परमात्मा है; इनर स्पेस, भीतर का आकाश परमात्मा है। कृष्ण कहते हैं, यह जो भीतर छिपा हुआ चैतन्य है, इसे कुछ भी छूता नहीं। तुम क्या करते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। तुम क्या करते हो, क्या होता है, इससे तुम्हारे भीतर के आकाश पर कोई लकीर नहीं खिंचती। तुम भीतर शुद्ध ही बने रहते हो। यह शुद्धि तुम्हारा स्वभाव है।

यह बड़ा खतरनाक संदेश है। इसका मतलब हुआ कि पाप करते हो, तो भी कोई रेखा नहीं खिंचती। पुण्य करते हो, तो भी कोई लाभ की रेखा नहीं खिंचती। न पाप न पुण्य, न अच्छा न बुरा—भीतर कुछ भी छूता नहीं। भीतर तुम अछूते ही बने रहते हो। खतरनाक इसलिए है कि सारी नैतिकता, सारी अनैतिकता व्यर्थ हो जाती है।

भीतर की शुद्धि शाश्वत है। तुम्हारे करने से कुछ बनता—बिगड़ता नहीं। लेकिन तुम्हारे करने से तुम अकारण दुःख पाते हुए मालूम होते हो। अगर तुम बुरा करते हो, तो तुम ऊ छ साथ तादात्म्य बना लेते हो और दुख पाते हो। अगर तुम शुभ करते हो, तो शुभ के साथ तादात्म्य बना लेते हो और सुख पाते हो।

लेकिन सुख—दुख दोनों तुम्हारी भ्रांतियां हैं। वह जो भीतर छिपा है, वह न सुख पाता है, न दुख पाता है। वह जो भीतर छिपा है, वह सदा एकरस अपने में ही है। न तो वह दुख की तरफ डोलता है, न सुख की तरफ डोलता है।

वह भीतर कौन है तुम्हारे भीतर छिपा हुआ, उसकी खोज ही अध्यात्म है। एक ऐसे बिंदु को स्वयं के भीतर पा लेना, जो सभी चीजों से अस्पर्शित है।

एक गाड़ी चलती है। गाड़ी का चाक चलता है, हजारों मील की यात्रा करता है। लेकिन गाडी के चाक के बीच में एक कील है, जो बिलकुल नहीं चलती, जो खड़ी ही रहती है। चाक चलता चला जाता है। चाक अच्छे रास्तों पर चलता है, बुरे रास्तों पर चलता है। चाक सुंदर और असुंदर रास्तों पर चलता है। चाक सपाट राजपथों पर चलता है, गंदगी—कीचड़ से भरे हुए जंगली रास्तों पर चलता है। वह जो कील है चाक के बीच में खड़ी, वह चलती ही नहीं; वह खडी ही रहती है।

ठीक वैसे ही तुम्हारा मन सुख में चलता है, दुख में चलता है, तुम्हारा शरीर कष्ट में चलता है, सुविधा में चलता है, लेकिन भीतर एक कील है चैतन्य की, वह खड़ी ही रहती है, वह चलती ही नहीं। अगर तुम शरीर से अपने को एक समझ लेते हो, तो बहुत तरह के कष्ट तुम्हारे दुख का कारण बन जाते हैं। अगर तुम मन से अपने को एक समझ लेते हो, तो बहुत तरह की मानसिक व्यथाएं, चिंताएं तुम्हें घेर लेती हैं, तुम उनसे घिर जाते हो। शरीर से अलग कर लो,

शरीर में कष्ट होते रहेंगे, लेकिन तुम दुखी नहीं। मन से अलग कर लो, भावों के तूफान चलते रहेंगे, लेकिन तुम दूर खड़े उनको देखते रहोगे।

शरीर और मन दोनों से पार खड़ा हो जाता है जो, उसे पता चलता है कि यहां तो कभी भी कुछ नहीं हुआ। यहां तो सदा ही सब वैसा का वैसा है। जैसा अगर सृष्टि का कोई पहला क्षण रहा होगा, तो उस दिन जितनी शुद्ध थी चेतना, उतनी ही शुद्ध आज भी है।

इसे हम ऐसा समझें कि आप एक नाटक में काम करते हैं। रावण बन गए हैं। बड़े बुरे काम करने पड़ते हैं। सीता चुरानी पड़ती है। हत्याएं करनी पड़ती हैं। युद्ध करना पडता है। या राम बन गए हैं। बडे अच्छे काम करते हैं। बडे आदर्श, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। लोग आदर देते हैं, सम्मान करते हैं। लेकिन जब आप नाटक छोड्कर घर आते हैं, तो न आप राम होते हैं, न रावण होते हैं। न तो रावण का होना आपको छूता है, न राम का होना आपको छूता है।

लेकिन कभी—कभी खतरा हो सकता है। कभी—कभी अभिनय भी छू सकता है। अगर आप अपने को एक समझ लें। अगर आप यह समझ लें कि मैंने इतने दिन तक राम का पार्ट किया, तो अब गांव के लोगों को मुझे राम समझना चाहिए। तो फिर झंझट हो सकती है।

ऐसा हुआ, अमेरिका में लिंकन का एक आदमी ने पार्ट किया एक साल तक। क्योंकि लिंकन की कोई शताब्दी मनाई जाती थी और उसकी शक्ल लिंकन से मिलती—जुलती थी, तो अमेरिका के सभी बड़े नगरों में उसे लिंकन का पार्ट करने के लिए जाना पड़ा। एक सालभर तक वह लिंकन की तरह चलता, लिंकन की छड़ी हाथ में रखता, लिंकन के कपड़े पहनता, लिंकन की तरह हकलाता, लिंकन की तरह बोलता, सब लिंकन की तरह करता।

सालभर लंबा वक्त था। वह आदमी भूल गया। सालभर के बाद जब वह घर आया, तो वह सीधा न चल सके, जैसा वह पहले चलता रहा था। कोशिश करे, तो थोड़ी देर सीधा चले, नहीं तो फिर वह लिंकन की तरह चलने लगे। बोले भी, तो लिंकन की तरह बोले। जहां लिंकन अटकता था, वहीं वह भी अटके।

घर के लोगों ने कहा कि अब छोड़ो भी, अब बात खतम हो गई! लेकिन एक साल का नशा उस पर ऐसा छा गया—जगह—जगह सम्मान, स्वागत, सत्कार—कि उस आदमी ने कहा, क्या छोड़ो! मैं अब्राहम लिंकन हूं। तुम किस भ्रांति में पड़े हो? लोगों ने समझा, वह मजाक कर रहा है थोड़े दिन। लेकिन वह मजाक नहीं कर रहा था। वह अब्राहम लिंकन हो ही गया था।

उसे बहुत समझाया—बुझाया। मित्रों ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो गए हो? लेकिन उसे पक्का भरोसा आ गया था। सालभर लंबा वक्त था। उसे जितना लोगों ने समझाया, उसकी मजबूती बढ़ती चली गई। वह लोगों से कहने लगा, तुम पागल तो नहीं हो गए हो? मैं लिंकन हूं। जितना ही लोगों ने कहा कि तुम नहीं हो, उतनी ही उसकी जिद्द बढ़ती चली गई। फिर तो यहां तक हालत पहुंच गई कि मनोवैज्ञानिकों के पास ले जाकर इलाज करवाना पड़ा। तो मनोवैज्ञानिक ने कहा कि यह आदमी कितना ही बोल रहा हो, लेकिन भीतर तो यह गहरे में तो जानता ही होगा कि मैं लिंकन नहीं हूं। तो अमेरिका में उन्होंने लाइ डिटेक्टर एक छोटी—सी मशीन बनाई है, अदालत में काम लाते हैं झूठ पकड़ने के लिए। उस मशीन पर आदमी को खड़ा कर देते हैं। उससे पूछते हैं। जो बात वह सच बोलता है, तो उसके हृदय की धड़कन अलग होती है। आप भी जब सच बोलते हैं, तो धड़कन अलग होती है। जब आप झूठ बोलते हैं, तो एक धक्का लगता है। हृदय की धड़कन में फर्क हो जाता है।

किसी ने आपसे पूछा, आपकी घड़ी में कितने बजे हैं? आप कहते हैं, आठ। किसी ने पूछा कि सामने जो किताब रखी है, इसका क्या नाम है? आपने पढ़कर बता दिया। आपके हृदय में कहीं कोई झटका नहीं लगता। फिर किसी ने पूछा, आपने चोरी की? तो भीतर से तो आप कहते हैं कि की; और ऊपर से आप कहते हैं, नहीं की। तो रिदम, भीतर की लय टूट जाती है। वह लय का टूटना मशीन पकड़ लेती है कि आपके हृदय की गति में फर्क पड़ गया। ग्राफ टूट जाता है।

तो उस आदमी को, अब्राहम लिंकन को, बने हुए अब्राहम लिंकन को खड़ा किया गया लाइ डिटेक्टर पर। वह भी परेशान हो गया था। जो देखे, वही समझाए कि अरे, क्यों पागल हो रहे हो? होश में आओ। यह नाटक था। वह भी घबड़ा गया। उसने सोचा कि इससे कैसे छुटकारा हो!

तो मनोवैज्ञानिक ने बहुत—से सवाल पूछे। फिर पूछने के बाद उसने पूछा कि क्या तुम अब्राहम लिंकन हो? तो उसने सोचा, यह झंझट खतम ही करो, कह दो कि नहीं हूं। तो उसने कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। मनोवैज्ञानिक बड़ा खुश हुआ। लेकिन नीचे मशीन ने ग्राफ बताया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। इतना गहरा उसको खयाल चला गया है कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। वह खुद ही मना कर रहा है। लेकिन उसका हृदय जानता है कि मैं हूं।

अब क्या करिएगा! एक साल का नाटक अगर ऐसी स्थिति बना देता हो, तो आपने शरीर के साथ बहुत जन्मों में नाटक किया है। कितनी—कितनी लंबी यात्रा है शरीर के साथ एक होने की। मन के साथ कितने समय से आप अपने को एक बनाए हुए हैं। इसलिए कठिनाई है। इसलिए तोड्ने में अड़चन मालूम पड़ती है। इतना लंबा हो गया है यह सब कि आप जन्मों—जन्मों से लिंकन का पार्ट कर रहे हैं। और अब कोई आपसे पूछता है, तो आप कितना ही कहें, मैं शरीर नहीं हूं लेकिन भीतर।

आपको लाइ डिटेक्टर पर खड़ा करके पूछा जाए कि क्या तुम शरीर हो? आप बड़े आत्म—ज्ञानी हैं। गीता पढ़ते हैं, कुरान पढ़ते हैं, कंठस्थ है। और आप रोज सुबह बैठकर दोहराते हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। आप लाइ डिटेक्टर पर खड़े किए जाएं। आप कहेंगे, मैं शरीर नहीं हूं। वह डिटेक्टर कहेगा कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। क्योंकि आपकी मान्यता तो गहरी है कि आप शरीर हैं। आप जानते हैं। आपके गहरे तक यह बात घुस गई है। इसे तोड्ने में इसीलिए कठिनाई है। लेकिन यह तोड़ी जा सकती है, क्योंकि यह झूठ है। यह सत्य नहीं है।

आप पृथक हैं ही। आप कितना ही मान लें कि मैं पृथक नहीं हूं आप पृथक हैं। आपके मानने से सत्य बदलता नहीं। हा, आपके मानने से आपकी जिंदगी असत्य हो जाती है।

कृष्ण कहते हैं, यह जो भीतर बैठा हुआ स्वरूप है, यह सदा मौन, सदा शांत, शुद्ध, सदा आनंद से भरा है।

इसका हमने कभी कोई दर्शन नहीं किया है। और जो भी हम जानते हैं अपने संबंध में, वह या तो शरीर है या मन है। मन के संबंध में भी हम बहुत नहीं जानते हैं। मन की भी थोड़ी— थोड़ी सी परतें हमें पता हैं। बहुत परतें तो अचेतन में छिपी हैं, उनका हमें कोई पता नहीं है।

साक्षी का अर्थ है कि मैं शरीर से भी अपने को तोडू और मन से भी अपने को तोडू। और जब मैं कहता हूं तोडूं? तो मेरा मतलब है, वह जो गलत जोड़ है, वही तोड़ना है। वस्तुत: तो हम जुड़े हुए नहीं हैं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न करता है, न लिपायमान होता है। न तो यह कुछ करता है और चाहे किसी को लगता हो कि कुछ हो भी रहा है, तो भी लिप्त नहीं होता।

कमल का पत्ता जैसे पानी में भी, पानी की बूंदें पड़ जाएं उसके ऊपर, तो भी छूता भी नहीं बूंदों को। बूंदें अलग बनी रहती हैं, पत्ते पर पड़ी हुई भी। जल छूता नहीं। वैसा यह अछूता रह जाता है। इसने कभी भी कुछ नहीं किया है।

हम इसे कैसे मानें? हम तो सब चौबीस घंटे कुछ न कुछ कर रहे हैं। हम इसे कैसे मानें? हम यह कैसे स्वीकार करें कि यह भीतर जो है, यह सदा शुद्ध है। क्योंकि हम बहुत—से पाप कर रहे हैं, चोरी कर रहे हैं, झूठ बोल रहे हैं। यह कृष्ण की बात समझ में नहीं आती कि हम और शुद्ध हो सकते हैं! हम, जिन्होंने इतनी बुराइयां की हैं? न भी की हों, तो इतनी बुराइयां सोची हैं, करनी चाही हैं। कितनी बार हत्या करने का मन हुआ है, चोरी करने का मन हुआ है। यह मन हमारा, यह कैसे भीतर सब शुद्ध हो सकता है?

बाहर के आकाश को देखें! सब कुछ घटित हो रहा है और बाहर का आकाश शुद्ध है। भीतर भी एक आकाश है, ठीक बाहर के आकाश जैसा। बीच में सब घटित हो रहा है, वह भी भीतर शुद्ध है।

इस शुद्धता का स्मरण भी आ जाए, तो आपकी जिंदगी में एक नया आयाम खुल जाएगा। आप दूसरे आदमी होने शुरू हो जाएंगे। फिर आप जो भी कर रहे हैं, करते रहें, लेकिन करने से रस खो जाएगा। फिर जो भी कर रहे हैं, करते रहें, लेकिन करने में से अकड़ खो जाएगी। फिर करना ऐसे हो जाएगा, जैसे सांप तो निकल गया और केवल सांप का ऊपर का खोल पड़ा रह गया है। जैसी रस्सी तो जल गई, लेकिन सिर्फ राख रस्सी के रूप की रह गई है।

अगर आपको यह खयाल आना शुरू हो जाए कि मैं अकर्ता हूं तो कर्म जारी रहेगा, जली हुई रस्सी की भांति, जिसमें अब रस्सी रही नहीं, सिर्फ राख है। सिर्फ रूप रह गया है पुराना। कर्म चलता रहेगा अपने तल पर, और आप हटते जाएंगे। जैसे—जैसे कर्म से हटेंगे, वैसे—वैसे लगेगा कि मैं अलिप्त भी हूं। कुछ मुझे लिप्त नहीं कर सकता।

एक घटना आपसे कहूं। एक बौद्ध भिक्षु हुआ बहुत अनूठा, नागार्जुन। नागार्जुन के पास एक युवक आया। और उस युवक ने कहा कि मैं भी चाहता हूं कि जान लूं उसको, जो कभी लिप्त नहीं होता। जान लूं उसको, जो अकर्ता है। जान लूं उसको, जो परम आनंदित है, सच्चिदानंदघन है। कोई रास्ता?

नागार्जुन बहुत अपने किस्म का अनूठा गुरु था। उसने कहा कि पहले मैं तुझसे पूछता हूं कि तुझे किसी चीज से लगाव, कोई प्रेम तो नहीं है? उस युवक ने कहा कि कोई ज्यादा तो नहीं है, सिर्फ एक भैंस है मेरे पास, पर उससे मुझे लगाव है। तो नागार्जुन ने कहा कि बस इतना काफी है। इससे काम हो जाएगा। साधना शुरू हो जाएगी।

उस युवक ने कहा कि भैंस से और साधना का क्या संबंध? और मैं तो डर भी रहा था कि यह अपना लगाव बताऊं भी कि नहीं! कोई स्त्री से हो, किसी मित्र से हो, तो भी कुछ समझ में आता है। यह भैंस वाला लगाव! मैंने सोचा था कि इसकी तो चर्चा ही नहीं उठेगी। लेकिन आपने पूछा.।

नागार्जुन ने कहा, बस, तू एक काम कर। यह सामने मेरी गुफा के जो दूसरी गुफा है, उसमें तू चला जा; और एक ही भाव कर कि मैं भैंस हूं। जो तेरा प्रेम है, उसको तू आरोपित कर। बस, तू अपने को भैंस का रूप बना ले। और तू लौटकर मत आना। जब जरूरत होगी, तो मैं आऊंगा। तू तो बस, इतना ही भाव कर, एक ही भाव कि मैं भैंस हूं।

उस युवक ने साधना करनी शुरू की। एक दिन बीता, दो दिन बीता, तीसरे दिन उसकी गुफा से भैंस की आवाज आनी शुरू हो गई। नागार्जुन ने अपने शिष्यों से कहा कि अब चलने का वक्त आ गया। अब चलो, देखो, क्या हालत है।

वे सब वहां अंदर गए। वह युवक दरवाजे के पास ही सिर झुकाए खड़ा था। दरवाजा काफी बड़ा था। बाहर निकल सकता था। लेकिन सिर झुकाए खड़ा था जैसे कोई अड़चन हो। भैंस की आवाज कर रहा था। नागार्जुन ने कहा कि बाहर आ जाओ। उसने कहा कि बाहर कैसे आ जाऊं! मेरे सींग दरवाजे में अड़ रहे हैं। आंखें उसकी बंद हैं।

नागार्जुन के बाकी शिष्य तो बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा कि सींग दिखाई तो पड़ते नहीं! नागार्जुन ने कहा कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह भी अड़ सकता है। जो नहीं है, वह भी अड़ सकता है। अड़ने के लिए होना जरूरी नहीं है, सिर्फ भाव होना जरूरी है। इसका भाव पूरा है।

नागार्जुन ने उसे हिलाया और कहा, आंख खोल। उसने घबड़ाकर आंख खोली, जैसे किसी गहरी नींद से उठा हो। तीन दिन की लंबी नींद, आत्म—सम्मोहन, सेल्फ हिप्नोसिस, तीन दिन तक निरंतर कि मैं भैंस हूं। जैसे बड़ी गहरी नींद से जगा हो। एकदम तो पहचान भी न सका कि क्या मामला है।

नागार्जुन ने कहा कि घबड़ा मत। कहां हैं तेरे सींग? उसने सिर पर हाथ फेरा। उसने कहा कि नहीं, सींग तो नहीं हैं। लेकिन अभी अड़ रहे थे। उसने कहा, वह भी मुझे खयाल है। मैं तीन दिन से निकलने की कोशिश कर रहा हूं। और

तुमने कहा था, निकलना मत। मैं तीन दिन से कोशिश करके भी निकल नहीं पा रहा हूं। वे सींग अड़ जाते हैं बीच में। बड़ी तकलीफ भी होती है। टकराता हूं; तकलीफ होती है।

तो नागार्जुन ने कहा, कहां हैं सींग? कहां है तेरा भैंस होना? नागार्जुन ने कहा कि तुझे अब मैं कुछ और सिखाऊं कि बात तू सीख गया? उसने कहा, मैं बात सीख गया। तीन दिन का मुझे मौका और दे दें।

नागार्जुन और उसके शिष्य वापस लौट आए। शिष्यों ने कहा, हम कुछ समझे नहीं। यह क्या वार्तालाप हुआ? नागार्जुन ने कहा, तीन दिन बाद।

तीन दिन तक वह युवक फिर उस कोठरी में बंद था। और जैसे तीन दिन उसने अपने को भैंस होना स्वीकार कर के भैंस बना लिया था, वैसे तीन दिन उसने अस्वीकार किया कि मैं शरीर नहीं हूं मैं मन नहीं हूं। और तीन दिन बाद जब नागार्जुन और उसके शिष्य वहां पहुंचे, तो वह जो व्यक्ति उन्होंने देखा था, वहा सिर्फ रस्सी की राख रह गई थी, जली हुई।

उस व्यक्ति ने आंख खोली और नागार्जुन ने अपने शिष्यों से कहा, इसकी आंखों में झांको। उन आंखों में जैसे गहरा शून्य था। और नागार्जुन ने पूछा कि अब तुम कौन हो? तो उस व्यक्ति ने कहा कि सिर्फ आकाश। अब मैं नहीं हूं। सब समाप्त हो गया। और जो मैं चाहता था जानना, वह मैंने जान लिया! और जो मैं चाहता था होना, वह मैं हो गया हूं।

जो भी आप सोच रहे हैं कि आप हैं, यह आपकी मान्यता है। यह आटो—हिप्नोसिस है। यह आत्म—सम्मोहन है। और यह सम्मोहन इतना गहरा है, बचपन से डाला जाता है, कि इससे आपको खयाल भी नहीं है कभी कि यह अपनी ही मान्यता है, जो हम अपने चारों तरफ खड़ी कर लिए हैं।

आपका व्यक्तित्व आपकी मान्यता है। इसलिए बहुत मजे की घटनाएं घटती हैं। अगर आप दुनिया की अलग—अलग संस्कृतियों का अध्ययन करें, तो आप चकित हो जाएंगे।

कुछ ऐसी कौमें हैं, जो मानती हैं, पुरुष कमजोर है और स्त्री ताकतवर है। वहा पुरुष कमजोर हो गया है और स्त्री ताकतवर हो गई है। जिन कौमों की ऐसी धारणा है कि पुरुष कमजोर है, वहां पुरुष कमजोर है। और स्त्री ताकतवर है, तो स्त्री ताकतवर है। वहां मर्दाना होने का कोई मतलब नहीं है। वहा जनाना होने की ज्ञान है। और वहां अगर कोई मर्द ताकतवर होता है, तो लोग कहते हैं कि क्या जनाना मर्द है! क्या शानदार मर्द है! ठीक औरत जैसा।

आप यह मत सोचना की औरत कमजोर है। औरत का कमजोर होना एक मान्यता है।

आप चकित होंगे जानकर कि अमेजान में एक छोटी—सी कौम है। जब बच्चा होता है किसी स्त्री को, तो पति को भी प्रसव की पीड़ा होती है। एक खाट पर पड़ती है स्त्री, दूसरी खाट पर लेटता है पति। और दोनों तड़पते हैं। आप कहेंगे, यह पति बनता होगा। क्योंकि आखिर इधर भी तो इतने बच्चे पैदा होते हैं!

नहीं, पति बनता बिलकुल नहीं। और जब पहली दफा ईसाई मिशनरियों ने यह चमत्कार देखा, तो वे बड़े हैरान हुए कि ये पति भी क्या ढोंग कर रहे हैं! पति को कहीं प्रसव पीड़ा होती है! पत्नी को बच्चा हो रहा है, तुम क्यों तकलीफ पा रहे हो? और पत्नी से भी ज्यादा शोरगुल पति मचाता है, क्योंकि पति पति है। पत्नी तो थोड़ा—बहुत मचाती है। पति बहुत उछल—कूद करता है। गिर—गिर पड़ता है, रोता है, पीटता है। जब तक बच्चा नहीं हो जाता, तब तक तकलीफ पाता है। बच्चा होते ही से वह बेहोश होकर गिर जाता है।

तो पादरियों ने समझा कि यह भी एक खेल है। इन्होंने बना रखा है। बाकी इसमें कोई हो तो नहीं सकती सचाई। तो जब चिकित्सकों ने जांच की, तो उन्होंने पाया कि यह बात सच नहीं है। दर्द होता है। तकलीफ होती है। पेट में बहुत उथल—पुथल मच जाती है, जैसे बच्चा होने वाला हो। हजारों साल की उनकी मान्यता है कि जब दोनों का ही बच्चा है, तो दोनों को तकलीफ होगी।

और आप यह भी जानकर हैरान होंगे कि ऐसी भी कौमें हैं, इस मुल्क में भी ऐसी ग्रामीण और आदिवासी कौमें हैं, जहां स्त्री को बच्चा बिना तकलीफ के होता है। जैसे गाय को होता है, ऐसे स्त्री को होता है। वह जंगल में काम कर रही है, खेत में काम कर रही है, बच्चा हो जाता है। बच्चे को उठाकर खुद ही अपनी टोकरी में रखकर वृक्ष के नीचे रख देती है, और फिर काम करना शुरू कर देती है।

हमारी स्त्रियां सोच भी नहीं सकतीं कि खुद को बच्चा हो, न नर्स हो, न अस्पताल हो, न डाक्टर हो, और खुद ही को बच्चा हो, और उठाकर टोकरी में रखकर और काम शुरू! काम में कोई अंतराल ही नहीं पड़ता। वह भी मान्यता है। स्त्रियों को जो इतनी तकलीफ हो रही है, वह भी मान्यता है। स्त्रियों को तकलीफ न हो, वह भी मान्यता है।

लोझेन करके एक फ्रेंच चिकित्सक है, उसने एक लाख स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवाया है। और सिर्फ करता इतना ही है कि वह उनको कहता है कि दर्द होता ही नहीं। यह समझाता है पहले, दर्द तुम्हारी भांति है। उनको कान में मंत्र डालता है कि दर्द होता ही नहीं। सम्मोहित करता है; समझा देता है। एक लाख स्त्रियां बिना दर्द के...।

लोझेन का शिष्य है, वह और एक कदम आगे बढ़ गया है। वह कहता है कि दर्द की तो बात ही गलत है, जब बच्चा पैदा होता है, तो स्त्री के जीवन में सबसे बड़ा सुख होता है। और उसने कोई पांच सौ स्त्रियों को सुख करवाकर भी बता दिया। वे स्त्रियां कहती हैं कि जो समाधि का आनंद हमने जाना है बच्चे के होने में, वह तो कभी जाना ही नहीं।

वह भी उनको समझाता है कि यह परम अनुभव का क्षण है। बच्चा जब पैदा होता है, तो स्त्री के जीवन का यह शिखर है आनंद—अनुभव का। अगर इसमें वह चूक गई, तो उसे जीवन में कभी आनंद ही नहीं मिलेगा। उसका शिष्य समझाकर आनंद भी करवा देता है!

आदमी बहुत अदभुत है। आदमी सेल्फ हिप्नोसिस करने वाला प्राणी है। वह अपने को जो भी मान लेता है, वैसा कर लेता है। आपकी सारी व्यक्तित्व की परतें आपकी मान्यताओं की परतें हैं। आप जो हैं, वह आपका सम्मोहन है।

अध्यात्म का अर्थ है, इस सारे सम्मोहन को तोड़कर उसके प्रति जग जाना, जिसका कोई भी सम्मोहन नहीं है। यह सारा शरीर, यह मन, ये धारणाएं, यह स्त्री यह पुरुष, यह अच्छा यह बुरा, इस सबसे हटते जाना। और सिर्फ चैतन्य मात्र, शुद्ध चित्त मात्र शेष रह जाए, मैं सिर्फ जानने वाला हूं, इतनी प्रतीति भर बाकी बचे। तो उस प्रतीति के क्षण में पता चलता है कि वह जो भीतर बैठा हुआ आकाश है, वह सदा कुंवारा है। न उसने कभी कुछ किया और न कुछ उस पर अभी तक लिप्त हुआ है। वह अस्पर्शित, शुद्ध है।

गीता दर्शन–(भाग–6)
अकस्मात विस्फोट की पूर्व—तैयारी—(प्रवचन—बारहवां)
अध्याय—13

सूत्र—

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।33।।
स्थ्यैज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचमुवा।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।34।।
हे अर्जुन, जिस प्रकार एक ही सूर्य इस संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा संपूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

इस प्रकाश क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरूष ज्ञान—नेत्रों के द्वारा तत्व से जानते है, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है, गीता में कहा है कि जो मनुष्य मरते समय जैसी ही चाह करे, वैसा ही वह दूसरा जन्म पा सकता है। तो यदि एक मनुष्य उसका सारा जीवन पाप करने में ही गंवा दिया हो और मरते समय दूसरे जन्म में महावीर और बुद्ध जैसा बनने की चाह करे, तो क्या वह आदमी दूसरे जन्म में महावीर और बुद्ध जैसा बन सकता है?

निश्चित ही, मरते क्षण की अंतिम चाह दूसरे जीवन की प्रथम घटना बन जाती है। जो इस जीवन में अंतिम है, वह दूसरे जीवन में प्रथम बन जाता है।

इसे ऐसा समझें। रात आप जब सोते हैं, तो जो रात सोते समय आपका आखिरी विचार होता है, वह सुबह जागते समय आपका पहला विचार बन जाता है। इसे आप प्रयोग करके जान सकते हैं। रात आखिरी विचार, जब आपकी नींद उतर रही हो, जो आपके चित्त पर हो, उसे खयाल कर लें। तो सुबह आपको जैसे ही पता लगेगा कि मैं जाग गया हूं वही विचार पहला विचार होगा।

मृत्यु महानिद्रा है, बड़ी नींद है। इसी शरीर में नहीं जागते हैं, फिर दूसरे शरीर में जागते हैं। लेकिन इस जीवन का जो अंतिम विचार, अंतिम वासना है, वही दूसरे जीवन का प्रथम विचार और प्रथम वासना बन जाती है।

इसलिए गीता ठीक कहती है कि अंतिम क्षण में जो विचार होगा, जो वासना होगी, वही दूसरे जीवन का कारण बन जाएगी।

लेकिन अगर आपने जीवनभर पाप किया है, तो अंतिम क्षण मेँ आप बुद्ध होने का विचार कर नहीं सकते। वह असंभव है। अंतिम विचार तो आपके पूरे जीवन का निचोड़ होगा। अंतिम विचार में सुविधा नहीं है आपके हाथ में कि आप कोई भी विचार कर लें। मरते क्षण में आप धोखा नहीं दे सकते। समय भी नहीं है धोखा देने के लिए। मरते क्षण में तो आपका पूरा जीवन निचुड़कर आपकी वासना बनता है। आप वासना कर नहीं सकते मरते क्षण में।

तो जिस आदमी ने जीवनभर पाप किया हो, मरते क्षण में वह महापापी बनने की ही वासना कर सकता है। वह आपके हाथ में उपाय नहीं है कि आप मरते वक्त बुद्ध बनने का विचार कर लें। बुद्ध बनने का विचार तो तभी आ सकता है जब जीवनभर बुद्ध बनने की चेष्टा रही हो। क्योंकि मरते क्षण में आपका जीवन पूरा का पूरा निचुड़कर आखिरी वासना बन जाता है। वह बीज है। उसी बीज से फिर नए जन्म की शुरुआत होगी।

इसे ऐसा समझें। एक बीज हम बोते हैं; वृक्ष बनता है। फूल खिलते हैं। फूल में फिर बीज लगते हैं। उस बीज में उसी वृक्ष का प्राण फिर से समाविष्ट हो जाता है। वह बीज नए वृक्ष का जन्म बनेगा।

तो आपने जीवनभर जो किया है, जो सोचा है, जिस भांति आप रहे हैं, वह सब निचुड़कर आपकी अंतिम वासना का बीज बन जाता है। वह आपके हाथ में नहीं है।

जिस आदमी ने जीवनभर धन की चिंता की हो, मरते वक्त वह धन की ही चिंता करेगा। थोड़ा समझें, इससे विपरीत असंभव है। क्योंकि जिसके मन पर धन का विचार ही प्रभावी रहा हो, मरते समय जीवनभर का अनुभव, जीवनभर की कल्पना, जीवनभर की योजना, जीवनभर के स्वप्न, वे सब धक्का देंगे कि वह धन के संबंध में अंतिम विचार कर ले। इसलिए धन को पकड़ने वाला अंतिम समय में धन को ही पकड़े हुए मरेगा।

लोककथाएं हैं कि अगर कृपण मर जाता है, तो अपनी तिजोड़ी पर सांप बनकर बैठ जाता है। या अपने खजाने पर सांप बनकर बैठ जाता है। वे कथाएं सार्थक हैं। वे इस बात की खबर हैं कि अंतिम क्षण में आप अपने जीवन की पूरी की पूरी निचुड़ी हुई अवस्था को बीज बना लेंगें।

तो गीता ठीक कहती है कि जो अंतिम क्षण में विचार होगा, वही आपके नए जन्म की शुरुआत होगी। लेकिन आप यह मत सोचना ग्रंथियों का उपयोग होता है। जब आप क्रोध से भर जाते हैं, तो आपने खयाल किया, क्रोध से भरा हुआ आदमी अपने से ताकतवर आदमी को उठाकर फेंक देता है। उसकी ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं, जिनसे वह पागल हो जाता है। अगर आप क्रोध में हैं, तो आप इतनी बड़ी चट्टान को सरका सकते हैं, जो आप क्रोध में न होते, तो कभी आपसे सरकने वाली नहीं थी। आपकी ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं। उस जहर के नशे में आप कुछ भी कर सकते हैं।

क्रोध में, अब तो वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि जहर छूटता है। उस जहर के प्रभाव में ही कोई हत्या कर सकता है। भीतर ग्रंथियां हैं, जो आपको मूर्च्छित करती हैं। जब आप कामवासना से भरकर पागल होते हैं, तब भी आपकी ग्रंथियां एक विषाक्त द्रव्य छोड़ देती हैं। आप होश में नहीं होते। क्योंकि होश में आकर तो आप पछताते हैं। बड़ा पश्चात्ताप करते हैं कि फिर वही भूल की। और आपने ही की है। और पहले भी बहुत बार करके पछताए हैं। फिर कैसे हो गई? जरूर आप होश में नहीं थे।

आदमी जो भी भूलें करता है, वह बेहोशी में करता है।

मौत के क्षण में आपके शरीर की सारी विषाक्त ग्रंथियां पूरा विष छोड़ देती हैं। आपकी पूरी चेतना धुएं से भर जाती है। आपको कुछ होश नहीं रहता। जब आपका शरीर आत्मा से अलग होता है, तो आप उतने ही बेहोश होते हैं, जितना सर्जरी में कोई मरीज बेहोश होता है। उससे ज्यादा।

मृत्यु के पास अपना एनेस्थेसिया है। इसलिए आप होश में मर नहीं सकते; आप बेहोशी में मरेंगे। इसी कारण तो आपको दूसरे जन्म में याद नहीं रह जाता पिछला जन्म। क्योंकि जो बेहोशी में घटा है, उसकी याददाश्त नहीं हो सकती।

हम बहुत बार मर चुके हैं। हजार बार, लाख बार मर चुके हैं। और हमें कुछ भी याद नहीं कि हम कभी भी मरे हों। हमें कोई याद नहीं है मृत्यु की पिछली। और चूंकि मृत्यु की याद नहीं है, इसलिए बीच में एक गैप, एक अंतराल हो गया है। इसलिए पिछले जन्म की कोई भी याद नहीं है।

जो आदमी होश में मरता है, उसे दूसरे जन्म में याद रहेगा पिछला जन्म। आपको किसी को भी याद नहीं है।

तो जो होश में ही नहीं मर सकते, तो आप क्या करिएगा, क्या सोचिएगा मरते वक्त? मौत तो घटेगी बेहोशी में, मरने के पहले आप बेहोश हो गए होंगे। इसलिए आखिरी विचार तो बेहोश होगा, होश वाला नहीं होगा।

तो जिंदगीभर जो आपने अपने अचेतन मन में बेहोश वासनाएं पाली हैं, वे ही आपका बीज बनेंगी। उन्हीं के सहारे आप नई यात्रा पर निकल जाएंगे। न तो आपको मृत्यु की कोई याद है, न आपको जन्म की कोई याद है। आपको याद है जब आपका जन्म हुआ? कुछ भी याद नहीं है।

मां के पेट में नौ महीने आप बेहोश थे। वह भी बेहोशी जरूरी है। नहीं तो बच्चे का जीना मुश्किल हो जाए। नौ महीने कारागृह हो जाए अगर होश हो। अगर बच्चे को होश हो, तो मां के पेट में बहुत कष्ट हो जाए। वह कष्ट झेलने योग्य नहीं है, इसलिए बेहोश थे।

पैदा होने के बाद भी आपको कुछ पता नहीं है, क्या हुआ। जब आप गर्भ से बाहर आ रहे थे, आपको कुछ भी पता है? अगर आप बहुत कोशिश करेंगे पीछे लौटने की, तो तीन साल की उम्र, दो साल की उम्र; बहुत जो जान सकते हैं, स्मृति कर सकते हैं, वे भी दो साल से पीछे नहीं हट सकते हैं। दो साल तक आप ठीक होश में नहीं थे।

मरने में बेहोशी, गर्भ में बेहोशी, जन्म में बेहोशी, जन्म के बाद भी बेहोशी। और जिसको आप जीवन कहते हैं, वह भी करीब—करीब बेहोश है। उसमें भी कुछ होश नहीं है। मरते क्षण में तो वही व्यक्ति अपनी वासना को होशपूर्वक निर्धारित कर सकता है, जिसने जीवनभर ध्यान साधा हो।

इसे हम ऐसा समझें कि छोटी—मोटी बात में भी तो आपका वश नहीं है, अपने जन्म को आप निर्धारित करने में क्या करेंगे! अगर मैं आपसे कहूं कि चौबीस घंटे आप अशांत मत होना; इस पर भी तो आपकी मालकियत नहीं है। आप कहेंगे, अशांति आ जाएगी, तो मैं क्या करूंगा? कोई गाली दे देगा, तो मैं क्या करूंगा?

चौबीस घंटे आपसे कहा जाए, अशांत मत होना, तो इसकी भी आपकी मालकियत नहीं है। क्षुद्र—सी बात है। अति क्षुद्र बात है। लेकिन आप सोचते हैं कि पूरे जीवन को, नए जीवन को मैं अपनी आकांक्षा के अनुकूल ढाल लूंगा।

एक मन की छोटी—सी तरंग भी आप सम्हाल नहीं सकते। अगर आपसे कहा जाए कि चौबीस घंटे आपके मन में यह विचार न आए, उस विचार को भी आने से आप रोक नहीं सकते। इतनी तो गुलामी है। और सोचते हैं, अंतिम क्षण में इतनी मालकियत दिखा देंगे कि पूरे जीवन की दिशा निर्धारित करना अपने हाथ में होगा! अपने हाथ से जरा भी तो कुछ निर्णय नहीं हो पाता। जरा—सा भी संकल्प पूरा नहीं होता। सब जगह हारे हुए हैं। लेकिन इस तरह के विचार सांत्वना देते हैं। उससे आदमी सोचता है, किए चले जाओ पाप, आखिरी क्षण में सम्हाल लेंगे।

अगर सम्हालने की ही ताकत है, तो अभी सम्हालने में क्या तकलीफ है? अगर बुद्ध जैसे होने की ही बात है, तो अगले जन्म पर टालना क्यों? अभी हो जाने में कौन बाधा डाल रहा है? अगर तुम्हारे ही हाथ में है बुद्ध होना, तो अभी हो जाओ।

लेकिन तुम भलीभांति जानते हो कि अपने हाथ में नहीं दिखता, तो टालते हैं। इससे मन में राहत बनी रहती है कि कोई फिक्र नहीं, आज नहीं तो कल हो जाएंगे, कल नहीं तो परसों हो जाएंगे। और हम बहते चले जाते हैं मूर्च्छा में।

मरते क्षण में आपको कोई होश होने वाला नहीं है। जिस व्यक्ति को मरते क्षण में होश रखना हो, उसे जीवित क्षण को होश के लिए उपयोग करना होगा। और इसके पहले कि असली मृत्यु घटे आपको ध्यान में मरने की कला सीखनी होगी।

ध्यान मृत्यु की कला है। वह मरने की तरकीब है अपने हाथ। जब शरीर अपने आप मरेगा, तब हो सकता है, इतनी सुविधा भी न हो। वह घटना इतनी नई होगी कि आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। उस वक्त होश सम्हालना अति अड़चन का होगा। ध्यान में आप मरकर पहले ही देख सकते हैं। ध्यान में आप शरीर को छोड़ सकते हैं और शरीर से अलग हो सकते हैं।

जो व्यक्ति ध्यान में मृत्यु को साधने लगता है, वह मृत्यु के आने के बहुत पहले मृत्यु से भलीभांति परिचित हो जाता है। उसने मरकर देख ही लिया है। अब मृत्यु के पास नया कुछ भी नहीं है। और जो व्यक्ति अपने को अपने शरीर से अलग करके देख लेता है, मृत्यु फिर उसे बेहोश करने की आवश्यकता नहीं मानती। फिर कोई जरूरत नहीं है।

ऐसा हुआ कि उन्नीस सौ आठ में काशी के नरेश का एक आपरेशन हुआ पेट का। लेकिन काशी के नरेश ने कहा कि मैं कोई बेहोशी की दवा लेने को तैयार नहीं हूं। एपेंडिसाइटिस का आपरेशन था, डाक्टरों ने कहा कि मुश्किल मामला है। बेहोश तो करना ही पड़ेगा। क्योंकि इतनी असह्य पीड़ा होगी कि अगर आप हिल गए चिल्लाने लगे, रोने लगे, भागने लगे, तो हम क्या करेंगे? सारा खतरा हो जाएगा। जीवन का खतरा है।

लेकिन नरेश ने कहा कि बिलकुल चिंता मत करें। मुझे सिर्फ मेरी गीता पढ़ने दें। मैं अपनी गीता पढ़ता रहूंगा, आप आपरेशन करते रहना।

कोई उपाय नहीं था। नरेश लेने को राजी नहीं था बेहोशी की कोई दवा और आपरेशन एकदम जरूरी था। अगर आपरेशन न हो, तो भी मौत हो जाए। तो फिर यह खतरा लेना उचित मालूम पड़ा। जब बिना आपरेशन के भी मौत हो जाएगी, तो एक खतरा लेना उचित है। आपरेशन करके देख लिया जाए। ज्यादा से ज्यादा मौत ही होगी जो कि निश्चित है। लेकिन संभावना है कि बच भी जाए।

यह पहला मौका था चिकित्सा के इतिहास में कि इतना बड़ा आपरेशन बिना किसी बेहोशी की दवा के किया गया। काशी नरेश अपनी गीता का पाठ करते रहे, आपरेशन हो गया।

आपरेशन पूरा हो गया। कोई कहीं अड़चन न हुई। चिकित्सक बहुत हैरान हुए। जो अंग्रेज डाक्टर, सर्जन ने यह आपरेशन किया था, वह तो चमत्कृत हो गया। उसने कहा कि आप किए क्या? क्योंकि इतनी असह्य पीड़ा!

तो काशी नरेश ने कहा कि मैं ध्यान करता रहा कृष्ण के वचनों का—कि न शरीर के काटे जाने से आत्मा कटती है, न छेदे जाने से छिदती है, न जलाए जाने से जलती है। बस मैं एक ही भाव में डूबा रहा कि मैं अलग हूं मैं कर्ता नहीं हूं भोक्ता नहीं हूं मैं सिर्फ साक्षी हूं। न मुझे कोई जला सकता है; न मुझे कोई छेद सकता है; न मुझे कोई काट सकता है। यह भाव मेरा सघन बना रहा। तुम्हारे औजारों की खटपट मुझे सुनाई पड़ती रही। लेकिन ऐसे जैसे कहीं दूर फासले पर सब हो रहा है। पीड़ा भी थी, लेकिन दूर, जैसे मैं उससे अलग खड़ा हूं। मैं देख रहा हूं। जैसे पीड़ा किसी और को घटित हो रही है।

अब यह जो सम्राट है, यह मृत्यु में भी होश रख सकता है। जीवन में इसने होश का गहरा प्रयोग कर लिया है।

मृत्यु पर भरोसा न करें, जीवन पर भरोसा करें। और जीवन में साध लें, जो भी होना चाहते हों। मृत्यु पर टालें मत। वह धोखा सिद्ध होगा। जो भी क्षण हाथ में हैं, उनका उपयोग करें।

और अगर बुद्धत्व को पाना है, तो इसी घड़ी उसके श्रम में लग जाएं, क्योंकि बुद्धत्व कोई ऐसी बच्चों जैसी बात नहीं है कि आप सोच लेंगे और हो जाएगी। बहुत श्रम करना होगा, बहुत साधना करनी होगी। और तभी अंतिम क्षण में वह बीज बन जाएगा और नया जन्म उस बीज के मार्ग से अंकुरित हो सकता है।

एक मित्र ने पूछा है, अगर सभी मनुष्य अकर्ता बन जाएं, गीता की बात को मान लें, तो जीवन में, संसार में क्या रस बाकी रह जाएगा?

अभी क्या रस है जीवन में? अभी कर्ता बने हुए हैं गीता के विपरीत, अभी क्या रस है जीवन में? और अगर जीवन में रस ही है, तो गीता को पढ़ने की जरूरत क्या है? गीता को सुनने की क्या जरूरत है? अगर जीवन में रस ही है, तो धर्म की बात ही क्यों उठानी? परमात्मा और मोक्ष और ध्यान और समाधि की चर्चा ही क्यों चलानी?

अगर जीवन में रस है, तो बात खतम हो गई। रस की ही तो खोज है। रस ही तो परमात्मा है। बात खतम हो गई। फिर कुछ करना नहीं है। फिर और ज्यादा कर्ता हो जाएं, ताकि और ज्यादा रस मिले। और संसार में उतर जाएं, ताकि रस के और गहरे स्रोत मिल जाएं।

अगर जीवन में रस मिल ही रहा है कर्ता बनकर, तो गीता वगैरह को, सबको अग्नि में आहुति कर दें। कोई आवश्यकता नहीं है। और कृष्ण वगैरह की बात ही मत सुनना। नहीं तो वे आपका रस नष्ट कर दें। आप बड़े आनंद में हैं, कहां इनकी बातें सुनते हैं!

लेकिन आप अगर रस में ही होते, तो यह बात ठीक थी। आपको रस बिलकुल नहीं है। दुख में हैं, गहन दुख में हैं। हा, रस की आशा बनाए हुए हैं। जब भी हैं, तब दुख में हैं; और रस भविष्य में है।

संसार में जरा भी रस नहीं है। सिर्फ भविष्य की आशा में रस है। जहां हैं, वहां तो दुखी हैं। लेकिन सोचते हैं कि कल एक बड़ा मकान बनेगा और वहां आनंद होगा। जितना है, उसमें तो दुखी हैं। लेकिन सोचते हैं, कल ज्यादा हो जाएगा और बड़ा रस आएगा। कल कुछ होगा, जिससे रस घटित होने वाला है।

कल की आशा में आज के दुख को हम बिताते हैं। वह कल कभी नहीं आता। कल होता ही नहीं। जो भी है, वह आज है। संसार आशा है। उस आशा में रस है। डर लगता होगा कि अगर साक्षी हो जाएंगे, तो फिर रस खो जाएगा। क्योंकि साक्षी होते ही भविष्य खो जाता है; वर्तमान ही रह जाता है। इसलिए सवाल तो बिलकुल सही है।

संसार में रस नहीं है, जो खो जाएगा। क्योंकि संसार में रस होता, तब तो धर्म की कोई जरूरत ही नहीं थी। संसार में दुख है, इसलिए धर्म पैदा हो सका है। संसार में बीमारी है, इसलिए धर्म की

चिकित्सा खोजी जा सकी है। अगर संसार स्वास्थ्य है, तो धर्म तो बिलकुल निष्प्रयोजन है।

बर्ट्रेंड रसेल ने ठीक कहा है। उसने कहा है कि दुनिया में धर्म तब तक रहेगा, जब तक दुख है। इसलिए अगर हमको धर्म को मिटाना है, तो दुख को मिटा देना चाहिए।

वह ठीक कहता है। लेकिन दुख मिट नहीं सकता। पांच हजार साल का इतिहास तो हमें ज्ञात है। आदमी दुख को मिटाने की कोशिश कर रहा है। और एक दुख मिटा भी लेता है, तो दस दुख पैदा हो जाते हैं। पुराने दुख मिट जाते हैं, तो नए दुख आ जाते हैं। लेकिन दुख नहीं मिटता।

निश्चित ही, हजार साल पहले दूसरे दुख थे, आज दूसरे दुख हैं। कल दूसरे दुख होंगे। हिंदुस्तान में एक तरह का दुख है, अमेरिका में दूसरी तरह का दुख है, रूस में तीसरी तरह का दुख है। लेकिन दुख नहीं मिटता।

जमीन पर कोई भी समाज आज तक यह नहीं कह सका कि हमारा दुख मिट गया, अब हम आनंद में हैं। कुछ व्यक्ति जरूर कह सके हैं कि हमारा दुख मिट गया और हम आनंद में हैं। लेकिन वे व्यक्ति वही हैं, जिन्होंने धर्म का प्रयोग किया है। आज तक धर्म से रहित व्यक्ति यह नहीं कह सका कि मैं आनंद में हूं। वह दुख में ही है। रसेल ठीक कहता है, धर्म को मिटाना हो तो दुख को मिटा देना चाहिए। मैं भी राजी हूं। लेकिन दुख अगर मिट सके, तब।

दो संभावनाएं हैं। दुख मिट जाए, तो धर्म मिट जाए, एक संभावना। एक दूसरी संभावना है कि धर्म आ जाए, तो दुख मिट जाए। रसेल पहली बात से राजी है। मैं दूसरी बात से राजी हूं। दुख मिट नहीं सकता। लेकिन धर्म आ जाए तो दुख मिट सकता है। धर्म तो चिकित्सा है। वह तो जीवन से दुख के जो—जो कारण हैं, उनको नष्ट करना है। जिस कारण से हम दुख पैदा कर लेते हैं जीवन में, उस कारण को तोड़ देना है। वह कारण है, कर्ता का भाव। वह कारण है कि मैं कर रहा हूं वही दुख का मूल है। अहंकार, मैं हूं वही दुख का मूल है। उसे तोड़ते से ही दुख विलीन हो जाता है और आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है।

ये मित्र कहते हैं, जीवन में रस क्या रह जाएगा?

जीवन में रस है ही नहीं, पहली बात। पर दूसरी बात सोचने जैसी है, भविष्य का जो रस है, वह जरूर खो जाएगा। साक्षी के लिए कोई भविष्य नहीं है।

इसे थोड़ा समझें। समय के हम तीन विभाजन करते हैं, अतीत,

वर्तमान, भविष्य। वे समय के विभाजन नहीं हैं। समय तो सदा

वर्तमान है। समय का तो एक ही टेंस है, प्रेजेंट। अतीत तो सिर्फ

स्मृति है मन की, वह कहीं है नहीं। और भविष्य केवल कल्पना है मन की, वह भी कहीं है नहीं। जो समय है, वह तो सदा वर्तमान है। आपका कभी अतीत से कोई मिलना हुआ? कि भविष्य से कोई मिलना हुआ? जब भी मिलना होता है, तो वर्तमान से होता है। आप सदा अभी और यहीं, हियर एंड नाउ होते हैं। न तो आप पीछे होते हैं, न आगे होते हैं।

ही, पीछे का ख़याल आप में हो सकता है। वह आपके मन की बात है। और आगे का खयाल भी हो सकता है, वह भी मन की बात है।

अस्तित्व वर्तमान है; मन अतीत और भविष्य है। एक और मजे की बात है, अस्तित्व वर्तमान है सदा, और मन कभी वर्तमान नहीं है। मन कभी अभी और यहीं नहीं होता। इसे थोड़ा सोचें।

अगर आप पूरी तरह से यहीं होने की कोशिश करें इसी क्षण में, भूल जाएं सारे अतीत को, जो हो चुका, वह अब नहीं है; भूल जाएं सारे भविष्य को, जो अभी हुआ नहीं है; सिर्फ यहीं रह जाएं, वर्तमान में, तो मन समाप्त हो जाएगा। क्योंकि मन को या तो अतीत चाहिए दौड़ने के लिए पीछे, स्मृति; या भविष्य चाहिए, स्पेस चाहिए, जगह चाहिए। वर्तमान में जगह ही नहीं है। वर्तमान का क्षण इतना छोटा है कि मन को फैलने की जरा भी जगह नहीं है। क्या करिएगा? अगर अतीत छीन लिया, भविष्य छीन लिया, तो वर्तमान में मन को करने को कुछ भी नहीं बचता। इसलिए ध्यान की एक गहनतम प्रक्रिया है और वह है, वर्तमान में जीना। तो ध्यान अपने आप फलित होने लगता है, क्योंकि मन समाप्त होने लगता है। मन बच ही नहीं सकता।

समय सिर्फ वर्तमान है। मन है अतीत और भविष्य। अगर आप साक्षी होंगे, तो वर्तमान में हो जाएंगे। भविष्य और अतीत दोनों खो जाएंगे। क्योंकि साक्षी तो उसी के हो सकते हैं, जो है। अतीत के क्या साक्षी होंगे, जो है ही नहीं? भविष्य के क्या साक्षी होंगे, जो अभी होने को है? साक्षी तो उसी का हुआ जा सकता है, जो है। साक्षी होते ही मन समाप्त हो जाता है। इसलिए भविष्य का जो रस है, वह जरूर समाप्त हो जाएगा। लेकिन आपको पता ही नहीं है कि भविष्य का रस तो समाप्त होगा, वर्तमान का आनंद आपके ऊपर बरस पड़ेगा। और भविष्य का रस तो केवल आश्वासन है झूठा, वह कभी पूरा नहीं होता।

इसे इस तरह सोचें। अगर आप पचास साल के हो गए हैं, तो यह पचास साल की उम्र आज से दस साल पहले भविष्य थी। और दस साल पहले आपने सोचा होगा, न मालूम क्या—क्या आनंद आने वाला है! अब तो वह सब आप देख चुके हैं। वह अभी तक आनंद आया नहीं।

बचपन से आदमी यह सोचता है, कल, कल, कल! और एक दिन मौत आ जाती है और आनंद नहीं आता। लौटकर देखें, कोई एकाध क्षण आपको ऐसा खयाल आता है, जिसको आप कह सकें वह आनंद था! जिसको आप कह सकें कि उसके कारण मेरा जीवन सार्थक हो गया! जिसके कारण आप कह सकें कि जीवन के सब दुख झेलने योग्य थे! क्योंकि वह एक आनंद का कण भी मिल गया, तो सब दुख चुक गए। कोई नुकसान नहीं हुआ। क्या एकाध ऐसा क्षण जीवन में आपको खयाल है, जिसके लिए आप फिर से जीने को राजी हो जाएं! कि यह सारी तकलीफ झेलने को मैं राजी हूं क्योंकि वह क्षण पाने जैसा था।

कोई क्षण याद नहीं आएगा। सब बासा—बासा, सब राख—राख, सब बेस्वाद। लेकिन आशा फिर भी टंगी है भविष्य में। मरते दम तक आशा टंगी है। उस आशा में रस मालूम पड़ता है। वह रस धोखा है।

साक्षी, अकर्ता के भाव में धोखे का रस उपलब्ध नहीं होता, लेकिन वास्तविक रस की वर्षा हो जाती है।

कृष्ण का जो नृत्य है, बुद्ध का जो मौन है, महावीर का जो सौंदर्य है, वह भविष्य के रस से पैदा हुई बातें नहीं हैं। वह वर्तमान में, अभी—यहीं उनके ऊपर घनघोर वर्षा हो रही है।

कबीर कहते हैं, अमृत बरस रहा है और मैं नाच रहा हूं। वह अमृत किसी भविष्य की बात नहीं है। वह अभी बरस रहा है। वह यहीं बरस रहा है। कबीर कहते हैं, देखो, मेरे कपड़े बिलकुल भीग गए हैं! मैं अमृत की वर्षा में खड़ा हूं। बादल गरज रहे हैं और अमृत बरस रहा है। बरसेगा नहीं, बरस रहा है! देखो, मेरे कपड़े भीग रहे हैं!

धर्म है वर्तमान की घटना, वासना है भविष्य की दौड़। अगर भविष्य में बहुत रस मालूम पड़ता हो, तो अकर्ता बनने की कोशिश मत करना, क्योंकि बनते ही भविष्य गिर जाता है। और अगर दुख ही दुख पाया हो— भविष्य रोज तो वर्तमान बन जाता है और दुख लाता है—तो फिर एक दफे हिम्मत करके अकर्ता भी बनने की कोशिश करना।

अकर्ता बनते ही वह द्वार खुल जाता है इटरनिटी का, शाश्वतता का। वह वर्तमान से ही खुलता है। वर्तमान है अस्तित्व का द्वार।

अगर आप अभी और यहीं एक क्षण को भी ठहरने को राजी हो जाएं, तो आपका परमात्मा से मिलन हो सकता है।

लेकिन हमारा मन बहुत होशियार है। अभी मैं बात कर रहा हूं मन कहेगा कि ठीक कह रहे हैं। घर चलकर इसकी कोशिश करेंगे। घर चलकर? भविष्य! जरा किसी दिन फुर्सत मिलेगी, तो अकर्ता बनने की भी चेष्टा करेंगे। भविष्य!

जो अभी हो सकता है, उसको हम कल पर टालकर वंचित हो जाते हैं। लेकिन रस तो केवल उन्हीं लोगों ने जाना है, जो वर्तमान में प्रविष्ट हो गए हैं। बाकी लोगों ने सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं जाना है।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है...। बुद्ध को सभी सुख उपलब्ध थे, जो आप खोज सकते हैं। लेकिन सभी सुख उपलब्ध होने में एक बड़ा खतरा हो जाता है। और वह खतरा यह हो जाता है कि भविष्य की आशा नहीं रह जाती है।

दुख में एक सुविधा है, भविष्य में आशा रहती है। जो कार आप चाहते हैं, वह कल मिल सकती है, आज, अभी नहीं मिल सकती। श्रम करेंगे, पैसा जुटाएंगे, चोरी करेंगे, बेईमानी करेंगे, कुछ उपाय करेंगे। कल, समय चाहिए। जो मकान आप बनाना चाहते हैं, वक्त लेगा।

लेकिन बुद्ध को एक मुसीबत हो गई, एक अभिशाप, जो वरदान सिद्ध हुआ। उनके पास सब था, इसलिए भविष्य का कोई उपाय न रहा। जो भी था, वह था। महल बड़े से बड़े उनके पास थे। स्त्रियां सुंदर से सुंदर उनके पास थीं। धन जितना हो सकता था, उनके पास था। जो भी हो सकता था उस जमाने में श्रेष्ठतम, सुंदरतम, वह सब उनके पास था।

बुद्ध मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि आशा का कोई उपाय न रहा। होप समाप्त हो गई। इससे बड़ा मकान नहीं हो सकता; इससे सुंदर स्त्री नहीं हो सकती; इससे ज्यादा धन नहीं हो सकता। बुद्ध की तकलीफ यह हो गई कि उनके पास सब था, इसलिए भविष्य गिर गया। और दुख दिखाई पड़ गया कि सब दुख है। वे भाग खड़े हुए।

यह बड़े मजे की बात है, सुख में से लोग जाग गए हैं, भाग गए हैं, और दुख में लोग चलते चले जाते हैं! सुख में लोग इसलिए भाग खड़े होते हैं कि दिखाई पड जाता है कि अब और तो कुछ हो नहीं सकता। जो हो सकता था, वह हो गया, और कुछ हुआ नहीं। और भीतर दुख ही दुख है। भविष्य कुछ है नहीं। आशा बंधती नहीं। आशा टूट जाती है। आशा के सब सेतु गिर गए। बुद्ध भाग गए।

जब बुद्ध भाग रहे हैं, तो उनका सारथी उनसे कहता है कि आप क्या पागलपन कर रहे हैं! सारथी गरीब आदमी है। उसको अभी आशाएं हैं। वह प्रधान सारथी भी हो सकता है। वह सम्राट का सारथी हो सकता है। अभी राजकुमार का सारथी है। अभी बड़ी आशाएं हैं। वह बुद्ध को कहता है कि मैं का आदमी हूं; मैं तुम्हें समझाता हूं; तुम गलती कर रहे हो। तुम नासमझी कर रहे हो। तुम अभी यौवन की भूल में हो। लौट चलो। इतने सुंदर महल कहा मिलेंगे? इतनी सुंदर पत्नियां कहां मिलेंगी? इतना सुंदर पुत्र कहा पाओगे? तुम्हारे पास सब कुछ है, तुम कहा भागे जा रहे हो!

वह सारथी और बुद्ध के बीच जो बातचीत है.......। वह सारथी गलत नहीं कहता। वह अपने हिसाब से कहता है। उसको अभी आशाओं का जाल आगे खड़ा है। ये महल उसे भी मिल सकते हैं भविष्य में। ये सुंदर स्त्रियां वह भी पा सकता है। अभी दौड़ कायम है। उसे बुद्ध बिलकुल नासमझ मालूम पड़ते हैं कि यह लड़का बिलकुल नासमझ है। यह बच्चों जैसी बात कर रहा है। जहां जाने के लिए सारी दुनिया कोशिश कर रही है, वहां से यह भाग रहा है! आखिरी क्षण में भी वह कहता है कि एक बार मैं तुमसे फिर कहता हूं लौट चलो। महलों में वापस लौट चलो।

तो बुद्ध कहते हैं, तुझे महल दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि तू उन महलों में नहीं है। मुझे वहा सिर्फ आग की लपटें और दुख दिखाई पड़ता है। क्योंकि मैं वहां से आ रहा हूं। मैं उनमें रहकर आ रहा हूं। तू उनके बाहर है। इसलिए तुझे कुछ पता नहीं है। तू मुझे समझाने की कोशिश मत कर।

बुद्ध महल छोड़ देते हैं। और छ: वर्ष तक बड़ी कठिन तपश्चर्या करते हैं परमात्मा को, सत्य को, मोक्ष को पाने की। लेकिन छ: वर्ष की कठिन तपश्चर्या में भी न मोक्ष मिलता, न परमात्मा मिलता, न आत्मा मिलती।

बुद्ध की कथा बड़ी अनूठी है। छ: वर्ष वे, जो भी कहा जाता है, करते हैं। जो भी साधना—पद्धति बताई जाती है, करते हैं। उनसे गुरु घबड़ाने लगते हैं। अक्सर शिष्य गुरु से घबड़ाते हैं, क्योंकि गुरु जो कहता है, वे नहीं कर पाते। लेकिन बुद्ध से गुरु घबड़ाने लगते हैं। गुरु उनको कहते हैं कि बस, जो भी हम सिखा सकते थे, सिखा दिया; और तुमने सब कर लिया। और बुद्ध कहते हैं, आगे बताओ, क्योंकि अभी कुछ भी नहीं हुआ। तो वे कहते हैं, अब तुम कहीं और जाओ।

जितने गुरु उपलब्ध थे, बुद्ध सबके पास घूमकर सबको थका डालते हैं। छ: वर्ष बाद निरंजना नदी के किनारे वे वृक्ष के नीचे थककर बैठे हैं। यह थकान बड़ी गहरी है। एक थकान तो महलों की थी कि महल व्यर्थ हो गए थे। महल तो व्यर्थ हो गए थे, क्योंकि महलों में कोई भविष्य नहीं था।

इसे थोड़ा समझें, बारीक है। महलों में कोई भविष्य नहीं था। सब था पास में, आगे कोई आशा नहीं थी। जब उन्होंने महल छोड़े, तो आशा फिर बंध गई; भविष्य खुला हो गया। अब मोक्ष, परमात्मा, आत्मा, शांति, आनंद, इनके भविष्य की मंजिलें बन गईं। अब वे फिर दौड़ने लगे। वासना ने फिर गति पकड़ ली। अब वे साधना कर रहे थे, लेकिन वासना जग गई। क्योंकि वासना भविष्य के कारण जगती है। वासना है, मेरे और भविष्य के बीच जोड़। अब वे फिर दौड़ने लगे।

ये छ: वर्ष, तपश्चर्या के वर्ष, वासना के वर्ष थे। मोक्ष पाना था। और आज मिल नहीं सकता, भविष्य में था। इसलिए सब कठोर उपाय किए, लेकिन मोक्ष नहीं मिला। क्योंकि मोक्ष तो तभी मिलता है, जब दौड़ सब समाप्त हो जाती है। वह भीतर का शून्य तो तभी उपलब्ध होता है, या पूर्ण तभी उपलब्ध होता है, जब सब वासना गिर जाती है।

यह भी वासना थी कि ईश्वर को पा लूं सत्य को पा लूं। जो चीज भी भविष्य की मांग करती है, वह वासना है। ऐसा समझ लें कि जिस विचार के लिए भी भविष्य की जरूरत है, वह वासना है। तो बुद्ध उस दिन थक गए। यह थकान दोहरी थी। महल बेकार हो गए। अब साधना भी बेकार हो गई। अब वे वृक्ष के नीचे थककर बैठे थे। उस रात उनको लगा, अब करने को कुछ भी नहीं बचा। महल जान लिए। साधना की पद्धतियां जान लीं। कहीं कुछ पाने को नहीं है। यह थका बड़ी गहरी उतर गई, कहीं कुछ पाने को नहीं है। इस विचार ने कि कहीं कुछ पाने को नहीं है, स्वभावत: दूसरे विचार को भी जन्म दिया कि कुछ करने को नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें। जब कुछ पाने को नहीं है, तो करने को क्या बचता है? जब तक पाने को है, तब तक करने को बचता है। बुद्ध को लगा कि अब कुछ न पाने को है, न कुछ करने को है। वे उस रात खाली बैठे रह गए उस वृक्ष के नीचे। नींद कब आ गई, उन्हें पता नहीं।

सुबह जब रात का आखिरी तारा डूबता था, तब उनकी आंखें खुलीं। आज कुछ भी करने को नहीं था। न महल, न संसार, न मोक्ष, न आत्मा, कुछ भी करने को नहीं था। उनकी आंखें खुलीं। भीतर कोई वासना नहीं थी। आज उन्हें यह भी खयाल नहीं था कि उठकर कहां जाऊं। उठकर क्या करूं। उठने का भी क्या प्रयोजन है। आज कोई बात ही बाकी न रही थी! वे थे; आखिरी डूबता हुआ तारा था, सुबह का सन्नाटा था; निरंजना नदी का तट था। और बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हो गया।

जो साधना से न मिला, दौड़कर न मिला, वह उस सुबह रुक जाने से मिल गया। कुछ किया नहीं, और मिल गया! कुछ कर नहीं रहे थे उस क्षण में। क्या हुआ? उस क्षण में वे साक्षी हो गए। जब कोई कर्ता नहीं होता, तो साक्षी हो जाता है। और जब तक कोई कर्ता होता है, तब तक साक्षी नहीं हो पाता। उस क्षण वे देखने में समर्थ हो गए। कुछ करने को नहीं था, इसलिए करने की कोई वासना मन में नहीं थी। कोई द्वंद्व, कोई तनाव, कोई तरंग, कुछ भी नहीं था। मन बिलकुल शून्य था, जैसे नदी में कोई लहर न हो। इस लहरहीन अवस्था में परम आनंद उनके ऊपर बरस गया।

शांत होते ही आनंद बरस जाता है। मौन होते ही आनंद बरस जाता है। रुकते ही मंजिल पास आ जाती है। दौड़ते हैं, मंजिल दूर जाती है। रुकते हैं, मंजिल पास आ जाती है।

यह कहना ठीक नहीं है कि रुकते हैं, मंजिल पास आ जाती है। रुकते ही आप पाते हैं कि आप ही मंजिल हैं। कहीं जाने की कोई जरूरत न थी। जा रहे थे, इसलिए चूक रहे थे। खोज रहे थे, इसलिए खो रहे थे। रुक गए और पा लिया।

एक आखिरी प्रश्न। एक मित्र ने पूछा है कि क्या बिना साधना किए, अकस्मात आत्म—साक्षात्कार नहीं हो सकता?

कठिन है सवाल, लेकिन जो मैं अभी कह रहा था, उससे जोड़कर समझेंगे तो आसान हो जाएगा।

क्या अकस्मात आत्म—साक्षात्कार नहीं हो सकता? पहली तो बात, जब भी आत्म—साक्षात्कार होता है, तो अकस्मात ही होता है। जब भी आत्मा का अनुभव होता है, तो अकस्मात ही होता है। लेकिन इसका मतलब आप यह मत समझना कि उसके लिए कुछ भी करना नहीं पड़ता है। आपके करने से नहीं होता, लेकिन आपका करना जरूरी है।

इसे ऐसा समझें कि आपको किसी मित्र का नाम भूल गया है। और आप बड़ी चेष्टा करते हैं याद करने की। और जितनी चेष्टा करते हैं, उतना ही कुछ याद नहीं आता। और ऐसा भी लगता है कि बिलकुल जबान पर रखा है। आप कहते भी हैं कि बिलकुल जबान पर रखा है। अब जबान पर ही रखा है, तो निकाल क्यों नहीं देते? लेकिन पकड़ में नहीं आता। और जितनी कोशिश पकड़ने की करते हैं, उतना ही बचता है, भागता है। और भीतर कहीं एहसास भी होता है कि मालूम है। यह भी एहसास होता है कि अभी आ जाएगा। और फिर भी पकड़ में नहीं आता।

फिर आप थक जाते हैं। फिर आप थककर बगीचे में जाकर गड्डा खोदने लगते हैं। या उठाकर अखबार पढ़ने लगते हैं। या सिगरेट पीने लगते हैं। या रेडियो खोल देते हैं। या कुछ भी करने लगते हैं। या लेट जाते हैं। और थोड़ी देर में अचानक जैसे कोई बबूले की तरह वह नाम उठकर आपके ऊपर आ जाता है। और आप कहते हैं कि देखो, मैं कहता था, जबान पर रखा है। अब आ गया।

लेकिन इसमें दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। आपने जो कोशिश की, उसके कारण आया नहीं है। लेकिन अगर आपने कोशिश न की होती, तो भी न आता। यह जरा जटिल है।

आपने कोशिश की उसके कारण नहीं आया है, क्योंकि कोशिश में तनाव हो जाता है। तनाव के कारण मन संकीर्ण हो जाता है; दरवाजा बंद हो जाता है। आप इतने उत्सुक हो जाते हैं लाने के लिए कि उस उत्सुकता के कारण ही उपद्रव पैदा हो जाता है। भीतर सब तन जाता है। नाम के आने के लिए आपका शिथिल होना जरूरी है, ताकि नाम ऊपर आ सके, उसका बबूला आप तक आ जाए। लेकिन आपने जो चेष्टा की है, अगर वह आप चेष्टा ही न करें, तो बबूले की आने की कोई जरूरत भी नहीं रह जाती।

इसका अर्थ यह हुआ कि चेष्टा करना जरूरी है और फिर चेष्टा छोड़ देना भी जरूरी है। यही आध्यात्मिक साधना की सबसे कठिन बात है। यहां कोशिश भी करनी पड़ेगी और एक सीमा पर कोशिश को छोड़ भी देना पड़ेगा। कोशिश करना जरूरी है और छोड़ देना भी जरूरी है।

इसे हम ऐसा समझें कि आप एक सीढ़ी पर चढ़ते हैं। अगर कोई मुझसे पूछे कि क्या सीढ़ियों पर चढ़ने से मैं मंजिल पर पहुंच जाऊंगा, छत पर पहुंचा जाऊंगा? या बिना सीढ़ी चढ़े भी छत पर पहुंचा जा सकता है? तो मेरी वही दिक्कत होगी, जो इस सवाल में हो रही है।

मैं आपसे कहूंगा कि सीढ़ियों पर चढ़ना जरूरी है और फिर सीढ़ियों को छोड़ देना भी जरूरी है। सीढ़ी पर बिना चढ़े कोई भी छत पर नहीं पहुंच सकता। और कोई सीढ़ियों पर ही चढ़ता रहे, और सीढ़ियों पर ही रुका रहे, तो भी छत पर नहीं पहुंच सकता। सीढ़ियों पर चढ़ना होगा; और एक जगह आएगी, जहां सीढ़िया छोड्कर छत पर जाना होगा।

आप कहें कि जिस सीढ़ी पर हम चढ़ रहे थे, उसी पर चढ़ते रहेंगे, तो फिर आप छत पर कभी नहीं पहुंच पाएंगे। सीढ़ियों पर चढ़ो भी और सीढ़ियों को छोड़ भी दो।

आध्यात्मिक साधना सीढ़ियों जैसी है। उस पर चढ़ना भी जरूरी है, उससे उतर जाना भी जरूरी है।

उदाहरण के लिए अगर आप कोई जप का प्रयोग करते हैं, राम का जप करते हैं। तो ध्यान रहे, जब तक राम का जप न छूट जाए तब तक राम से मिलन न होगा। लेकिन छोड़ तो वही सकता है, जिसने किया हो।

कुछ नासमझ कहते हैं कि तब तो बिलकुल ठीक ही है; हम अच्छी हालत में ही हैं। छोड़ने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि हमने कभी किया ही नहीं। वे सीढ़ी के नीचे खड़े हैं। छोड़ने वाला सीढ़ी के ऊपर से छोड़ेगा। उन दोनों के तलों में फर्क है।

साधना बुद्ध ने छः वर्ष की। बौद्ध चिंतन, बौद्ध धारा निरंतर सवाल उठाती रही है कि बुद्ध ने छः वर्ष साधना की, तप किया, उस तप से सत्य मिला या नहीं? एक उत्तर है कि उस तप से सत्य नहीं मिला। क्योंकि उस तप से नहीं मिला, छः वर्ष की मेहनत से कुछ भी नहीं मिला। मिला तो तब, जब तप छोड़ दिया। तो एक वर्ग है बौद्धों का, जो कहता है कि बुद्ध को तप से कुछ भी नहीं मिला, इसलिए तप व्यर्थ है।

लेकिन जो ज्यादा बुद्धिमान वर्ग है, वह कहता है, तप से नहीं मिला, लेकिन फिर भी जो मिला, वह तप पर आधारित है। वह तप के बिना भी नहीं मिलेगा।

आप जाकर बैठ जाएं निरंजना नदी के किनारे। वह झाड़ू अभी भी लगा हुआ है। आप वैसे ही जाकर मजे से उसके नीचे बैठ जाएं। सुबह आखिरी तारा अब भी डूबता है। सुबह आप आंख खोल लेना। अलार्म की एक घड़ी लगा लेना। ठीक वक्त पर आंख खुल जाएगी। आप तारे को देख लेना और बुद्ध हो जाना!

आप बुद्ध नहीं हो पाएंगे। वह छः वर्ष की दौड़ इस बैठने के लिए जरूरी थी। यह आदमी इतना दौड़ा था, इसलिए बैठ सका। आप दौड़े ही नहीं हैं, तो बैठेंगे कैसे?

इसे हम ऐसा समझें कि एक आदमी दिनभर मेहनत करता है, तो रात गहरी नींद में सो जाता है। नींद उलटी हैं। दिनभर मेहनत करता है, रात गहरी नींद में सो जाता है। आप कहते हैं कि मुझे नींद क्यों नहीं आती? आप दिनभर आराम कर रहे हैं। और फिर रात नींद नहीं आती, तो आप सोचते हैं कि मुझे तो और ज्यादा नींद आनी चाहिए। मैं तो नींद का दिनभर अभ्यास करता हूं! और यह आदमी तो दिनभर मेहनत करता है, नींद के अभ्यास का इसे मौका ही नहीं मिलता। और मैं दिनभर नींद का अभ्यास करता हूं। आंख बंद किए सोफे पर पड़ा ही रहता हूं करवट बदलता रहता हूं। और इसको नींद आ जाती है, जिसने दिन में बिलकुल अभ्यास नहीं किया! और मुझे नींद रात बिलकुल नहीं आती, जो कि दिनभर का अभ्यास किया है! यह कैसा अन्याय हो रहा है जगत में?

आपको खयाल नहीं है कि जिसने दिनभर मेहनत की है, वही विश्राम का हकदार हो जाता है। विश्राम मेहनत का फल है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप रात भी मेहनत करते रहें। विश्राम करना जरूरी है। लेकिन वह जरूरी तभी है और उपलब्ध भी तभी होता है, जब उसके पहले श्रम गुजरा हो।

जो आदमी बुद्ध की तरह छः साल गहरी तपश्चर्या में दौड़ता है, वह अगर किसी दिन थककर बैठ जाएगा, तो उसके बैठने का गुणधर्म अलग है। वह आप जैसा नहीं बैठा है। आप बैठे हुए भी चल रहे हैं। आप भी उसी बोधिवृक्ष के नीचे बैठ सकते हैं, मगर आपका मन चलता ही रहेगा, आपका मन योजनाएं बनाता रहेगा। सुबह का तारा भी डूब रहा होगा, तब भी आपके भीतर हजार चीजें खड़ी होंगी। वहां कोई मौन नहीं हो सकता। जब तक वासना है, तब तक मौन नहीं हो सकता।

बुद्ध की दौड़ से सत्य नहीं मिला, यह ठीक है। लेकिन बुद्ध की दौड़ से ही सत्य मिला, यह भी उतना ही ठीक है। इस द्वंद्व को ठीक से आप समझ लेंगे, तो इस प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।

आत्म—साक्षात्कार तो सदा अकस्मात ही होता है। क्योंकि उसका कोई प्रेडिक्शन नहीं हो सकता, कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती कि कल सुबह ग्यारह बजे आपको आत्म—साक्षात्कार हो जाएगा।

आपकी मौत की भविष्यवाणी हो सकती है। आपकी बीमारी की भविष्यवाणी हो सकती है। सफलता—असफलता की भविष्यवाणी हो सकती है। आत्म—साक्षात्कार की कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। क्योंकि आत्म—साक्षात्कार इतनी अनूठी घटना है और कार्य—कारण से इतनी मुक्त है कि उसके लिए कोई गणित नहीं बिठाया जा सकता।

आत्म—साक्षात्कार तो अकस्मात ही होगा। और कभी—कभी ऐसे क्षणों में हो जाता है, जिनको आप सोच भी नहीं सकते थे कि इस क्षण में और आत्म—साक्षात्कार होगा। लेकिन अगर आप इसका यह मतलब समझ लें कि साधना करनी जरूरी नहीं है, अकस्मात जब होना है, हो जाएगा। तो कभी भी न होगा। साधना जरूरी है। साधना जरूरी है आपको तैयार करने के लिए। आत्म—साक्षात्कार साधना से नहीं आता, लेकिन आप तैयार होते हैं, आप योग्य बनते हैं, आप पात्र बनते हैं, आप खुलते हैं। और जब आप योग्य और पात्र हो जाते हैं, तो आत्म—साक्षात्कार की घटना घट जाती है। इस फर्क को ठीक से खयाल में ले लें।

आप परमात्मा को साधना से नहीं ला सकते। वह तो मौजूद है। साधना से सिर्फ आप अपनी आंख खोलते हैं। साधना से सिर्फ आप अपने को तैयार करते हैं। परमात्मा तो मौजूद है, उसको पाने का कोई सवाल नहीं है।

ऐसा समझें कि आप अपने घर में बैठे हैं। सूरज निकल गया है, सुबह है। और आप सब तरफ से द्वार—दरवाजे बंद किए अंदर बैठे हैं। सूरज आपके दरवाजों को तोड़कर भीतर नहीं आएगा। लेकिन दरवाजे पर उसकी किरणें रुकी रहेंगी। आप चाहें कि जाकर बाहर सूरज की रोशनी को गठरी में बांधकर भीतर ले आएं, तो भी आप न ला सकेंगे। गठरी भीतर आ जाएगी, रोशनी बाहर की बाहर रह जाएगी। लेकिन आप एक काम कर सकते हैं कि दरवाजे खुले छोड़ दें, और सूरज भीतर चला आएगा।

न तो सूरज को जबरदस्ती भीतर लाने का कोई उपाय है। और न सूरज जबरदस्ती अपनी तरफ से भीतर आता है। आप क्या कर सकते हैं? एक मजेदार बात है। आप सूरज को भीतर तो नहीं ला सकते, लेकिन बाहर रोक सकते हैं। आप दरवाजा बंद रखें, तो भीतर नहीं आएगा। आप दरवाजा खोल दें, तो भीतर आएगा।

ठीक परमात्मा ऐसा ही मौजूद है। और जब तक आप अपने विचारों में बंद, अपने मन से घिरे, मुर्दे की तरह हैं, एक कब्र में, चारों तरफ दीवालों से घिरे हुए एक कारागृह में—वासनाओं का, विचारों का, स्मृतियों का कारागृह; आशाओं का, अपेक्षाओं का कारागृह—तब तक परमात्मा से आपका मिलन नहीं हो पाता। जिस क्षण यह कारागृह आपसे गिर जाता है, जिस क्षण, जैसे वस्त्र गिर जाएं, और आप नग्न हो गए, ऐसे ये सारे विचार—वासनाओं

के वस्त्र गिर गए और आप नग्न हो गए अपनी शुद्धता में, उसी क्षण आपका मिलना हो जाता है।

साधना आपको निखारती है, परमात्मा को नहीं मिलाती। लेकिन जिस दिन आप निखर जाते हैं.,। और कोई नहीं कह सकता कि कब आप निखर जाते हैं, क्योंकि इतनी अनहोनी घटना है कि कोई मापदंड नहीं है। और जांचने का कोई उपाय नहीं है। कोई दिशासूचक यंत्र नहीं है। कोई नक्शा नहीं है, अनचार्टर्ड है। यात्रा बिलकुल ही नक्शे रहित है।

आपके पास कुछ भी नहीं है कि आप पता लगा लें कि आप कहां पहुंच गए। निन्यानबे डिग्री पर पहुंच गए, कि साढ़े निन्यानबे डिग्री पर पहुंच गए कि कब सौ डिग्री हो जाएगी, कब आप भाप बन जाएंगे। यह तो जब आप बन जाते हैं, तभी पता चलता है कि बन गए। वह आदमी पुराना समाप्त हो गया और एक नई चेतना का जन्म हो गया। अकस्मात, अचानक विस्फोट हो जाता है।

लेकिन उस अकस्मात विस्फोट के पहले लंबी यात्रा है साधना की। जब पानी भाप बनता है, तो सौ डिग्री पर अकस्मात बन जाता है। लेकिन आप यह मत समझना कि निन्यानबे डिग्री पर, अट्ठानबे डिग्री पर भी अकस्मात बन जाएगा। सौ डिग्री तक पहुंचेगा, तो एकदम से भाप बन जाएगा। लेकिन सौ डिग्री तक पहुंचने के लिए जो गरमी की जरूरत है, वह साधना जुटाएगी।

इसलिए हमने साधना को तप कहा है। तप का अर्थ है, गरमी। वह तपाना है स्वयं को और एक ऐसी स्थिति में ले आना है, जहां परमात्मा से मिलन हो सकता है।

बुद्ध उस रात उस जगह आ गए जहां सौ डिग्री पूरी हो गई। फिर आग देने की कोई जरूरत भी न रही। वे टिककर उस वृक्ष से बैठ गए। उन्होंने तप भी छोड़ दिया। लेकिन घटना सुबह घट गई।

जीवन के परम रहस्य अकस्मात घटित होते हैं। लेकिन उन अकस्मात घटित होने वाले रहस्यों की भी बड़ी पूर्व—भूमिका है। अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, जिस प्रकार एक ही सूर्य इस संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा संपूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान—नेत्रों द्वारा तत्व से जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि एक सुबह रास्ते से निकलते वक्त, वर्षा के दिन थे और रास्ते के किनारे जगह—जगह डबरे हो गए थे और पानी भर गया था। कुछ डबरे गंदे थे। कुछ डबरों में जानवर स्नान कर रहे थे। कुछ डबरे शुद्ध थे। कुछ बिलकुल स्वच्छ थे। किन्हीं के पोखर का पानी बड़ा स्वच्छ—साफ था। किन्हीं का बिलकुल गंदा था। और सुबह का सूरज निकला। रवींद्रनाथ ने कहा कि मैं घूमने निकला था। मुझे एक बात बड़ी हैरान कर गई और अकस्मात वह बात मेरे हृदय के गहरे से गहरे अंतस्तल को स्पर्श करने लगी।

देखा मैंने कि सूरज एक है; गंदे डबरे में भी उसी का प्रतिबिंब बन रहा है, स्वच्छ पानी में भी उसी का प्रतिबिंब बन रहा है। और यह भी खयाल में आया कि गंदे डबरे में जो प्रतिबिंब बन रहा है, वह गंदे पानी की वजह से प्रतिबिंब गंदा नहीं हो रहा है। प्रतिबिंब तो वैसा का वैसा निष्कलुष! सूरज का जो प्रतिबिंब बन रहा है, वह तो वैसा का वैसा निर्दोष और पवित्र! और शुद्ध जल में भी उसका प्रतिबिंब बन रहा है। वे प्रतिबिंब दोनों बिलकुल एक जैसे हैं। गंदगी जल में हो सकती है, डबरे में हो सकती है, लेकिन प्रतिबिंब की शुद्धि में कोई अंतर नहीं पड़ रहा है। और फिर एक ही सूर्य न मालूम कितने डबरों में, करोड़ों—करोड़ों डबरों में पृथ्वी पर प्रतिबिंबित हो रहा होगा।

कृष्ण कहते हैं, जैसे एक ही सूर्य इस संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा, एक ही चैतन्य समस्त जीवन को आच्छादित किए हुए है।

वह जो आपके भीतर चैतन्य की ज्योति है, और वह जो मेरे भीतर चैतन्य की ज्योति है, और वह जो वृक्ष के भीतर चैतन्य की ज्योति है, वह एक ही प्रकाश के टुकड़े हैं, एक ही प्रकाश की किरणें हैं।

प्रकाश एक है, उसका स्वाद एक है। उसका स्वभाव एक है। दीए अलग— अलग हैं। कोई मिट्टी का दीया है, कोई सोने का दीया है। लेकिन सोने के दीए में जो प्रकाश होता है, वह कुछ कीमती नहीं हो जाता। और मिट्टी के दीए में जो प्रकाश होता है, वह कोई कम कीमती नहीं हो जाता। और मिट्टी के दीए की ज्योति को अगर आप जांचें और सोने के दीए की ज्योति को जांचें, तो उन दोनों का स्वभाव एक है।

चैतन्य एक है। उसका स्वभाव एक है। वह स्वभाव है, साक्षी होना। वह स्वभाव है, जानना। वह स्वभाव है, दर्शन की क्षमता। प्रकाश का क्या स्वभाव है? अंधेरे को तोड़ देना। जहां कुछ न दिखाई पड़ता हो, वहां सब कुछ दिखाई पड़ने लगे। चैतन्य का स्वभाव है, देखने की, जागने की क्षमता, दर्शन की, ज्ञान की क्षमता। वह भी भीतरी प्रकाश है। उस प्रकाश में सब कुछ दिखाई पड़ने लगता है।

खतरा एक ही है कि जब भीतर का दीया हमारा जलता है और हमें चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं, तो हम चीजों को स्मरण रख लेते हैं और जिसमें दिखाई पड़ती हैं, उसे भूल जाते हैं। यही विस्मरण संसार है। जो दिखाई पड़ता है, उसे पकड़ने दौड़ पड़ते हैं। और जिसमें दिखाई पड़ता है, उसका विस्मरण हो जाता है।

जिस चैतन्य के कारण हमें सारा संसार दिखाई पड़ रहा है, उस चैतन्य को हम भूल जाते हैं। और वह जो दिखाई पड़ता है, उसके पीछे चल पड़ते हैं। इसी यात्रा में हम जन्मों—जन्मों भटके हैं।

कृष्ण कहते हैं सूत्र इससे जागने का। वह सूत्र है कि हम उसका स्मरण करें, जिसको दिखाई पड़ता है। जो दिखाई पड़ता है, उसे भूलें। जिसको दिखाई पड़ता है, उसको स्मरण करें। विषय भूल जाए, और वह जो भीतर बैठा हुआ द्रष्टा है, वह स्मरण में आ जाए। यह स्मृति ही क्षेत्रज्ञ में स्थापित कर देती है। यह स्मृति ही क्षेत्र से तोड़ देती है।

यह सारा विचार क्या का इन दो शब्दों के बीच चल रहा है, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। वह जो जानने वाला है वह, और वह जो जाना जाता है। जाना जो जाता है, वह संसार है। और जो जानता है, वह परमात्मा है।

यह परमात्मा अलग—अलग नहीं है। यह हम सबके भीतर एक है। लेकिन हमें अलग—अलग दिखाई पड़ता है, क्योंकि हम भीतर तो कभी झांककर देखे नहीं। हमने तो केवल शरीर की सीमा देखी है।

मेरा शरीर अलग है। आपका शरीर अलग है। स्वभावत:, वृक्ष का शरीर अलग है। तारों का शरीर अलग है। पत्थर का शरीर अलग है। तो शरीर हमें दिखाई पड़ते हैं, इसलिए खयाल होता है कि जो भीतर छिपा है, वह भी अलग है।

एक बार हम अपने भीतर देख लें और हमें पता चल जाए कि शरीर में जो छिपा है, शरीर से जो घिरा है, वह अशरीरी है। पदार्थ जिसकी सीमा बनाता है, वह पदार्थ नहीं है। सब सीमाएं टूट गईं। फिर सब शरीर खो गए। फिर सब आकृतियां विलुप्त हो गईं और निराकार का स्मरण होने लगा। इस सूत्र में उसी निराकार का स्मरण है।। हे अर्जुन, जिस प्रकार एक ही सूर्य संपूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा संपूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है। इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान —नेत्रों द्वारा तत्व से जानते है, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को......।

बहुत बारीक भेद है और जरा में भूल जाता है। क्योंकि जिसे हम देख रहे हैं, उसे देखना आसान है। और जो देख रहा है, उसे देखना मुश्किल है। अपने को ही देखना मुश्किल है। इसलिए बार — बार दृष्टि पदार्थों पर अटक जाती है। बार—बार कोई विषय, कोई वासना, कुछ पाने की आकांक्षा पकड़ लेती है। चारों तरफ बहुत। कुछ है।

गुरजिएफ कहा करता था कि जो व्यक्ति सेल्फ रिमेंबरिंग,। स्व—स्मृति को उपलब्ध हो जाता है, उसे फिर कुछ पाने को नहीं रह जाता। साक्रेटीज ने कहा है कि स्वयं को जान लेना सब कुछ है, सब कुछ जान लेना है।

मगर यह स्वयं को जानने की कला है। और वह कला है, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद। वह कला है, सदा जो दिखाई पड़ रहा है, उससे अपने को अलग कर लेना। इसका अर्थ गहरा है।

इसका अर्थ यह है कि आपको मकान दिखाई पड़ता है, तो अलग कर लेने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन आपको अपना शरीर भी दिखाई पड़ता है। यह हाथ मुझे दिखाई पड़ता है। तो जिस हाथ को मैं देख रहा हूं निश्चित ही उस हाथ से मैं अलग हो गया। और तब आंख बंद करके कोई देखे, तो अपने विचार भी दिखाई पड़ते हैं। अगर आंख बंद करके शांत होकर देखें, तो आपको दिखाई पड़ेगी विचारों की कतार ट्रैफिक की तरह चल रही है। एक विचार आया, दूसरा विचार आया, तीसरा विचार आया। भीड़ लगी है विचारों की। इनको भी अगर आप देख लेते हैं, तो इसका मतलब हुआ कि ये भी क्षेत्र हो गए।

जो भी देख लिया गया, वह मुझसे अलग हो गया—यह सूत्र है साधना का। जो भी मैं देख लेता हूं वह मैं नहीं हूं। और मैं उसकी तलाश करता रहूंगा, जिसको मैं देख नहीं पाता और हूं। उसका मुझे पता उसी दिन चलेगा, जिस दिन देखने वाली कोई भी चीज मेरे सामने न रह जाए।

संसार से आंख बंद कर लेनी बहुत कठिन नहीं है। आंख बंद हो जाती है, संसार बंद हो जाता है। लेकिन संसार के प्रतिबिंब भीतर छूट गए हैं, वे चलते रहते हैं। फिर उनसे भी अपने को तोड़ लेना है। और तोड़ने. की कला यही है कि मैं आंख गड़ाकर देखता रहूं, सिर्फ देखता रहूं, और इतना ही स्मरण रखूं कि जो भी मुझे दिखाई पड़ जाए, वह मैं नहीं हूं।

धीरे— धीरे— धीरे विचार भी खो जाएंगे। जैसे—जैसे यह धार तलवार की गहरी होती जाएगी, प्रखर होती जाएगी, और मेरी काटने की कला साफ होती जाएगी कि जो भी मुझे दिखाई पड़ जाए, वह मैं नहीं हूं एक घड़ी ऐसी आती है, जब कुछ भी दिखाई पड़ने को शेष नहीं रह जाता है। वही ध्यान की घड़ी है। उसको शून्य कहा जाता है, क्योंकि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन अगर शून्य दिखाई पड़ता है, तो वह भी मैं नहीं हूं यह खयाल रखना जरूरी है। क्योंकि ऐसे बहुत से ध्यानी भूल में पड़ गए हैं। क्योंकि जब कोई भी विषय नहीं बचता, तो वे कहते हैं, शून्य रह गया।

बौद्धों का एक शून्यवाद है। नागार्जुन ने उसकी प्रस्तावना की है। और नागार्जुन ने कहा है कि सब कुछ शून्य है।

यह भी भूल है। यह आखिरी भूल है, लेकिन भूल है। क्योंकि शून्य बचा। लेकिन तब शून्य भी एक आब्जेक्ट बन गया। मैं शून्य को देख रहा हूं। निश्चित ही, मैं शून्य भी नहीं हो सकता।

जो भी मुझे दिखाई पड़ जाता है, वह मैं नहीं हूं। मैं तो वह हूं जिसको दिखाई पड़ता है। इसलिए पीछे —पीछे सरकते जाना है। एक घड़ी ऐसी आती है, जब शून्य से भी मै अपने को अलग कर लेता हूं।

जब शून्य दिखाई पड़ता है, तब ध्यान की अवस्था है। कुछ लोग ध्यान में ही रुक जाते हैं, तो शून्य को पकड़ लेते हैं। जब शून्य को भी कोई छोड़ देता है, शून्य को छोड़ते ही सारा आयाम बदल जाता है। फिर कुछ भी नहीं बचता। संसार तो खो गया, विचार खो गए, शून्य भी खो गया। फिर कुछ भी नहीं बचता। फिर सिर्फ जानने वाला ही बच रहता है।

शून्य तक ध्यान है। और जब शून्य भी खो जाता है, तो समाधि है। जब शून्य भी नहीं बचता, सिर्फ मैं ही बच रहता हूं सिर्फ जानने वाला!

ऐसा समझें कि दीया जलता है। सिर्फ प्रकाश रह जाता है। कोई प्रकाशित चीज नहीं रह जाती। किसी चीज पर प्रकाश नहीं पड़ता। सिर्फ प्रकाश रह जाता है। सिर्फ जानना रह जाता है और जानने को कोई भी चीज नहीं बचती, ऐसी अवस्था का नाम समाधि है। यह समाधि ही परम ब्रह्म का द्वार है।

तो कृष्ण कहते हैं, जो इस भेद को तथा विकारयुक्त प्रकृति से छूटने के उपाय को—यही उपाय है—ज्ञान—नेत्रों द्वारा तत्व जानते हैं.......।

लेकिन शब्द से तो जान सकते हैं आप। मैंने कहा, आपने सुना; और एक अर्थ में आपने जान भी लिया। पर यह जानना काम नहीं आएगा। यह तो केवल व्याख्या हुई। यह तो केवल विश्लेषण हुआ। यह तो केवल शब्दों के द्वारा प्रत्यय की पकड़ हुई। लेकिन ज्ञान—नेत्रों के द्वारा जो तत्व से जान लेता है, ऐसा आपका अनुभव बन जाए।

यह तो आप प्रयोग करेंगे, तो अनुभव बनेगा। यह तो आप अपने भीतर उतरते जाएंगे और काटते चले जाएंगे क्षेत्र को, ताकि क्षेत्रज्ञ उसकी शुद्धतम स्थिति में अनुभव में आ जाए.। क्षेत्र से मिश्रित होने के कारण वह अनुभव में नहीं आता।

तो इलिमिनेट करना है, काटना है, क्षेत्र को छोड़ते जाना है, हटाते जाना है। और उस घड़ी को ले आना है भीतर, जहां कि मैं ही बचा अकेला; कोई भी न बचा। सिर्फ मेरे जानने की शुद्ध क्षमता रह गई, केवल ज्ञान रह गया। तो जिस दिन आप अपने ज्ञान—नेत्रों से..।

स्मृति को आप ज्ञान मत समझ लेना। समझ ली कोई बात, इसको आप अनुभव मत समझ लेना। बिलकुल अकल में आ गई, तो भी आप यह मत समझ लेना कि आप में आ गई। बुद्धि में आ जाना तो बहुत आसान है। क्योंकि साधारणतया जो सोच—समझ सकता है, वह भी समझ लेगा कि बात ठीक है, कि जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं कैसे हो सकता हूं! मैं तो वही होऊंगा, जिसको दिखाई पडता है। यह तो बात सीधी गणित की है। यह तो तर्क की पकड़ में आ जाती है।

यह मेरा हाथ है, इससे मैं जो भी चीज पकड़ लूं एक बात पक्की है कि वह मेरा हाथ नहीं होगा। जो भी चीज इससे मैं पकडूंगा, वह कुछ और होगी। इसी हाथ को इसी हाथ से पकड़ने का कोई उपाय नहीं है।

आप एक चमीटे से चीजें पकड़ लेते हैं। दुनियाभर की चीजें पकड़ सकते हैं। सिर्फ उसी चमीटे को नहीं पकड़ सकते उसी चमीटे से। दूसरे से पकड़ सकते हैं। वह सवाल नहीं है। लेकिन उसी चमीटे से आप सब चीजें पकड़ लेते हैं। यह बड़ी मुश्किल की बात है।

यह दुनिया बड़ी अजीब है। जो चमीटा सभी चीजों को पकड़ लेता है, वह भी अपने को पकड़ने में असमर्थ है। तो आप चमीटे में कुछ भी पकड़े हों, एक बात पक्की है कि चमीटा नहीं होगा वह; वही चमीटा नहीं होगा; कुछ और होगा। जब सब पकड़ छूट जाए, तो शुद्ध चमीटा बचेगा।

जब मेरे हाथ में कुछ भी पकड़ में न रह जाए, तो मेरा शुद्ध हाथ बचेगा। जब मेरी चेतना के लिए कोई भी चीज जानने को शेष न रह जाए, तो सिर्फ चैतन्य बचेगा। लेकिन यह अनुभव से!

तर्क से समझ में आ जाता है। और एक बड़े से बड़ा खतरा है। जब समझ में आ जाता है, तो हम सोचते हैं, बात हो गई।

इधर मैं देखता हूं पचास साल से गीता पढने वाले लोग हैं। रोज पढ़ते हैं। भाव से पढ़ते हैं, निष्ठा से पढ़ते हैं। उनकी निष्ठा में कोई कमी नहीं है। उनके भाव में कोई कमी नहीं है। प्रामाणिक है उनका श्रम। और गीता वे बिलकुल समझ गए हैं। वही खतरा हो गया है। किया उन्होंने बिलकुल नहीं है कुछ भी।

सिर्फ गीता को समझते रहे हैं, बिलकुल समझ गए हैं। उनके खून में बह गई है गीता। वे मर भी गए हों और उनको उठा लो, तो वे गीता बोल सकते हैं, इतनी गहरी उनकी हड्डी—मास—मज्जा में उतर गई है। लेकिन उन्होंने किया कुछ भी नहीं है, बस उसको पढ़ते रहे हैं, समझते रहे हैं। बुद्धि भर गई है, लेकिन हृदय खाली रह गया है। और अस्तित्व से कोई संपर्क नहीं हो पाया है।

तो कई बार बहुत प्रामाणिक भाव, श्रद्धा, निष्ठा से भरे लोग भी चूक जाते हैं। चूकने का कारण यह होता है कि वे स्मृति को ज्ञान समझ लेते हैं।

अनुभव की चिंता रखना सदा। और जिस चीज का अनुभव न हुआ हो, खयाल में रखे रखना कि अभी मुझे अनुभव नहीं हुआ है। इसको भूल मत जाना।

मन की बड़ी इच्छा होती है इसे भूल जाने की, क्योंकि मन मानना चाहता है कि हो गया अनुभव। अहंकार को बड़ी तृप्ति होती है कि मुझे भी हो गया अनुभव।

लोग मेरे पास आते हैं। वे मुझसे पूछते हैं कि मुझे ऐसा—ऐसा अनुभव हुआ है, आत्मा का अनुभव हुआ है। आप कह दें कि मुझे आत्मा का अनुभव हो गया कि नहीं?

मैं उनसे पूछता हूं कि तुम मुझसे पूछने किस लिए आए हो? क्योंकि आत्मा का जब तुम्हें अनुभव होगा, तो तुम्हें किसी से पूछने की जरूरत न रह जाएगी। मैं कह दूं कि तुम्हें आत्मा का अनुभव हो गया, तुम बड़ी प्रसन्नता से चले जाओगे कि तुम्हें एक प्रमाणपत्र, एक सर्टिफिकेट मिल गया। सर्टिफिकेट की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें अभी हुआ नहीं है। तुमने समझ ली है सारी बात। तुम्हें समझ में इतनी आ गई है कि तुम यह भूल ही गए हो कि अनुभव के बिना समझ में आ गई है।

अनुभव को निरंतर स्मरण रखना जरूरी है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, जिनको अपने ही ज्ञान—नेत्रों से तत्व का अनुभव होता है, वे महात्माजन...। और यहां वे तत्क्षण उनके लिए महात्मा का उपयोग करते हैं।

अनुभव आपको महात्मा बना देता है। उसके पहले आप पंडित हो सकते हैं। पंडित उतना ही अज्ञानी है, जितना कोई और अज्ञानी। फर्क थोडा—सा है कि अज्ञानी शुद्ध अज्ञानी है, और पंडित इस भ्रांति में है कि वह अज्ञानी नहीं है। इतना ही फर्क है कि पंडित के पास शब्दों का जाल है, और अज्ञानी के पास शब्दों का जाल नहीं है। पंडित को भ्रांति है कि वह जानता है, और अज्ञानी को भ्रांति नहीं है ऐसी।

अगर ऐसा समझें, तब तो अज्ञानी बेहतर हालत में है। क्योंकि उसका जानना कम से कम सचाई के करीब है। पंडित खतरे में है। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि अज्ञानी तो भटकते हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। वे इन्हीं ज्ञानियों के लिए कहते हैं।

यह तो बडा उलटा सूत्र मालूम पड़ता है! उपनिषद के इस सूत्र को समझने में बडी जटिलता हुई। क्योंकि सूत्र कहता है, अज्ञानी तो भटकते हैं अंधकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। तो फिर तो बचने का कोई उपाय ही न रहा। अज्ञानी भी भटकेंगे और ज्ञानी और बुरी तरह भटकेंगे, तो फिर बचेगा कौन?

बचेगा अनुभवी। अनुभवी बिलकुल तीसरी बात है। अज्ञानी वह है, जिसे शब्दों का, शास्त्रों का कोई पता नहीं। और ज्ञानी वह है, जिसे शब्दों और शास्त्रों का पता है। और अनुभवी वह है, जिसे शास्त्रों और शब्दों का नहीं, जिसे सत्य का ही स्वयं पता है, जहां ' से शास्त्र और शब्द पैदा होते हैं।

शास्त्र तो प्रतिध्वनि है, किसी को अनुभव हुए सत्य की। वह प्रतिध्वनि है। और जब तक आपको ही अपना अनुभव न हो जाए, सभी शास्त्र झूठे रहेंगे। आप गवाह जब तक न बन जाएं, जब तक आप न कह सकें कि ठीक, गीता वही कहती है जो मैंने भी जान लिया है, तब तक गीता आपके लिए असत्य रहेगी।

आपके हिंदू होने से गीता सत्य नहीं होती। और आपके गीता—प्रेमी होने से गीता सत्य नहीं होती। जब तक आपका अनुभव गवाही न दे दे कि ठीक, जो कृष्ण कहते हैं क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद, वह मैंने जान लिया है; और मैं गवाही देता हूं अपने अनुभव से; तब आपके लिए गीता सत्य होती है।

शास्त्रों से सत्य नहीं मिलता, लेकिन आप शास्त्रों के गवाही बन सकते हैं। और तब शास्त्र, जो आप नहीं कह सकते, जो आपको बताना कठिन होगा, उसको बताने के माध्यम हो जाते हैं। शास्त्र केवल गवाहियां हैं जानने वालों की। और आपकी गवाही भी जब उनसे मेल खा जाती है, तभी शास्त्र से संबंध हुआ।

गीता को रट डालो, कंठस्थ कर लो। कोई संबंध न होगा। लेकिन जो गीता कहती है, वही जान लो, संबंध हो गया।

जब तक आप गीता को पढ़ रहे हैं, तब तक ज्यादा से ज्यादा आपका संबंध अर्जुन से हो सकता है। लेकिन जिस दिन आप गीता को अनुभव कर लेते हैं, उसी दिन आपका संबंध कृष्ण से हो जाता है।